प्रतापनारायण मिश्र : जीवन और साहित्य

[सागर विश्वविद्यालय की पी-एच०डी० उपाधि के लिए स्वीकृत शोध-प्रबन्ध]

लेखक

डा० सुरेशचन्द्र शुक्ल 'चन्द्र',

एम० ए०, पी-एच० डी०

एकाधिकारी वितरक

युगवाणी प्रकाशन, कानपुर

मूल्य : पंद्रह रुपए केवल

पुस्तक :
प्रतापनारायण : जीवन और साहित्य
लेखक : डा० सुरेशचन्द्र शुक्ल
प्रकाशक :
युगवाणी प्रकाशन
१०७/६६, जवाहरनगर, कानपुर
मुद्रक :
इरा प्रेस, लखनऊ ।

भूमिका

डा० सुरेशचन्द्र शुक्ल का शोध प्रबध आवश्यक सक्षिप्तीकरण के साथ पुस्तक रूप में प्रकाशित किया जा रहा है। यह प्रबध भारतेन्दु युग के प्रसिद्ध साहित्यकार प्रतापनारायण मिश्र पर लिखा गया था। मिश्र जी की साहित्यिक कृतियां धीरे-धीरे विस्मृति के गर्भ मे चली जा रही थी और उनकी जीवनी तथा व्यक्तित्व आदि का ज्ञान भी लुप्त होता जा रहा था। मिश्र जी जैसे अल्पजीवी किन्तु विशिष्ट प्रतिभाशाली लेखक का इस प्रकार तिरोहित होना किसी प्रकार वांछनीय नही कहा जा सकता, परन्तु स्थिति कुछ वैसी ही थी। तभी मेरी प्रेरणा से डा० सुरेशचन्द्र शुक्ल मिश्र जी के अध्ययन में प्रवृत्त हुए। उन्होंने उनकी समस्त रचनायें खोज निकाली और उसकी जीवन घटनाओं और सामाजिक तथा राष्ट्रीय क्रियाकलापों का एक सुन्दर आकलन तैयार किया, जो इस पुस्तक में यथास्थान सकलित है। डा० शुक्ल का यह प्रयास विशेष परिश्रम-साध्य रहा है, परन्तु उन्हे मिश्र जी की जीवनी प्रस्तुत करने मे अच्छी सफलता मिली है।

जहाँ तक मिश्र जी की साहित्यिक रचनाओं का प्रश्न है, सुरेशचन्द्र ने उनके विवेचन मे यथेष्ट संतुलित और विचारपूर्ण दृष्टि का परिचय दिया है। निबध और नाट्य-रचना के क्षेत्र में प्रतापनारायण मिश्र अपने युग के सर्वश्रेष्ठ लेखकों में रहे हैं। उनकी प्रतिभा स्वय भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की प्रतिभा से टक्कर लेती थी। इस साहित्यिक तथ्य को सुरेशचन्द्र शुक्ल ने विवेचनपूर्वक स्पष्ट किया है। कतिपय अन्य क्षेत्रों में भारतेन्दु जी का कार्य अधिक विशद और प्रांजल है। इसकी ज्ञापना भी प्रस्तुत प्रबन्ध मे की गई है।

मिश्र जी के साहित्यिक कार्य को विभिन्न साहित्य-रूपों में विभक्त कर इनकी पृथक्-पृथक् विवेचना की गई है। प्रत्येक साहित्य-रूप की विशेषता तथा उसकी विकासात्मक परंपरा का उल्लेख करते हुए शोधकर्ता ने प्रतापनारायण मिश्र की उस साहित्य-विधा पर अपने विचार प्रकट किये है। संभव है, विविध साहित्य-विधाओं का स्वरूप और इतिवृत्त देने मे, लेखक अपने विषय से कुछ दूर चला गया हो, पर शोधकर्ता की विशदता के लिए इस प्रकार की भूमिकायें अनेक बार आवश्यक

हो जाती हैं। डा० शुक्ल ने इसी विशद पथ का अनुसरण कर अपने विषय की स्थापना की है।

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' तथा गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही' के साथ प्रताप-नारायण मिश्र पर किया गया यह शोधकार्य सागर विश्वविद्यालय द्वारा उत्तर प्रदेश के और विशेषकर कानपुर के तीन प्रमुख साहित्यिकों के पर्यालोचन का प्रयास है। आशा है, इस पुस्तक के द्वारा प्रताप नारायण मिश्र के ऐतिहासिक और साहित्यिक प्रदेय को स्थायित्व प्राप्त होगा और प्रस्तुत पुस्तक साहित्य-समाज में समुचित समादर प्राप्त करेगी।

सागर,

विजयादशमी सं० २०२१

नन्ददुलारे वाजपेयी

पूज्य पितामह

स्व० पं० गोविन्दप्रसाद जी शुक्ल

की

पावन स्मृति

को

सादर समर्पित

वक्तव्य

पं० प्रतापनारायण मिश्र पर प्रबन्ध लिखने की प्रेरणा मुझे पूज्य गुरुवर आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी जी से मिली। उन्होंने ही मिश्र जी के साहित्यिक व्यक्तित्व से अवगत कराकर मुझे इस कार्य की ओर प्रवृत्त किया। शोध-कार्य में अवतीर्ण होने पर प्रताप-साहित्य के विषय मे फैली हुई, साहित्य-जगत् की अनेक भ्रांतियों का मुझे परिज्ञान हुआ और उनके निराकरण की प्रेरणा मिली। जब मैंने शोध-कर्ताओं को अपने प्रबन्धों में मिश्र जी कृति 'मन की लहर' और 'प्रेम पुष्पावली' कविता-पुस्तकों को एकांकी नाटक लिखते देखा[1] तो मुझे आश्चर्य हुआ कि ऐसे समर्थ और युग-प्रवर्तक साहित्यकार के विषय में ऐसी भ्रांतियां हैं! मिश्र जी पर फैली हुई बहुत सी भ्रांतियों का दिग्दर्शन शोध-प्रबन्ध में यथास्थान कराया गया है।

हिन्दी-साहित्य में मिश्र जी का स्थान साहित्य-मर्मज्ञों से छिपा नही है। मिश्र जी भारतेन्दु-युग के प्रतिभाशाली साहित्यकार हैं। आधुनिक हिन्दी-साहित्य का प्रथम उत्थान-काल भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, बालकृष्ण भट्ट और प्रतापनारायण मिश्र से ही गौरवन्वित है। मिश्र जी ने तन, मन और धन की बाजी लगाकर जो हिन्दी साहित्य और समाज की सेवा की है, वह कभी भुलाई नहीं जा सकती। हिन्दी-साहित्य के उन्नायकों में उनका नाम अमर रहेगा। भारतेन्दु और भट्ट पर पर्याप्त अनु-संधान-कार्य हो चुका है तथा उनका समुचित मूल्यांकन भी किया गया है, परन्तु मिश्र जी पर अभी तक छिटपुट लेखो के अतिरिक्त कुछ भी नही लिखा गया। उनके कवि और नाटककार रूप को तो साहित्यकारों ने भुला ही दिया है, केवल निबन्धकार के

१—डा० रामचरण महेन्द्र—हिन्दी एकांकी : उद्भव और विकास पृष्ठ ६५-६६

रूप में उनका नाम लिया जाता है जबकि उनका काव्य और नाटक भी अपने युग मे विशिष्ट स्थान का अधिकारी है। सुनने मे आया है कि कुछ वर्ष पूर्व दो-एक विश्वविद्यालयों में मिश्रजी पर पी-एच०डी० के लिए शोध-कार्य प्रारम्भ हुआ था, पर जीवन-सूत्र और कृतियों के शोध मे कठिनाई होने के कारण शोध-कर्ता कार्य से विरत हो गए। वस्तुतः मिश्र जी के जीवन-सूत्र और कृतियो का पता लगाना आज दुरूह हो रहा है। मुझे भी सामग्री की खोज में कई बार बनारस, इलाहाबाद, कानपुर, उन्नाव आदि स्थानो का भ्रमण करना पडा है और अनेक कठिनाइयों का सामना करने के उपरान्त यह शोध-प्रबन्ध पूरा किया जा सका है।

यह शोध-प्रबन्ध दो खण्डो मे विभक्त है। प्रथम खण्ड परिचयात्मक है। द्वितीय खण्ड में मिश्र-साहित्य की समीक्षा प्रस्तुत की गई है। प्रथम खण्ड मे तीन अध्याय है। पहले अध्याय में मिश्रजी का विस्तृत जीवन-वृत है जिसमे जन्म, गोत्र, वंश-परम्परा, बाल्यकाल, शिक्षा, गार्हस्थ्य जीवन, कार्यक्षेत्र, व्यक्तित्व, स्वर्गारोहण और मित्र-मण्डली आदि का उल्लेख है। दूसरे अध्याय में तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक और साहित्यिक स्थितियो का अध्ययन कर उनका मिश्रजी पर प्रभाव दिखाया गया है। मिश्रजी के निवास-स्थान कानपुर की तत्कालीन स्थिति का पर्यालोचन विशेष रूप से किया गया है। तीसरे अध्याय में मिश्रजी जी की मौलिक तथा अनूदित कृतियो का विवरण—क्रम-विकास और मूलवर्ती प्रवृत्तियों के साथ दिया गया है।

द्वितीय खण्ड मे पाँच अध्याय है। पहले अध्याय मे मिश्र जी की कविताओं की समीक्षा है। मिश्र जी की कविताओं का परीक्षण युगीन पृष्ठभूमि को दृष्टि में रखकर किया गया है। प्राचीन और आधुनिक काव्य-शैली से सम्बन्धित कविताओं का पृथक्-पृथक् विवेचन है। दूसरे अध्याय में मिश्र जी के नाटकों पर विचार किया गया है। नाटको के वर्ण्य-विषय, चरित्र-निर्माण, उद्देश्य, भाषा, अभिनेयता आदि पर विचार करते हुए मिश्र जी का नाटक-साहित्य मे स्थान निर्धारित किया गया है। तीसरे अध्याय में मिश्र जी के निबन्धों का विवेचन है। इसमे हिन्दी निबन्ध का विकास देकर, मिश्रजी के सम्पूर्ण निबन्ध-साहित्य का वर्गीकरण करके गम्भीर अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। चौथे अध्याय मे मिश्रजी के पत्रकारिता

सम्बन्धी कार्य की समीक्षा की गयी है। इसमें मिश्र जी के पत्रकार जीवन की कठिनाइयों के बीच उनकी पत्रकारिता को देखा गया है। पाँचवें अध्याय में मिश्र जी के अन्य स्फुट साहित्य पर विचार किया गया है। इसके अन्तर्गत समालोचना साहित्य और अनूदित साहित्य का विवेचन है।

इसके बाद उपसहार है जिसमे भारतेन्दु-युगीन साहित्यकारों के बीच मिश्र जी को देखने का प्रयत्न किया गया है। भारतेन्दु-युगीन साहित्यकारो के दृष्टिकोण और साहित्य से मिश्र जी की तुलना की गयी है तथा भारतेन्दु-युग में उनका स्थान निर्धारित किया गया है। तत्पश्चात् प्रमुख परवर्ती लेखकों पर मिश्र जी का प्रभाव दिखाया गया है। अन्त मे दो परिशिष्ट है। परिशिष्ट १ के अन्तर्गत मिश्र जी के अप्रकाशित साहित्य का उल्लेख है और परिशिष्ट २ मे सहायक पुस्तकों और पत्र-पत्रिकाओं की सूची दी गयी है।

इस शोध-प्रबन्ध की विशेषता यह है कि मिश्र जी और उनके साहित्य को भारतेन्दु-युग के परिवेश में देखा गया है। पूरे शोध प्रबन्ध मे भारतेन्दु-युग मिश्र जी के चारों ओर चक्कर लगाता दिखाई देगा।

यह शोध-प्रबन्ध श्रद्धेय गुरुवर्य आचार्य नन्ददुलारे जी वाजपेयी (अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग, सागर विश्वविद्यालय) के निर्देशन में लिखा गया है। उन्होंने बड़ी सहृदयता, स्नेह और तन्मयता से मेरा पथ-प्रदर्शन किया है। जब भी कभी उलझने आयी है उन्होंने बड़ी आत्मीयता से उन्हे सुलझाया है। कहने की आवश्यकता नही कि यदि इतना स्वस्थ निर्देशन मुझे न प्राप्त होता तो यह प्रबन्ध पूरा होना असम्भव था। इस प्रबन्ध में उन्ही की प्रेरणाएँ साकार हो गयी है। इस शोध प्रबन्ध के लिखने में उन्होंने जो सहयोग एवं प्रेरणा दी है उसके लिए कृतज्ञता ज्ञापन करना तो केवल परम्परा का निर्वाह ही होगा, मैं तो जीवन पर्यन्त उनका शिष्यत्व प्राप्त कर गौरव का अनुभव करता रहूँगा।

पूज्य श्री परमानन्द जी वाजपेयी (डिप्टी रजिस्ट्रार, सागर विश्वविद्यालय) को तो मैं अपना संरक्षक ही मानता हूँ। उनसे मुझे पुत्रवत् स्नेह मिला है। उन्ही की इच्छा से मैंने सागर विश्वविद्यालय मे शोध-कार्य प्रारम्भ किया था। उन्होंने

मुझे हर प्रकार से सहायता पहुँचाई है। इस कार्य के पूरा होने में उनका बहुत बड़ा हाथ है। इस उपकार के लिए मैं उनका यावज्जीवन ऋणी रहूँगा।

सर्व श्री विजयशंकर मल्ल (बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय) और लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी (भू० पू० अध्यक्ष, इतिहास-विभाग, क्राइस्ट चर्च कालेज, कानपुर) का भी मैं अत्यंत आभारी हूं। मल्ल साहब से मुझे 'प्रतापनारायण-ग्रन्थावली' द्वितीय खण्ड की पर्याप्त सामग्री देखने को प्राप्त हुई है। त्रिपाठी जी ने भी इस कार्य में मुझे अनेक सुझाव और परामर्श दिये है साथ ही टंकित-प्रबन्ध का भी आद्योपांत अवलोकन किया है।

सर्व श्री गयाप्रसाद ज्योतिषी, (बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय), डॉ० प्रेम नारायण शुक्ल, डी. ए. वी. कालेज कानपुर), नरेशचन्द्र चतुर्वेदी (कानपुर) रामकिंकर दीक्षित, (बैजेगांव, उन्नाव), पार्वती देवी (मिश्र जी के दत्तक-पुत्र की पत्नी) आदि से भी मुझे इस शोध-प्रबन्ध में बड़ी सहायता मिली है जिसके लिए मैं उनका आभार प्रदर्शित करता हूँ।

इसके अतिरिक्त नागरी प्रचारिणी सभा (काशी), भारतीय भवन पुस्तकालय (प्रयाग), साहित्य सम्मेलन संग्रहालय (प्रयाग), नवजीवन पुस्तकालय (कानपुर), गयाप्रसाद लाइब्रेरी (कानपुर), हिन्दी साहित्य पुस्तकालय मौरावाँ (उन्नाव) और सागर विश्वविद्यालय के पुस्तकालयाध्यक्षों एवं व्यवस्थापकों को हृदय से धन्यवाद देता हूँ। इनसे मुझे बहुत सी उपयोगी सामग्री प्राप्त हुई है।"

महाशिवरात्रि
२०१९ वि०

—सुरेशचन्द्र शुक्ल 'चन्द्र'

विषय-सूची

प्रथम खण्ड : परिचय

	पृष्ठ संख्या
पहला अध्याय—जीवन-वृत्त	**१—७३**
१. जन्म और नामकरण	३
२. वर्ण, गोत्र आदि	४
३. वंश परम्परा	४
४. जन्म भूमि और निवास स्थान	१०
५. बाल्यकाल और शिक्षा	१२
६. गार्हस्थ्य जीवन	१६
७. कार्य-क्षेत्र	२०
८. व्यक्तित्व	३६
९. जीवनोद्देश्य	५१
१०. रुग्णावस्था और स्वर्गारोहण	५२
११. मिश्रजी की मृत्यु के बाद उनकी पत्नी और दत्तक पुत्र	५६
१२. मित्र-मण्डली	५९
दूसरा अध्याय—तत्कालीन परिस्थितियाँ	**७४—१४४**
१. राजनीतिक स्थिति	७४
२. सामाजिक स्थिति	९३
३. धार्मिक स्थिति	१०८
४. साहित्यिक स्थिति	१२६
तीसरा अध्याय—कृतियों का परिचय	**१४५—२०१**
१. मौलिक-साहित्य	१४८
(क) कविता	१४८
(ख) नाटक	१६६
(ग) विविध	१७९
(घ) अपूर्ण	१९१
(ङ) संदिग्ध	१९५

पृष्ठ संख्या

२ अनूदित-साहित्य १९६
(क) कहानी १९७
(ख) उपन्यास १९७
(ग) इतिहास १९७
(घ) भूगोल १९७
(ङ) विविध १९७
(च) सग्रह ग्रन्थ १९८
३. मिश्र जी पर लिखा गया आलोचना-साहित्य १९९

द्वितीय खण्ड : समीक्षा

पहला अध्याय—मिश्रजी की कविता **२०५—२६६**
१. कविता की युगीन-पृष्ठभूमि २०५
२. मिश्रजी का दृष्टिकोण २१४
३ कविता का रूप-विधान २१७
४. विषय-विवेचन २१८
५. प्राचीन काव्य-शैली २१८
(क) वीर भावना २१९
(ख) भक्ति भावना २२०
(ग) शृंगार भावना २२८
६. आधुनिक काव्य-शैली २३६
(क) देश-प्रेम २३६
(ख) हास्य और व्यग्य २४०
(ग) प्रकृति वर्णन २४२
७ रस-निरूपण २४४
८. भाषा २४८
९ छन्द-विधान २५४
१०. अलंकार-योजना २६२
दूसरा अध्याय—मिश्र जी के नाटक **२६७—३०५**
१ हिन्दी नाटक-साहित्य २६७
२. हिन्दी-रंगमंच २७१
३. मिश्र जी के नाटकों का क्रम-विकास २७२
४. वर्ण्य-विषय २७२

पृष्ठ संख्या

५	चरित्र निर्माण	२७६
६.	देशकाल	२८७
७.	उद्देश्य	२९०
८.	भाषा	२९१
९.	शैली	२९४
१०.	अभिनेयता	३००
११.	नाट्याभिनय की दिशा मे मिश्र जी का योगदान	३०२
तीसरा अध्याय—मिश्र जी के निबन्ध		**३०६—३४७**
१.	भारतेन्दु-युग में हिन्दी-निबन्ध का विकास	३०६
२.	मिश्र जी के निबन्धों का वर्गीकरण	३१४
	(क) वर्णनात्मक निबन्ध	३१६
	(ख) विचारात्मक निबन्ध	३२२
	(ग) भावात्मक निबन्ध	३३०
	(घ) हास्य और व्यंग्य परक निबन्ध	३३४
३.	निबन्धों की भाषा	३४३
चौथा अध्याय—मिश्र जी की पत्रकारिता		**३४८—३८७**
१.	मिश्र जी से पूर्व हिन्दी-पत्रकारिता	३४९
२.	मिश्र जी का पत्रकारिता संबंधी कार्य	३५९
३.	मिश्र जी के पत्रकार-जीवन की कठिनाइयाँ	३६७
४.	ब्राह्मण में प्रकाशित विषय	३७६
५.	ब्राह्मण के लेखक	३८०
६.	ब्राह्मण की भाषा	३८२
७	मिश्र जी की सम्पादन-कला	३८३
८.	पत्रकारिता की दिशा में मिश्रजी का योग	३८६
पाँचवाँ अध्याय—मिश्रजी का अन्य स्फुट साहित्य		**३८८—४०७**
१.	समालोचना साहित्य	३८८
	(क) सामयिक पुस्तकों की समालोचना	३९२
	(ख) सामयिक पत्रों की समालोचना	३९७
	(ग) पुराणों की समालोचना	३९९
२.	अनूदित साहित्य	४०२

पृष्ठ संख्या

उपसंहार ४०८—४३४

१. भारतेन्दु-युगीन साहित्यकार और मिश्रजी ४०८

(क) सामाजिक दृष्टिकोण ४०८

(ख) राजनीतिक दृष्टिकोण ४११

(ग) साहित्यिक दृष्टिकोण ४१४

(घ) भारतेन्दु-युग की कविता ४१५

(ङ) भारतेन्दु-युग के नाटक ४१९

(च) भारतेन्दु-युग के निबन्ध ४२२

(छ) भारतेन्दु-युगीन साहित्यकारों की भाषा-शैली ४२६

२. परवर्ती साहित्यकारों पर मिश्रजी का प्रभाव ४३०

परिशिष्ट ४३७—४४८

१. मिश्रजी का अप्रकाशित साहित्य ४३७—४४१

२. सहायक ग्रन्थों की सूची ४४२—४४८

प्रथम खण्ड

****

परिचय

पहला अध्याय

जीवन-वृत्त

जीवन और साहित्य का अभिन्न सम्बन्ध है। कोई भी साहित्यकार कितना ही तटस्थ क्यों न हो फिर भी साहित्य मे उसके जीवन के कुछ न कुछ अश आ ही जाते है। साहित्यकार का व्यक्तित्व तो उसके साहित्य मे निहित होता ही है। इसलिए उसके साहित्य के मूल मे पहुँचने के लिए पहले उसके जीवन में पहुँचने की आवश्यकता होती है। पण्डित प्रतापनारायण मिश्र व्यक्तित्व प्रधान साहित्यकार थे। उनका साहित्य उनके सबल व्यक्तित्व और गहन अनुभवयुक्त-जीवन का ही परिणाम है। जिस प्रकार उनका जीवन अकृत्रिम, स्पष्ट, उदार और हास्यपूर्ण था वैसा ही उनका साहित्य भी है। जीवन के जिन स्रोतो से मिश्र जी का साहित्य उद्भूत हुआ है और जिन तत्वो को लेकर वह तरगायित है उनको बिना समझे उनके साहित्य के गूढ-तत्वो को समझना असम्भव है। मिश्र जी का जीवन-वृत्त उनके साहित्यिक-कार्य के समान ही रोचक है, इसी रोचकता के ही कारण पण्डित रमाकान्त त्रिपाठी ने उनके जीवन को 'एक उपन्यास की भाँति'[1] माना है। रोचक और साहित्याध्ययन के लिए आवश्यक होते हुए भी मिश्र जी का जीवन-वृत्त आज तक पूर्ण नहीं हो सका। यद्यपि लिखने का प्रयास कई विद्वानों ने किया पर परिश्रम तथा शोध के अभाव के कारण वह अब भी अपूर्ण है। सर्व प्रथम मिश्र जी ने स्वत अपना जीवन चरित्र—'प्रताप चरित्र' नाम से सन् १८८८ ई० मे लिखना प्रारम्भ किया था जो 'ब्राह्मण' पत्र के खण्ड ५ सख्या २, ३, ४ मे प्रकाशित हुआ, पर इसमे मिश्र जी अपने पूर्वजो तक का ही चरित्र लिख सके, किन्ही कारणो से इसे पूरा नही किया। पूर्वजो का भी चरित्र बहुत सक्षेप मे—केवल चार पृष्ठो मे—लिखा गया है।

मिश्र जी की मृत्यु के उपरान्त उनके प्रिय शिष्य स्वर्गीय पाण्डे प्रभुदयाल ने उनका जीवन-चरित्र लिखने का विचार किया और महाराज कुमार बाबू रामदीनसिंह आदि की सहायता से उन्होने प्रामाणिक सामग्री भी एकत्रित कर ली। पर जीवन-चरित्र लिखने के पूर्व ही पाण्डे जी की मृत्यु हो गई और उनकी मृत्यु के साथ ही उनके द्वारा एकत्रित की हुई सामग्री भी अप्राप्य हो गयी[2]। इसके बाद पण्डित

१—रमाकान्त त्रिपाठी : हिन्दी गद्य मीमांसा (१९३२ ई०) पृष्ठ २५४

२—'बालमुकुन्द गुप्त-निबंधावली' प्रथम भाग (२००७ वि०) पृष्ठ २-३

महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'पण्डित प्रताप नारायण मिश्र' शीर्षक एक लेख लिखा और उसे 'सरस्वती' मार्च १९०६ ई० के अंक मे प्रकाशित किया। इस लेख मे मिश्र जी के जीवन और साहित्य पर सक्षेप मे प्रकाश डाला गया है। आगे चलकर यही लेख सन् १९१९ मे 'निबन्ध नवनीत' पहिला भाग, की भूमिका मे सकलित होकर अभ्युदय प्रेस, प्रयाग से प्रकाशित हुआ। सन् १९०७ मे बाबू बालमुकुन्द गुप्त ने मिश्र जी का जीवन-चरित्र लिखकर 'प० प्रतापनारायण मिश्र' शीर्षक से 'भारत मित्र' मे प्रकाशित किया। इस चरित्र मे गुप्त जी ने 'ब्राह्मण' म 'प्रताप-चरित्र' सकलित किया और स्वतः सात पृष्ठो मे मिश्र जी के जीवन पर प्रकाश डाला है। इसके अनन्तर बाबू श्यामसुन्दर दास ने सन् १९०९ ई० मे मिश्र जी का चरित्र 'हिन्दी कोविद रत्न माला, (पहिला भाग) मे निकाला। फिर प० रमाकान्त त्रिपाठी ने १९३३ ई० मे मिश्र जी के प्रमुख लेखो तथा कविताओं का सम्पादन 'प्रताप-पीयूष' मे किया और इसी ग्रन्थ की भूमिका मे—उपर्युक्त ग्रन्थों के आधार पर तथा कुछ अन्य संस्मरणो को जोड—मिश्र जी का जीवन-चरित्र और समीक्षा लिखकर प्रकाशित कराया। जून १९३८ ई० मे एक लेख गोपालराम गहमरी का लिखा हुआ 'स्व० प० प्रतापनारायण मिश्र' शीर्षक से 'सरस्वती' मे प्रकाशित हुआ। इस लेख मे कालाकाकर के कुछ नये सस्मरण गहमरी जी ने दिये है क्योकि जिस समय मिश्र जी 'दैनिक हिन्दुस्तान' के सहायक सम्पादक थे गहमरी जी न भी मिश्र जी के साथ कुछ समय तक कार्य किया था।[१] इसलिए ये संस्करण वास्तविक तथा प्रामाणिक है। आगे फिर 'निबन्ध-नवनीत' और 'प्रताप-पीयूष' से सामग्री लेकर प्रेमनारायण टडन ने मिश्र जी का चरित्र और उनके साहित्य की आलोचना लिखी और उसे 'प्रताप-समीक्षा' की भूमिका मे सन् १९३९ मे निकाला। इसके बाद नारायण प्रसाद अरोड़ा और लक्ष्मीकात त्रिपाठी ने सन् १९४७ मे 'प्रतापनारायण मिश्र' शीर्षक से मिश्र जी के प्रमुख लेखो का सम्पादन किया। इसमे मिश्र जी के जीवन पर सम्पादको की ओर से तो कोई प्रकाश नही डाला गया पर मिश्र जी की मित्र-मण्डली विषयक सामग्री (कानपुर से सबन्धित) इसमे अच्छी दी गई है। इसके अतिरिक्त उपर्युक्त ग्रन्थो के ही आधार पर लिखित हिन्दी साहित्य के इतिहास ग्रन्थों मे मिश्र जी के जीवन से सबधित सामग्री एक-दो पृष्ठो मे प्राप्त होती है।

जितने भी लेखको ने मिश्र जी का जीवन-चरित्र लिखा है उन्होने अपनी ओर से कुछ विशिष्ट सामग्री न देकर द्विवेदी जी के ही लेख[२] की सामग्री का कुछ

१—'सरस्वती' जून १९३८ ई० 'स्व० पं० प्रतापनारायण मिश्र' : गोपालराम गहमरी।

२—'सरस्वती' मार्च, १९०६ ई०, 'प० प्रतापनारायण मिश्र' :
आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी

हेर-फेर के साथ उपयोग किया है इसलिए मिश्र जी के जीवन का सम्पूर्ण चित्र कोई भी जीवनीकार उपस्थित न कर सका। यहाँ तक कि मिश्र जी के ग्राहस्थ्य-जीवन पर किसी ने एक शब्द भी न लिखा।

इस शोध-प्रबन्ध मे जब मिश्र जी की जीवनी लिखने का कार्य मेरे समक्ष आया और मैने उपर्युक्त सामग्री का अध्ययन किया तो अनेक सदेह और संशय मेरे मस्तिष्क मे उत्पन्न हुए। जैसे-जन्म-स्थान और मृत्यु-तिथि का पृथक्-पृथक् मिलना आदि—जिनका समाधान होना असम्भव-सा दिखाई पडने लगा। आज मिश्र जी की मृत्यु के ६८ वर्ष हो गये और अब उनके समय का कोई भी ऐसा व्यक्ति नही रहा जो उनके विषय मे कुछ बता सके। ऐसी स्थिति मे एक वर्ष तक सामग्री के अभाव मे मै बडा उदासीन रहा। अन्त मे मैने जब मिश्र जी की कृतियों का शोध किया तो उनमे मुझे अनेक जीवन-कण लहराते हुए दिखाई दिये, जिनसे मुझे इस कार्य मे बढने का प्रोत्साहन मिला और उन जीवन-कणो को मैने एकत्र किया। इसके साथ ही दो स्रोत मुझे और मिले जिनसे मुझे जीवनी लिखने मे बडी सहायता मिली। एक बैंजेगाँव (उन्नाव) निवासी श्री रामकिंकर दीक्षित है जो प्रतापनारायण मिश्र के चचेरे भाई के प्रपौत्र (लडकी के पुत्र) है जिनकी अवस्था इस समय ७१ वर्ष की है; ये आजकल मिश्र जी की बैजेगाँव की सम्पत्ति के अधिकारी है। इनसे मुझे मिश्र जी के पूर्वजो के विषय मे मौखिक बहुत-सी बातें ज्ञात हुई। दूसरी श्री पार्वती देवी है जो प्रतापनारायण जी के दत्तक पुत्र स्व० रामगोपाल की धर्मपत्नी है और मिश्र जी के नौघडा वाले मकान मे रहती है। इनकी अवस्था ६५ वर्ष की है और मिश्र जी की कानपुर की सम्पत्ति की यही अधिकारिणी है। यह और मिश्र जी की पत्नी साथ-साथ २० वर्ष तक रही है। इनके द्वारा मिश्र जी के ग्राहस्थ्य जीवन तथा कार्य-क्षेत्र के विषय मे बहुत-सी अज्ञात बाते मौखिक रूप से ज्ञात हुई है।

जन्म और नामकरण

पण्डित प्रतापनारायण मिश्र का जन्म आश्विन कृष्ण ९, चन्द्रवार, सम्वत् १९१३ वि० (२४ सितम्बर, १८५६ ई०) को हुआ था[१]। मिश्र जी का नामकरण उनकी चाची (श्री यदुनन्दन जी की पत्नी) ने किया था। ये श्री रामानुज स्वामी के सम्प्रदाय की थी क्योकि उनके पितृकुल के सभी लोग इसी धर्म को मानते थे इसलिए मिश्र जी का नाम भी उन्होने अपने सप्रदाय के अनुसार ही रखा था[२]। मिश्र जी का

---

१. जन्म तिथि सभी पुस्तको मे एक-सी मिलती हैं लेकिन वह केवल विक्रमी तिथि मे है अंग्रेजी तिथि और दिन १९१३ वि० के पंचांग से निकाले गये है। यह पचांग हस्तलिखित-भारती भवन पुस्तकालय, इलाहाबाद में प्राप्त हुआ।

२. 'ब्राह्मण' खण्ड ५, संख्या ४ 'प्रताप-चरित्र' : प्रतापनारायण मिश्र।

नाम 'नारायण' शब्द उनके संप्रदाय का ही द्योतक है। इस नाम के अतिरिक्त मिश्र जी ने स्वत. अपने कई उपनाम भी रक्खे थे जिनमें 'ईश्वरावलम्बित' और 'प्रेमदास' अधिक प्रसिद्ध है। सक्षेप मे वे अपने को 'प्रताप मिश्र' और 'प्रताप कानपुरी' भी लिखते थे। कविता के स्थान, छन्द और मात्रा की दृष्टि से भी इन्होने अपने नाम की प्रतापहरी, प्रताप, परताप, परतापनारायन, प्रतापजू आदि रूपो मे प्रयुक्त किया है। आल्हा में वह अपना उपनाम 'अखण्ड अलहत' रखते थे। उर्दू मे मिश्र जी का तखल्लुस 'बरहमन' था। इसी से वे उर्दू में रचनाएँ करते थे। लेकिन साहित्य-जगत मे वे प्रतापनारायण मिश्र के ही नाम से प्रसिद्ध है।

वर्ण, गोत्र आदि

प० प्रतापनारायण वर्ण से कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। इनका जन्म 'बैजेगाव के मिश्र-कुल मे हुआ था। यह परमनाथ (या पवननाथ) के असामी (वशज) थे और इनका गोत्र कात्यायन था।[1] इसलिए ये कभी-कभी अपने नाम से पहले 'श्री मनमहर्षि कात्यायन कुमार भी लिखते थे और अन्य लोगो को भी ऐसे-ऐसे विशेषण नाम से पूर्व लिखने के लिए प्रेरित करते थे, जिससे आत्मगौरव का स्मरण होता रहे[2]। मिश्र-वश की कुलदेवी गार्गी, कुलदेवता बूढ़े बाबू, यजुवद और धनुरउपवेद धर्म ग्रन्थ तथा शिव इष्ट देवता है[3]।

वंश परम्परा

पण्डित प्रतापनारायण मिश्र का वश महर्षि विश्वामित्र से प्रारम्भ होता है यही इनके आदि पुरुष है[4]। कहते है कि जब विश्वामित्र को कठिन तपस्या द्वारा ब्रह्मर्षि का पद प्राप्त हो गया (वैसे जन्म से विश्वामित्र क्षत्रिय थे) तब ब्राह्मणो ने भी अपनी लडकियो का ब्याह इनसे किया और इन लडकियों से उत्पन्न संतानो की गणना ब्राह्मणो मे हुई। विश्वामित्र के पिता गाधि और पितामह कुशिक कान्यकुब्ज देश के राजा थे। और इनकी राजधानी कान्यकुब्जपुर (कन्नौज) थी[5]। कान्यकुब्ज देश को पहले मध्यदेश कहते थे। यह देश कन्नौज, अयोध्या (अवध) दिल्ली और आगरा तक फैला हुआ था, इसी देश के रहने वाले ब्राह्मण कान्यकुब्ज कहलाये।[6] आगे चलकर विश्वामित्र के वश मे कात्यायन, किल और परमनाथ (पवननाथ) बडे

---

१. 'ब्राह्मण' खण्ड ५. संख्या ३ 'प्रताप-चरित्र' प्रतापनारायण मिश्र

२. 'प्रतापनारायण ग्रन्थावली' प्रथम खण्ड (२०१४ वि०): पृष्ठ ५४७-४८

३. 'ब्राह्मण' खण्ड ५, संख्या ३ 'प्रताप-चरित्र' : प्रतापनारायण मिश्र

४. 'ब्राह्मण' खण्ड ५ संख्या ३ 'प्रताप-चरित्र, : प्रतापनारायण मिश्र

५. 'ब्राह्मण' खण्ड ५, संख्या ३ प्रताप-चरित्र - : प्रतापनारायण मिश्र

६. नारायण प्रसाद मिश्र : कान्यकुब्ज-वंशावली (१९५९ई०), पृष्ठ ९

यशस्वी पुरुष हुए ।[१] कात्यायन का वश कात्यायन गोत्रीय ब्राह्मणो के नाम से प्रसिद्ध हुआ । यहाँ इतना कह देना अनुचित न होगा कि विश्वामित्र न तो ऐतिहासिक पुरुष ही है और न इनके ऊपर कोई प्रामाणिक सामाग्री ही मिलती है, केवल जनश्रुतियो और वशावलियो मे ही उक्त उल्लेख मिलता है । सम्भव है मिश्र जी ने भी जन-श्रुतियों के ही आधार पर विश्वामित्र को अपना आदि पुरुष माना हो ।

मिश्र जी के आदि पूर्वज कान्यकुब्जपुर (कन्नौज) मे रहते थे ।[२] बाद मे जीविकोपार्जन हेतु-कान्यकुब्जपुर छोड़कर विभिन्न स्थानो मे बस गये । बैजेगाव के मिश्रो की उत्पति इस प्रकार मिलती है—कात्यायन गोत्र में चतुर्भुज द्विवेदी बडे प्रतापी पुरुष हुए और टिकरिया ग्राम मे रहने के कारण टिकरिया-दुबे कहलाये । इनके पुत्र गार्गीदत्त टिकरिया ग्राम छोड़कर कजपुर चले गये और ये कजपुर के मिश्र कहलाये । इन्ही क पौत्र पवननाथ बैजेगाव मे आकर बसे और ये बैजेगाव के मिश्र कहाये । इसके बाद पवननाथ का वश भी बैजेगाव के मिश्रो के नाम से विख्यात हुआ । इसीसे बैजेगाव के मिश्र अपने को पवननाथ का असामी कहते है ।[३]

बैजेगाव उन्नाव जिले मे पूर्व की ओर पाँच कोस पर है यद्यपि अब बैजेगाव एक साधारण गाव है पर अनुमान होता है कि किसी समय यह बडा दार्शनीय स्थान और विद्वानो का गाव रहा होगा । इसी से मिला हुआ वृहदस्थल (बेथर) और इससे कुछ ही दूर पर विग्रहपुर (बिगहपुर) गाव हे । गाव के चारो ओर मन्दिर और तालाब है तथा कई मीलों तक बागे है । बैजेगाव के पास ही एक बहुत पुराना किला है जो अब गिर कर टीले के आकार मे बदल गया है इसमे खोदने पर महाराज चन्द्रगुप्त के समय के सोने के सिक्के प्राप्त हुए है ।

पण्डित प्रतापनारायण मिश्र के वृद्ध पितामह का नाम सबसुख मिश्र, प्रपितामह का सेवकनाथ मिश्र, पितामह का रामदयाल मिश्र और पिता का सकटाप्रसाद मिश्र था ।[४] रामदयाल के एक भाई शिवप्रसाद थे, वे दूसरे घर मे रहते थे । उनके जयगोपाल और रामसहाय दो पुत्र थे जो संकटाप्रसाद (प्रतापनारायण के पिता) का बडा हित करते थे । सकटाप्रसाद के दो बडे भाई और थे, द्वारिकाप्रसाद और यदुनन्दन । द्वारिकाप्रसाद निस्सतान स्वर्गवासी हुए । यदुनन्दन के अम्बिकाप्रसाद एकमात्र पुत्र थे जो चौदह वर्ष की अवस्था मे ही परलोक सिधारे । इसलिए इनका भी यही वश समाप्त हो गया । शिवप्रसाद का वश अब भी बैजेगाव मे चल रहा हे ।

---

१. 'ब्राह्मण' खण्ड ५, संख्या ३ प्रताप-चरित्र, : 'प्रतापनारायण मिश्र
२. 'ब्राह्मण' खण्ड ५, संख्या १ 'कन्नौज में तीन दिन' : प्रतापनारायण मिश्र
३—नारायणप्रसाद मिश्र : 'कान्यकुब्ज वंशावली' (१९५९ ई०), पृष्ठ ६७
४—'ब्राह्मण' खण्ड ५, संख्या ३ 'प्रताप-चरित्र' : प्रतापनारायण मिश्र

वंश-वृक्ष[1]
सबसुख मिश्र
सेवकनाथ मिश्र
रामदयाल मिश्र
शिवप्रसाद मिश्र
द्वारिकाप्रसाद मिश्र
यदुनन्दन मिश्र
संकटाप्रसाद मिश्र
अम्बिकाप्रसाद मिश्र
प्रतापनारायण मिश्र
जयगोपाल मिश्र
रामसहाय मिश्र
अनन्त देवी
गौरीशंकर
शिवदयाल
गुरदयाल
रामकृष्ण
शिवरतन
रामभरोसे
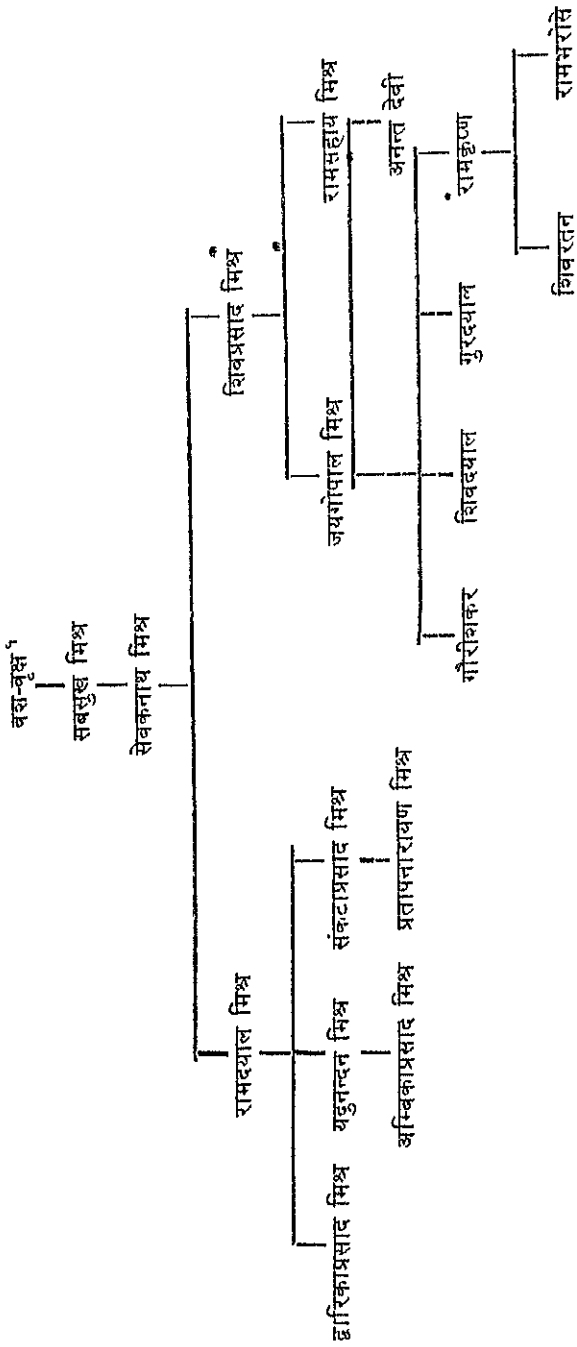
मिश्र जी के पूर्वजो का मुख्य कार्य बाग लगाना और पशु पालना था । वे सुबह से शाम तक बागो मे रहते, नये-नये पेड लगाते और उनका पालन-पोषण करते थे । आम की फसल के समय तो रात्रि मे भी बागो मे ही सोते थे । उनके पास कई एक बागें थी । जमीन बिलकुल नही थी, क्योकि ये लोग खेती करना हेय समझते थे। उनके पास गाये बहुत अधिक सख्या मे थी जिनको अहीर चराते थे । इनके भोजन के मुख्य अग आम, आम की गुठली, (जिनको सुखाकर रख लेते थे और थोडे दिन बाद उसी को फोड़ कर गूदी निकालकर, फिर उसे उबालकर खाते थे) महुआ, बेल, कैथा, बेर, दूध आदि थे । भोजन मे दूध वे लोग अधिक मात्रा मे लेते थे । दूध बेचने का वे निषेध करते थे इसलिए दूध न बेचकर घी तैयार करके बेचते थे। और जो उससे पैसा आता था उसी से अनाज तथा अन्य आवश्यक वस्तुएँ खरीदते थे । अन्नो मे कुटे हुए जौ की रोटी खाई जाती थी । गेहू त्यौहार, उत्सव आदि मे खाया जाता था और चावल जब कभी समधी, मेहमान आते थे तब पकता था । चक्की घर मे ही औरतें चलाती थी । साल मे जो पैसा बचता या नातेदारियो मे काम-काज मे मिल जाता उससे कपास खरीदी जाती थी और ओटनी (कपास ओटने का यत्र जिससे बिनौले अलग किये जाते है) मे कपास ओटकर तथा रुई निकालकर रहटे से सूत काता जाता था । रहटा औरतें ही चलाती थी और जो औरत जितना सूत कातती थी उसीसे उसके पति तथा बच्चो के कपडे बनते थे । अब भी मिश्र जी के घर (बैजेगांव) मे कई पुराने रहटे टूटे हुए रक्खे है । जब घर मे कोई ब्याह आदि करना होता था तो कुछ पहले से ही गायो के बछडे बेचकर धन एकत्रित किया जाता था ।

मिश्र जी के पूर्वज बडे धार्मिक और साहित्यानुरागी थे । गृहकार्य से जो भी समय बचता था उसे भजन-पूजन मे लगाते थे । सुनने मे आया है कि बाग मे जाकर वृक्षो तक को पुराण सुनाया करते थे और जब पेड़ लगाते थे तो उनके कल्याणार्थ वेद-मन्त्रों का उच्चारण करते थे । गायत्री उनका मुख्य मत्र था, जिसका वे जप करते थे । शिव पर उनकी विशेष आस्था थी और रुद्राक्ष की बड़ी-बडी गुरियो का गले मे माला पहनते थे । नवरात्रि मे दुर्गा का पाठ विशेष रूप से करते थे ।

मिश्र जी के पितामह रामदयाल मिश्र अच्छे कवि थे पर इनका काव्य देखने मे नही आया । सग्रह के अभाव मे सब लुप्त हो गया ।[१] मिश्र जी ने अपने पितामह को नही देखा क्योकि जब सकटा प्रसाद (मिश्र जी के पिता) केवल नौ वर्ष के थे तभी उनका देहान्त हो गया था । सकटा प्रसाद जी की माता का भी देहान्त पिता के देहान्त के थोड़े ही दिन बाद हो गया । इसलिए सकटाप्रसाद के पालन-पोषण का भार इनकी दोनो भाभियो पर आ गया । दोनो भाभी इनका बड़ा स्नेह करती

---

१. 'ब्राह्मण' खण्ड ५, सख्या ३ 'प्रताप-चरित्र' : प्रतापनारायण मिश्र

थी। लेकिन एक भाभी (द्वारिकाप्रसाद जी की पत्नी) का शीघ्र ही स्वर्गवास हो गया। दूसरी भाभी (यदुनन्दन जी की पत्नी) सदा संकटाप्रसाद जी को पुत्रवत् मानती रही।[१] बैजेगाँव से एक मील दूर मवैया गाँव है वहाँ प० दयानिधि जी रहते थे, उन्ही के पास सकटा प्रसाद जी पढने जाने लगे। केवल एक वर्ष तक पढ़ सके फिर एक पेड पर से गिरे, पैर मे बडी चोट आयी और कई महीने तक पडे रहे। अन्त मे पैर तो ठीक हो गया पर लगडाने लगे। इनकी दूसरी भाभी कानपुर के परम प्रतिष्ठित श्री प्रयागनारायण तिवारी के चाचा श्री द्वारिका प्रसाद तिवारी की कन्या थी। आर्थिक स्थिति अच्छी न होने के कारण उनकी (दूसरी भाभी ने) सकटा प्रसाद को कानपुर भेज दिया। इस समय संकटा प्रसाद की अवस्था केवल चौदह वर्ष की थी।[२] वहाँ शिवप्रसाद अवस्थी और रेवतीराम त्रिपाठी (प्रयागनारायण के पिता) ने इन पर बडी कृपादृष्टि रक्खी। कुछ दिन बाद अवध के बादशाह श्री गाजीउद्दीन हैदर के दरोगा जनाब आजमअली खाँ साहब के दीवान श्री महाराज फतेहचन्द के यहाँ इनको नौकरी मिल गयी।[३] यह नौकरी इनको बडी फलीभूत हुई। थोडे ही दिन मे इनकी स्थिति सुधरने लगी। इस नौकरी के साथ ही साथ इन्होने ज्योतिष का भी अध्ययन प्रारम्भ किया और शीघ्र ही ज्योतिष का अच्छा ज्ञान भी प्राप्त कर लिया।

सकटाप्रसाद का विवाह रायबरेली जिले के बराहिमपुर (इब्राहीमपुर) नामक गाँव मे काशीराम के बाजपेयी-वश मे हुआ था। इनकी पत्नी श्री मुकताप्रसाद बाजपेयी की कन्या थी।[४] प्रारम्भ मे सकटाप्रसाद रेवतीराम त्रिपाठी के ही साथ रहते थे। विवाह हो जाने के बाद इन्होने रामगज नामक मुहल्ले मे किराये पर एक मकान ले लिया और वही पत्नी सहित रहने लगे। कुछ दिन बाद दीवान फतेहचन्द से खटपट हो जाने के कारण इन्होने नौकरी छोड़ दी और ज्योतिषी का कार्य करने लगे। ज्योतिष-विद्या मे धीरे-धीरे इन्हें बडी प्रसिद्धि प्राप्त हुई। यहाँ तक कि अग्रेज भी इनके प्रशसक हो गये। कानपुर के जूट मिल के मैनेजर बीयर साहब तो इनके ज्योतिष के गुणो पर बहुत ही मोहित थे। एक बार बीयर साहब को तार मिला कि उनकी मेम विलायत मे बहुत बीमार है। साहब बहुत घबड़ाये और सोचने लगे कि क्या करना चाहिए। उनके हिन्दुस्तानी क्लर्कों ने उनसे पण्डित संकटादीन मिश्र (सकटाप्रसाद मिश्र) की बात कही। साहब ने मिश्र जी को बुलाया और अपनी मेम

---

१. 'ब्राह्मण' खण्ड ५, सख्या ४, 'प्रताप-चरित्र' : प्रतापनारायण मिश्र
२. 'ब्राह्मण' खण्ड ५, संख्या ४, 'प्रताप-चरित्र' : प्रतापनारायण मिश्र
३. 'ब्राह्मण' खण्ड ५, सख्या ४, 'प्रताप-चरित्र' : प्रतापनारायण मिश्र
४. 'ब्राह्मण' खण्ड ५, सख्या ४, 'प्रताप-चरित्र' : प्रतापनारायण मिश्र

की बीमारी के विषय मे उनसे प्रश्न किया। सकटाप्रसाद ने थोडी ही देर मे उत्तर दिया कि आपकी मेम आपसे मिलने के लिए बहुत जल्द आना चाहती है। साहब को मिश्र जी की बातो पर विश्वास न हुआ। उन्होने समझा कि यह बात वाहियात है। पर दो ही दिन मे जब मेम साहब उनके सामने आ खडी हुई तो बीयर साहब बहुत चकराये और तब से वह सकटाप्रसाद जी का बडा आदर करने लगे। ज्योतिष से सकटाप्रसाद जी ने बडा धन कमाया। ये राजाओं तथा बडे-बडे धनाढ्य लोगो की कुण्डलियाँ बनाते थे और इन्हे एक-एक कुण्डली से पाँच-पाँच सौ रुपये तक प्राप्त होते थे। धीरे-धीरे इन्होने नौघडा (कानपुर) मे छोटे-छोटे पाँच मकान खरीद लिये। पहले ये मकान खपडैल के बने हुए थे। आज इन्ही पाँच मकानो के स्थान पर तीन बडे मकान बने हुए है जिनका विवरण आगे दिया जायगा।

बैजेगाँव मे सकटाप्रसाद जी के दोनो भाई एक ही गृह मे रहते थे।[२] जब बडे भाई द्वारिकाप्रसाद और उनकी पत्नी का देहान्त हो गया तो छोटे भाई यदुनन्दन वहाँ की सम्पूर्ण सम्पत्ति की देख-रेख करने लगे। सकटाप्रसाद जब कानपुर मे अच्छी तरह जम गये और उनके निजी मकान भी हो गये तो बैजेगाँव की सम्पत्ति का पूरा अधिकार उन्होने अपने बडे भाई यदुनन्दन को दे दिया, और कहा कि 'अब बैजेगाँव की सब सम्पत्ति आपकी है। आप जैसे चाहे इसका उपयोग करे।' बैजेगाँव मे यदुनन्दन जी के पास एक बडा मकान, कुछ बागे और गाये थी, इन्ही से उनका जीवन-यापन होता था। आगे चलकर जब यदुनन्दन जी की पत्नी और उनके चौदह वर्षीय एकमात्र पुत्र अम्बिकाप्रसाद का स्वर्गवास हो गया तब उन्होने अपनी सब सम्पत्ति शुकदेव (चचेरे भाई के पौत्र) को दे दी। शुकदेव से यह सम्पत्ति उनकी (शुकदेव की) लडकी को प्राप्त हुई। लड़की के पति—लालताप्रसाद दीक्षित अपने सम्पूर्ण परिवार (भाई और भतीजे) सहित शुकदेव के पास रहने लगे। लालताप्रसाद के कोई सन्तान न हुई तब यह सम्पत्ति उनके भतीजे रामकिंकर दीक्षित को मिली। यही आजकल मिश्र जी की बैजेगाँव की सम्पत्ति के अधिकारी है। रामकिंकर जी के पास अब भी कुछ बागे और वही पुराना मकान है। यह मकान लगभग तीन सौ वर्ष पुराना है। इसका मुख्य दरवाजा पूर्व की ओर है। बाहर बैठक का कमरा है। उस कमरे के आगे काठ के नक्काशीदार खम्भो की चौपाल थी जो अब गिर गयी है। इस मकान के भीतर चार आगन है और बहुत से कमरे तथा दालाने है, सभी दालानो मे काठ के नक्काशीदार खम्भे है। पहले दो कच्चे कुएँ थे जो अब बैठ गये है। मकान का बहुत-सा भीतरी हिस्सा गिर गया है। रामकिंकर जी इस मकान की

---

१. 'बालमुकुन्द गुप्त- निबन्धावली' प्रथम भाग, (२००७ वि०) पृष्ठ ११
२. ब्राह्मण' खण्ड ५, सख्या ३—'प्रताप-चरित्र', प्रतापनारायण मिश्र।

बडी हिफाजत रखते है क्योंकि वह प्रतापनारायण जी के बडे भक्त है। इन्होने मिश्र जी की स्मृति मे 'प्रताप साहित्य मण्डल' नाम से एक पुस्तकालय स्थापित किया था जो अब भी भग्नावशेष रूप मे श्रीनिवास शास्त्री (बेथर) के यहाँ है पर अब उसमे कोई विशेष साहित्य उपलब्ध नहीं है।

सकटाप्रसाद जी के शादी होने के बाद-बहुत समय तक कोई सन्तान नही हुई। कहते है एक समय एक महात्मा जी आये और उन्होंने सकटाप्रसाद जी को एक फल दिया जिसे उन्होने अपनी पत्नी को खिलाया। उसी के कुछ समय बाद प्रताप-नारायण जी का जन्म हुआ। प्रतापनारायण इनके इकलौते पुत्र थे। सकटाप्रसाद जी बहुत सादे और सरल स्वभाव के थे। इनके यहाँ सुबह से शाम तक भाग्यचक्र पूछने वालो की भीड लगी रहती थी। बहुत दूर-दूर से लोग इनके पास भविष्य पूछने आते थे। प्रतापनारायण जी जब १९ वर्ष के थे तब इनकी मृत्यु हुई।[१] सुनने मे आया है कि सकटाप्रसाद जी ने गणना करके अपनी मृत्यु तिथि पहले ही बता दी थी। मृत्यु से डेढ घण्टे पहले उन्होने कहा कि 'मुझे गगातट पर ले चलो', सब लोग उन्हे गगातट (कानपुर के) ले गये और वही उन्होंने प्राण छोड़े।

जन्मभूमि और निवास स्थान

यह तो निर्विवाद है कि कान्यकुब्जपुर (कन्नौज) छोडने के वाद मिश्र जी के पूर्व पुरुषो की जन्म भूमि बैजेगाँव रही। पर प्रतापनारायण की जन्म-भूमि वस्तुत: कहाँ रही इस पर विद्वानो में मतभेद है। मिश्र जी की जन्म-भूमि के विषय में तीन मत है। पहला मत, बैजेगाँव मानता है, दूसरा कानपुर और तीसरा भवइया (उन्नाव)। यह मतभेद आचार्य रामचन्द्र शुक्ल[२] के समय से प्रारम्भ हुआ। इसके पूर्व आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी,[३] बालमुकुन्द गुप्त,[४] श्यामसुन्दरदास[५] आदि ने मिश्र जी की जन्म-भूमि बैजेगाँव मानी और इसके वाद भी नरेशचन्द्र चतुर्वेदी[६] आदि बैजेगाँव ही मानते चले आ रहे है। आचार्य शुक्ल ने लिखा है कि 'प्रतापनारायण मिश्र के पिता उन्नाव से आकर कानपुर मे बस गये थे जहाँ प्रतापनारायण जी का

---

१. 'निबन्ध-नवनीत' पहिला भाग (१९१९ ई०) - पृष्ठ २

२. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' (सं० २००६) पृ० ४६४

३. 'सरस्वती', मार्च, १९०६, प्रतापनारायण मिश्र' : आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी

४. 'भारत मित्र' १९०७ ई०, 'पं० प्रतापनारायण मिश्र' : बालमुकुन्द गुप्त

५. डा० श्यामसुन्दर दास : 'हिन्दी कोविद रत्नमाला', पहला भाग, द्वितीय सं०, पृ० ५८

६. नरेशचन्द्र चतुर्वेदी : 'हिन्दी साहित्य का विकास और कानपुर' (१९५७) पृ० २०८

जन्म सं० १९१३ मे और मृत्यु सं० १९५१ मे हुई।'[1] फिर इसके बाद नारायण प्रसाद अरोडा,[2] लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी,[3] किशोरीलाल गुप्त[4] आदि ने भी शुक्ल जी की ही परम्परा मे मिश्र जी की जन्म-भूमि कानपुर मानी। पर अपने मत की पुष्टि मे इन लोगो ने कोई प्रमाण नही दिये। तीसरा मत जो आजकल बैजेगाँव, मवइया और कानपुर के साहित्यानुरागियो मे जोर पकड रहा है वह मवइया निवासी स्व० डा० रामशकर जी शुक्ल का है। यद्यपि यह मत अभी तक किसी पुस्तक में प्रकाशित नही हुआ पर मौखिक साक्ष्य के आधार पर इसकी लोगो मे बडी चर्चा है। इन पक्तियो के लेखक की भी डा० साहब से बातचीत हुई थी। डा० साहिब कहते थे कि 'मिश्र जी का ननिहाल मवइया मे डब्बर दुबे के वश मे था। जिस समय प्रतापनारायण की माता के बच्चा होने वाला था वे अपने मायके चली आई थी। इसीमे यही मवइया मे ही प्रतापनारायण का जन्म हुआ।

तीसरा मत जो मवइया मे मिश्र जी के जन्म का है, निरा भ्रामक है। इसके कही कोई प्रमाण नही मिलते। डा० रमाशंकर का यह कहना कि मिश्र जी का ननिहाल मवइया मे था, बिल्कुल असत्य है। कारण मिश्र जी ने स्वत अपने 'प्रताप चरित्र' मे लिखा है कि हमारे पिता ने अवध प्रान्त के इब्राहीमपुर नामक गाँव मे काशीराम के बाजपेयी वश मे विवाह किया।[5] अत. मिश्र जी का ननिहाल इब्राहीमपुर मे था। पहला मत जो बैजेगाँव मे जन्म होने का है इसके भी कोई प्रमाण प्राप्य नही केवल पूर्वजो का स्थान होने के कारण लेखकों ने इनका भी जन्म-स्थान बैजेगाँव मान लिया। दूसरा मत जो कानपुर के पक्ष मे है उसके भी किसी ने कोई प्रमाण नही दिये। पर हमे शोध मे कुछ ऐसे प्रमाण मिले है जिनसे पूर्णतया सिद्ध हो जाता है कि प्रतापनारायण की जन्म-भूमि कानपुर ही थी। प्रतापनारायण जी ने एक पुस्तक 'कानपुर माहात्म्य' आल्हा-छन्द मे लिखी है, इसमे कानपुर की महिमा का वर्णन किया गया है। इस पुस्तक के प्रारम्भ मे देवताओ की वन्दना करते हुए वे लिखते है—

---

१. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' (सं० २००६) पृ० ४६४
२. स० नारायणप्रसाद अरोड़ा तथा लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी : 'प्रतापनारायण मिश्र (१९४७ ई०) पृष्ठ २६
३. स० नारायणप्रसाद अरोड़ा तथा लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी : 'प्रतापनारायण मिश्र' (१९४७ ई०) पृष्ठ २६
४. किशोरीलाल गुप्त : 'भारतेन्दु और अन्य सहयोगी कवि' (१९५६) पृ० ३८२
५. 'ब्राह्मण' खण्ड ५, स० ४,

'गाजी पीर नारसिंह बाबा देउला सब मिलि होउ सहाय।
जन्म-भूमि को जसु गावतु हौं भूले अच्छर देव बताय॥'[1]

यदि कानपुर मिश्र जी की जन्म-भूमि न होती तो वे कभी ऐसा न लिखते। दूसरे पार्वती देवी (मिश्र जी के दत्तक पुत्र की पत्नी) भी मिश्र जी की जन्म-भूमि कानपुर ही बताती है (यह बात उन्हे मिश्र जी की पत्नी से ज्ञात हुई है) मिश्र जी का जहाँ पर जन्म हुआ था, वह जगह भी पार्वती देवी को ज्ञात है। उन्होंने बताया कि नौघडा मे जो मन्दिर वाला मकान है और उसके पीछे जो गोदाम है, उसी स्थान पर पहले एक कमरा खपरैल से छाया हुआ था, उसी मे मिश्र जी का जन्म हुआ था। इस प्रकार अन्तसाक्ष्य और मौखिक-साक्ष्य, दोनों से यह प्रमाणित हो जाता है कि प्रतापनारायण की जन्म-भूमि नौघडा (कानपुर) है।

प्रतापनारायण जी जन्म से लेकर मृत्यु तक कानपुर मे ही रहे, केवल एक वर्ष के लिए (सन् १८८९ ई० मे) कालाकाकर दैनिक 'हिन्दुस्तान' के सहायक सम्पादक होकर गये थे[2]। कानपुर के तत्कालीन जीवन से मिश्र जी का जीवन घुल-मिल कर एक हो गया था। लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी लिखते हे—"कानपुर नगर की उत्पत्ति व आतुर श्रीवृद्धि की कथा ही उसके विशिष्ट व्यक्तित्व के गुण-दोष की कहानी है[3]।" कहने की आवश्यकता नही कि मिश्र जी ने कानपुर मे केवल निवास ही नही किया बल्कि उसे निवास के योग्य भी बनाया।

बाल्यकाल और शिक्षा

शिशु प्रतापनारायण बड़ी चचल प्रकृति के थे। वे एक स्थान पर अधिक देर तक नही ठहरते थे। सदा मस्त और प्रसन्न रहते थे। जब वे कुछ बडे हुए तो इनके पिता ने विद्याध्ययन के लिए इन्हे एस० पी० जी० स्कूल (जो उस समय नयागंज मे था, अब नही है—टूट गया) मे भर्ती कराया।[4] पर इनका मन पढने मे न लगता था। नियमित रूप से स्कूल भी न जाते थे। इन सब कारणों से ये कई बार अपने अध्यापको के कोपभाजन भी बन चुके थे[5]। अन्त मे कुछ हिन्दी और अग्रेजी का ज्ञान प्राप्त करके इन्होने स्कूल छोड दिया। तब इनके ज्योतिषी-पिता ने इन्हे घर पर ही ज्यो-

---

१ सं० नारायणप्रसाद अरोड़ा : 'प्रताप लहरी' (१९४९), पृष्ठ २०५

२. सं० नारायणप्रसाद अरोड़ा तथा लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी : प्रतापनारायण मिश्र (१९४७) पृष्ठ १२७

३. 'रामराज्य' (कानपुर) २२ अक्टूबर, १९५६, पं० प्रतापनारायण मिश्र एक ऐतिहासिक विश्लेषण : लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी

४. प्रेमनारायण टंडन : 'प्रताप समीक्षा' (१९३९ ई०) पृष्ठ २

५. 'निबन्ध-नवनीत', पहिला भाग (१९१९ ई०) पृष्ठ २

तिपै पढाना प्रारम्भ किया। कुछ दिन तक प्रतापनारायण 'शीघ्र बोध' और 'मुहूत् चिन्तामणि' पढते रहे पर इसमे प्रतापनारायण जी का मन न लगता था। प्रताप-नारायण सरस प्रकृति के थे। जन्म-पत्र बनाना और ग्रह-नक्षत्र की गणना करना इनके वश की बात न थी। फिर इनके पिता ने इन्हे अंग्रेजी स्कूल मे दाखिल कराया।[1] उन्होने वहाँ कुछ सीखा जरूर पर मेधा के प्रताप से।[2] इनका मन पढने मे कभी नही लगा। सन् १८७१ ई० में बिना कोई परीक्षा पास किये इन्होने पढना छोड दिया। इनकी स्कूली शिक्षा अधूरी ही रह गई।[3]

स्कूल मे इनकी पहली भाषा अंग्रेजी, दूसरी हिन्दी थी।[4] इसके अतिरिक्त घर पर इन्होने अपने पिता से सस्कृत पढी।[5] सन् १८७५ ई० मे इनके पिता का देहान्त हो गया।[6] इसके बाद सन् १८८३ ई० तक ('ब्राह्मण' निकालने के पूर्व) ये कान-पुर की सामाजिक गोद मे रहे। कानपुर के प्रतिष्ठित लोगो से मिलना, जनवाणी को सुनाना तथा उस पर विचार करना ही इनका मुख्य कार्य था। इन्होने अपना बड़ा सुदृढ़ जन-सम्पर्क स्थापित कर लिया। कानपुर का इन्होंने अच्छी तरह अध्ययन किया और इसकी पूरी गतिविधि से इनका परिचय हो गया। साहित्यक-रुचि के कारण साहित्यकारो से भी इनका घनिष्ट सम्बन्ध हो गया। इसी बीच इन्होने उर्दू और फारसी का भी अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया। मिश्र जी के भाषा-ज्ञान पर विचार करते हुए बाबू बालमुकुंद गुप्त लिखते हैं--"वह अंग्रेजी खासी बोल सकते थे। आध-आध घण्टा, घण्टा, घण्टा, बराबर अंग्रेजी मे ही बातें किये जाते थे, अंग्रेजी अखबार पढ लेते थे, कभी इच्छा करते तो अनुवाद भी कर लेते थे, पर बड़ी अनिच्छा से। अंग्रेजी पोथियो और अखबारो के पढने में वह जरा मन न लगाते थे। कोई इसके लिए दबाता था तो भी परवाह न करते थे। मुह बना के कागज या पोथी फेंक देते थे। यदि वह साल दो साल जी लगाकर अंग्रेजी पोथियाँ या अखबार पढते तो अच्छे अंग्रेजी पढो मे उनकी गिन्ती होती। यही हाल उनकी सस्कृत का था। छ-छ और आठ-

---

१ 'वीर भारत' ७ अक्तूबर १९४७, 'पंडित प्रतापनारायण' मिश्र'। लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी

२. 'बालमुकुन्द गुप्त-निबन्धवली' (प्रथम भाग), पृष्ठ १२

३. 'राम राज्य' (कानपुर) १५ अक्टूबर, १९५६ ई० - पं० प्रतापनारायण मिश्र-एक ऐतिहासिक विश्लेषण। लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी।

४ 'निबन्ध-नवनीत', पहिला भाग (१९१९ ई०) पृष्ठ २

५. 'निबन्ध-नवनीत', पहिला भाग (१९१९ ई०) पृष्ठ २

६. 'वीर भारत' ७ अक्तूबर, १९४७ ई०-'पं० प्रतापनारायण मिश्र' : लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी।

आठ साल से जो विद्यार्थी कौमुदी रटते थे अथवा जिन पण्डितो को कथा बाहते युग बीत गये थे, उनके साथ हमने प्रतापनारायण जी को बातें करते देखा है । वह उनसे कुछ जल्दी बोलते थे और अच्छा बोलते थे, पर रुचि आपकी सस्कृत पुस्तको मे भी वैसी ही थी, जैसा अंग्रेजी पुस्तको मे । उर्दू मे भी वह बन्द न थे । उर्दू मे इनकी बहुत सी कविता मौजूद है । गजले लिखते थे, बावनियाँ लिखते थे, मसनवी लिखते थे । ' ' फारसी गजलो पर अपने उर्दू मिशरे लगा कर उनसे मुखम्मस वगैरह बनाते थे ।[1]

प्रतापनारायण जी का हिन्दी पर तो अपूर्व अधिकार था ही, साथ ही उर्दू भी वह अच्छी जानते थे । इसके अतिरिक्त फारसी सस्कृत और अग्रेजी का भी इन्होने ज्ञान प्राप्त कर लिया था । प्रान्तीय भाषाओ मे बंगला, महाराष्ट्री, पजाबी का भी इन्हे सामान्य ज्ञान था । बगला के बकिमचन्द्र के-उपन्यासो का तो इन्होने अनुवाद ही किया है । महाराष्ट्री और पजाबी भाषा-ज्ञान के दर्शन 'भारत दुर्दशा' रूपक के कथनो मे होते है ।[2] मुडिया[3] और बुन्देलखण्डी[4] भी जानते थे । ब्रजभाषा और बैसवाडी तो इनकी अपनी भाषा ही थी । मिश्र जी अग्रेजी अधिक नही जानते थे, इसका प्रमाण उनके 'ब्रैडला स्वागत' के अन्त मे दी इस टिप्पणी से मिलता है—अग्रेजी न मेरी मातृभाषा है न मै उसे उत्तम रीति से जानता हूँ । एक मित्र (जिनका नाम प्रकाशित करना आवश्यक नही है) ने कृपा करके अनुवाद कर दिया है अत. अंग्रेजी की अशुद्धि मे मेरा दोष नही है पर यदि हो सके तो क्षमा का प्रार्थी हूँ।"[5]

प्रतापनारायण मिश्र जब स्कूल के छात्र थे तभी उनका परिचय भारतेन्दु हरिचन्द्र की प्रसिद्ध पत्रिका 'कविवचन सुधा' से हुआ । 'कविवचन सुधा' का प्रकाशन सन् १८६८ ई० में प्रारम्भ हुआ था, उस समय प्रतापनारायण की अवस्था १२ वर्ष की थी । ये 'कविवचन सुधा' को बड़ी रुचि से पढते थे और इसी से उन्हे काव्य-रचना की प्रेरणा मिली ।[6] इस पत्रिका के ही कारण यह प्रारम्भ से ही भारतेन्दु के बडे प्रशसक हो गये और उन्हे अपना गुरु तथा आराध्यदेव मानने लगे ।[7] आगे चलकर

---

१. 'बालमुकुन्द गुप्त-निबन्धावली' प्रथम भाग (२००७ वि०) पृष्ठ १३
२. प्रतापनारायण मिश्र : 'भारत-दुर्दशा रूपक' (१९०२ ई०) तीसरा अंक, पहला दृश्य
३. 'ब्राह्मण' खण्ड ४, सख्या ८, 'सुनने लायक बात' : प्रतापनारायण मिश्र
४. सं० प्रतापनारायण अरोड़ा : 'प्रताप लहरी' (१९४९ ई०) पृष्ठ २०३
५. प्रतापनारायण, मिश्र : 'ब्रैडला स्वागत' (१८८१ ई०) पृष्ठ १६
६. 'निबन्ध-नवनीत', पहिला भाग (१९१९ ई०) पृष्ठ ३
७. 'राम राज्य' (कानपुर) १५ अक्टूबर, १९५६ ई० पं० 'प्रतापनारायण मिश्र' लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी ।

इन्होने अपनी रचनायें भी 'कविवचन सुधा' मे भेजी जो उसके १४वे वर्ष मे प्रकाशित हुई।[१] ईसी समय कानपुर मे पडित ललिताप्रसाद त्रिवेदी 'ललित' के धनुष यज्ञ की धूम थी। 'ललित' बडे अच्छे कवि थे—"वह कविता की रचना करके और उसे लीलागत पात्रो के मुह से सुनाकर सुनने वालो के मनको मोहित कर लेते थे। प्रतापनारायण भी इस लीला में शामिल होते थे और 'ललित' जी की कविता का पाठ करते थे ?[२] 'ललित' जी से ही मिश्र जी ने छन्द-शास्त्र के नियम सीखे। मिश्र जी इनको अपना काव्य-गुरु मानते थे।[३] प्रतापनारायण जी को पिंगल-शास्त्र का बडा विशद ज्ञान था। उनके द्वारा विभिन्न छन्दो मे लिखी हुई कविताए इसका प्रमाण है। इसके अतिरिक्त इन्होने अपने 'आल्हा आल्हाद'[४] नामक लेख मे, जो आल्हा-छन्द का विद्वतापूर्ण विवेचन किया है वह भी इस प्रसग मे सराहनीय है। कानपुर मे लावनीबाजो का भी उस समय बडा जोर था, उनकी कई जमातें थी। लावनी के प्रसिद्ध कवि 'बनारसी' भी उस समय अधिकतर कानपुर मे ही रहा करते थे। लावनी वालो के दो दल इकट्ठे हो जाते थे और दोनो प्रतिस्पर्धा स्वरूप बढ-चढ कर लावनी गाते थे। ऐसे समय मे इनके जबाब सुनने वाले होते थे। प्रतापनारायण भी इन लोगो की जामतो मे कभी-कभी जाते थे। इस प्रकार प्रतापनारायण के हृदय मे हरिश्चन्द्र के लेख पढने, 'ललित' जी की लीला मे योग देने तथा उनसे छन्द-शास्त्र के नियम पढने और लावनी वालों की लावनी सुनने से कविता का बीज अच्छी तरह अंकुरित हो गया।[५]

यह सत्य है कि मिश्र जी अपने छात्र-जीवन मे सफल नही हो सके और पुस्तके रटने मे उनका मन नहीं लगा। पर जन-सम्पर्क एव साहित्यकारो के सत्सग द्वारा जो उन्होने सामाजिक अनुभव और ज्ञान अर्जित किया वह उनके आगामी जीवन के उत्थान में बडा सहायक हुआ। इसी स्वत: अनुभव जन्य सुदृढ-ज्ञान के ही कारण मिश्र जी अधिकार के साथ अपने भावो और विचारो को स्पष्ट रूप से पाठकों के सामने रखते रहे। उन्हें आत्म विश्वास और स्वतत्र कथन की जो शक्ति समाज द्वारा मिली वह किताबी और स्कूली ज्ञान द्वारा कभी सम्भव न थी। जन-सम्पर्क से मिश्र जी का बडा आत्मिक विकाश हुआ। वह व्यष्टि से दूर, समष्टिवादी हो गये।

---

१. किशोरीलाल गुप्त: 'भारतेन्दु और अन्य सहयोगी कवि' (१९५६ ई०) पृ० ३८७
२. 'निबन्ध-नवनीत' पहिला भाग, (१९१९ ई०) पृष्ठ ३-४
३. 'निबन्ध-नवनीत' पहिला भाग, (१९१९ ई०) पृष्ठ ४
४. 'प्रतापनारायण ग्रन्थावली' प्रथम खण्ड (१९१४ वि०) पृष्ठ २३७-२४१
५. 'निबन्ध नवनीत' पहिला भाग, (१९१९ ई०) पृष्ठ ४

गार्हस्थ्य जीवन

मिश्र जी के दो विवाह हुए थे।[1] पहला विवाह इनके पिता के समय मे हुआ था। यह पत्नी विवाह के बाद केवल चार-पाँच महीने जीवित रही। दूसरा विवाह इनके पिता की मृत्यु के बाद हुआ। पहले विवाह के विषय मे और कुछ ज्ञात नही हो सका। मिश्र जी का दूसरा विवाह उन्नाव जिले के पूरा-थाना नामक ग्राम मे प० रामसहाय शुक्ल की पुत्री सूरजकुअरि से हुआ। मिश्र जी की यह पत्नी बडी सुन्दर तथा धार्मिक प्रवृत्ति की थी पर प्रकृति से बडी तेज थी। कहते है कि जब मिश्र जी घर आते थे तो सबसे पहले यही पूछते थे कि 'सूरज गरम है कि ठढे' ? (सूरज से नाम की ओर सकेत हे) इस विवाह के कुछ वर्ष बाद (नवम्बर १८८४ ई० मे) प्रतापनारायण जी की माता का भी देहान्त हो गया।[2]

माता के देहान्त के बाद मिश्र जी के परिवार (कानपुर के) मे केवल दो ही व्यक्ति रह गये—मिश्र जी और उनकी पत्नी। मिश्र जी की दूसरी ससुराल वाले कानपुर मे ही, सीसामऊ मुहल्ले मे रहते थे, इसलिए वह कभी-कभी आया जाया करते थे। मिश्र जी की पत्नी अपने मन बहलाव के लिए अपनी छोटी बहन मूला को भी कुछ समय के लिए बुला लेती थी। मिश्र जी की आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी नही थी। मुख्य रूप से मकानों के किराये से ही उनका जीवन-यापन होता था। मकानो का किराया लगभग चालीस रुपये के आता था। सस्ता समय था, एक-एक, दो-दो रुपये में कमरे उठे थे। प्रारम्भ मे मिश्र जी ने कई वर्षों तक विभिन्न स्कूलों मे आध्यापन-कार्य भी किया था।[3] पर स्वच्छन्द प्रकृति के होने के कारण अधिक समय तक नौकरी नही कर सके। नौकरी छोड़ने का उल्लेख १५ फरवरी १८७६ ई० के 'ब्राह्मण' मे इस प्रकार मिलता है—"हमारे पाठको मे से बहुतो को ज्ञात है कि हम कोई लखपती नही है, आजकल नौकरी भी छोड़े बैठे है।"[4] इसके बाद जुलाई १८८९ ई० मे 'हिन्दुस्तान' के सहकारी सम्पादक होकर कालाकांकर गये। वहा इन्हें तीस रुपये मासिक वेतन मिलता था, साथ ही कानपुर से मकानो का किराया भी आ जाता था।[5] कालाकाँकर मे मिश्र जी सपत्नी एक वर्ष रहे। इसके पश्चात् कानपुर

---

१. स० नारायण प्रसाद अरोड़ा तथा लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी-'प्रतापनारायण मिश्र' (स० १९४७ ई०)-पृष्ठ १२३
२. 'ब्राह्मण' खण्ड २ संख्या ९-१० 'क्षमा कीजिए'-प्रतापनारायण मिश्र
३. 'ब्राह्मण' खण्ड ५ संख्या ९ 'बाल-शिक्षा'-प्रतापनारायण मिश्र
४. 'ब्राह्मण' खण्ड ३ संख्या १२ ,सूचना'-प्रताप नारायण मिश्र
५. 'सरस्वती' जून १९३८ ई० "स्व० पं० प्रतापनारायण मिश्र"—गोपालराम गहमरी

लौट आये। कानपुर आने पर इन्होंने फिर कही नौकरी नही की। केवल इधर-उधर ट्यूशन करते रहे। मुख्य रूप से ये अग्रेजो के ट्यूशन करते थे और उन्हे उर्दू पढाते थ।[१] ५ जनवरी सन् १८९२ ई० के पत्र मे मिश्र जी बाबू बालमुकुन्द गुप्त को लिखते है—"गुजारे का बन्दोबस्त पिता जी खुब ही कर गये हैं ऊपर से दो घन्टे मात्र की मेहनत पर एक अग्रेज बहादुर पन्द्रह रुपया महीना भी देते है।"[२] ये अंग्रेज बहादुर क्राइस्टचर्च कालेज की स्थापना (१८९२ ई०) करने वाले जी० एच० वस्टकट (George Heibert Westcott) साहब थे।[३] इनको पढाने के कारण कुछ लोग मिश्र जी पर ईसाई होने का सदेह करने लगे। धीरे-धीरे यह बात मिश्र जी के पास पहुची। मिश्र जी ने इसका उत्तर देते हुए कहा कि कौन सा काम हम हिन्दू-धर्म मे रह कर नही कर सकते? सभी काम करने की कूट तो हिंदू-धर्म मे है। मास, मदिरा आदि पचबिकार की आवश्यकता हो तो वाममार्गी हो सकते है, मल, मूत्र खाना हो तो अघोरपथी हो सकते है। यह सब होकर भी हिंदू-धर्म मे बने रहेगे, फिर इससे अच्छा और कौन धर्म होगा? यह सुनकर सब लोग चुप हो गये।

मिश्र जी 'सादा जीवन उच्च विचार' के अनुयायी थे। उनमे ऊपरी तडक-भडक नही था। कभी-कभी तो बडे गन्दे कपडे पहने रहते थे। जब खुद कोई धो देता, तो धो देता, अन्यथा उन्हे कोई परवाह नही रहती थी। धोती, कुरते फटे पहने रहते थे पर किसी से सीने को न कहते थे। इनकी पत्नी स्वत' जो कुछ समझती, करती रहती थी, पर यह उनसे कुछ न कहते थे। वे एक विरक्त की भाति अपना जीवन बिताते थे। उनकी सादगी के कारण जो नये-व्यक्ति उनसे मिलने आते थे वे ऊपरी वेष-भूषा से पहचान ही न पाते थे कि यही प्रतापनारायण मिश्र हो सकते है। एक बार कोट-बूट पहने एक महाशय मिश्र जी से मिलने आये। उस समय वे बहुत सादी पोशाक मे अपनी मित्र-मण्डली के बीच बैठे थे। आगन्तुक ने कहा—"हम पण्डित प्रतापनारायण से मिलना चाहते है।" यह सुनकर प्रतापनारायण अपनी देहाती बोली मे बोल उठे—"भाई उनसे मिलै की खातिर पन्द्रह रुपया का एकु टिकट लेइ का परत है तब उइ मिलित है।[४] इस पर सब लोग खूब हँसे। मिश्र जी के जिस मकान (नौघडा के) मे आजकल मन्दिर बना हुआ है उसी मकान मे वह रहते थे और उसी के बगल वाले मकान मे जहा किशोरीचन्द हीगवाले की प्रसिद्ध दूकान है, मिश्र जी का बैठका था।

---

१ नारायणप्रसाद अरोड़ा—'मेरे गुरुजन' (१९४५ ई०)-पृष्ठ ३३

२. 'बालमुकुन्द गुप्त स्मारक ग्रन्थ' (२००७ वि०)-पृष्ठ ५०

३. 'रामराज्य' (कानपुर ३ दिसम्बर १९५६ ई०-'पं० प्रतापनारायण मिश्र एक ऐतिहासिक विश्लेषण'-लक्ष्मीकांत त्रिपाठी।

४—'निबंध-नवनीत' पहिला भाग (१९१९ ई०) पृष्ठ १४—१५

इन्होने अपने बैठके के कमरे का नाम 'ब्राह्मण-कुटीर' रक्खा था।[1] यह बैठका कागजो और अन्य बिखरी हुई चीजों से भरा रहता था। धूल आदि भी पूरे कमरे में छायी रहती थी। एक बार पंडित ईश्वर चन्द्र विद्यासागर इनसे मिलने आये। इन्होंने हाथ से थोड़ा सा स्थान झाड़ दिया और उनसे कहा 'बैठिये'। फिर दो पैसे के पेड़े मंगवा-कर उन्हें जलपान कराया। इसके बाद लगभग दो घन्टे तक मिश्र जी और उनमे धाराप्रवाह बंगला में बार्ता-चीत होती रही।[2] मिश्र जी नियमित रूप से स्नान भी न करते थे। जब मौज आयी तब कर डाला। गंगा स्नान तो वे कभी जाते ही न थे। कालाकाकर मे डेरे के सामने ही थोड़ी दूर पर गंगा जी बहती थीं और इनके मित्र नित्यप्रति गंगा स्नान करने जाते थे। इनसे भी चलने के लिए आग्रह करते थे पर ये टाल जाते थे। एक बार इनके मित्र जबरदस्ती इनको गंगातट पर ले गये और स्नान करने के लिए बाध्य किया। तब इन्होने कहा—"मैं तभी स्नान करूंगा जब तुम लोग मुझे इस प्रकार गगा में फेंको कि मेरा सिर पहले जल में गिरे पैर बाद मे।" फिर सब मित्रों ने वैसा ही किया।

मिश्र जी का जीवन बड़ा अनियमित था। भोजन आदि करने का उनका कोई निश्चित समय नही था। कभी-कभी दो-दो, तीन-तीन दिन बिना भोजन किये ही रह जाते। कभी केवल दूध पीकर ही दिन बिता देते थे। भोजन भी जब करते तो दो-तीन रोंटियों से अधिक न खा पाते थे। चिरौंजी की दाल और गरी के लच्छे के चावल जब-कब बनवा कर खाते थे। प्रात: जलपान में कभी-कभी शर्बत पीते थे, वह भी दो-ढाई छटांक से अधिक नहीं। अपने साहित्यिक-कार्य में जब यह व्यस्त होते थे तब भोजन आदि की उन्हें कोई परवाह न रहती थी। पत्नी के बार-बार बुलाने पर भी वह टालते जाते थे। यदि अधिक जोर देने पर जाते भी तो भोजन करते-करते अपने भावो मे इतना मस्त हो जाते कि भोजन करना ही भूल जाते और कौर हाथ ही में लिए रह जाते। जब उनकी पत्नी कुछ खटका देतीं, तब भाव-मुद्रा टूटती और फिर खाने लगते। इसी अनियमितता के कारण यह सदैव अस्वस्थ बने रहते थे।

प्रतापनारायण जी को नास सूंघने की आदत थी। सुंघनी भरा बेल सदा खद्दर के कुरते वाले पाकेट मे रखते थे और जब चाहा बेल निकाल कर हथेली पर नास उडेंलते और सीधे नाक में सुरक जाते थे।[1] अधिक नास सूंघने के कारण इनकी दाढी और मूंछो के बालों पर भी नास छपा रहता था। कुछ लोगों ने मिश्र जी को शराब

१—'निबंध-नवनीत' पहिला भाग (१९१९ ई०) पृष्ठ १५

२—प्रेमनारायण टंडन-'साहित्यकों के संस्मरण' (१९४३ ई०) पृष्ठ ८

३—'सरस्वती' जून १९३८ ई० 'स्व० पं० प्रतापनारायण मिश्र'—गोपालराम गहमरी

४—'सरस्वती' जून १९३८ ई० 'स्व० पं० प्रतापनारायण मिश्र'—गोपालराम गहमरी

पीने की लत लिखी है। पर वह कभी शराब नही पीते थे।[1] नाटकों मे अभिनय के लिए लाल शर्बत पीने के कारण कुछ लोग भ्रांति से उन्हे शराबी समझने लगे थे पर वस्तुतः ऐसी बात नही थी। एक बार लाला राधेलाल से मनमुटाव हो जाने के कारण दोनों ने होड़ मे अपनी-अपनी नाटक-मण्डली बना ली ओर लाला जी ने अपनी नाटक मण्डली की ओर से एक प्रहसन खेला जिसमें वह स्वय घसियारा बने और अपनी स्त्री से कहा—

कहां गई मेरी नास की पुड़िया, कहां गई मेरी बोतल ।
उसको पीकर नाचूं, जैसे टट्टू कोतल ।।

इसे प्रतापनारायण जी ने अपने ऊपर ताना समझा। कुछ दिन बाद अपनी मण्डली द्वारा आयोजित प्रहसन में वह मल्लाह बने और लाला जी के ताने का इस प्रकार उत्तर दिया—

खत्री, ब्राह्मण सबै पियत हैं, बनिया, अग्रवाला ।
हम मल्लाहन पी लई, तो हँसेगा क्या कोई साला ।।

इस प्रसग से भी लोगो को इन पर शराब पीने का संदेह हुआ।[2] पर यह उत्तर भी उसी प्रकार व्यग्य पूर्ण है जैसे पीछे ईसाई होने के आक्षेप का था। 'हम मल्लाहन' शब्द से ध्वनि निम्न समाज की ओर निकल रही है न कि मिश्र जी की ओर। मिश्र जी ने तो शराब और मांस को सदा उपेक्षा की दृष्टि से देखा है।

कलिया और शराब बिना नहिं कौर उठावत ।
केश भेष महं निपट नजाकत नितहि दिखावत[3] ।।

यदि मिश्र जी स्वत. शराबी होते तो ऐसा न लिखते। हां, भंग अवश्य मिश्र जी कभी-कभी खाते थे पर नियमित आदत के रूप में नही मिश्र जी को खान-पान मे कोई परहेज न था। यहा तक कि बीमारी हालत में भी वह परहेज न कर पाते थे। किसी अन्य के यहा भी खाने मे उन्हें कोई परहेज न था। वह केवल प्रेम देखते थे और जो कुछ भी मिल जाता वह सहर्ष खा लेते थे।

मिश्र जी के कोई सन्तान नही हुई। सन् १८५४ ई० मे जब मिश्र जी बहुत बीमार पड़े तो उन्होंने मृत्यु से एक माह पूर्व अपने साले रामगोपाल शुक्ल को गोद लिया और अपनी पत्नी से कहा 'इसी को पुत्रवत् पालन करना, मेरा दुख न करके

---

१ - सं० रमाकान्त त्रिपाठी—'प्रतापपीयूष' (१९३३ ई०) पृष्ठ १७

२—सं० नारायण प्रसाद अरोड़ा और लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी—'प्रतापनारायण मिश्र' (१९४७ ई०) पृष्ठ ४३—४४

३—सं० नारायण प्रसाद अरोड़ा—'प्रतापलहरी' (१९४७ ई०) पृष्ठ ४४ ('ककाराष्टक' से)

इसी को देखना।' जिस समय रामगोपाल को मिश्र जी ने गोद लिया वह केवल एक वर्ष के थे फिर मिश्र जी की पत्नी ने ही रामगोपाल का पालन-पोषण किया। राम-गोपाल के एक बडी बहन और थी जिसका नाम मूला था। मूला मिश्र जी की पत्नी से छोटी थी। रामगोपाल के पिता के दस सन्ताने और हुई थी पर वे जीवित नही रहीं। रामगोपाल अपने पिता के सबसे छोटे पुत्र थे। प्रतापनारायण मिश्र का स्वास्थ्य जब बहुत अधिक गिर गया और उन्हें अपने बचने की कोई आशा न रही तब उन्होंने अपनी समस्त चल और अचल सम्पत्ति के सम्बन्ध में एक 'बिल' लिखवा कर २१ जून सन् १९९४ ई० को कानपुर के सब-रजिस्ट्रार के यहा रजिस्टर करवाया (यह 'बिल' उर्दू में लिखी गई थी और उसके मजमून के लेखक कुरसवा (कानपुर) के मुशी रामसहाय निगम थे। ··· 'इसमें मिश्र जी ने अपनी द्वितीय पत्नी को अपनी समस्त चल और अचल सम्पत्ति का उत्तराधिकारी स्वीकार किया और उन्हे इस बात का पूर्ण अधिकार दिया कि वे उसे जिस तरह चाहे बेचें या दान करें या रक्खे।[1] मिश्र जी के निधन के बाद उनकी पत्नी सम्पूर्ण सम्पत्ति (मकानो आदि) की स्वामिनी हुई।

कार्य-क्षेत्र

मिश्र जी का कार्य-क्षेत्र बड़ा व्यापक था। सभी क्षेत्रों मे उनकी पहुच थी। कानपुर के जन सामान्य से लेकर देश के प्रसिद्ध राजनीतिज्ञों और साहित्यकारो से मिश्र जी का परिचय था सभी प्रकार के व्यक्तियों से मिलने के कारण इनका समाजिक ज्ञान बहुत विस्तृत हो गया था। यह साहित्यिक, राजनीतिक, सामाजिक-सभी प्रकार के कार्यों में भाग लेते थे।

साहित्यिक जीवन

मिश्र जी का साहित्यिक जीवन बडा महत्वपूर्ण है, इसी से ये साहित्य-जगत मे अमर है। मिश्र जी हिन्दी (खड़ी बोली) के प्रारम्भिक लेखक है। जिस समय इन्होंने लिखना प्रारम्भ किया उस समय हिन्दी की प्रयोगावस्था थी। लिखने वाले तो थोडे थे ही, पढने वाले उनसे भी कम थे। ऐसी स्थिति में लेखकों को लिखने के साथ-साथ पढ़ने वाले भी तैयार करने पडते थे। मिश्र जी ने दोनों ही कार्य बडी सफलता के साथ किया। मिश्र जी सुधारवादी साहित्यकार थे, इन्होने जो कुछ भी लिखा देश-हिताय लिखा। इनकी कला जीवन के लिए थी। वे कहते थे—

> "पढ़ि, कमाय कीन्हों कहा हरे न देश कलेश।
> जैसे कन्ता घर रहे तैसे रहे विदेश॥[2]

१—सं० नारायण प्रसाद अरोड़ा और लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी—'प्रतापनारायण मिश्र' (१९४७ ई०) पृष्ठ १२३—२४

२—प्रतापनारायण मिश्र—'लोकोक्ति शतक' (१८९६ ई०) पृष्ठ १

उपदेश-प्रधान होते हुए भी इनका साहित्य नीरस नही होने पाया। हास्य और व्यग्य के पुट मे आवेष्टित होने के कारण वह बौद्धिक और आत्मिक विकास के साथ-साथ—पाठकों का मनोरजन भी करता रहा। जन सामान्य तक पहुचाने के उद्देश्य से मिश्र जी ने बड़ी सरल और प्रचलित भाषा को अपने साहित्य का माध्यम बनाया। ग्रामीणा-शब्दों का प्रयोग कर इन्होने अपने जागरण-मन्त्र को गाव-गाव पहुचाया। उस समय जितने भी साहित्यकार थे उनमे सबसे अधिक जनता का प्रतिनिधित्व करने वाली मिश्र जी की ही भाषा थी। यह नागरी को जन-जन तक पहुंचाना चाहते थे। इनका कहना था कि नागरी की उन्नति के बिना देश की उन्नति असम्भव है।[1] नागरी के प्रचार के लिए ही उन्होने १५ मार्च, १८८३ ई० को 'ब्राह्मण' मासिक पत्र निकालना प्रारम्भ किया और इसे जीवन पर्यन्त निकालते रहे। इस पत्र के प्रकाशन मे मिश्र जी को अनेक आर्थिक कष्ट उठाने पडे। इसके लिए साल भर तक कालाकाकर मे स्वभाव विरुद्ध बनवास करना पडा।[2] पर वह इसकी रक्षा मे तन-मन-धन से लगे रहे।

मिश्र जी की प्रतिभा और साहित्य-सेवा मे प्रभावित होकर राजा रामपाल-सिंह ने १८८९ ई० इन्हे 'हिन्दुस्तान' के सम्पादक-मण्डल मे कार्य करने के लिए आमन्त्रित किया। यद्यपि मिश्र जी नौकरी नही करना चाहते थे। पर उस समय वे अर्थाभाव से बहुत पीडित थे। ब्राह्मण के प्रकाशन मे इन्हे हर साल घाटा उठाना पडता था और अब उसका चलना भी असम्भव दिखाई पडने लगा था। अत. 'ब्राह्मण' के रक्षार्थ मिश्र जी ने राजा साहब का आमन्त्रण स्वीकार किया और जुलाई-१८८९ ई० मे वह 'हिन्दुस्तान' के सहायक सम्पादक होकर कालाकाकर चले गये।[3] फिर कालाकाकर से ही 'ब्राह्मण' का भी सम्पादन करने लगे। वे 'हिन्दुस्तान' पत्र के काव्य-भाग के सम्पादक और उसके फसली लेखक थे। जब कोई त्यौहार जैसे, जन्माष्टमी पितृमोक्ष-पक्ष, दशहरा, दीपावली, होली आती तब इन अवसरो पर उनसे कविता या लेख लिये जाते थे।[4] उस समय 'हिन्दुस्तान' के प्रधान सम्पादक प०-मदनमोहन मालवीय थे। सहायक-सम्पादक-मण्डल मे स्वयं प्रतापनारायण मिश्र और पण्डित राधाचरण चौबे, पण्डित गुलाबचन्द्र चौबे, पं० रामलाल मिश्र, बाबू शशि-भूषण चटर्जी, बाबू बालमुकुन्द गुप्त, पं० गुरुदत शुक्ल आदि थे[5] बाबू शशिभूषण

१. 'ब्रह्मण' खण्ड ७, संख्या १०, 'असम्भव है' : प्रतापनारायण मिश्र
२. 'ब्राह्मण' खण्ड ७, सख्या १२, 'अतिम सम्भाषण : प्रतापनारायण मिश्र
३. 'ब्राह्मण' खण्ड ५, संख्या १२, 'आवश्यकीय सूचना' : ब्रजभूषण गुप्त,
४. 'सरस्वती' १९३८ ई० 'स्व० 'प० प्रतापनारायण मिश्र : गोपालराम गहमरी
५. 'सरस्वती' जून १९३८ ई० 'स्व० पं० प्रतापनारायण मिश्र : गोपालराम-गहमरी

चटर्जी, प्रतापनारायण मिश्र और बाल मुकुन्द गुप्त एक ही स्थान (बाबू बाल मुकुन्द गुप्त के निवास स्थान पर) पर बैठकर लेख आदि लिखते थे।[1] मिश्र जी बंगला साहित्य की तरह हिन्दी-साहित्य को भी उत्कृष्ट बनाना चहते थे। हिन्दी की गिरी स्थिति से उन्हे बड़ा दुःख होता था। उन दिनों बंग-भाषा में दैनिक 'चन्द्रिका' निकलती थी। उसमे समाचार और राजनैतिक लेखों के सिवा साहित्यिक लेख भी खूब रहते थे। मिश्र जी ने राजा रामपालसिंह को इसे दिखाकर 'हिन्दुस्तान' मे भी 'साहित्य-स्तंभ का कालम सन्निवेश कराया। आगे खड़ी बोली कविता पर हुआ विवाद इसी कालम मे प्रकाशित हुआ।[2] कालाकांकर में रहकर मिश्र जी ने पर्याप्त साहित्य सृजन किया जो 'हिन्दुस्तान' और 'ब्राह्मण' में प्रकाशित हुआ। यही 'तृप्यन्ताम' और 'ब्रैडला स्वागत' नामक प्रसिद्ध पुस्तकें भी लिखी जो क्रमशः उक्त पत्रों मे निकली। इसके अतिरिक्त मिश्र जी राजा रामपाल सिंह को पिंगल-शास्त्र पढाते थे और उनके द्वारा लिखी कविताओ का संशोधन करते थे।[3] कालाकांकर का वातावरण इनके साहित्यानुकूल था फिर भी वह वहाँ अधिक समय तक नही रह सके, इसका कारण उनका स्वाभिमानी व्यक्तित्व था। मिश्र जी के कालाकांकर छोडने के प्रसग मे दो घटनायें प्राप्त होती है। एक घटना गोपालराम गहमरी की लिखी हुई है और दूसरी कविवर बचनेश की। दोनो घटनाओ मे कौन प्रमाणिक है, यह निश्चित रूप से नही कहा जा सकता। अतः यहा दोनो को उद्धृत कर रहा हूँ।

१—एक बार राजा रामपाल सिंह 'हिन्दुस्तान' पत्र के लिये अग्र लेख लिखा रहे थे। जो कुछ वे बोले जाते थे उसको लिखने में जो दोबारा कुछ भी पूछता था उस पर बहुत बिगड जाते थे। मैं (गहमरी) तेज लिखता था। इस काम के लिए वे सदा मुझे बुलाया करते थे। सफर मे भी मुझे साथ रखते थे। एक बार वे अशुद्ध बोल गये लेकिन मैंने शुद्ध लिख लिया। जब समाप्त होने पर सुनने लगे तब जहाँ मैंने सुधार कर लिया था उसको सुनते ही अशुद्ध कहकर उसे सुधारने को कहा। पण्डित जी (प्रताप नारायण मिश्र) वहाँ बैठे थे। उन्होने कहा कि लड़के ने शुद्ध लिखा है। इस पर राजा साहब बिगड़कर पंडित जी से बोले—"आप बड़े गुस्ताख हैं।" पडित जी ने छूटते ही जवाब दिया—अगर सच्ची बात को सच कहना आपके

१—'बालमुकुन्द गुप्त-निबन्धावली' प्रथम भाग (१९०७ वि०), पृष्ठ ३५०

२—'सरस्वती' जून १९३८ ई० 'स्व० पं० प्रतापनारायण मिश्र : गोपालराम गहमरी।

३—'रामराज्य' (कानपुर) १ अक्टूबर १९५६ ई०, 'पूज्य श्री प्रतापनारायण मिश्र' : बचनेश।

दरबेश्रू में गुस्ताखी है तो मैं सदा गुस्ताख हूं।" राजा साहब को और क्रोध आया और गर्म होकर बोले—"निकल जाव यहा से।" पण्डित जी बोले—"हम यह चले।" यह कह कर उसी दम बारादरी से उठे और चले आये। फिर कभी उनके यहाँ नही गये और थोडे दिन मे अपना हिसाब चुकाकर कानपुर को चले गये। बाबू बाल मुकुन्द गुप्त, पण्डित रामलाल मिश्र आदि किसी की बात उन्होंने नही सुनी।[1]

२—*मिश्र जी की जीवनी में उनके स्पष्ट भाषण और स्वाभिमान की एक* मजेदार घटना यह है जो मुझे (बचनेश जी) अपनी १६ वर्ष की उम्र मे कालाकाकर जाने पर ज्ञात हुई थी। मैं राजा रामपाल सिह को उनकी कविता सशोधन और छन्द शास्त्र की शिक्षा देने के लिए नियुक्त हुआ था। मुझसे पहले इसी काम पर मिश्र जी नियुक्त थे। एक बार वह राजा साहब की कविता में कुछ सशोधन कर रहे थे। राजा साहब उसे मान नही रहे थे। इस पर खिन्न होकर मिश्र जी ने कहा कि पहले आप इस शराब के प्याले को हाथ से अलग कीजिए तब आपकी समझ मे आवेगा। राजा साहब ने कहा आप हमारा अपमान करते है, जानते है मैं कौन हूँ? यह सुनते ही उसी समय कवि ने इस्तीफा लिखकर मेज पर रख दिया और अपने घर का रास्ता लिया।"[2]

इनमें पहली घटना गहमरी जी के सामने की है और दूसरी घटना बचनेश जी की सुनी हुई। वैसे दोनों घटनायें कुछ हेर-फेर से एक ही सी है। लेकिन गहमरी जी की अधिक प्रामाणिक प्रतीत होती है। वैसे मै गहमरी जी की घटना को पूर्ण प्रामाणिक मानता पर गहमरी जी उसी लेख में लिखते है—"उनका दर्शन मुझे कालाकांकर मे हुआ था। जब मैं १८९२ ई० मे कालाकाकर—नरेश तत्रभवान राजा रामपाल सिंह की आज्ञा से 'हिन्दुस्तान' के सम्पादकीय विभाग में काम करने को पहुँचा तब वहाँ साहित्यिकों की एक नवरत्न कमेटी सी हो गयी थी। उस समय वहाँ प० प्रतापनारायण मिश्र, बाबू बालमुकुन्द गुप्त, पंडित राधाचरण चौबे, पं० गुलाब चन्द चौबे, पंडित रामलाल मिश्र, बाबू शशिभूषण चटर्जी, प० गुरुदत्त शुक्ल और स्वयं राजा साहब आदि लोग थे।'[3]

गहमरी जी १८९२ ई० मे मिश्र जी का कालाकाकर मे होना लिखते हैं जब

१—'सरस्वती' जून १९३८ ई० 'स्व० पं० प्रतापनारायण मिश्र'—गोपालराम गहमरी।

२—'राम राज्य' (कानपुर) १ अक्तूबर १९५६ ई० 'पुज्य श्री प्रतापनारायण मिश्र' : कविवर बचनेश।

३. 'सरस्वती' जून १९३८ ई० 'स्वर्गीय पं० प्रतापनारायण मिश्र' - गोपालराम गहमरी

कि मिश्र जी जुलाई १८९० ई० में ही कालाकाकर छोड़ कर चले आये थे।[1] अब या तो गहमरी जी अपना कालाकांकर जाने का समय भूल गये है या छपने में अशुद्धि हो गयी है। यह भी हो सकता है कि उन्होंने जन-प्रचलित घटना को अपने साथ मिला लिया हो। कुछ भी हो मिश्र जी ने कालाकाकर राजारामपाल सिंह से प्रतिवाद होने के कारण ही छोड़ा।

मिश्र जी ने पत्रो के सम्पादन द्वारा तो नागरी का प्रचार किया ही, साथ ही सुधारवादी लावनियाँ गा-गाकर भी अशिक्षित तथा अर्द्ध-शिक्षित जनता को अपनी और आकृष्ट किया और उनमे जागृति का शख फूका। इसके अतिरिक्त नाटको के अभिनय द्वारा भी मिश्र जी ने इस दिशा मे सराहनीय कार्य किया। वह बड़ी सरल भाषा में नाटक लिखते और उनका स्वत: अभिनय भी करते थे। अभिनय के लिए उन्होने अपने मित्रो की सहायता से एक नाटक मण्डली तैयार कर ली थी जिसमे इनके तथा अन्य लेखको के लिखे नाटक खेले जाते थे। यह मण्डली सन् १८८५ मे स्थापित हुई थी, और इसका नाम 'भारत एनटरटेनमेण्ट क्लब' था।[2] इसके द्वारा आयोजित नाटक 'स्टेशन थियेटर हाल' मे खेले जाते थे। यह थियेटर हाल ठण्डी सडक पर—जहाँ पर आजकल तार घर की नयी इमारत है—स्थित था। यह हाल अग्रेजो का था पर हिन्दी नाटकों के अभिनय के लिए मिल जाता था।[3] आगे चलकर मेम्बरो मे परस्पर फूट हो जाने के कारण क्लब के दो भाग हो गये और फूटी हुई शाखा एम० ए० क्लब के नाम से प्रसिद्ध हुई। पहली का नाम दो एक हिन्दी रसिको के उत्साह से 'श्री भारत मनोरंजनी सभा' हो गया।[4]

मिश्र जी को लावनी गाने और नाटको में अभिनय करने का बडा शौक था। आप नयागज, मूलगज, चौक, आदि, कानपुर के खास-खास चौरस्तों पर खड़े होकर बडे उच्च-स्वर से लावनी गाते थे। लावनी गाते समय इनकी वेश-भूषा एक विशेष प्रकार की होती थी और इनके गाने का ढंग भी बडा निराला था। बडी-बड़ी जुल्फे रखाये कन्धो तक तेल चुचुआये, बांकी टोपी सिर पर दिये, बड़ी नजाकत से कान पर हाथ रक्खे, एक हाथ में इकतारा लिये, मधुर और तीव्र स्वर से लावनी गाते थे। आपका लावनी गाने वालों में प्रमुख स्थान था। आप अपने समय के लावनी-आचार्य

---

१. 'ब्राह्मण' खण्ड ६ संख्या १२ 'सूचना ! सूचना !! सूचना !!!'— प्रतापनारायण मिश्र

२ 'ब्राह्मण' खण्ड ५ संख्या १ 'कानपुर और नाटक' : प्रतापनारायण मिश्र

३ सं० नारायण प्रसाद अरोड़ा और लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी : 'प्रतापनारायण मिश्र' (१९४७ ई) पृष्ठ ३६

४. 'ब्राह्मण' खण्ड ५ संख्या १ 'कानपुर और नाटक' - प्रतापनारायण मिश्र

समझे जाते थे। 'कानपुर में बहुधा लावनी बाजो के दो दलो मे लावनी बाजी हुआ करती थी। कभी-कभी एक दल वाले उनको अपनी तरफ बिठा लेते थे और उस दल के इच्छानुसार विरोधी दल का गाना समाप्त होते-होते, वे नयी लावनी तैयार कर देते थे। कभी दूसरे दल वाले भी ऐसा ही करते थे।'[1] अपने समय मे कानपुर के सार्वजनिक जीवन को सजीव रखने मे तथा जनता को सदैव जाग्रत रखने मे मिश्र जी का प्रमुख स्थान था। शहर के दैनिक जीवन मे एक खास तरह की स्फूर्ति रखने मे उनकी लावनी बाजी बडी सहायक थी।[2] एक बार आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, मिश्र जी से मिलने गये। द्विवेदी जी के साथ उनके एक मित्र भी थे। जिस समय द्विवेदी जी मिश्र जी के यहा पहुँचे मिश्र जी अपने बैठके मे बैठे थे। द्विवेदी जी भी अपने मित्र सहित वहाँ जाकर मिले। बैठके की दीवार पर एक इकतारा टगा था द्विवेदी जी के मित्र ने उसे उठाकर छेडना शुरू किया। कोई दो मिनट बाद प्रतापनारायण से न रहा गया। उन्होंने उसे उनके हाथ से छीन लिया और कहा—'यहि तना नही बजावा जात।' यह कह कर आप खडे हो गये और उसे बजाते हुए लावनी गाने लगे।[3]

कानपुर मे मिश्र जी ने कई नाटक खेले। १८७६ ई० के लगभग प० रामनारायण तिवारी 'प्रभाकर' के प्रयास से कानपुर मे पहले-पहल भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र कृत 'सत्य हरिश्चन्द्र' और 'वैदिकी हिंसा' नाटक खेले गये। इसके बाद तिवारी जी गोरखपुर चले गये और नाटको के अभिनय का कार्य यही रुक गया। तदुपरान्त १८८२ ई० मे प० प्रतापनारायण के प्रयास मे 'नील देवी' और 'अन्धेर नगरी' नाटक खेले गये। इनमे मिश्र जी ने अभिनय भी किया। १८८५ ई० मे 'भारत एनटरटेनमेण्ट क्लब' स्थापित हो जाने के बाद मिश्र जी के ही प्रयास से 'अंजामे बदी नाटक (फारसी-वालो के ढग का नाटकाभास) खेला गया।[4] फिर २६ नवम्बर १८८७ ई० को 'श्री-भारत मनोरजनी सभा' द्वारा 'हठी हम्मीर' नाटक और 'जयनार सिंह' प्रहसन अथच २८ नवम्बर १८८७ ई० को 'कलि प्रवेश नीति रूपक' एवं 'गो संकट' रूपक खेले गये। इनमे 'हठी हम्मीर' और 'कलि प्रवेश नीति रूपक' मिश्र जी के लिखे थे। इन नाटको मे मिश्र जी ने अभिनय भी किया।[5] मिश्र जी सफल अभिनय के पक्षपाती थे। वे स्वत. अभिनय की सफलता के लिए कठिन प्रयास करते थे। १५ अक्टूबर

---

१ 'निबन्ध-नवनीत' पहिला भाग (१९१९ ई०) पृष्ठ १९-२०

२. सं० रमाकान्त त्रिपाठी : 'प्रताप-पीयूष' (१९३३ ई०) प्रस्तावना पृ० ५

३. 'निबन्ध-नवनीत' पहिला भाग (१९१९ ई०) पृष्ठ १५

४. 'ब्राह्मण' खण्ड ५ संख्या १ 'कानपुर और नाटक' : प्रताप नारायण मिश्र

५. 'ब्राह्मण' खण्ड ४ संख्या ५ 'कानपुर कुछ कुनमुनाया है, : प्रताप नारायण मिश्र

१८८५ ई० में बंगाली-समाज द्वारा कानपुर मे भारतेन्दु कृत 'भारत-दुर्दशा' नाटक खेला गया। इसका अभिनय बडी निम्नकोटि का रहा। इससे मिश्र जी को बडा दुःख हुआ और उन्होने ब्राह्मण मे 'भारत-दुर्दशा की दुर्दशा' शीर्षक एक लेख निकाला। जिसकी कुछ पंक्तिया इस प्रकार है—'टिकट न होने के कारण अप्रबन्ध तो सपेडा और बोहना रानी के स्वागो का सा था। बीस-पचीस लोग कहते थे भाई हमको तो कुछ सुनी न पड़ा। इसके सिवाय योगी के मुह से गजल गवाना भारत का कडक कडक कर बोलना, स्त्री पात्रों के दण्डा ऐसे (बिना चूडी) हाथ और नित्य की अंगरखी तथा धोती का खुल-खुल जाना, भारतेन्दु जी के गीतो के बदले पूर्ण उर्दू के बेसुरे, बेतुके बेमानी गीतो का गाना, कलिराज (यह 'भारत दुरदेव' का नाम रक्खा गया था) कि सभा मे मुबारक बाद का गाया जाना, केवल एक गीत के लिए सीन बदलना इत्यादि अभिनेताओ की बुद्धिमता का ठीक परिचय देता था। जिनकी अद्वितीय नाट्यकार होने का कुछ-कुछ सच्चा अभिमान है उन्होने 'भारत भाग्य' की आरम्भ वाली लावनी (रोवहु सब मिलि के इत्यादि) का एक चौक गाया और गला फाड-फाड के भारतेन्दु जी की कविता का बलि प्रदान करने लगे।[१] इस उद्धरण से मिश्र जी के अभिनय ज्ञान का सहज ही परिचय मिल जाता है। कहते है इसी 'भारत-दुर्दशा' की दुर्दशा देखकर ही मिश्र जी ने १८८५ ई० मे लाला राधेलाल अग्रवाल, लाला बिहारी लाल आदि की सहायता से—'श्री भारत मनोरजनी सभा' की स्थापना की थी।[२] एक बार बाबू रामदीन सिह के प्रयत्न से बाँकीपुर (पटना) मे भारतेन्दु हरिश्चन्द्र कृत 'सत्य हरिश्चन्द्र का और प्रतापनारायण मिश्र ने रोहिताश्व का अभिनय अत्यन्त सफलता के साथ किया था।[३] मिश्र जी स्त्री और पुरुष, दोनो पात्रो का अभिनय पूर्ण सफलता के साथ करते थे। पर स्त्री-पात्रो के अभिनय मे ये अधिक दक्ष थे। कहते हैं कि एक बार इन्हे स्त्री का पार्ट करना था और उसके लिए इन्हे मूछे मुडवानी थी तो अपने पिता के पास गये और बहुत विनीत स्वर मे बोले-'यदि आज्ञा हो तो इन्हे मुडवा दू। मुड़वाना जरूरी है।' पिता जी सब स्थिति समझ गये और उन्होने हसकर आज्ञा दे दी।[४] स्त्री पात्रों का अभिनय मिश्र जी इतनी सफलता के साथ करते थे कि दर्शको को भ्रम हो जाता था और वे उसे वास्तविक समझने

---

१. 'ब्राह्मण खण्ड ३ सख्या ८ (१५ अक्टूबर, १८८५ ई०)
२. स० नारायण प्रसाद अरोड़ा और लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी : 'प्रतापनारायण मिश्र' (१९४७ ई०)—पृष्ठ ४३
३. नरेशचन्द्र चतुर्वेदी : 'हिन्दी साहित्य का विकास और कानपुर' (१९ ५७ई०) पृष्ठ—२१२-१३
४. 'निबन्ध-नवनीत' पहिला भाग (१९१९ ई०)—पृष्ठ २०

लगते थे। एक बार उन्होने 'उर्दू बीवी' का पार्ट किया था। उस समय उनके और मुसलमान वैश्या के वेष मे कोई अन्तर न था। दर्शको मे बैठी हुई एक प्रसिद्ध वैश्या से 'बुआ सलाम' कहकर उन्होने सलाम किया तो वह सहसा बोल उठी 'बेटी जीती रह'।[1] इस प्रकार मिश्र जी नाटककार के साथ-साथ एक कुशल अभिनेता भी थे।

मिश्र जी नागरी प्रचार के हेतु जनता मे भाषण भी देते थे और उसके गुणो से जनता को अवगत कराते थे। नागरी प्रचार के लिए मिश्र जी ने कई यात्राये भी की थी। दिल्ली और बाकीपुर मे आयोजित नागरी-प्रचार-सभाओ मे भी ये सम्मिलित हुए थे और उनमे भाषण भी दिया था। कालाकाकर की तो इनकी साहित्यिक-यात्रा प्रसिद्ध ही है। इनके अतिरिक्त राजनीतिक और सामाजिक कार्यों से भी मिश्र जी ने कई यात्रायें की, जिनका विवरण आगे दिया जायगा। मिश्र जी ने नागरी प्रचार मे बडा कार्य किया, पर निर्धनता के कारण इन्हे उपयुक्त साधन न प्राप्त हो सके और ये अपनी इच्छानुसार कार्य न कर सके। वे कहते थे—'भारतेन्दु के पास धन था। उनकी कीर्ति धन-बल से थोडे ही दिनो मे खूब फैली। मेरे पास भी रुपया होता तो मै भी हिन्दी मे बहुत-कुछ काम करता। हिन्दी मे पाठको की सख्या इतनी कम है कि उनके भरोसे कोई ग्रन्थकार उत्साहित होकर आगे नही बढ सकता। वे दिन भी हिन्दी मे कभी आवेगे जब हिन्दी के पाठक बंगला के पाठको की तरह खूब बढेगे, जिनके भरोसे हिन्दी के ग्रन्थकार फले-फूलेगे और उदर-भरण की चिन्ता से मुक्त होकर हिन्दी मे ग्रन्थ-रत्न सग्रह करके गरीबिनी हिन्दी को उन्नत करेगे। शायद मेरे मरने के बाद वे दिन आये।[2] मिश्र जी के इस कथन मे उनकी करुण और हिन्दी के प्रति निष्ठा का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है।

राजनीतिक जीवन

राजनीतिक क्षेत्र मे भी मिश्र जी ने बडा कार्य किया। इन्होने ही कानपुर मे काग्रेस-समिति की स्थापना की और इसकी ओर से पहले-पहल कानपुर के प्रतिनिधि बनकर, काग्रेस के तृतीय-अधिवेशन मे—जो दिसम्बर १८८७ ई० मे हुआ था, मद्रास गये।[3] यह काग्रेस के बडे भक्त थे। इन्होंने काग्रेस मे सक्रिय भाग लिया। मद्रास के अधिवेशन मे सम्मिलित होने के लिए इन्होने 'ब्राह्मण' के प्रकाशन की भी परवाह न की थी और उसे अपूर्ण ही प्रकाशित कर दिया था।[4] मिश्र जी प्रत्येक देश-हितैषी व्यक्ति तथा सस्था के पोषक और प्रशंसक थे। उनका कहना था—'धन्य

---

१. 'निबन्ध-नवनीत पहिला भाग (१९१९ ई०)—पृष्ठ २१-२१
२. 'सरस्वती' जून, १७३८ 'स्व० पं० प्रतापनारायण मिश्र'—गोपालराम गहमरी
३. 'ब्राह्मण' खण्ड ४ संख्या ५ 'जरा सुनो'—प्रतापनारायण मिश्र
४. 'ब्राह्मण' खण्ड ४ संख्या ५ 'जरा सुनो'—प्रतापनारायण मिश्र

जीवन उन्ही का है जो तन, मन, धन, धर्म, बल, विद्या, बुद्धि अपने देश पर वार देते है। जगत पिता जगदीश्वर उन्ही से प्रसन्न होगा जो जगत को प्रसन्न करें। जिन-को आज हम पूजते है, जिनके नाम की महिमा करते है मानव थे भी थे पर उनमे विशेषता केवल यही थी कि उनके काम और उनके बचन हम लोगो की भलाई के लिए थे। हम भी उनके सच्चे अनुगामी तभी होगे जब उनकी रीति पर देश वत्सल हो।[1]

मिश्र जी ने सर्व प्रथम स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए देशवासियों को प्रोत्साहित किया।

'सब तजि गहौ स्वतंत्रता, नहिं चुप लातै खाव।
राजा करै सो न्याव है पांसा परै सो दाव।।[2]

मिश्र जी कानपुर की राजकीय समितियो मे भी जाते थे और उनके कार्यो की आलोचना करते थे। एक बार कानपुर की म्यूनिसिपैलिटी मे इस बात पर विचार हो रहा था कि भैरव घाट मे मुर्दे बहाये जायँ या नही। (गगा जी का प्रवाह उस घाट से कानपुर की बस्ती की ओर है)। तरह-तरह के प्रस्ताव होते-होते किसी ने कहा कि जले हुए मुर्दे की पिण्डी यदि इतने इच से अधिक न हो तो बहाया जाय। दर्शको मे प्रतापनारायण मिश्र भी उपस्थित थे। आप खड़े होकर बोले—'अरे दैया रे दैया। मरेउ पर छाती नापी जाई।'[3] सरकारी कर्मचारियों के दुर्व्यवहारो का भी भडाफोड करने मे मिश्र जी न चूकते थे, बडे कटु शब्दो में उनकी आलोचना करते थे। २७ अप्रैल, १८८३ ई० की बात है कानपुर मे एक कहार को तीन सिपाहियो ने बेगार के लिए पकडा। उसका विवरण मिश्र जी इस प्रकार देते है—'उन्होने इस अपराधी दीन पराये नौकर को बेगार की अबाध्य अथारिटी पर पकड़ा था, उन्हे क्या डर था? उस बिचारे बंधुए ने बहुत हाथ पाँव जोड़े और गिडगिडा के अपना सच्चा हाल कहा और छोड देने के लिए विनती की। हे पाठकगण! जब एक तुच्छ कहार उनसे उज्र करे तो उनकी क्रोधाग्नि के भडकने का क्या ठिकाना था। बस किसी ने खीचा, चोटैया पकड़ी, किसी ने हाथ-पाँव पकडे और घसीटते हुए चौक की तरफ ले चले फिर नही मालूम कि वह क्यों कर छूटा।'[4] ऐसे ही १० मई १८८४ ई० की एक घटना और मिश्र जी लिखते है—'अजमेर के स्टेशन पर भीड चढी थी। एक गाडी मे परसोतमदास नामक एक आर्य भाई (जो एकजामिनर्स आफिस के क्लर्क

---

१. 'ब्राह्मण' खण्ड ४ संख्या ६ 'जातीय महासभा'—प्रतापनारायण मिश्र
२. प्रतापनारायण मिश्र 'लोकोक्ति शतक' (१८९६ ई०)—पृष्ठ २
३. 'सरस्वती' मार्च, १९०६ ई०, 'पं० प्रतापनारायण मिश्र'—महावीरप्रसाद द्विवेदी
४. 'ब्राह्मण' खण्ड १ संख्या ३ ('बेगार')

थे) बैठे थे। यो ही भीड के मारे आठ आदमियो के ठौर पर नौ जन थे तिस पर भी वहाँ के एसिस्टेंट स्टेशन मास्टर ए० एच० बरवार साहब ने दो और घुसेड़ने चाहे। तब बिचारे परसोतमदास जी ने कहा साहब हमे तकलीफ होगी, अब भी तो नियम बिरुद्ध एक मनुष्य अधिक है। इतना सुनते ही चाडाल ने उनको गालियाँ भी दी, पवित्र शिखा (चोटी) भी नोची, लातें भी मारी और पुलिस के कुसपुर्द भी करा दिया। हम तो जानते है, वहाँ भी हमारा हितू कौन बैठा है जो धर्माधर्म विचारेगा।'[1] ऐसी ही एक और घटना यहाँ पर देनी अनुपयुक्त न होगी। वह यह कि एक बार आसाम देश के बेब साहब ने एक कुली की युवती स्त्री को बल पूर्वक रात भर अपने शयनालय मे रक्खा। उसके पति ने अपनी धर्मपत्नी का सतीत्व-रक्षण करना चाहा। उसे भी पीट उठाया। स्त्री बिचारी लज्जा और दु ख के मारे मर भी गई पर किसी ने यथोचित न्याय न किया। इस पर मिश्र जी लिखते है—'हाय! हम देश हितैषी केवल मुख और लेखनी मात्र के है। नही तो जिस दुष्ट ने हमारे देश भाई की स्त्री का पातिव्रत भ्रष्ट किया उससे बढ के हमारा शत्रु कौन होगा? क्या ऐसे-ऐसे पुरुषो के दमन करने मे तन, मन, धन न लगा देना चाहिए? पर बिना सच्चे देश-भक्त के यह काम हर एक का नही है।'[2] इसी प्रकार अनेक दुष्कर्मो की भर्त्सना मिश्र जी अपने 'ब्राह्मण' में किया करते थे। जिससे जनता को सरकार के काले कारनामे अवगत होते रहते थे। कभी-कभी मिश्र जी की आलोचना के परिणाम स्वरूप सुधार भी हो जाया करते थे। सन् १८८३ की बात है ईस्ट इण्डिया रेलवे और फरुखाबाद रेलवे के फाटक (कानपुर) पर सिपाही लोग रेलगाडी आने के घण्टों पहले से लदी हुई और छुट्टा गाडियो को खडा रखते थे, और देहातियो को परेशान करते तथा पैसा ऐंठते थे। इस कृत्य को मिश्र जी ने अपने 'ब्राह्मण' मे निकाला,[3] जिसके परिणाम स्वरूप सिपाहियों को दण्ड मिला और देहाती सदा के लिए उक्त कष्ट से मुक्त हो गये।[4] मिश्र जी से जनता का कष्ट न देखा जाता था। जब सरकार जनता पर कोई टैक्स लगाती थी तो मिश्र जी उसकी बडी आलोचना करते थे। राजनीतिक और कांग्रेस के कार्यों द्वारा मिश्र जी का परिचय बडे-बडे राजनीतिज्ञों तथा राजकीय कर्मचारियों से हो गया था जिससे वे जनना के हित के कार्य बडी सरलता से करा लेते थे।

सामाजिक जीवन:

मिश्र जी पूर्णक सामाजिक थे, उनके जीवन का प्रत्येक क्षण समाज के साथ

---

१ 'ब्राह्मण' खण्ड २ संख्या ४ ('सबै सहायक सबल के कोउ न निबल सहाय')

२ 'ब्राह्मण' खण्ड २ संख्या ४ —वही—

३. 'ब्राह्मण' खण्ड १ संख्या २ ('कानपुर')

४ ' —वही— ' ५ 'धन्यवाद' - प्रतापनारायण मिश्र

था। वह समाज के कष्टो को सुनते, देखते और दूसरों तक पहुचाते थे तथा उनके निराकरण का उपाय भी बताते थे। समाज मे फैले हुए अनाचार, पाखण्ड, विद्वेष, असमानता, सकीर्णता, आदि को दूर करके वह उसे विश्व-बन्धुत्व के पवित्र-बन्धन मे बाँधना चाहते थे। उनका कहना था—"आपके पास विद्या, बल, धन, बुद्धि कुछ भी न हो पर एका हो तो सब हो सकता है। वह देश धन्य है जहा ऐक्य की प्रतिष्ठा हो। बहुत से लोग एक हो के पाप भी करे तो भी पुण्य फल पावेगे। बहुत लोग एक होके मर जाय तो भी अनैक्यदूषित-जीवन से अच्छा है।"[१] मिश्र जी के साहित्य मे उनका समाज सुधारक और उपदेशक रूप स्पष्ट दिखाई देता है। वह देशवासियो को समझाने, न समझने पर झुझलाते और कोसते दिखाई पड़ते है। कही-कही व्यग्य-बाणो का प्रहार कर जाग्रत करते, कही अतीत का गुणगान कर उनमे स्वाभिमान उत्पन्न करते है। मिश्र जी बाल्यविवाह के विरोधी और विधवा विवाह के समर्थक थे। वह इनके दुष्परिणामो को बताकर जनता को इनसे बचने का पाठ पढाते थे। जनता को आवश्यकता के समय आर्थिक सहायता मिले इसके लिए 'जातीय-भण्डार' खोलने को उसे प्रोत्साहित करते।[२] तथा बेकाम न बैठ कुछ करते रहने की सलाह देते थे।[३] यद्यपि मिश्र जी शरीर से कमजोर थे फिर भी मल्ल-विद्या के प्रेमी थे। कानपुर मे जहा कही दगल होते मिश्र जी उन्हे देखने अवश्य जाते थे। उन्होने 'दगल-खण्ड' नाम की एक पुस्तक भी आल्हा छन्द मे लिखी। वे स्वास्थ्य रक्षा पर बड़ा जोर देते थे।[४]

मिश्र जी वीरता के भी पक्षपाती है। वे कहते है—"आपस मे लड़ना महा-पाप है पर तो भी लड़ाई को भूल जाना भी नामरदी है। निरी शाति ऋषियो को चाहिए। गृहस्थ को तो भविष्यत् का बिचार परम धर्म है। क्या जाने कल को कोई दुष्ट हमे सताना चाहे तब क्या करेगे ? हाथ-गोड़ दुरुस्त न रहे तो कचहरी ही कौन दौडेगा अत लडाई का भी कुछ-कुछ अभ्यास जरूर चाहिए।"[५] समाज की स्थिति को देखते हुए मिश्र जी सदा उसे उचित सलाह देते रहते थे। चेचक की बीमारी पर टीका के महत्व को समझाते और उसके लगवाने पर जोर देते थे।[६] पृथ्वी की उर्वराशक्ति नष्ट न हो इसके लिए वृक्ष लगाने,[७] ग्रामीणो की उन्नति के

---

१. 'ब्राह्मण' खण्ड ५ संख्या ११ ('एक')
२. 'ब्राह्मण' खण्ड १ संख्या ८ ('जातीय भण्डार')
३. 'ब्राह्मण' खण्ड १ सख्या १२ ('बेकाम न बैठ कुछ किया कर')
४. सं० नारायणप्रसाद अरोड़ा : 'प्रताप लहरी' (१९४९ ई०) पृष्ठ २२१
५ 'ब्राह्मण' खण्ड ४ संख्या ४ (रामलीला और मुहर्रम)
६. 'ब्राह्मण' खण्ड २ संख्या २ 'विस्फोटक'-प्रतापनारायण मिश्र
७. 'ब्राह्मण' खण्ड ७ संख्या ६ 'ग्रामों के साथ हमारा कर्त्तव्य'-प्रतापनारायण मिश्र

लिए गांव-गांव जाकर उपदेश देने,[१] बाल्य और स्त्री-शिक्षा का प्रचार करने और देशी वस्तुओ का प्रयोग करने पर ये विशेष बल देते थे ।[२] इसके अतिरिक्त समाज में फैले हुए छल और भ्रष्टाचार से भी सीधी-सीधी जनता को सावधान रखते थे । अढतियों की मीठी-मीठी बातो से व्यापारियों के फसाने का,[३] लम्पट बाबा (साधुओ) के बनावटी वेष और कुकृत्यों का,[४] देशी घी मे मिलावट करने वाले व्यापारियो का,[५] नकली सोने मे देहातियो को फंसाने वाले ठगो का,[६] बनावटी सभा स्थापित करके पैसा कमाने वाले देश हितैषियों का[७] कच्चा चिट्ठा खोलने मे मिश्र जी सदैव दत्तचित्त रहते थे । यहा तक कि अपने सम्बन्धियो तक के कार्यो की भर्त्सना करने मे मिश्र जी न चूकते थे । एक बार इन्होने अपने सगे सम्बन्धी प्रयाग-नारायण तिवारी की 'फक्कड और भगड' शीर्षक लेख मे बडी छीछालेदर की थी ।[८] इस पर इनकी पत्नी ने कहा—'आप सभी की बुराई किया करते है और दुश्मनी बढाते है, यदि किसी ने कुछ करा दिया तो क्या होगा ?" इस पर मिश्र जी ने कहा—'वह भी मेरा सौभाग्य होगा, कोई कुछ कराये तो ।' मिश्र जी सत्य बात करने मे कभी न चूकते थे । सवत् १९४० मे एक ज्योतिषी ने घोर अनावृष्टि की भविष्यवाणी की, इस पर मिश्र जी ने एक बडी सुन्दर टिप्पणी लिखी । जो इस प्रकार है—"होगा तो वही जो ईश्वर करेगा पर पण्डित जी ने अभी से भोले-भालो को डराकर अपनी टही जमाने का ढग निकाला । पाठकगण इनकी बातों से डरे नही, ये उन्ही मे से है जो जन्मपत्री द्वारा सभी अच्छे गुण मिला के व्याह कराते है तिस पर भी लाखो राडे इनके जन्म को रो रही है ।"[९] इस प्रकार मिश्र जी जनता को धैर्य बधाते हुए आगे बढने के लिए प्रोत्साहित करते थे । कभी-कभी उसे उत्तेजित करने के लिए कटु-व्यंग्य भी कसते थे । एक बार डाक्टर बैकस के एक शिकारी ने जूदगांव (अहमदाबाद) के पास एक हिरन को मार डाला । इस पर जूदगांव के निवासियो ने शिकारी की बन्दूक छीन ली जिसके परिणाम स्वरूप गाव वालों पर खूब मार पडी और धन-दण्ड भी दिया गया ।

---

१. 'ब्राह्मण' खण्ड ५ संख्या १० 'धरती माता की पूजा' 'धरती माता की पूजा'
२. प्रतापनारायण मिश्र-'लोकोक्ति शतक' (१८९७ ई०)-पृष्ठ ५
३. 'ब्राह्मण' खण्ड १ संख्या १० 'मुक्ति के भागी'-प्रतापनारायण मिश्र
४. 'ब्राह्मण' खण्ड १ संख्या १० '—वही—' '—वही—'
५. 'ब्राह्मण' खण्ड १ संख्या ४ 'गुप्त ठग' '—वही—'
६. 'ब्राह्मण' खण्ड ५ संख्या ९-१० 'ठगों के हथकण्डे' '—वही—'
७. 'ब्राह्मण' खण्ड ५ संख्या ९-१० '—वही—' '—वही—'
८. 'ब्राह्मण' खण्ड १ संख्या ९
९. 'ब्राह्मण' खण्ड १ संख्या २ ('विविध समाचार')

इस घटना को देते हुए मिश्र जी लिखते है—"साहब बहादुर ने उन कलूटो को मार एवं धन-दण्ड दिया सो बहुत अच्छा। हिन्दू तो इसीलिए बनाया गया है। काले रंग वालो को मारना कोई जुर्म है? कौआ सभी कोई उडा देता है। बाल सभी कोई कटा डालता है। कोयला सभी कोई आग में झोंक देता है। इसमें साहब ने क्या बुरा किया।"[१]

मिश्र जी मौखिक सेवा के साथ-साथ समाज की सक्रिय सेवा भी करते थे। इन्होंने अनाथालय खोलने के लिए बड़ा प्रयत्न किया। प्रत्येक द्वार पर जाकर उन्होने चन्दा मागा। जानवरो के पानी पीने के लिए मिश्र जी ने विन्ध्याचल से कूड़े मगवाये और कानपुर के बडे-बडे चौरस्तों पर उन्हे रखवाया। मिश्र जी कई कार्य करना चाहते थे पर धनाभाव के कारण न कर पाते थे। वह अपने 'कानपुर कुछ कुनमुनाया है' लेख मे लिखते है—"हमारी बहुत दिनो से इच्छा थी कि एक चिरस्थायी हिन्दी पत्र, एक सबके सुभीते का पुस्तकालय, एक आर्य कन्याओ की पाठशाला और एक गोशाला एव नाट्य सभा यहा हो जाती तो उत्तम था पर अपने पास तो राम जी का नाम ही मात्र ठहरा हो तो क्या हो। यहा के लोगो की बुद्धि भी परमेश्वर ने न जाने किस हिमाकत मे कैसी बनाई है कि विदेशियों के लिए तो चाहे कुछ कर भी दे पर अपने सच्चे हितैषी की सहायता न बन पड़ेगी।[२]" इन कार्यों मे जैसे-तैसे मिश्र जी ने हिन्दी पत्र, गोशाला ओर नाट्यसभा स्थापित कर ली थी। इसके अतिरिक्त मिश्र जी अनेक सभा-समितियो की स्थापना कराते और उनमे सहयोग देते थे। सन् १८७९ ई० मे कानपुर मे आर्य समाज की स्थापना हुई, इसमें इन्होंने बड़ा कार्य किया और यह इसके प्रथम सदस्य हुए।[३] आर्य समाज के धर्म प्रचार और शुद्धी-कार्य स मिश्र जी बहुत प्रसन्न थे, लेकिन वह उसके मूर्ति खण्डन को अच्छा नही समझते थे। वे लिखते हे—"यदि समाजस्थ सज्जन मतमतान्तरंकी निन्दा, स्तुति के बदले केवल "सत्य ब्रूयात् प्रिय ब्रूयात' के उपदेश किया करें तो सोने मे सुगन्ध हो जाय।"[४] ३ फरवरी १८८४ ई० मे 'स्वदेश हितवर्धिनी सभा' का आयोजन हुआ इसमे प्रतापनारायण जी ने बडा सुन्दर भाषण दिया और उसके कार्यो की प्रशसा की।[५] इसके बाद जनवरी १९९२ ई० मे (कानपुर मे) 'श्री भारत धर्म महामण्डल' के व्याख्यान हुए। इस व्याख्यान-समारोह मे प्रतापनारायण जी ने कानपुर मे भी 'श्री भारत धर्म महामण्डल' स्थापित करने का निवेदन किया। मिश्र जी के इस प्रस्ताव

---

१. 'ब्राह्मण' खण्ड २ संख्या ३ ('टेढ़ जानि शंका सबका हूं')
२. 'ब्राह्मण' खण्ड ४ संख्या ५
३. 'रामराज्य' (कानपुर) ८ अक्तूबर १९५६ ई० 'पं० प्रतापनारायण मिश्र एक ऐतिहासिक विश्लेषण', लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी
४. 'ब्राह्मण' खण्ड २ संख्या ८ 'कानपुर' : प्रतापनारायण मिश्र
५. 'ब्राह्मण' खण्ड १ संख्या १२ 'कानपुर' : प्रतापनारायण मिश्र

को भी ने अनुमोदन किया और ३१ जनवरी १८९२ ई० को कानपुर 'श्री भारत धर्म महामण्डल' स्थापित हो गया।[१] मिश्र जी कार्य सभी संस्थाओ मे करते थे पर किसी एक संस्था के होकर नही रहते थे। एक बार इन्होंने कानपुर मे सनातन धर्म के प्रचारक पं० दीन दयाल शर्मा 'व्याख्यान वाचस्पति' को बुलाकर एक सभा कराई जिसके परिणाम स्वरूप कानपुर मे 'सनातन धर्म सभा' की स्थापना हुई। प० दीन-दयाल शर्मा ने नव-स्थापित 'सनातन धर्म सभा' का भार मिश्र जी के कधो पर रखना चाहा। इस पर मिश्र जी ने तत्क्षण उत्तर दिया—"हम नही इस लीला मे फसते।"[२] इसका तात्पर्य यह कि मिश्र जी सभी देश-हितैषी संस्थाओ के पोषक थे।

कानपुर सन् १८९१ में प्रतापनारायण मिश्र और उनके मित्रो के प्रत्यक्ष से एक और साहित्यिक सभा स्थापित हुई जिसका नाम 'रसिक समाज' रखा गया। इसका उद्देश्य केवल भाषा का प्रचार और साधु रीति से सभासदो का चित्त प्रसन्न रखना था। इस समाज की ओर से 'रसिक वाटिका' नाम की एक त्रैमासिक पत्रिका भी प्रकाशित होती थी।[३] जिसमे मिश्र जी की अनेक कवितायें प्रकाशित हुई थी। मिश्र जी ने गोरक्षा के हेतु—कानपुर तथा अन्य स्थानो मे सभायें स्थापित की थीं, गोरक्षा पर मिश्र जी का कार्य बड़ा ही स्तुत्य है। इसके प्रचार के लिए मिश्र जी बाहर भी जाते थे और भिन्न-भिन्न सभाओ मे व्याख्यान देते थे। गोरक्षा पर मिश्र जी ने बहुत सी हृदय-स्पर्शी कवितायें और लेख लिखे। गोवध से मिश्र जी के हृदय मे विद्रोह की अग्नि धधक उठी थी। वे लिखते है—

> 'अतिशय निबल निबोल पर, छुरी चलावत हाय।
> क्यों फिर जग धरमिष्ट बनि, दया दया चिल्लाय।"[४]

मिश्र जी किसी मत के विरोधी नही थे। मूर्तिपूजा पर भी उन्हे पूर्ण आस्था थी। वे कहते हैं—"जिस देश मे शिल्प विद्या का प्रचार और जहा लोगो के जी मे स्नेह एव सहृदयता का उदगार होगा वहां मूर्तिपूजा किसी के हटाये नही हट सकती।"[५] सन् १८८३ मे मौरिस साहब (जज्ज) की आज्ञा से—शपथ दिलाने के लिए—शालिग्राम की मूर्ति कचहरी मे लाई गई। इस मूर्ति के लाने मे ब्राह्मणो की भी सम्मति थी। मिश्र जी को यह बात बहुत बुरी लगी। उन्होने 'ब्राह्मण' मे एक लेख निकाला और उसमे देश-वासियो को खूब धिक्कारा। उसकी कुछ पक्तिया इस

---

१. 'ब्राह्मण' खण्ड ८ संख्या ८ 'असर इसको कहते हैं' : प्रतापनारायण मिश्र
२. सं० प्रेमनारायण टंडन-'साहित्यिकों के संस्मरण' (१९४३ ई०)-पृष्ठ ७
३ 'ब्रह्मण' खण्ड ८ संख्या २-३ 'रसिक समाज'-प्रतापनारायण मिश्र
४ सं० नारायण प्रसाद अरोड़ा—'प्रताप लहरी' (१८९० ई०) पृष्ट २४
५. 'प्रतापनारायण मिश्र' 'शैव सर्वस्व' (१८९०) उपक्रम से

प्रकार है—"जिनकी पूजा बडी पवित्रता के साथ स्नान करके की जाती है, उन्हीं को ईसाई, मुसलमानो के बीच एक ऐसे ठौर पर ले जाना जहा कि पवित्रता केवल भगी के झाड़ू मे होती है, हिन्दू-धर्म के विरुद्ध तो हम कैसे कहे कि नही है पर हा ऐसी व्यवस्था देना कलजुगहा पडितो के धर्म के धर्म विरुद्ध तो नही है ।"[1] देवमदिरो के प्रति भी इन्हे बडी ममता थी । काशी के राममदिर तोडने के प्रस्ताव को सुनकर उन्होने लिखा—"अब तुम्हारे देवमदिर टूटने के लिए बिकने लगे । यदि अब की उपेक्षा करोगे तो कल को, परमेश्वर न करे, विश्वनाथ और जगन्नाथ बद्रीनाथ के मदिर भी कोई किसी सड़क अथवा आफिस के लिए मोल लेके साफ कर दिये जायेंगे । इससे चाहिये कि धर्म रक्षा के लिए उन्मत्त हो जाओ और नगर-नगर मे बडी से बडी सभाये करके गर्वनमेट को अपना दु.ख प्रकाश करो ।[2]"

मिश्र जी के समय मे ईसाइयो के प्रचार का बडा जोर था । कानपुर के प्रमुख चौरस्तो पर अधिकतर ईसाइयों के उपदेश हुआ करते थे । ये लोग अशिक्षित जनता को अपने धर्म की अच्छाइया बताकर बहकाया करते थे और हिन्दू-धर्म को गलत ढग से-निकृष्ट सिद्ध करते थे जिससे कुछ जनता इनकी अनुगामिनी होती जा रही थी । मिश्र जी भी कभी-कभी जाकर श्रोताओं मे खडे हो जाते थे और उपयुक्त प्रसग आते ही उनसे उलझ जाते थे । मिश्रजी मे ऐसी तार्किक शक्ति थी कि फिर ईसाइयो को भगते देर न लगती थी । एक बार एक ईसाई पादरी चौक मे खडे एक ग्रामीण भाई को समझा रहे थे कि रामायण खरीद कर क्या करोगे ? उसमे ईश्वर और मुक्ति का रास्ता कहा है ? इतने मे मदनचन्द्र खन्ना उधर से निकल पडे और पादरी साहब से उलझ गये । जब पादरी साहब का किसी तरह बस न चला तो पीछे खडे व्यक्ति (प्रतापनारायण मिश्र) से कहा—'इनको समझा दीजिए कि शास्त्रार्थ और बात है पर लड़कों को धर्म-तत्व समझाना सहज नहीं है ।' इस पर मिश्र जीने बडी नम्रता से कहा—'औषधि की आवश्यकता रोगी ही को होती है । यदि लडको और अज्ञानियो ही को न समझाइएगा तो किसे समझाइएगा ? आपका काम ही यह है ।' इसके उत्तर मे पादरी साहब अग्रेजी बोल चले । तब मिश्र जी ने कहा—'हिन्दी मे ही कहिए, नही तो यह सब जो खडे है न समझेगे ।' अब उन्हे और भी उलझन पडी । फिर बोले—'अच्छा आप इस लडके को लेकर मेरे बगले पर आइए मै बखूबी समझाऊगा ।' मिश्र जी ने कहा—'कृपा करके यहा समझाइए तो इन चालिस-पचास भाइयो का (जो धीरे-धीरे एकत्रित हो गये हैं) और उपकार हो । वहा हमी तीन जन होंगे ।' जब पादरी

---

१. 'ब्राह्मण' खण्ड १, संख्या ७, (शालिग्राम जी का कचहरी में आना ठीक है कि नहीं ?)

२. 'ब्राह्मण' खण्ड ७, सख्या ८, (देवमन्दिरों के प्रति हमारा कर्त्तव्य)

साहब ने देखा किसी तरह बस नहीं चलता तो बोले—'बाबा, मिहरबानी करो, अब जाने दो' और चल दिये।[१]

ऐसे ही एक पादरी साहब जनरल गज मे मिश्र जी से उलझ गए। वह बोले—'आप गाय को माता कहते है?' मिश्र जी कुछ गम्भीर होकर बोले 'जी हा'। तब पादरी साहब ने कहा—'तो बैल को आप पिता कहेंगे?' मिश्र जी सावधानी से बोले—'जी हा, बेशक।' इस पर पादरी साहब मुस्करा कर बोले—'हमने तो एक दिन अपनी आख से एक बैल को मैला खाते देखा था।' इस पर मिश्र जी शीघ्रता मे बोले—'अजी साहब; वह बैल ईसाई हो गया होगा। हिन्दू समाज मे ऐसे भी बैल होते है।' पादरी साहब चुप हो गये। सुनने वाले लोग खूब हँसे।[२]

कभी-कभी मिश्र जी अपनी वाक्शक्ति द्वारा गलत बात भी सिद्ध कर देते थे। एक ईसाई ने मिश्र जी से पूछा कि 'आप कौन-सा शास्त्र मानते है?' उन्होने उत्तर दिया—मै तो कोकशास्त्र मानता हू। इसी के अनुसार हम सबकी सृष्टि होती है। हम लोग ईसामसीह की तरह कोकशास्त्र के विरुद्ध पैदा होने वाले नहीं है।' तब ईसाई साहब ने कुछ बहस की। इस पर मिश्र जी ने बहुत से सामान्य धर्म, कर्म कोकशास्त्र के अन्दर ही कह सुनाये। यह सब सुनकर पादरी साहब बहुत छके।[३] इस प्रकार मिश्र जी की पादरियो से जब-तब बहस हो जाया करती थी। पादरियो के छल से जनता को सतर्क रखने के लिए ही मिश्र जी उनके पीछे पडते थे। उनका कहना था कि 'छोटे-छोटे कोमल प्रकृति वाले नासमझ बालको को बचाना हम हिन्दू, मुसलमानो का परम कर्त्तव्य है। उन्हे, परमेश्वर न करे, पादरियो की चिकनी चुपडी बाते असर कर जाए तो हमारी नई-पौध निकम्मी हो जायगी।'[४]

मिश्र जी का धर्म बडा व्यापक था। वह सभी को उसमे स्थान देते थे। हिंदू और मुसलमान मे जातिगत कोई भेद नहीं मानते थे। एक बार एक मिया जी ने इनसे कहा—'क्या आप हमको अपने धर्म मे ले सकते है?' इन्होने कहा—'धर्म मे लेने वाले हम कौन? धर्म तो परमेश्वर का है उसकी कृपा से आप इस पवित्र धर्म की महिमा जान लेगे तो आपसे आप इसे मानने लगेगे। हा, हम अपने समूह मे प्रायश्चित कराके आपको मिला सकते है।' इस पर मिया जी ने कहा—'फिर आप हमारे साथ

---

१ 'ब्राह्मण' खण्ड ४, संख्या ६, 'पादरी साहब का व्यर्थ यत्न': प्रतापनारायण मिश्र।

२ 'निबन्ध-नवनीत' पहिला भाग (१९१९ ई०) पृष्ठ २१

३ 'सरस्वती' मार्च १९०६ ई० 'पं० प्रतापनारायण मिश्र': आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी।

३. 'ब्राह्मण' खण्ड ४, संख्या १२, 'दबी हुई आग', : प्रतापनारायण मिश्र

खाने-पीने वगैरह का परहेज तो न करेंगे ?' तब मिश्र जी ने कहा—'आप सच्चे आर्य हुआ चाहते है या नकली ? किसी असली हिंदू से पूछिए तो क्या वह दूसरे हिन्दू के साथ खाता फिरता है ? जब आप आर्य हो गये तो क्यो कर अपना समाज नियम तोड डालेंगे ? आपकी इच्छा ही किसी का छुवा खाने की न होगी।'[१]

मिश्र जी ने देशोद्धार के निमित्त अपने जीवन मे कई यात्रायें की। राजनीतिक या काग्रेस के कार्य से मद्रास, इलाहाबाद, बम्बई, कलकत्ता की, साहित्यिक कार्य से कालाकाकर तथा कई बार बाकीपुर की और सामाजिक कार्य से दिल्ली, बाकीपुर और कन्नौज की यात्रा की। सामाजिक यात्राओ का मुख्य कारण गोरक्षा प्रचार था। कन्नौज की यात्रा मिश्र जी ने स्वामी भास्करानन्द के साथ 'गोरक्षणी सभा' मे सम्मिलित होने के लिए की थी। इस सभा मे मिश्र जी का बडा सफल भाषण हुआ जिसका जनता पर बडा गहरा प्रभाव पडा।[२]

मिश्र जी अपने युग के जागरूक द्रष्टा थे। प्रत्येक स्थिति के चित्र हमे उनके साहित्य मे देखने को मिलते है। देशवासी जब बार-बार उपदेश देने पर भी न ध्यान देते और बराबर पतन ही की ओर अग्रसर होते जाते तो मिश्र जी खीझ उठते और अपने ही को कोसने लगते थे, साथ ही ईश्वर मे शिकायत करते कि 'खुशामदी टट्टू क्यो न बनाया कि किसी समर्थ पुरुष को ठाकुर-सुहाती बातों मे लगाते और योग्यता के न होने पर भी बड़े-बड़े खिताब पाते। बाबा लम्पटदास का चेला क्यो न बनाया कि मनमानी मौज करते तिसपर भी साक्षात् देवता कहलाते। कुपढ धनी क्यो न बनाया कि दिवाली का खिलौना बने बैठे गप्पे हाका करते, देश की चिन्ता मे व्यर्थ अपना लहू तो न सुखाते। मिया भाई क्यो न बनाया कि धन, बल, विद्या और समाज सभी बातो मे न्यून होने पर भी सरकार की नजर मे श्रेष्ठ गिने जाते, हिन्दुओ पर भी रोब जमाते, कुढ़ाते और सौ-सौ बहाने से मनमानी अधाधुध मचाते।"[३] इस उदाहरण से देश-दशा तथा मिश्र जी की कर्मठता का सहज ही परिचय मिल जाता है।

व्यक्तित्व :

प्रतापनारायण जी गोरे रग के, इकहरे शरीर वाले दुबले-पतले व्यक्ति थे। इनका कद ठिगना था। रुग्णता के कारण कमजोर इतने अधिक थे कि छाती के नीचे-हड्डिया उभर आने से-गड्ढा हो गया था। इनकी नाक बड़ी, मुँह लम्बा-पतला पर तेजस्वी था। कमजोरी के कारण युवावस्था मे ही कमर झुक गई थी।[४] इनकी चाल

---

१. 'ब्राह्मण' खण्ड ३, संख्या १, 'प्रश्नोत्तर' : प्रतापनारायण मिश्र
२. 'ब्राह्मण' खण्ड ५, संख्या १, ('कन्नौज मे तीन दिन')
३. 'ब्राह्मण' खण्ड ३, संख्या ५, (खुदा से शिकवा हमे किस कदर है क्या कहिए ?)
४. 'सरस्वती' मार्च १९०६ ई०, 'पं० प्रतापनारायण मिश्र' : आचार्य महावीर-प्रसाद द्विवेदी

बडी आकर्षक थी—एक विशेष प्रकार से झूमते हुए चलते थे ।[१] सिर पर बडे-बडे पट्टेदार बाल रखते थे जिनके आगे दोनो तरफ काकुले रहती थी । बालो मे तेल बहुत अधिक छोडते थे जिसके कारण कधो तक तेल चुचुआया करता था ।[२] यह नियमित बालो का बनाव-शृंगार नही करते थे, जब कही बाहर जाना होता था तभी सवारते थे । मूछ और दाढी के बाल भी ये रखाये रहते थे । कभी-कभी सिर पर चौगोशिया टोपी भी लगाते थे । इनकी प्रमुख पोशाक अगरखा और धोती थी । इनका एक चित्र भी अगरखा, धोती और चौगोसिया टोपी मे युक्त मिलता है जो मार्च १९०६ ई० की सरस्वती मे—द्विवेदी जी के लेख के साथ—प्रकाशित हुआ था । मिश्र जी का एक रेशमी अगरखा अभी तक नौघडा (कानपुर) म उनके दत्तक-पुत्र की पत्नी के पास था । स्वदेशी वस्तुओ के अनुयायी और प्रचारक होने के कारण मिश्र जी कभी-कभी खद्दर का लम्बा कुरता और धोती भी पहनते थे ।[३] अचकन भी मिश्र जी जब-कब-कानपुर से बाहर जाने पर-पहनते थे ।

मिश्र जी बडे अलमस्त, मौजी और स्वच्छन्द प्रकृति के थे । उनमे चुलबुलापन, मसखरापन, फक्कडपन और अल्हड़पन कूट-कूट कर भरा था पर इसका अर्थ यह नही कि वह उच्छृखल थे । यह सब उनकी विनोद-प्रियता का कारण था । इसके विपरीत मिश्र जी मे गम्भीरता की कमी न थी । वह विवेकशील, परोपकारी और निश्छल स्वभाव के व्यक्ति थे । किसी दोष को छिपाना वह बुरा समझते थे । उनके मनमे जो कुछ आता उसे स्पष्ट कह जाते थे । मिश्र जी ग्रथो और विद्वता के पीछे पड़ने वाले नहीं थे । वह आत्मबल पर विश्वास करते थे । यही कारण है कि वह किसी कार्य के करने मे पीछे न रहते थे । साथ ही जो कार्य प्रारम्भ करते थे उसे तन-मन-धन से पूरा भी करते थे । सादगी मिश्र जी को विशेष प्रिय थी, देहातीपन मे उन्हे बडा आनन्द आता था । अपने मित्रो से अधिकतर वह बैसवाडी मे ही बातचीत करते थे । एक बार मिश्र जी बाकीपुर (पटना) गये । वहा बाबू रामदीनसिंह के आदमी इन्हे स्टेशन पर लेने आये । उस समय मिश्र जी बडे साधारण वेश मे थे । वह हाथ मे एक कमरी और लोटा लिये थे । बाबू रामदीनसिह के आदमी इन्हे पहचान न सके । बडी परेशानी से वह मिश्र जी को—गाडी मे—इधर-उधर ढूढ रहे थे और मिश्र जी यह सब तमाशा देख रहे थे । जब वे लोग काफी परेशान हो गये तब प्रतापनारायण जी ने पूछा—'आप किसे ढूढ़ रहे है ?' उन्होने बताया—'कानपुर के प्रतापनारायण मिश्र को ।' मिश्र जी ने कहा—'यहै कम्पू का परतपवा आय ।' फिर सब लोग इन्हे

---

१. 'सरस्वती', जून १९३८ ई० स्व० पं० प्रतापनारायण मिश्र : गोपालराम गहमरी
२. 'सरस्वती', जून १९३८ ई० 'स्व० पं० प्रतापनारायण मिश्र : गोपालराम गहमरी
३. 'सरस्वती', जून १९३८ ई० 'स्व० पं० प्रतापनारायण मिश्र : गोपालराम गहमरी

सत्कार के साथ ले गये। मिश्र जी स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग के पक्षपाती थे। उनका कहना था—

> "छोड़ि नागरी सुगुन आगरी उर्दू के रंग राते।
> देशी वस्तु बिहाय विदेसिन सो सर्वस्व ठगाते॥
> मूरख हिंदू कस न लहै दुख जिन कर यह ढंग दीठा।
> घर की खांड़ खुरखुरी लागै, चोरी का गुड़ मीठा॥[१]"

विनोदप्रिय होते हुए भी मिश्र जी बडे क्रोधी थे। कभी-कभी थोडी-थोड़ी बात पर बिगड जाते थे और चिढ़कर खूब सुनाते थे। इसके साथ ही मिश्र जी बडे सयम-हीन, अनियमित तथा आलसी थे। इसी से ये सदैव बीमार बने रहते थे। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी लिखते है—"मिश्र जी अव्वल नम्बर के काहिल थे। उठने-बैठने की जगह भी कूड़ा का ढेर लगा रहता था। अखबार, चिट्ठिया, कागज बिखरे पडे रहते थे। उनके यहा आने-जाने वाले उनके मित्र अगर उन्हे उठाकर जगह को साफ कर देते थे तो कर देते थे। खुद प्रतापनारायण ने शायद ही कभी इनको उठाकर यथास्थान रक्खा हो। लोगो की चिट्ठियों का उत्तर तक वे बहुधा नही देते थे। पं० दुर्गाप्रसाद मिश्र को इन्होने एक चिटठी लिखी थी। उसे 'खंगविलास प्रेस' ने छापकर प्रकाशित किया है। उसमे एक जगह, चिट्ठियो का उत्तर न देने के विषय मे आप लिखते है—'को सारेन की खैहसि मा परै।'"[२] अस्वस्थता के कारण मिश्र जी लिखते बहुत कम थे। उनका यह नियम था कि जब कोई उनके पास आ जाता, तो चट उसे कागज कलम दे देते और उस समय जो विषय उनके ध्यान मे आ जाता उसे लिखाना प्रारम्भ कर देते।[३] वे प्राय: लेटे ही लेटे पढते थे, बैठ कर लिखने-पढने की शक्ति उनमे कम थी। उनके अक्षर एक विशेष सूरत-शक्ल के होते थे। लेटे-लेटे लिखने के कारण पक्तिया सीधी नही होती थी और टेढी भी यहां तक होती थी कि दो-दो, ढाई-ढाई अगुल का अन्तर पड जाता था, फिर उनके नीचे टेढी पक्तिया ही लिखे चले जाते थे। उर्दू-हिन्दी मे ऐसा अधिक होता था अंग्रेजी मे कम[४]। जब मिश्र जी बैठकर लिखते तो कभी-कभी पक्तिया बडी घनी और अक्षर बडे छोटे-छोटे तथा सुन्दर होते थे। एक बार इन्हने बाबू बालमुकुन्द गुप्त को एक पोस्टकार्ड लिखा जो वर्तमान कार्ड से छोटा था और एक ही ओर लिखा गया था फिर भी उसमे लिखा मजमून आधे

---

१. प्रतापनारायण मिश्र: लोकोक्ति शतक (१८०६ ई०) पृष्ठ ५
२ निबन्ध-नवनीत, पहिला भाग (१९१९ ई०) पृष्ठ १५
३. सं० प्रेमनारायण टण्डन: साहित्यिकों के संस्मरण (१९४३ ई०), पृष्ठ ९ 'पं० प्रतापनारायण मिश्र'—रमाकान्त त्रिपाठी।
४. 'बालमुकुन्द गुप्त निबन्धावली' प्रथम भाग (२००७ वि) पृष्ठ १३-१४

पृष्ठ में अधिक था । यह कार्ड बडे छोटे अक्षरो और घनी पक्तियों मे लिखा गया था । किन्तु यह उनकी मौज थी सदा इसके पाबन्द भी न थे ।[1] मिश्र जी अपनी कविताओ का सग्रह न करते थे और न पुस्तको को ही उचित ढग से रखते थे । कविताए कागज के टुकडो मे लिखकर इधर उधर डाल देते थे जिन्हे या तो इनके मित्र सग्रहीत कर देते थे या अपने घर उठा ले जाते थे इसी से इनका बहुत-सा साहित्य अनुपलब्ध हो गया है ।

मिश्र जी बडे मस्तमौला थे । बिना इच्छा के कोई काम नही करते थे । अपने मित्रो के खुशामद करने पर भी उनके घर न जाते और जब इच्छा होती तो बिना बुलाये ही पहुच जाते और दिन-दिन भर पडे रहते । कहते है ये जिस अग को चाहते थे उसे यथेष्ट हिलाते या फरकाते थे । ऐसा करने मे और अग स्थिर रहते थे तथा सास बन्द करके घटो तक मुर्दा से पडे रहते थे । ये अपने कानो को उगली की तरह हिलाते थे जिससे पास मे बैठे हुए लोगो का मनोरजन हो जाया करता था । इससे किसी-किसी का मत है कि ये योग-विद्या जानते थे,[2] पर मिश्र जी ऐसे असयमित का योग-विद्या जानना असम्भव है । यह सब केवल अभ्यास का परिणाम था ।

प्रतापनारायण जी विलक्षण-प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति थे । अधिक पढे-लिखे न होते हुए भी उन्होने अपनी प्रतिभा के ही बल से जीवन मे अद्वितीय सफलता प्राप्त की । सासारिक अनुभव द्वारा उनका ज्ञान इतना पुष्ट हो गया था कि प्रत्येक विषय का प्रतिपादन वे बड़े सामर्थ्य के साथ करते थे । उन्होने अपनी प्रबल आत्मिक शक्ति द्वारा, अपने और पाठको के बीच ऐसा सीधा और घनिष्ट सम्बन्ध बना लिया था कि उन्हे बाह्य-चमत्कार की कोई आवश्यकता न रह गयी थी । वे सीधे अपने विषय पर आ जाते थे और अपनी प्रतिभा द्वारा छोटे से छोटे विषय को सजीव बना देते थे । कवि के लिए विद्वता से अधिक प्रतिभा की आवश्यकता होती है । आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी लिखते है—"कवि के लिए जिस बात की सबसे अधिक जरूरत होती है, वह प्रतिभा है और इसमे कोई सदेह नही कि प्रतापनारायण मिश्र मे प्रतिभा थी, और थोडी नही, बहुत थी । विद्वता होने से कविता शक्ति मे कोई विशेषता नही आ सकती; उल्टा हानि चाहे उससे कुछ हो जाय ।"[3] मिश्र जी अधिक अध्ययन नही करते थे पर उनमें ऐसी ग्राहिकी शक्ति थी कि कठिन से कठिन विषय को आसानी से समझ लेते थे । यही कारण है कि पिंगल-शास्त्र से कठिन तथा नीरस विषय पर मिश्र जी का पूर्ण अधिकार था । वे खडी बोली के विरोध मे श्रीधर पाठक

---

१. 'बालमुकुन्द गुप्त स्मारक ग्रन्थ' (२००७ वि०) पृष्ठ ५०
२. 'निबन्ध-नवनीत' पहिला भाग (१९१९ ई०) पृष्ठ २२
३. 'निबन्ध-नवनीत' पहिला भाग (१९१९ ई०) पृष्ठ १९

को उत्तर देते हुए लिखते है—"आप 'छन्दपुर्ण' जैसी कोई भी पिंगल-शास्त्र की पुस्तक लेकर बैठ जाइए और उसी 'हिन्दुस्थान' मे प्रत्येक छन्द का उदाहरण खडी बोली मे दीजिए और मैं ब्रज भाषा मे देता हू ।"[1]

मिश्र जी की बुद्धि बडी तीव्र थी । मुशी इन्द्रमणि आर्यसमाजी की फारसी मे लिखी हुई 'तोहफतुल इसलाम' और 'पादाशे इसलाम' पुस्तको के कुछ अशो का इन्होंने हिन्दी मे बडा सुन्दर अनुवाद किया था, जिनको सुनकर मुशी जी ने इनकी बड़ी प्रशंसा की थी ।[2] मिश्र जी बडी जल्दी कविता करते थे । बाबू बालमुकुन्द गुप्त लिखते है—"वह बात करते-करते कविता करते थे, चलते-चलते गीत बना डालते थे। सीधी-सीधी बातो मे दिल्लगी पैदा कर दते थे । तब से कितने ही विद्वानों, पंडितो, कवियो से मेल-जोल हुआ है, बाते हुई हैं और कितनो मे ही उनका-सा एक-आध गुण भी देखने मे आया है पर उतने गुणो मे युक्त, और हिन्दी साहित्य-सेवी देखने मे न आया ।"[3] एक बार एक साधु ने यह पद गाया—

'तजहु मन हरि—विमुखन को संग ।
जिनकी संगति सदा पाय के परत भजन मे भंग ।'

पडित प्रतापनारायण ने उसी समय इस पूरे पद के अर्थ को बिल्कुल ही उलट कर इस तरह गाया—

'तजहु मन हरि-भक्तन को संग ।
जिनकी संगति सदा पाय के होत रंग में भंग ।[4]

इस तरह मिश्र जी समयानुसार बडी जल्दी कविता बना लेते थे। उन्हे आशुकविता की शक्ति प्राप्त थी । इसके अतिरिक्त मिश्र जी की सूझ बडी अनोखी थी । छोटी-छोटी वस्तु भी उनकी दृष्टि से न बचती थी । बहुज्ञता भी उनमें कम न थी अपने समय के प्रत्येक आवश्यक विषय का उन्हे थोडा-न-थोडा ज्ञान था । साथ ही हिन्दी की पुस्तके और अखबार पढने का उन्हे बड़ा शौक था । यहा तक की रद्दी-अखबार और पुस्तके यदि कही पडी मिल जाती तो उन्हे भी उठाकर पढने लगते थे । मिश्र जी का बात करने का ढंग बडा बांका था । बात करते समय सबका ध्यान अपनी ओर खीच लेने की उनमे शक्ति थी ।[5] उनके व्यक्तित्व मे एक अद्भुत आकर्षण था । इसी कारण उन्हे अपने समय में ही अच्छी ख्याति प्राप्त हो गयी थी । उनके

---

१. 'हिन्दुस्थान' २१ मार्च १८८८ ई०
२ 'बालमुकुन्द गुप्त-निबन्धावली' प्रथम भाग, २००७ वि०, पृष्ठ १३
३. 'बालमुकुन्द गुप्त-निबंधावली' प्रथम भाग, २००७ वि०, पृष्ठ २
४. निबन्ध-नवीत' पहिला भाग (१९१९ ई०) पृष्ठ २०
५. 'बालमुकुन्द गुप्त-निबन्धावली' प्रथम भाग (२००७ वि०) पृष्ठ १०

हास्य और व्यग्य से युक्त लेख और कवितायें लोग बडे चाव से पढते थे। कहना न होगा कि प्रतापनारायण के बराबर प्रतिभा सम्पन्न लेखक उस युग मे दूसरा न था।

इन उपर्युक्त विशेषताओ के अतिरिक्त और कई प्रमुख विशेषतायें मिश्र जी मे थी जिनका उल्लेख करना उनके व्यक्तित्व को भली प्रकार समझने के लिए आवश्यक है। वे इस प्रकार है—

स्वाभिमानी

मिश्र जी बडे स्वाभिमानी थे। निर्धनता के कारण, अनेक कष्टो को सहते हुए अपने 'ब्राह्मण' को निकालते रहे पर किसी धनाढ्य के आगे हाथ नही फैलाया। उनका कहना था—'हम वास्तव मे न विद्वान है, न धनवान, न बलवान; पर हमारा सिद्धान्त है कि अपने जीवन को तुच्छ न समझना चाहिए, क्योंकि इसका बनाने वाला सर्व-शक्तिमान् सर्वोपरि परमात्मा है।'[१] एक बार बैजेगाँव के राजा शम्भुनाथ मिश्र कानपुर आये और उन्होने प० प्रतापनारायण मिश्र को अपने निवास स्थान (जहां वह ठहरे थे) पर बुलवाया। जो व्यक्ति राजा की आज्ञा से मिश्र जी को बुलाने आया था उससे मिश्र जी ने बैसवाडी मे कहा— 'हमका बोलाएनि है तो हम तो चाहे चली मुलो हम जब उनका बोलइबे तो का उइ हमरे हिया अइहैं। तो हम अइसेन के हिया नही जाइत जो हमरे हिया नही आ सकित।'[१] मिश्र जी मे देश, जाति, भाषा और जाति धर्म के लिए स्वाभिमान तथा जोश था। वे बडे उत्साह से इनकी सेवा करते थे और कहते थे —'सब कुछ खो जाय तो कुछ परवाह नही पर निजता (अपनापन) मत खोओ। जैसे किसी को मर्म भेदी वाक्य कहना अपने लिए हानिकारक है वैसे ही ऐसी बातो का सहना भी नपुसकता का अग है।'[२] कही-कही मिश्र जी अपनी अत्यधिक स्वाभिमानी प्रवृत्ति के कारण आत्म-प्रशसा की कोटि तक पहुच जाते है। 'सगीत शाकुन्तल' के सूत्रधार का यह कथन बहुत-कुछ ऐसा ही है—

'कौसिक कुल अवतंस श्री संकठादीन।
जिन निज बुधि, विद्या, विभव वंस प्रसंसित कीन॥
तासु तनय परताप हरि परम रसिक बुधराज।
सुघर रूप सत कवित बिन जिहि न रुचत कछु काज॥
प्रेम परायन सुजन प्रिय सहृदय नव रस सिद्ध।
निजता निज भाषा विषय अभिमानी परसिद्ध॥

---

१. 'प्रतापनारायण ग्रन्थावली' प्रथम खण्ड (२०१४ वि०) पृष्ठ ७१३
२. 'ब्राह्मण खण्ड ३ संख्या ५, (अखण्डनीय सिद्धान्त')

श्री मुख जासु सराहना कीन्हीं श्री हरिश्चन्द ।
तासु कलम करतूति लखि लहै न को आनंद ।।'[१]

इस कथन को देखकर आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी लिखते है—'प० प्रतापनारायण ने मतलब से कुछ ज्यादा अपनी तारीफ कर डाली है। 'अपने को 'पडितवर' लिखा है। 'परम रसिक', सहृदय' और नवरस सिद्ध इत्यादि विशेषण तो ठीक ही है। पर 'सुघर रूप' मे विलक्षणता है।'[२] द्विवेदी जी के इस कथन का उत्तर देते हुए सन् १९०६ के 'भारत-मित्र' मे 'आत्मारामीय टिप्पण' के अन्तर्गत बाबू बालमुकुन्द गुप्त लिखते है— 'जरा गुबार दूर करके एक बार प्रताप की कविता पर फिर ध्यान दीजिए। देखिए वह अपने रूप की प्रशसा नही करता है। वह कहता है- 'उसका बेटा प्रताप हरि परम रसिक बुधराज है। जिसे सुघर रूप और मन कविता के बिना कोई काम नही रुचता।'[३] ऐसे ही एक स्थान पर मिश्र जी लिखते है—'बाज-बाज लोग हमे श्री हरिश्चन्द्र का स्मारक समझते है। बाजो का ख्याल है कि उनके बाद उनका-सा रग-ढग कुछ इसी मे है। हमको स्वय इस बात का घमड है कि जि मदिरा का पूर्ण कुम्भ उनके अधिकार मे था उसी का एक प्याला हमे भी दिया गया है और उसी के प्रभाव से बहुतेरे हमारे दर्शन की, देवताओ के दर्शन की भाति, इच्छा करते है।'[४] वैसे मिश्र जी के उपरोक्त दोनो कथन अतिशयोक्ति पूर्ण न होकर वास्तविक है। उनके समय मे उनकी इतनी प्रसिद्धि थी कि लोग उन्हे 'कविकुल मुकुटमणि,' 'पडितवर' हिन्दी भाषा भूषण' 'प्रतिभारतेन्दु,' 'रसिक राज,' 'भाषाचार्य, आदि[५] विशेषणो से विभूषित करते थे। अब प्रश्न यह है कि उन्होने अपने मुख से अपनी प्रशंसा क्यो की ? इसका कारण यह है कि उस समय हिन्दी के पारखी बहुत कम थे। वह हिन्दी का प्रचार काल था। इसलिए अपने कथनो को बलिष्ट और प्रभावपूर्ण बनाने के लिए मिश्र जी ऐसा करते थे। और मिश्र जी ही नही उस काल के अनेक लेखक यही करते थे, जिससे जनता अधिक सावधानी से उनके कथनो को हृदयगम करे। अत' मिश्र जी स्वाभिमानी अवश्य थे पर अभिमानी नही थे।

स्पष्टवादी

मिश्र जी बडे निस्सकोची थे, गलत बात को मुह पर कहते थे लगी-लिपटी बातें करना उन्हे पसन्द न था। खुशामद से वे कोसो दूर थे। अनैतिक पुरुष तथा संस्था

१. 'प्रतापनारायण मिश्र : संगीत शाकुन्तल' (१९०८ ई०) पृष्ठ ३
२. 'निबन्ध नवनीत' पहिला भाग (१९१९ ई०) पृष्ठ १२-१३
३. 'बालमुकुन्द गुप्त—निबन्धावली' प्रथम भाग, (२००७ वि०), पृष्ठ ४९४
४. 'प्रतापनारायण ग्रन्थावली' प्रथम खण्ड, (२०१४ वि०), पृष्ठ ७१३-१४
५. 'प्रतापनारायण ग्रन्थावली' प्रथम खण्ड, (२०१४ वि०), पृष्ठ ७१४-१५

का वे प्रबल विरोध करते थे चाहे उसके परिणाम मे उन्हे हानि भले उठानी पडे। वे बडे स्वतंत्र और छल-कपट से दूर थे। गलत बात का वे कभी समर्थन न करते थे। इसी से बचपन मे उन्हे मिशन स्कूल छोडना पडा था। वहा एक पादरी साहब शिक्षक थे। हिन्दू धर्म के विरुद्ध उन्होने कुछ बातें कही, जिनको सुनकर अन्य विद्यार्थी तो चुप रहे पर मिश्र जी से न रहा गया और उन्हे मुह तोड जवाब देकर वे अपने घर वापस चले आये।[1] मिश्र जी बडे निडर थे। किसी के दोषो की बुराई करने में वे कभी न डरते थे।। जनता पर टैक्सों आदि के बढाये जाने पर सरकार की बडी कटु आलोचना करते थे। ढोगी पडितो, कनौजियो और बनावटी देश भक्तो की वे खूब खबर लेते थे। कनौजियो की भर्त्सना करते हुए वे लिखते है—

'करुणानिधि पद विमुख देव देवी बहु मानत।
कन्या अरु कामिन सराप लहि, पाप न जानत।।
केवल दायज लेत और उद्योग न भावत।
कर बकरा भच्छन निज पेटहि कबर बनावत।।
का खा गा घा हू बिन पढे, तिरवेदी पदवी धरन।
कलह प्रिय जयति कनौजिया, भारत कहं गारत करन।।[2]

इस उद्धरण मे मिश्र जी का स्पष्टवादी रूप प्रत्यक्ष दिखाई पडता है।

सहृदय

मिश्र जी बडे कोमल और दयालु हृदय के थे। भारतवासियो की करुण-चीत्कार सुनकर उनका हृदय दहल उठता था और वे उनके कल्याण की ईश्वर से प्रार्थना करने लगते थे—

'विधवा बिलपै, नित धेनु कटै, कोउ लागत हाय गुहार नही।
पट, भूषण बेंचि भरै कर को, तबहू लखिए बयपार नहीं।।
महगी दुरभिक्ष, कुरोगन ते भर पेट जुहात अहार नहीं।
निजला, इकला, बल बुद्धि नहीं, तिहि ऊपर हाथ हथ्यार नही।।
सबही बिधि दीन मलीन महा, निशि बासर चिन्त-चिता जरिए।
हम आरत भारत बासिन पै अब दीनदयाल दया करिए।।[3]

मिश्र जी मे अपने देशवासियो के प्रति बड़ा अपनत्व था। वे सभी को एकता के सूत्र मे बाधना चाहते थे। हिन्दू और मुसलमान मे कोई विभेद नही समझते थे।

---

१. 'स० प्रेम नारायण टंडन : प्रताप-समीक्षा (१९३९ ई०) 'स्वभाव और चरित्र से

२. सं० प्रेम नारायण प्रसाद अरोड़ा : प्रताप लहरी' (१९४९ई०) पृष्ठ ४४

३. सं० नारायण प्रसाद अरोड़ा : 'प्रताप लहरी' (१९४९ ई०) पृष्ठ १००

"हम और मुसलमान दोनों भारतमाता ही के संतान हैं । संतान भी ऐसे कि हमारे बिना उनका निर्वाह नहीं उनके बिना हमारा बचाव नहीं ।"[१] पर जब मुसलमान देशद्रोही होकर, हिन्दू धर्म पर कुठाराघात करने लगते थे तो मिश्र जी उनके विरुद्ध हो जाते थे और उन्हे खूब सुनाते थे । मिश्र जी देश-हितैषियो की मुक्त-कण्ठ से प्रशसा करते और उनकी विरदावली गाते थे । मिश्र जी देश की नि स्वार्थ सेवा करते थे । वे किसी प्रलोभन के वशीभूत नही थे । इसके अतिरिक्त उनका अपने शिष्यो पर भी बडा स्नेह था । वे अपने शिष्यों के बडे हित-चिन्तक थे । १८९३ ई० में बाबू बाल-मुकुन्द गुप्त जब 'हिन्दी-बंगवासी' के सहकारी सम्पादक होकर कलकत्ता जा रहे थे[२] तब मिश्र जी ने उनसे कहा कि हमारा शिष्य प्रभुदयाल भी वहां है, उसका ध्यान रखना ।[३] मिश्र जी बड़े परोपकारी थे, उन्होंने अपना पूरा जीवन परोपकार में ही बिताया । वे कभी अपनी और अपने परिवार की चिन्ता न करते थे । उनके लिए सम्पूर्ण देश ही उनका परिवार था ।

सत्यव्रती

प्रतापनारायण जी बडे सत्यभाषी थे । वे कभी भूलकर असत्य नही बोलते थे और सदा अपनी बात पर अटल रहते थे । वे सत्य को पकड कर चलने वाले अडिग पुरुष थे । एक बार कालाकाकर के जगल में प्रतापनारायण मिश्र और गोपाल-राम गहमरी साथ-साथ घूम रहे थे । एकाएक मिश्र जी ने गमहरी जी से कहा—"बच्चा मेरे पास एक अनमोल वस्तु है । जिसे मैंने बेदाम लिया है, लेकिन उसकी तुलना मे ससार की दौलत भी पलडे पर रखी जाय तो वह हल्की होगी । उसका हम भी बेदाम देने को तैयार है, लेकिन कोई लेने वाला नही मिलता ।" गोपालराम ने आश्चर्य से पूछा—"वह कौन चीज है पण्डित जी ? जरा मुझे तो नाम बतलाइए ।" मिश्र जी ने कहा—"यो नाम जानकर क्या करोगे ? तुम लेते हो तो मै अलबत्ते देने को तैयार हूँ ।" गमहरी जी ने कहा—"इतना महान पदार्थ जिसकी तुलना मे दुनिया भर की सम्पत्ति हल्की है, मैं भला कही पा सकता हूँ ।" मिश्र जी बोले "नही, वह कोई भारी या नायाब चीज नही है, जिसके बोझ से तुम पिस जाओगे । वह संसार मे अतुलनीत और अनमोल होने पर भी ऐसी है कि जो सब चाहें ले लें । उसमें कुछ दाम नही लगेगा, न कुछ बोझ ही उठाना पडेगा ।" गमहरी जी कुछ समझ न सके उन्होंने आश्चर्य से कहा—"अगर मेरे साध्य का हो मैं संभाल सकता हूँ, तो ऐसा अनमोल पदार्थ लेने को तैयार हूँ ।" मिश्र जी ने भूत झाडने वाले ओझाओं

---

२. 'ब्राह्मण' खण्ड ३, संख्या ७, 'मोहर्रम से खुदा बचाये : प्रतापनारायण मिश्र

३. 'बालमुकुन्द गुप्त —स्मारक-ग्रंथ' (२००७ वि०) पृष्ठ ६८

४. 'बालमुकुन्द गुप्त—निबन्धावली' (प्रथम भाग, (२००७ वि०) पृष्ठ २८

की तरह हुंकड कर कहा—"ले बच्चा। वह 'सत्य भाषण' है।" गमहरी जी आवाक रह गये, फिर थोडी देर मे बोले—"पण्डित जी ! है तो यह जरूर अनमोल और जगत मे इसकी तुलना मे कुछ भी नही है, लेकिन बहुत ही कठिन नही, बल्कि असाध्य भी है।" मिश्र जी बोले—"नही बच्चा !" यह असाध्य नहीं और कष्ट साध्य भी नही। तुम चाहो तो बड़ी सुगमता से इसे सिद्ध कर लोगे।" गमहरी जी ने कहा—"पण्डित जी ! रात-दिन मैं झूठ बोला करता हूँ। यहाँ तक कि बेजरूरत झूठ बोलने की बान सी पड गई है। जिसका झूठ ही ओढन-डासन और चबेना है वह कैसे 'सत्य भाषण' कर सकता है ?" मिश्र जी ने उसी दम कहा—"इसका रास्ता तो मैं बताये देता हूँ। तुम आज से ही सच बोलने की मन मे ठान लो और जब मुँह से इच्छा या अनिच्छा से झूठ बोल जाव तब यह याददाश्त के लिए लिख लिया करो मुझे सध्या को बतला दिया करो कि आज इतना झूठ बोले। बस इसके सिवा और कुछ भी उपाय दरकार नही है।" इसके बाद गहमरी जी ने ऐसा ही किया और महीने भर मे उन्हे 'सत्य भाषण' का अभ्यास हो गया। तब से इस विषय मे गमहरी जी उन्हे अपना गुरू मानने लगे थे।[1] प्रताप नारायण जी इतने सत्य परायण थे कि हसी-दिल्लगी में भी कभी झूठ नही बोलते थे।

अहिंसा प्रेमी

मिश्र जी हिंसा के घोर विरोधी थे। मास मछली खाने वालो की बडी निन्दा करते थे। गायों की रक्षा का तो उन्होने व्रत ही लिया था। हिंसावृत्ति के कारण वे मुसलमानों के खिलाफ थे—

'बढ़िके गाइन की रक्षा ते को कहि सके धरम कहुँ आय।
जेहिके करते दुहु लोकन मां कीरति चली जुगाधिन जाय।।
तुरुक तोरैहौ की घर तिरिया राजा नाम धरै पनि क्यार।
मन समझावत कछु ना लागै पै करतूति छुरा के धार।।'[2]

निर्लोभी

मिश्र जी मे लोभ किंचित भी नही था। देश, धर्म की रक्षा के लिए, पैसा खर्च करने मे वह न हिचकिचाते थे। घाटे पर घाटा और अनेक कष्ट सहते हुए वह 'ब्राह्मण' को निकालते थे। उनका कहना था—'सहृदयो और प्रेमियों का आय-व्यय तो सदा ही बराबर हो जाता है। रुपया जोडने के लिए चाहिए - धर्म कर्म, लज्जा प्रतिष्ठा, आमोद, प्रमोद, शील, संकोच सब आले पर रख दिये जॉय। सो प्रेम सिद्धान्ती से हो नही सकता।'[3]

---

१. 'सरस्वती' जून १९३८ ई० 'स्व० पं० प्रतापनारायण मिश्र : गोपालराम गहमरी
२. सं० नारायण प्रसाद अरोड़ा — 'प्रताप लहरी' (१९४९ ई०) पृष्ठ २२० (कानपुर माहात्म्य)
३. 'ब्राह्मण' खण्ड ४ संख्या ११ 'हमारे उत्साह-वर्द्धक' प्रतापनारायण मिश्र

स्वावलम्बी

मिश्र जी बड़े स्वावलम्बी विचारों के थे। वह अपना कार्य स्वतः करने के पक्षपाती थे। देशवासियों को सदा 'स्वावलम्बी बनो' की शिक्षा दिया करते थे। उनका कहना था—

'अपनो काम आपने ही हाथन भल होई।
परदेशिन परधर्मिन ते आशा नहिं कोई॥
धन धरती जिन हरी सुकरिहैं कौन भलाई।
जोगी काके मीत कलंदर केहि के भाई॥'[१]

मिश्र जी हतोत्साह कभी नहीं होते थे। वे कहते थे—'प्रत्येक वस्तु का स्वाभाविक गुण जानने का यत्न करना चाहिए। तदनन्तर उसके अनुकूल उद्योग करते रहना चाहिए। फिर निश्चय कार्य सिद्ध हो ही रहेगा। आज नहीं तो कल, कल नहीं तो परसों, ढचरा चला जाय, तार न टूटने पावे तो उद्योग में परमेश्वर ने कार्य सिद्धि की शक्ति रक्खी है। मनुष्य को हतोत्साह तो कभी होना न चाहिए। जिस बात में मनसा बाचा कर्मणा जुट जाओगे, कर ही के छोड़ोगे।'[२]

प्रेमोपासक

मिश्र जी मतमतांतरों से दूर, प्रेमोपासक थे। मतों को वह देश की उन्नति में बाधक समझते थे—'देशोन्नति का बड़ा भारी बाधक तो मत ही है। जब तक उसका भ्रमजाल लगा है तब तक सुख स्वरूप प्रेमदेव से भेंट कहाँ? किसी मत का अगुवा कब चाहेगा कि मेरे अतिरिक्त दूसरे की बात जमे।'[३] वह शैव, शाक्त, वैष्णव, गाणपत्य और सूर्योपासकों में मेल स्थापित करना चाहते थे। वे कहते थे—'भारत का क्या ही सौभाग्य था यदि यह पाँचों मत एकता धारण करके पंच परमेश्वर बनते।'[४] मिश्र जी को द्वेष किसी मत से न था वे केवल सभी में समन्वय चाहते थे। मूर्ति पूजा के विषय में वे लिखते हैं—'मतमतांतर के झगड़ों को हम कदापि अच्छा नहीं समझते। न हम 'अहम् ब्रह्मास्मि' ही मानते हैं पर प्रतिमाओं से हमारा लाखों ब्राह्मणों का भला होता है। सहस्रों ज्येष्ठ श्रेष्ठ पुरुषों के रूप गुण स्वभाव का स्मरण होता है। अतः प्रतिमा सिद्धि ही वर्तमान देश काल के उपयोगी है।'[५] मिश्र जी का शिव पर कुछ अधिक झुकाव था। इसका पहला कारण, देश की अधिकांश जनता का शैव होना

---

१. प्रतापनारायण मिश्र 'लोकोक्ति शतक' (१८९६ ई०) पृष्ठ २
२. 'ब्राह्मण' खण्ड १ संख्या १२ ('बेकाम न बैठ कुछ किया कर')
३. 'प्रतापनारायण ग्रंथावली' प्रथम खण्ड (२०१४ वि०) पृष्ठ २९ (देशोन्नति)
४. 'प्रतापनारायण ग्रंथावली' प्रथम खण्ड (२०१४ वि०) पृष्ठ ६२७ 'शैवसर्वस्व'
५. 'ब्राह्मण' खण्ड ५ संख्या ८, पृष्ठ २

था। दूसरे इनके कुल के इष्ट देवता भी शिव थे।[1] पर मिश्र जी पक्के-शैव नही थे क्योकि वे लिखते हैं—'हमारा कोई मत नही है, क्योकि हमारे गुरु श्री हरिश्चन्द्र ने हमे यह सिखलाया है कि मत का अर्थ है नही।'[2] मिश्र जी सभी मतो मे देश हितैषी तत्व ढूढते थे। सनातन धर्म पर उनकी विशेष आस्था थी—'सनातन धर्म में किसी के साथ द्वेष करने की कही शिक्षा ही नही है, विशेपत अपनी ओर मे छेडकर झगडा मोल लेना भारत सन्तान ने आज तक नही सीखा।'[3] पर सनातन धर्म के आडम्बरो के मिश्र जी विरोधी थे। एक बार कानपुर मे रामलीला हुई, उस पर मिश्र जी लिखते हैं—'परेट पर और शुकुल गुरप्रसाद जी के मन्दिर मे रामलीला हुई सैकडो रुपया उड गया पर व्यर्थ, न इह लोकाय न पर लोकाय, यदि इतने रुपये मे कोई नाट्य-समाज स्थापित होता तो मजा भी इससे सौ गुना होता और देशोपकार भी, पर हा मुसलमान आतशबाज और खिलौना मिया का हक कैसे अदा हो।[4] मिश्र जी मत-मतातरो के विभेद को मिटाने के लिए ही 'प्रेमदेव' की उपासना करते थे। उन्होने सभी मतो की जड़ को पकड लिया था जिससे कोई मत उनके बाहर न जा सके। प्रेम को स्पष्ट करते हुए मिश्र जी लिखते है—'प्रेम परमेश्वर का रूप है वह पाप-पुण्य सुख-दुःखादि से लाखो कोस दूर है। . प्रेमलीला शुद्ध चित्त वालो के अनुभव का विषय है न कि मौखिक शास्त्रार्थ का।'[5]

मिश्र जी प्रेमदेव के अनन्य-भक्त थे। वह निश्छल से उनकी उपासना करते थे। उनका कहना था—''सासारिक सम्बन्ध मे अत्यत चतुरता दक्षता एव सावधानता से काम करो परन्तु ईश्वरीय सम्बन्ध मे महा सरल, निरे भोले वरच एक प्रकार पागल होने का उद्योग करो।[6] मिश्र जी प्रेम को ही अपना सर्वस्व समझते थे—

'हमारे सरबसु केवल प्रेम।
सपनेहु नहिं जानै, नहिं मानै लोक वेद के नेम॥
ब्रह्म, जीव, अद्वैत, द्वैत, भी भावत नहिं बकवाद।
बहके कौन पायके प्यारे तव मदिरा को स्वाद॥[7]

१—'ब्राह्मण' खण्ड ५ सख्या ३ 'प्रताप चरित्र' : प्रतापनारायण मिश्र
२—'प्रतापनारायण-ग्रन्थावली' प्रथम खण्ड (२०१४ वि०) पृष्ठ ६३४ (शैवसर्वस्व)
३—'ब्राह्मण' खण्ड ८ संख्या ८ ('असर इसको कहते हैं')
४—'ब्राह्मण' खण्ड १ संख्या ८ ('कानपुर')
५—'ब्राह्मण' खण्ड ६ संख्या ११ ('एक कथा')
६—'ब्राह्मण' खण्ड ३ संख्या ५ ('अखण्डनीय सिद्धांत')
७—सं० नारायणप्रसाद अरोड़ा : 'प्रतापलहरी' (१९४९ ई०) पृ० १०८ 'प्रेम प्रमाद'

प्रेम की व्यापकता और महत्व को स्पष्ट करते हुए मिश्र जी लिखते हैं—"जहा तक सहृदयता से विचारिएगा वहा तक यही सिद्ध होगा कि प्रेम के बिना वेद झगडे की जड, धर्म वे सिर पैर के काम, स्वर्ग शेखचिल्ली का महल और मुक्ति प्रेत की की बहिन है ।'[1] उनका कहना है—'सब दुखो की परमौषधि और सब अभावो का पूर्ण कर्त्ता, सब बातो का शिरोमणि प्रेम है ।'[2] प्रेम मे ही मिश्र जी अरूप ब्रह्म को देखने का सुझाव देते हैं—

'जो कोउ ब्रह्म अरूप कौ देख्यों चहै सरूप ।
नेह नयन सों लेहि लखि, जग के सुंदर रूप ।।'[3]

ससार सभी सम्बन्ध प्रेम से ही है—

'प्रेम बिना नहिं देखेहु भावत,
पूत कपूत जो आतम जात है ।
प्रेम भये निज सर्वसु वारिये,
तापर, जासों न नेकहु जात है ।
ब्रह्म सदा सबही ते परे,
सोऊ प्रेम के नाते सखा पितु मात है ।
'नेह लगा सो सगा' बस सत्य है,
सत्य है, प्रेमहि ते सब बात है ।"[4]

मिश्र जी घोर आस्तिक विचारो के थे, ...'होइहै वहै जो राम रचि राखा' के अनुसार वह सभी कुछ ईश्वराधीन ही मानते थे । 'फक्कड और भंगड' के कथन मे वह कहते है—'अजी नही, खाक में कौन किसे मिलायेगा । होता वही जो जगदीश्वर की इच्छा होती है । वाह-वाह और थुड्-थुडू चाहे जो करा ले कुछ दिन मे देख लेना 'नेकी नेक राह, बदी बद् राह ।'[5]

गुण-ग्राहक

मिश्र जी अपने गुणो से दूसरों को प्रभावित करते थे और दूसरो के गुणों से स्वय प्रभावित भी होते थे । भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के गुणो से ये विशेष प्रभावित थे और उनसे प्रेरणा भी लेते थे । भारतेन्दु की मृत्यु पर मिश्र जी लिखते हे—

१—'प्रतापनारायण ग्रंथावली' प्रथम खण्ड (२०१४ वि०) पृ० ६३२ 'शैव सर्वस्व'
२—'ब्राह्मण' खण्ड ३, संख्या ५ ('अखण्डनीय सिद्धांत')
३—ब्राह्मण' खण्ड ५, सख्या ४, ('प्रेम स्तोत्र')
४—'ब्राह्मण' खण्ड १, संख्या ७, पृष्ठ ८३
५—'ब्राह्मण' खण्ड १, संख्या ९,

"इक-इक तव गुन सुमिरि हाय नित उठत करेजे दाहु।
तुम्हरे संग जिन-जिन बातन मे उपजत रह्यो उछाहु।
अब सब दुखद देखियत जबते छोड़ि गये तुम बाहु।।
सहज बानि कित गई, रही जो सुख दायिनि सब काहु।
अपनो-अपनो आहि कह्यो तुम आज सतायो ताहु।"[१]

एक बार कन्नौज मे स्वामी भास्करानद ने गोरक्षा पर भाषण दिया। उस पर मिश्र जी लिखते है—'स्वामी जी महाराज की भाषण-शक्ति अवश्य ही श्लाघ्य है कि एक प्रकार की जादू कहना चाहिए। इससे अधिक प्रत्यक्ष प्रमाण और क्या होगा कि श्रीमुख के उपदेशो मे समझदार वधिको को भी दया उत्पन्न हो जाती है। हसनू कराई ने गोवध छोड दिया।'[२] मिश्र जी दूसरे लेखको की लिखी सुन्दर पक्तिया भी कण्ठस्थ कर लेते थे। मेरठ निवासी पं० गौरीदत्त जी की निम्न लिखित पक्तिया वह अधिकतर गाया करते थे और प्रसन्नता से हँसा करते थे—

"भजु गोविन्दं हरे हरे, भाई भजु गोविन्दं हरे हरे।
देव नागरी हित कुछ धन दो, दूध न देगा धरे धरे।।[३]

विनोदप्रिय

मिश्र जी बडी विनोदी प्रकृति के थे। फाल्गुन मे इकतारा लेकर वे उपदेश पूर्ण पद हास्य जनक-होली, कबीर, पद आदि गाया करते थे।[४] कभी-कभी मस्ती में आकर-होली मे बडी अश्लील कबीरे गाने लगते थे। एक बार चौक (कानपुर) के एक बडे दूकानदार बाबू देवीप्रसाद खत्री को इन्होने कबीरें गा-गाकर बहुत परेशान किया। ज्यो-ज्यो देवीप्रसाद का क्रोध बढता गया त्यो-त्यो मिश्र जी का कबीर गाना भी जोर पकडता गया। मामला यहा तक बढा कि देवीप्रसाद ने मिश्र जी की शिकायत शहर के कोतवाल से कर दी। कोतवाल अलीहसन, मिश्र जी के पक्के दोस्तो मे से थे। उन्होने मिश्र जी से शिकायत का हाल कहा। दूसरे दिन मिश्र जी देवीप्रसाद की दूकान् पर पहुचे और अपना सिर झुकाकर उनके पैरो पर रखने लगे और साथ ही यह भी कहते जाते थे—'आप मुझे जूतो से मारिये।' देवीप्रसाद जी को बडी शर्म मालूम हुई और उनके मुह से एक बात न निकली। मिश्र जी कई मिनट तक यही वाक्य दोहराते रहे। अत मे हसी-खुशी सब झगडा तय हो गया।[५] इस घटना से

१—'सं० नारायण प्रसाद अरोड़ा : 'प्रतापलहरी' (१९४९ ई०) पृ० २३१ 'शोकाश्रु'
२—'ब्राह्मण' खण्ड ५, संख्या २, ('कन्नौज मे तीन दिन')
३. 'बालमुकुंद गुप्त निबन्धावली' प्रथम भाग (२००७ वि०) पृष्ठ ३४
४. 'निबन्ध नवनीत' पहिला भाग (१९१९ ई०) पृष्ठ) २०
५. सं० प्रेमनारायण टंडन—'साहित्यिकों के संस्मरण' (१९४३ ई०) पृ० ६-७
'पं० प्रतापनारायण मिश्र': रमाकांत त्रिपाठी

मिश्र जी की विनोद-प्रियता और नम्रता का एक साथ परिचय मिलता है। होली के अवसर पर अपने घर मे भी पत्नी को चिढाने के लिए—'का खाऊं खसम के हाड़ घरमा गेहू नही' पवित गाया करते थे। कभी-कभी मेलो मे देखा गया है कि पर्दे रो ढके हुए इक्के मे बैठे स्त्रियो की तरह झाकते हुए आप चले जा रहे है।[1] श्रावण और भाद्रपद पर जब-कब मेंहदी भी हाथों में रचाते थे। कालाकांकार मे एक बार मिश्र जी हाथो में मेहदी रचाये हुए गोपालराम गहमरी के यहा गये। मेहदी रचाये देखकर गहमरी जी ने कहा—'पडित जी मेहदी भी आप हाथो मे तीज में रचाते है।' मिश्र जी ने छूटते ही कहा—'अरे भाई! मेहदी न रचाऊं तो मेहरिया मारन लगें। यह उसी की आज्ञा मे तीज की सौगात है।"[2]

मिश्र जी सामान्य बातो मे भी विनोद की सामग्री ढूढ लेते थे। एक बार पं० अम्बिकाप्रसाद त्रिपाठी (कानपुर) मिश्र जी से मिलने गये। मिश्र जी यह जानते हुए भी कि त्रिपाठी जी बाजार की अन्न की मिठाई नही खाते—उनके जलपान के लिए जलेबिया मगवायी। जब नाश्ता आ गया तो बनावटी स्वर मे लाने वाले से बोले—'तुम्हें मालूम नही त्रिपाठी जी अन्न की मिठाई नही खाते? तुमसे ये जलेबिया लाने को किसने कहा था?' लाने वाला बेचारा सकपका गया।[3] मिश्र जी बच्चो के साथ भी बडे आनद मे खेला करते और उन्हे हसाया करते थे। कहते हैं जब वह अपने ननिहाल बराहिमपुर (इब्राहीमपुर) जाते तो लडके उन्हे घेरे रहते थे। मिश्र जी भी उनके साथ एक कुए पर बैठकर, कभी कान हिलाते, कभी उन्हें बिराया करते थे। इस प्रकार उनसे लडको का मनोरजन होता था। प्रकृति से विनोदप्रिय होने के कारण मिश्र जी का सम्पूर्ण साहित्य भी हास्य और व्यंग्य से परिपूर्ण है। पर उनका हास्य और व्यग्य केवल मनोरजन के लिए न होकर सुधारात्मक है, या यों कहना चाहिए कि उनके हास्य और व्यंग्य का शरीर रजनात्मक है और हृदय उपदेशात्मक है।

कुशलवक्ता

मिश्र जी मे अपूर्व - भाषण - शक्ति थी। उनके भाषण अधिकतर सभाओ मे हुआ करते थे और उनके भाषणो का जनता पर बडा गहरा प्रभाव पडता था। कोमल हृदय होने के कारण-करुण प्रसग आने पर-मिश्र जी की आंखो से आसू निकलने लगते थे, जिनको देखकर जनता भी व्यथित होकर रोने लगती थी। कन्नौज मे जुलाई १८८८ ई० में मिश्र जी का गोरक्षा पर भाषण हुआ जिसमे उन्होने

---

१. 'निबंध नवनीत' पहिला भाग (१९१९ ई०) पृष्ठ २०

२. 'सरस्वती' जून १९३८ ई० 'स्व० पं० प्रतापनारायण मिश्र' गोपाल राम गहमरी

३. सं० प्रेमनारायण टंडन—'साहित्यिको के संस्मरण' (१९४३ ई०)-पृ० ८-९ 'पं० प्रतापनारायण मिश्र'—पं० रमाकांत त्रिपाठी

'बा बा करि तृण दाबि दात सो दुखित पुकारत गाई है' नामक लावनी को बडी शोक पूर्ण मुद्रा से गाया, जिसको सुनकर जनता के आसू निकलने लगे।[1] कभी-कभी मिश्र जी अपने भाषण को प्रभावपूर्ण बनाने के लिए, घर से इलायची के तेल से भीगा हुआ रूमाल भी अपने साथ ले जाते थे और करुणा-प्रसग आने पर उसी को आखो मे लगाकर आसू निकालते थे जिससे सभी श्रोतागण रोने लगते थे।[2] मिश्र जी के भाषण देने का ढग बड़ा वैज्ञानिक था। वह तर्कपूर्ण ढग से, बडी गम्भीरता के साथ अपने विचारो को जनता के सामने रखते थे। धार्मिक-तत्वो को वह पोपाचार की दृष्टि से न देखकर वैज्ञानिक दृष्टि से देखते थे जिससे अग्रेजी पढे-लिखे, आधुनिक सभ्यता वाले भी उनके भाषणो मे रुचि लेते थे। एक बार एक प्रतिमा द्वेषी ने मिश्र जी से तर्क किया कि औरगजेब ने सैकड़ो मन्दिर तोडवाये पर उसे कुछ न हुआ तो फिर हम कैसे विश्वास करे कि आपकी प्रतिमाओ मे शक्ति है? इसके उत्तर मे मिश्र जी तत्क्षण बोले—'हम जिसे मानते और पूजते हे वह प्रतिमा नही है, प्रतिमा केवल चिन्ह मात्र है। सो बाह्य चिन्ह तो सब नाशवान हुई है, उन्हे क्या औरगजेब न तोडता तो भी समय पाकर आपसे आप बिगड जाते। इससे हम पर क्या आक्षेप हो सकता है।'[3] मिश्र जी प्रत्येक तर्क का वैज्ञानिक-उत्तर देते थे और उन्हे उत्तर देने मे किंचित देर न लगती थी। वह बडे हाजिर जवाब थे। जवाब देने के लिए उन्हे सोचना न पडता था। भाषण देते समय भी वह जनता को, तर्क के लिए बराबर अवसर देते थे और उसी समय उनके तर्कों का समाधान करते थे।

जीवनोद्देश्य

मुख्यत मिश्र जी के जीवन के दो उद्देश्य थे। पहला-परमेश्वर के प्रेम मे मग्न रहना। दूसरा-देश के लिए अपने को उत्सर्ग कर देना। इन्ही दोनो उद्देश्यो की पूर्ति मे मिश्र जी आजीवन लगे रहे। वे कहते है—'अपना तो दृढ निश्चय यह है कि परमप्रिय परमेश्वर के प्रेमानद में मग्न होना ही लाख जीवन मुक्ति के सुख से उत्तम है। और मुक्ति का क्यो ठीक कि होती है या नही, कौन जाने, किसी ने चिट्ठी भेजी है? रहा धर्म, सो देश भक्ति से बढके कोई धर्म नही है।'[4] देशोन्नति के जितने भी कार्य हो सकते थे सभी का करना उनका उद्देश्य था।

नागरी का प्रचार वे इसलिए करते थे कि भारतवासी ज्ञान सम्पन्न होकर अपने निजत्व और भाषा की रक्षा करे। हिन्दुत्व को श्रेष्ठ इसीलिए बताते थे कि

---

१. ब्राह्मण' खण्ड ५, संख्या २, 'कन्नौज मे तीन दिन' : प्रतापनारायण मिश्र
२. रमाकान्त त्रिपाठी : 'हिन्दी गद्य मीमांसा' (प्रथम संस्करण) पृष्ठ २५५
३. 'ब्राह्मण' खण्ड ५, संख्या १०, 'प्रश्नत्तोर' : प्रतापनारायण मिश्र
४ 'ब्राह्मण' खण्ड १, संख्या ६ ('ज्ञानचन्द्र और प्रेमचन्द्र')

भारतीय स्वाभिमानी होकर एकता के सूत्र में बधे और देश का उद्धार कर । उनका कहना था—

"तबहिं सुधरिहै जनम निदान । तबहिं भला करिहै भगवान ।
जब रहिहै निशि दिन यह ध्यान । हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तान ।"[१]

'हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तान' मिश्र जी का प्रिय नारा था । इन्ही तीन के प्रति देशवासियो मे अपनत्व जाग्रत करना उनका परम उद्देश्य था । अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' लिखते है—"देश-ममता, जाति ममता और भाषा-प्रेम उनकी रग-रग मे भरा था । आजीवन उन्होने इसको निबाहा । इन तीनो विषयो पर इन्होने बडी सरस रचनाये की है । जितनी पक्तियाँ उन्होने अपने जीवन मे लिखी, वे चाहे गद्य की हों या पद्य की उन सबो म इन तीनो विषयो की धारा ही प्रबल वेग से बहती दृष्टिगत होती है । वे मूर्तिमन्त देश-भक्त थे । इसलिए उनकी सब रच-नाये इसी भाव से भरी है ।"[२] 'हिन्दी हिन्दू, हिन्दुस्तान' के प्रति प्रेम, उनकी अनन्य देश-भक्ति का परिचायक है । इन्ही तीनो के कल्याण की ईश्वर से याचना करते हुए वे लिखते है—

"जदपि जाचना के बिना, देत सबै कछु सोय ।
पै हम बैरागी नहीं, जिनके चाह न होय ।।
याते मागहिं जोरि कर, धरि उर आस महान ।
हिंदी, हिंदू, हिंद कर, करहू नाथ ! कल्यान ।।"[३]

प्रेमदेव की उपासना भी वह एकता की ही दृष्टि से करते थे और सम्पूर्ण भारतवासियो को एक प्रेम मे बाधना चाहते थे । अतः मिश्र जी का सम्पूर्ण जीवन देशमय था और वह जो कुछ करते थे देश के लिए करते थे ।

रुग्णावस्था और स्वर्गारोहण

मिश्र जी प्राय. बीमार बने रहते थे । उसका कारण उनका अनियमित जीवन था । वह स्वास्थ्य पर कोई ध्यान न देते थे । सामाजिक एव साहित्यिक कार्यो मे व्यस्त रहने के कारण न ठीक समय से भोजन करते और न उपयुक्त विश्राम ही लेते थे । शरीर पर उनका कहना था कि उसका नाम ही है 'शरीर' अर्थात् शरारत करने वाला (फारसी मे) वह तो अपनी शरारत दिखायेगा ही ।[४] यह कहकर सदा वह

---

२. 'ब्राह्मण' खण्ड ७, संख्या १२ ('अन्तिम सम्भाषण')

३ अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' : हिंदी-भाषा और साहित्य का विकास (द्वितीय संस्करण), पृष्ठ ५१४

४. 'ब्राह्मण' खण्ड ८, संख्या १ (मंगलपाठ)

२. बालमुकुंद गुप्त-स्मारक ग्रंथ' (२००७ वि०) पृष्ठ ५० (मिश्र जी का पत्र गुप्त जी के नाम से)

इसकी अवहेलना किया करते थे। अधिक बीमारियों के कारण उनका स्वभाव भी बड़ा आलसी हो गया था जिससे दिन-पर-दिन वह स्वास्थ्य-रक्षा मे उदासीन होते जाते थे। अन्यत्र वे कहते है—"जिन्हे बाह्य जगत की इतनी चिन्ता नही रहती जितनी दिमागी दुनिया की रहती है उन्हे कोई-न-कोई रोग न हो तो आश्चर्य है ·· इससे रोगराज की हम पर भी यो तो साधारण दया रहती ही है किन्तु तीसरे चौथे वर्ष विशेष कृपा हो जाती है। जिसमे आप राजसी ठाट-बाट मे चार छ महीने के लिए आ जाते है और उनकी भेट के लिए रुपया तथा भोजन पान के लिए अपना रक्त, मास हमें अवश्य अर्पण करना पडता है। बरञ्च उनके साथ नाना कल्पनामय विश्व मे घूमते-घमाते अज्ञात लोक के द्वार तक भी कई बार जाना पडता है।"[1] मिश्र जी बचपन से ही बीमार रहा करते थे, कई बार तो इतने बीमार हुए कि बचने की आशा तक न रही। इन्हे विशेष रूप से बवासीर की शिकायत थी,[2] जो विविध प्रकार के इलाज करने पर भी जीवन पर्यन्त न ठीक हो सकी। नवम्बर, १८८५ ई० मे मिश्र जी बहुत बीमार हुए। तीन माह तक चारपाई से नही उठ सके।[3] इसके बाद स्वास्थ्य मे कुछ सुधार हुआ पर उसके थोडे ही समय बाद वे पुन बीमार पडे और साल भर तक वे रोग से मुक्त नही हो सके।[4] इस बीमारी मे 'ब्राह्मण' पत्र लगभग सवा साल तक बन्द रहा। सन् १८९१-९२ ई० में (डेढ वर्ष) फिर मिश्र जी बीमारियो से ग्रसित रहे। एक-के-बाद-एक बीमारी उन्हे सताती रही, पर डा० भोलानाथ मिश्र के इलाज से सब दबती गई।[5] मार्च १८९३ ई० मे मिश्र जी बहुत बीमार हुए और उन्होने अपने एक घनिष्ठ सन्यासी (वैद्य) मित्र का इलाज प्रारम्भ किया पहले चार-पॉच

१—'ब्राह्मण' खण्ड ९, संख्या १२ ('आप बीती कहूं कि जग बीती')

२—'निबन्ध-नवनीत' पहिला भाग (१९१९ ई०) पृष्ठ ४।

३—"हम तीन माह से ऐसे रोग ग्रस्त हो रहे है कि जिसका वर्णन नही। पाठक यदि देखते तो त्राहि-त्राहि करते। नित्य के मिलने वाले मित्रों से कोई पूछे जिन्हें किसी-किसी दिन हमारी दशा पर रोना आता था।" (फरवरी १८८६ ई०) 'ब्राह्मण' खण्ड ३, स० १२, 'सूचना' : प्रतापनारायण मिश्र

४—'वर्ष भर से बीमारियां रांडें पीछा ही नहीं छोडती। यदि एक ने कुछ मुँह मोड़ा तो दूसरी ने आ दबाया। हम यो ही बड़े बली थे, तिसपर आजकल तो ताकत के मारे कोई हड्डी नहीं है जो मास को अपने ऊपर आने दे।" (अगस्त १८८७ ई०) ·· "'ब्राह्मण' खण्ड ४, संख्या १ 'आप बीती' : प्रतापनारायण मिश्र

५—'ब्राह्मण' खण्ड ९, सख्या १२, (आप बीती कहूं कि जग बीती') तथा 'बाल-मुकुन्द गुप्त-स्मारक ग्रन्थ' (२००७ वि०) पृष्ठ ५० (बालमुकुन्द गुप्त को लिखा हुआ मिश्र जी का पत्र)

दिन तो उन्होने अच्छी दवा दी और उससे कुछ फायदा भी हुआ। आगे जब सन्यासी जी ने देखा कि मित्रता मे अधिक पैसे न ऐंठ सकूगा तो उन्होंने बदल कर दूसरी दवा दी जिससे मिश्र जी की हालत बिगडने लगी। कहने पर भी उन्होने दवा मे कोई परिवर्तन न किया। बल्कि कहा—'इसी से ठीक हो जाओगे।' पर यह दवा और 'दाद मे खाज' होती गयी। मिश्र जी, सन्यासी जी का सब राज समझ गये और उन्होने इलाज बद कर दिया।[१] कहना न होगा कि जब सन्यासी जी अपना औषधालय स्थापित करने के लिए कानपुर आये थे तो मिश्र जी ने इनकी बड़ी सहायता की थी। और सन्यासी जी बाहर से बड़ी कृतज्ञता प्रकट करते थे पर भीतर से वह बडे कृतघ्न निकले। अन्त मे मिश्र जी ने कालिकाप्रसाद त्रिपाठी से इलाज कराना प्रारम्भ किया। त्रिपाठी जी के इलाज से मिश्र जी को फायदा हुआ और रोग कुछ दब गया पर शरीर मे ताकत नही आयी।[२] इस बीमारी के विषय मे मिश्र जी लिखते है—'हमने रोग और निर्बलता के कारण अबकी बार का सा क्लेश कभी नही उठाया और अब भी चार महीने हो गये पूर्ण स्वास्थ्य के लक्षण नही देख पडते। 'इधर हम दवा और परहेज तो कर ही रहे है, यदि कोई सज्जन पत्र द्वारा बीमारी का हाल पूछ के कोई शीघ्र गुणकारी परीक्षित औषधि बतलावेंगे तो भी हम उनका बडा गुण मानेगे।"[३] इसके बाद मिश्र जी पूर्ण स्वस्थ नही हो सके। आगे वह बालमुकुन्द गुप्त को पत्र मे लिखते है—"मै आठ महीने से बीमार हूँ, अब तबियत कुछ अच्छी है पर ताकत का नाम नही है।'[४] मिश्र जी अपने जीवन में कभी पूर्ण स्वस्थ नही रह सके। सन् १८९४ ई० मे वह फिर सख्त बीमार पड़े (यह इनके जीवन की अन्तिम बीमारी थी) इस बार बडे अच्छे-अच्छे अनुभवी वैद्यो ने इलाज किया पर स्वास्थ्य मे किंचित सुधार न हुआ। और इसी बीमारी मे मिश्र जी ने परमेश्वर की प्रार्थना मे कुछ पद्यो की रचना भी की थी, जो बड़े सरस और भक्तिभाव पूर्ण है।[५]

प्रामाणिक जीवनी के शोध मे मिश्र जी की मृत्यु की दो भिन्न तिथिया प्राप्त हुई जो इस प्रकार हे—

(१) सवत् १९५१ की आषाढ, शुक्ल-चतुर्थी, रविवार (अगस्त, १८९४)[६]

६—'ब्राह्मण' खण्ड ९, संख्या १२ ('आप बीती कहू कि जग बीती')

१—'ब्राह्मण' खण्ड ९, सख्या १२, ('आप बीती कहू कि जग बीती'):

२—'ब्राह्मण' खण्ड ९, सख्या १२, ('आप बीती कहूं कि जग बीती'):

३—'बालमुकुन्द गुप्त-स्मारक-ग्रन्थ (२००७ वि०) पृष्ठ ६८

४—'सरस्वती' मार्च १९०६ ई० 'पं० प्रतापनारायण मिश्र' : महावीरप्रसाद द्विवेदी

५—'सरस्वती' मार्च १९०६ ई० 'पं० प्रतापनारायण मिश्र' : महावीरप्रसाद द्विवेदी

(२) सन् १८९४ (६ जुलाई, आषाढ, कृष्ण ४ स० १९५१)[१]

इन उक्त तिथियो की 'विक्रमी-तिथि' मे, पक्ष का अन्तर है और 'अग्रेजी-तिथि' में माह का। सवत् १९५१ वि० का पचाग देखने से ज्ञात हुआ कि यह दोनो ही तिथिया भ्रमपूर्ण हैं।[२] पचाग मे आषाढ शुक्ल चतुर्थी, ६ जुलाई को पडती है और अरोड़ा जी ने भी ६ जुलाई दिया है अत द्विवेदी जी का अगस्त लिखना ठीक नही है। दूसरे, द्विवेदी जी ने चतुर्थी रविवार को लिखा है जो पचाग के अनुसार शुक्रवार को पडती है। अतः रविवार देना भी भ्रामक है। अरोडा जी अपनी तिथि में आषाढ कृष्ण ४ दिये है जो २२ जून को पड़ती है और अरोडा जी उसे ६ जुलाई को लिखते है; सम्भतः अरोडा जी भूल से शुक्ल पक्ष के स्थान पर कृष्ण पक्ष लिख गये है। साहित्य-जगत मे अब-तक द्विवेदी जी की ही तिथि प्रयुक्त होती चली आ रही है अतः उसमे दिन और अग्रेजी माह का संशोधन कर लेना आवश्यक है। इस प्रकार प्रतापनारायण मिश्र का स्वर्गवास ३८ वर्ष की अवस्था मे आषाढ शुक्ल ४, शुक्रवार संवत् १९५१ वि० (जुलाई ६, १८९४ ई०) को दस बजे रात्रि मे हुआ।

मिश्र जी की मृत्यु से सम्पूर्ण देश को वडा दुख हुआ। भारत के सभी-साप्ताहिक, मासिक और दैनिक-पत्रो में शोक-गीत और लेख प्रकाशित हुए।[३] बाबू बालमुकुन्द गुप्त ने मिश्र जी की मृत्यु पर एक बडा मार्मिक गीत लिखा जो ३० जुलाई, १८९४ ई० के 'हिन्दी बगवासी' पत्र मे प्रकाशित हुआ। उसकी कुछ पक्तिया इस प्रकार है—

"पुंज-पुज तव पुण्य अहो कवि ! आगे आयो।
पुण्यमयी कविता ने अपनो बल दिखरायो॥
हे जसभागी ! उहाँ ठांव सुरपुर में पाई,
इहां भूमि पर रही रावरी की रति छाई।
मर्त्य-गान जो मर्त्य-कलेवर महं तुम गाये,
अच्छर - अच्छर जिनके अमृत माहं डुबाये।
सुनिहैं तिन कहं निस दिन मर्त्य कलेवर धारी,
जब लौं रहे प्रान को तन में तांतो जारी।"[४]

१—सं० नारायणप्रसाद अरोड़ा एवं लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी : 'प्रतापनारायण मिश्र' (१९४७ ई०) पृष्ठ १२७

२—सुंदर दीक्षित : 'पंचांग १९५१ वि०' (श्री काशिस्थ ब्रह्म सभा द्वारा निर्मित)

३—'हिंदी प्रदीप' जिल्द १७, संख्या ६-७-८, पृ० ५२ 'ब्राह्मण सम्पादक प० प्रतापनारायण' : बालकृष्ण भट्ट

४—'बालमुकुंद गुप्त-निबंधावली' प्रथम भाग (२००७ वि०) पृ० ६५४-५५ (स्व० कवि प० प्रतापनारायण मिश्र के शोक में)

पण्डित बालकृष्ण भट्ट ने भी मिश्र जी की मृत्यु पर एक बडा सुन्दर लेख लिखा, जिससे जीवन और कार्य पर अच्छा प्रकाश पडता है। वे लिखते है—"नागरी हिन्दी के संकुचित समाज मे ऐसा कौन होगा जिसे कान्यकुब्ज कुल-केतु प० प्रताप-नारायण मिश्र का सताप न व्यापा हो—प्रातः स्मरणीय बाबू हरिश्चन्द्र को जो दीन हिन्दी का जन्मदाता कहे तो प्रतापनारायण मिश्र को नि.सदेह उस स्तनन्धया दूध-मुही बालिका का पालन पोषण कर्त्ता कहना ही पडेगा क्योकि हरिश्चन्द्र के उपरान्त इसे अनेक रोग-दोष से सर्वदा नष्ट न हो जाने से बचा रखने वाले यही देख पडे और गद्य, पद्य-मय अपने सरल लेख से यत्किंचित इसका भण्डार उसी तरह पर भरते रहे जिस ढग से उक्त बाबू साहब ने आरम्भ किया था—पं० प्रतापनारायण मे बडी तारीफ की बात यह थी कि ये निस्पृह ओर निज लाभ की किंचितमात्र इच्छा न रख हिन्दी की उन्नति मे लगे हुए थे जो बात इस समय के स्वार्थ तत्पर लोगों की चलन के विरुद्ध है।" यह आत्म त्याग मिश्रित उदार भाव के नमूना थे—हिन्दी साहित्यार्णव के थहाने वाले थे—विमल सौहार्द-भाव के आदर्श थे—ऐसे सत्पुरुष का अल्पायु होना निःसंदेह हमारी आर्य भाषा का अभाग्य नही तो इसे फिर क्या कहना चाहिए। धन्य है ऐसे बड भागी पुरुष जिनके लिए आज इतने लोग शोक प्रकाश कर रहे है।"[१] वास्तव मे मिश्र जी एक महान साहित्यकार थे यदि उन्हे जीने का कुछ और अवसर मिलता तो निस्सदेह वह हिन्दी-साहित्य के लिए बहुत कुछ कर जाते। उनका साहित्यिक जीवन केवल १५ वर्ष का रहा, जिसमे आधे से अधिक समय बीमारियों मे बीता। इतने अल्प समय मे भी उन्होने हिन्दी-साहित्य की जो सेवा की वह वस्तुत. सराहनीय है। उनका साहित्य हिन्दी-साहित्य का अक्षय कोश है।

मिश्र जी की मृत्यु के बाद उनकी पत्नी और दत्तकपुत्र

मिश्र जी की मृत्यु के बाद मिश्र जी के सास-ससुर (मिश्र जी की द्वितीय पत्नी के माता-पिता) उनकी पत्नी के ही पास रहने लगे। इसका कारण यह था कि सास-ससुर के भी पुत्रो मे रामगोपाल ही थे जिनको प्रतापनारायण जी ने अपना दत्तक-पुत्र स्वीकार कर लिया था और मिश्र जी की पत्नी रामगोपाल का पालन-पोषण कर रही थी। दूसरे मिश्र जी की पत्नी को भी अकेले परेशानी हो रही थी। दो परिवार एक मे मिल जाने से दोनो को जीवन-यापन मे बड़ी सुविधा हो गई। मिश्र जी की पत्नी के पास नौघड़ा में-छोटे-छोटे पाँच मकान थे जिनमे से आगे चलकर तीन मकान उन्होने बेच दिये और उनसे प्राप्त पैसे से-शेष दोनो मकानों को तोडवा कर उसी स्थान पर एक बडा (पक्का) मकान बनवाया। इसी मकान

१—'हिंदी प्रदीप' जिल्द १७, संख्या ६-७-८, पृ० ५१-५२ 'ब्राह्मण सम्पादक पं० प्रतापनारायण मिश्र' : पं० बालकृष्ण भट्ट।

के एक भाग मे (जिस स्थान पर मिश्र जी की मृत्यु हुई थी) उन्होने—मिश्र जी की स्मृति में एक मन्दिर बनवाया। यह मकान और मन्दिर आषाढ सुदी १० सम्वत् १९६२ वि० (१९०५ ई०) को बनकर तैयार हुआ था।[१] आजकल इस मन्दिर वाले मकान पर म्यूनिसिपेलिटी का ४९।७१ नम्बर पडा हुआ है। तीन बेचे हुए मकान भी इसी मकान के बराबर पर ही थे। आजकल जिस मकान पर ४९।७३ नम्बर पडा हुआ है उस स्थान पर दो मकान थे और जिस पर ४९।७४ पडा है उस स्थान पर एक मकान था। मकान और मन्दिर बनवाने के बाद जो पैसा बचा उससे मिश्र जी की पत्नी ने तीर्थाटन, (बद्रीनाथ आदि) और ब्रह्मभोज किया। इन कार्यों के करने मे इन्हे मूला के पति (मिश्र जी की पत्नी की छोटी बहन के पति) से बड़ा सहयोग मिला। इन्ही के साथ मिश्र जी की पत्नी तीर्थाटन करने गयी थी। मिश्र जी की पत्नी अपने अधिकाश समय मन्दिर मे भजन-पूजन मे बिताती थी। मकान का कुछ हिस्सा किराये पर उठा था जिससे उनका खर्च चलता था।

रामगोपाल (मिश्र जी के दत्तक पुत्र) कुछ मामूली-सी शिक्षा प्राप्त करके एक म्यूनिसिपैलिटी स्कूल में अध्यापन-कार्य करने लगे। यह मिश्र जी की पत्नी को माता की तरह ही मानते थे। आगे चलकर इन्होने अध्यापन कार्य छोड़ दिया और कचहरी मे स्टैप का काम करने लगे। यह अपने समय के सबसे बड़े स्टैंप-स्टाकिरट थे। इस कार्य से इन्हे बडा लाभ हुआ। इसके बाद सन् १९२५ ई० के लगभग मिश्र जी की पत्नी बीमार पडी और पक्षाघात के कारण उनका आधा शरीर शून्य हो गया। अब वह चलने-फिरने मे असमर्थ हो गयी। उनका अन्तिम जीवन बडे कष्ट मे बीता। रामगोपाल और उनकी पत्नी ने मिश्र जी की पत्नी की इस अन्तिम अवस्था मे बडी सेवा की। मिश्र जी की पत्नी का नित्यप्रति गगा स्नान करने का नियम था और यह नियम अपंग अवस्था मे भी रामगोपाल के प्रयत्न से नही टूटने पाया। वह नित्यप्रति इन्हे गंगा स्नान कराने ले जाते थे। मिश्र जी की पत्नी जब बीमार पड़ी तो बैजेगांव वालों (मिश्र जी के चचेरे भाई के लडको) ने उनकी सम्पत्ति हस्तगत करनी चाही। जिसके परिणाम स्वरूप कानपुर की दीवानी अदालत में दो वर्ष तक मुकदमा चला। मिश्र जी की पत्नी की ओर से स्वर्गीय प० अयोध्यानाथ तिवारी और भतीजों की ओर से बाबू सिद्धेश्वर बनर्जी वकील थे। अन्त में

---

१. मन्दिर की बाहरी दीवाल पर एक संगमरमर की पट्टी लगी है—यह पट्टी सन् १९४६ ई० में 'प्रतापनारायण स्मारक समिति' की ओर से लगवायी गई थी इसमें मन्दिर का निर्माण काल इस प्रकार लिखा है—'इस मन्दिर को स्वर्गीय प० प्रतापनारायण मिश्र की धर्मपत्नी ने अपने पति की स्मृति में निर्माण कराया अषाढ़ सुदी १० सं० १९६२।'

विजय मिश्र जी की पत्नी की ही हुई।[1] आगे चलकर मिश्र जी की पत्नी ने अपनी सब सम्पत्ति (मकानादि) रामगोपाल के नाम लिखा दी।

मिश्र जी की पत्नी का स्वर्गवास ७० वर्ष की अवस्था मे सन् १९३० ई० के लगभग हुआ और इनकी मृत्यु के दो वर्ष बाद रामगोपाल का भी देहान्त हो गया। रामगोपाल के तीन छोटी-छोटी लडकियाँ थी जिनका ब्याह आगे चलकर उनकी विधवा पत्नी ने किया। आजकल मिश्र जी के मकान मे रामगोपाल की विधवा पत्नी अपने दामाद (बडी लडकी के पति) के साथ रहती है। ये मन्दिर के पीछे ऊपरी हिस्से मे रहती है और शेष मकान इन्होने किराये पर उठा दिया है। मन्दिर के आगे (बगल मे) तीन दुकाने है, वह भी किराये पर उठी है। इसी किराये से विधवा का निर्वाह होता है और मन्दिर की व्यवस्था की जाती है। रामगोपाल की पत्नी स्वयं इस मन्दिर मे पूजा करती है।

मिश्र जी के परिवार मे कोई योग्य-व्यक्ति न होने के कारण उनके साहित्य का समुचित प्रचार नही हो सका। वैसे उनकी स्मृति मे कानपुर और उसके बाहर बहुत से आयोजन किये गये पर उनमे मिश्र-साहित्य के स्थायित्व की और कोई कार्य नही किया गया। नवम्बर, १९१३ ई० मे मिश्र जी की ही स्मृति मे कानपुर से 'प्रताप' पत्र का निकलना प्रारम्भ हुआ। यह पत्र गणेशशंकर विद्यार्थी और नारायणप्रसाद अरोडा के प्रयास से निकला था। स्मृति के रूप मे अरोड़ा जी ने इसके प्रथम अंक मे मिश्र जी पर एक परिचयात्मक लेख लिखकर प्रकाशित कराया था।[2] मिश्र जी की स्मृति मे आश्विन कृष्ण १० सम्वत् १९७१ (१९१४ ई०) को बाकीपुर (पटना) में *'मिश्र-जयन्ती' 'भारतेन्दु-जयन्ती'* की ही भांति बड़ी धूम-धाम से मनाई गयी।[3] और आगे भी कई वर्षों तक मनायी जाती रही। इसके बाद कानपुर मे भी नारायणप्रसाद अरोडा और लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी के प्रयत्न से 'प्रतापनारायण स्मारक समिति' की स्थापना हुई और इसी के तत्वावधान में प्रतिवर्ष 'मिश्र-जयन्ती' मनाई जाने लगी। आगे चलकर इसी समिति की ओर से २८ सितम्बर १९५६ ई० को 'प्रतापनारायण जन्म शताब्दी समारोह' बड़ी सज-धज के साथ मनाया गया। इसमें देश प्रसिद्ध विद्वानो के भाषण हुए, साथ ही नाटक, साहित्यिक प्रदर्शिनी, काव्य एवं संगीत-गोष्ठी विधिवत सम्पन्न हुई।[4] बैजेगांव (उन्नाव) मे

---

१. सं० नारायण प्रसाद अरोड़ा और लक्ष्मीकांत त्रिपाठी—'प्रतापनारायण मिश्र' (१९४७ ई०)—पृष्ठ १२४

२. नारायणप्रसाद अरोड़ा : 'मेरे गुरुजन' (१९४५ ई०)— पृष्ठ २७

३. 'सम्मेलन पत्रिका' भाग २ अक १ (आश्विन सं० १९७१)—पृष्ठ ४

४. 'रामराज्य' (कानपुर) १ अक्टूबर १९५६ ई०

भी मिश्र जी की स्मृति मे 'प्रताप-साहित्य-मण्डल' स्थापित हुआ और इसके कई उत्सव मनाये गये। कहने का तात्पर्य यह कि मृत्यु के बाद मिश्र जी का साहित्य-जगत् और समाज मे पर्याप्त सम्मान हुआ और अब भी हो रहा है।

मित्र-मण्डली

प्रतापनारायण जी बडे मिलनसार व्यक्ति थे। सामाजिक, राजनीतिक और साहित्यिक—सभी क्षेत्रो मे कार्य करने के कारण इनका परिचय बहुत से लोगो से था। कानपुर मे तो इनके अनेक मित्र थे ही, जिनसे ये बराबर मिलते रहते थे, कानपुर के बाहर भी देश-विदेश के प्रमुख लोगो से इनकी घनिष्टता थी जिनसे इनका पत्र-व्यवहार तो होता ही था कभी-कभी एक-दूसरे से मिलन भी हो जाता था। मिश्र जी के मित्रो मे एक ओर यदि ह्यूम जैसे राजनीतिज्ञ और भारतेन्दु जैसे साहित्यकार थे तो दूसरी ओर लावनी बाजो जैसे सामान्य व्यक्ति भी थे, पर सभी मे मिश्र जी का विधिवत् सम्मान था। मिश्र जी की इस व्यापकता का कारण उनकी देश हितैषिता और हिन्दी प्रचार था। मिश्र जी के समय मे बडे-बडे साहित्यकारों की अपनी-अपनी मण्डलिया थी और सभी मण्डलिया देश-सेवा मे संलग्न थी। इन मण्डलियों का आपसी संगठन बडा सुदृढ था। सभी साहित्कार एक-दूसरे के गुणों के प्रशंसक थे। सभी का उद्देश्य सम्मिलित रूप से 'हिन्दी हिन्दू, हिन्दुस्तान' का उद्धार करना था। उद्देश्य की एकता और सच्ची-निष्ठा के कारण इस युग के साहित्यकार किसी के दोषों की बुराई करने में भी न चूकते थे। इनकी मित्रता व्यष्टिपरक न होकर समष्टिपरक थी, चाहे कितना ही घनिष्ट मित्र क्यो न हो यदि वह देश-द्रोही है तो ये खुलकर उसका विरोध करते थे। देश-द्रोहिता के ही कारण प्रतापनारायण मिश्र ने राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द की जो इनके घनिष्ट मित्र थे, कटू आलोचना की थी।[1] उस समय की मण्डलियों मे काशी स्थित मण्डली सर्वप्रमुख थी जिसके कर्णधार भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र थे इससे सभी मण्डलिया प्रेरणा ग्रहण करती थी। कानपुर की मणली के कर्णधार पं प्रतापनारायण मिश्र थे। इसमे शहर के सभी देश-सेवी और प्रतिष्ठित व्यक्ति समिलित थे। इस मण्डली के सभी व्यक्ति मिश्र जी के ही पथानुगामी थे और उनके कार्यों मे सहयोग देते थे। नीचे इस मण्डली से सम्बन्धित मित्रो तथा इसके प्रमुख सायोगियों का संक्षेप में वर्णन करेगे।

ललिता प्रसाद त्रिवेदी 'ललित'

'ललित' जी (सन् १८३१-१९०१ ई०) मल्लावां (जिला हरदोई) के निवासी थे। कानपुर में यह एक गल्ले की दुकान मे मुनीमत करते थे[2] यही पर इनसे मिश्र-

---

१. 'ब्राह्मण' खण्ड ५ संखिया ६ 'कांग्रेस की जय' - प्रतापनारायण मिश्र

२. सं० नारायण प्रसाद अरोड़ा और लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी—'प्रातपनारायण मिश्र (१९४७ ई०)—पृष्ठ ११

जी का परिचय हुआ। मिश्र जी इनके साहित्यिक ज्ञान से बहुत प्रभावित थे। इन्ही से मिश्र जी ने पिंगल-शास्त्र सीखा था। इन्हें यह अपना काव्य-गुरु मानते थे।[1] ललित जी भी मिश्र जी की प्रतिभा के समर्थक थे। इनके प्रत्येक कार्य मे वह सहयोग देते थे। ब्राह्मण के प्रकाशन मे इनका प्रमुख हाथ था। 'रसिक समाज' के भी ललित जी सर्वप्रथम सभापति चुने गये थे।[2] कानपुर की साहित्यिक गतिविधि मे इनका अच्छा स्थान था। मिश्र जी के सहयोग द्वारा इन्हे कानपुर मे अच्छी ख्याति मिली।

रामनारायण तिवारी 'प्रभाकर' उर्फ लल्लूमास्टर

प्रभाकर जी (१८५५-१९४२ ई०) पटकापुर (कानपुर) के निवासी थे। ये और मिश्र जी कई वर्ष तक अंग्रेजी स्कूल मे साथ साथ पढे थे।[3] सहपाठी होने के कारण दोनो मे बडी मित्रता थी। प्रभाकर जी को नाट्याभिनय से बड़ा शौक था, इन्होने ही कानपुर मे सर्व प्रथम 'सत्यहरिश्चन्द्र' और 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' नाटक बडी सफलता के साथ खेला था।[4] प्रभाकर जी मिश्र जी की काव्यकला से बहुत प्रभावित थे और इनकी बड़ी प्रशंसा करते थे।

गदाधर प्रसाद ब्रह्मभट्ट 'नवीन'

गदाधरप्रसाद 'नवीन' (१८४१-१९२१ ई०) का जन्म जिला फर्रुखाबाद मे हुआ था। आगे चलकर यह कानपुर मे बस गये थे।[5] ये हिन्दी और संस्कृत के प्रकांड विद्वान थे। 'रसिक समाज' मे इनका प्रमुख स्थान था। मिश्र जी का इनसे परिचय गोरक्षा आन्दोलन से हुआ था। दोनो ही व्यक्ति गोरक्षा के हिमायती थे। प्रायः दोनो साथ-साथ गोरक्षा के प्रचार के लिये जाते थे। १८८८ ई० मे आयोजित 'गोरक्षणी सभा' मे सम्मिलित होने के लिए ये लोग साथ-साथ कन्नौज गये थे। मिश्र जी लिखते है—'हमारे प्रिय मित्र हरिशंकर वर्म्मा एव श्याम सुन्दर वर्म्मा तथा कविवर गदाधर के कारण रेल के तीन घण्टे तो ऐसे आनन्द से बीते की मीरासराय स्टेशन पर उतरने को जी न चाहता था।'[6] नवीन जी समस्या पूर्तियाँ भी बडी सुन्दर करते थे। 'रसिक समाज' की स्थापना से इनकी मिश्र जी से और अधिक घनिष्टता हो गयी थी।

---

१. 'निबन्ध-नवनीत' पहिला भाग' (१९१९ ई०)—पृष्ठ ४
२. नरेशचन्द्र चतुर्वेदी - 'हिन्दी साहित्य का विकास और कानपुर' (१९५७ ई०) पृष्ठ १११
३. सं० अरोड़ा और त्रिपाठी – 'प्रतापनारायण मिश्र' (१९४७ ई०) पृष्ठ १५
४. 'ब्राह्मण खण्ड ५ सख्या १ 'कानपुर और नाटक' – प्रतापनारायण मिश्र
५. नरेशचन्द्र चतुर्वेदी – 'हिन्दी साहित्य का विकास और कानपुर' (१९५७ ई०) –पृष्ठ ११४
६. 'ब्राह्मण' खण्ड ५ संख्या १ ('कन्नौज में तीन दिन')

नाथूराम शर्मा 'शंकर'

नाथूराम जी (१९५९–१९३२ ई०) कानपुर के 'आर्य समाज' के प्रमुख सदस्यो में-से थे। आर्य समाज के कार्यों द्वारा ही इनका परिचय प्रतापनारायण मिश्र से हुआ। धीरे-धीरे दोनो इतना घुल-मिल गये कि लगोटिया-यार से प्रतीत होने लगे।[1] नाथूराम जी जीविकोपार्जन के हेतु कानपुर के नहर विभाग के दफ्तर मे नौकरी करते थे। इनका जनता से बड़ा अच्छा सम्पर्क था। ब्रजभाषा मे यह बडी सुन्दर कविता करते थे और कवि-समाजो मे भी जाकर यह अपनी कविताए सुनाते थे।[2] 'रसिक समाज' से भी इन्हे बड़ी रुचि थी और उसके कार्यों मे यह मिश्र जी की बडी सहायता करते थे।

दीनदयाल मिश्र

दीनदयाल मिश्र का जन्म कानपुर जिले के बिरामऊ नामक स्थान मे हुआ था। आप प्रतापनारायण जी से आठ वर्ष छोटे थे। इनके समय मे कानपुर मे आर्य समाज का बड़ा जोर था। यह भी उसके कार्यों से प्रभावित होकर १८८३ ई० मे उसके सदस्य हो गये। आगे चलकर उन्होने आर्य समाज मे बड़ा कार्य किया। यह 'आर्य समाज' के देश प्रसिद्ध वक्ता थे और उनके प्रचार मे दूर-दूर तक जाते थे। कानपुर की 'गोरक्षणी सभा' से भी इनकी बड़ी रुचि थी और यह उसके प्रमुख उपदेशक थे। प्रतापनारायण जी पहले से ही उक्त दोनो सभाओ मे कार्य कर रहे थे इससे दीनदयाल जी की थोडे ही दिन मे मिश्र जी से बडी मित्रता हो गयी। इसके अतिरिक्त प्रतापनारायण जी भी सभाओ आदि में अधिकतर व्याख्यान देने जाते थे वहा भी दीनदयाल से इनका समागम हो जाता था। कभी-कभी घण्टों सत्सग भी होता रहता था। एकबार दीनदयाल जी प्रतापनारायण जी के साथ भारतेन्दु से मिलने बनारस भी गये थे।[3] दीनदयाल जी की मिश्र जी पर बड़ी श्रद्धा थी, वे इनका बडा आदर करते थे।। साथ ही गुरु रूप में यह प्रतापनारायण को मानते थे।

लाला देवीदास भगत

यह कानपुर के अपने समय के प्रतिष्ठित व्यापारी थे। इनका परिचय मदन-मोहन मालवीय, मोतीलाल नेहरू आदि बडे-बड़े लोगों से था। ये लोग प्रायः इनके यहाँ आया-जाया करते थे। प्रतापनारायण जी से भी इनका बड़ा अच्छा सम्पर्क

---

१. 'रामराज्य कानपुर ८ अक्तूबर १९५६ ई० 'पं० प्रतापनारायण मिश्र'-एक ऐतिहासिक विश्लेषण'—लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी

२. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास' (२००६ वि०) पृष्ठ ६२६

३. सं० अरोड़ा और त्रिपाठी—'प्रतापनारायण मिश्र' (१९४७ ई०) पृष्ठ २३-२५

था ।[1] भगत जी, मिश्र जी का बड़ा आदर करते थे। साथ ही देश और धर्म के कार्यों मे पर्याप्त सहायता भी करते थे।

राय देवीप्रसाद 'पूर्ण'

पूर्ण जी (१८६८-१९२० ई०) कानपुर के बड़े प्रभावशाली वकीलों मे से थे। इनकी ब्रजभाषा पर बड़ी आस्था थी और ब्रजभाषा मे यह बड़ी सरस रचनायें करते थे। काव्य-करने की शिक्षा इन्होने प्रतापनारायण मिश्र जी से ग्रहण की थी और इस विषय मे यह उनके शिष्य थे। पूर्ण जी सदा मिश्र जी को गुरूवत् मानते थे। 'रसिक समाज' के संस्थापकों मे पूर्ण जी प्रमुख थे और इन्हीं की देखरेख में इस समाज की 'रसिक-वाटिका' पत्रिका निकलती थी जिसमें उस समय के प्राय: सब ब्रजभाषा कवियो की रचनाये छपती थी ।[2] आगे चलकर इन्होने खड़ी बोली में भी पर्याप्त रचनाये की। सामाजिक कार्यों में इनकी बड़ी रुचि थी। कानपुर म्युनिसिपल बोर्ड के ये सदस्य और उपाध्यक्ष भी रहे थे।[3]

बद्रीदीन शुक्ल

शुक्ल जी शिक्षा-विभाग की ओर से अकबरपुर (कानपुर) परगने के सब-डिप्टी इंस्पेक्टर थे।[4] अगस्त, १८८७ ई० से सितम्बर १८८८ ई० तक यह 'ब्राह्मण' के मैनेजर रहे। इन्होंने ब्राह्मण के ग्राहक बढ़ाने का बड़ा प्रयत्न किया। मिश्र जी की इनसे बड़ी गहरी मित्रता थी। मिश्र जी इनका बड़ा सम्मान करते थे। इनकी देश-सेवा से प्रसन्न होकर कई बार मिश्र जी ने 'ब्राह्मण' में इन पर टिप्पणियां निकाली थी। इनका धन्यवाद देते हुए मिश्र जी लिखते है—"श्री मत्पण्डितवर बद्रीदीन जी शुक्ल महोदय को भी जितने धन्यवाद दें थोड़ें है। जभी हमने क्षेत्र से असहाय होके भागना चाहा है तभी इन पूज्यपाद ने कहा है क्यों कचियाते हो, हम सब प्रकार तुम्हारे साथ है।"[5] मिश्र जी शुक्ल जी पर बड़ा विश्वास करते थे। वे कहते है—"कोई एक कारणों से ब्राह्मण का सब काम मैने अपने हाथ मे ले लिया है इससे जो साहब रुपया या लेख इत्यादि कोई चीज भेजे मेरे नाम से भेजें या पं० बद्रीदीन जी शुक्ल को अक-

---

१. सं० अरोड़ा और त्रिपाठी—'प्रतापनारायण मिश्र' (१९४७ ई०) पृष्ठ २३
२. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल—'हिन्दी साहित्य का इतिहास' (२००६ वि०) पृष्ठ ६२३
३. नरेन्द्रचन्द्र चतुर्वेदी—'हिन्दी-साहित्य का विकास कानपुर' (१९५७ ई०) पृष्ठ ११७-१८
४. सं० अरोड़ा और त्रिपाठी—'प्रतापनारायण मिश्र' (१९४७ ई०) पृष्ठ १२
५. 'ब्राह्मण' खण्ड ४ संख्या १ ('धन्यवाद')

बरपुर में भेजे तीसरे के पास कोई वस्तु भेजी जायगी उसके जवाब देह हम नही हैं।"[१] मिश्र जी इनके कार्यों की बडी प्रशसा करते थे। २०-२१ दिसम्बर, १८८५ को शुक्ल जी के निवास स्थान पर एक 'धर्मोत्सव' बडी धूम-धाम से मनाया गया जिसकी मिश्र जी ने अपने 'ब्राह्मण' मे बडी सराहना की।[२]

राधेलाल अग्रवाल

राधेलाल जी कानपुर के प्रसिद्ध व्यापारी पप्पनलाल के बहनोई थे। इनकी चौक मे 'फ्रेण्ड एण्ड को' नाम की एक दर्जी की दूकान थी, इसी मे इनका जीवन-यापन होता था। ये मिश्र जी के घनिष्ट मित्रो मे से थे।[३] इन्ही के सहयोग से १८८५ई० मे मिश्र जी ने 'भारत एनटरटेनमेट क्लब' की स्थापना की थी। अग्रवाल जी मिश्र जी के साथ नाटको मे अभिनय भी करते थे। आगे चलकर मिश्र जी से इनका मन-मुटाव हो गया और इन्होंने अपना अलग क्लब स्थापित कर लिया। अलग होने पर भी मिश्र जी इनके गुणो की सदा प्रशसा करते थे।[४]

मास्टर नन्हेमल 'सुखदावलम्बित

ये कानपुर के पुराने वासिन्दे और जाति के अग्रवाल वैश्य थे तथा सवाईसिंह के हाते में रहते थे। आप क्राइस्ट चर्च स्कूल (कानपुर) मे अग्रेजी के अध्यापक थे। इनकी अंग्रेजी की योग्यता बहुत अच्छी थी।[५] प्रतापनारायण जी ने भी इनसे कुछ दिन अग्रेजी पढी थी और इनका सम्मान भी वे गुरु की तरह ही करते थे पर 'सुख-दावलम्बित' जी इन्हे मित्र-रूप मे मानते थे। मिश्र जी ने इनके उपनाम के ही आधार पर अपना उपनाम 'ईश्वरावलम्बित' रक्खा था। मिश्र जी इनके गुणो से बहुत प्रभा-वित थे। ये हिन्दी और उर्दू दोनों में कविता करते थे। इन्होने बहुत सी लावनिया और गजलें लिखी थी, जिनका उस समय बड़ा आदर था पर अब वे सब अप्राप्य है।[६] नन्हेमल जी ने 'सुखदवार्ता' नामकी एक छोटी सी पुस्तक भी लिखी थी जिसकी आलोचना मिश्र जी ने 'ब्राह्मण' में निकाली थी।[७]

ब्रजभूषण लाल गुप्त

गुप्त जी अक्टूबर सन् १८८८ से अगस्त १८९० ई० तक 'ब्राह्मण' के मैनेजर

---

१. 'ब्राह्मण' खण्ड २ संख्या ३ ('जरूर पढ़िये')
२. 'ब्राह्मण' खण्ड ३ संख्या ११ 'धर्मोत्सव'—प्रतापनारायण मिश्र
३. सं० अरोड़ा और त्रिपाठी—'प्रतापनारायण मिश्र' (१९४७ ई०) पृष्ठ १३-१४
४. 'ब्राह्मण' खण्ड ५ संख्या १ 'कानपुर और नाटक'—प्रतापनारायण मिश्र
५. सं० अरोड़ा और त्रिपाठी-'प्रतापनारायण मिश्र' (१९४७ ई०) पृ० ११
६. सं० अरोड़ा और त्रिपाठी-'प्रतापनारायण मिश्र' (१९४७ ई०) पृ० ११
७. 'ब्राह्मण' खण्ड १, संख्या ७ (समालोचना)

रहे। इनकी मिश्र जी से बड़ी घनिष्ट मित्रता थी। कुछ दिनो तक गुप्त जी प्रताप-नारायण जी के नौघड़ा वाले मकान के एक हिस्से के किरायेदार भी रहे।[१] आप 'रसिक समाज' के प्रमुख कार्य-कर्त्ताओं मे-से थे। कुछ वर्षों तक आप 'रसिक वाटिका के भी मैनेजर का कार्य करते रहे। गुप्त जी 'भूषण' उपनाम से कवितायें भी लिखते थे इनकी कई समस्या पूर्तियां 'रसिक वाटिका' मे प्रकाशित हुई थीं।[२]

गोपीनाथ खन्ना

ये लाल शीतलप्रसाद के पुत्र थे। सवाईसिंह के हाते (कानपुर) मे इनका निजी मकान था वही पर ये रहते थे।[३] मार्च, १८८३ ई० मे मिश्र जी ने जब 'ब्राह्मण' निकाला तो यह उसके प्रथम मैनेजर बनाये गये और आठ माह तक यह उसकी सेवा करते रहे। इस अवधि तक 'ब्राह्मण का कार्यालय' इनके घर पर ही रहा। इसके बाद खन्ना जी पर्यटन के हेतु बाहर चले गये और उनके स्थान पर मनोहरलाल मिश्र मैनेजर हुए। इसकी सूचना 'ब्राह्मण' मे इस प्रकार प्रकाशित हुई थी। "श्री बाबू गोपीनाथ खन्ना बाहर गये हुए है और सवाईसिंह के हाते मे सुभीता न रहने के सबब हमने 'ब्राह्मण' आफिस का स्थान बदल दिया है।[४] प्रतापनारायण जी के खन्ना जी से बड़े अच्छे सम्बन्ध थे। खन्ना जी सदैव मिश्र जी को सहायता के लिए तत्पर रहते थे।

लाल माधौराम अरोड़ा

लाला माधौराम हाथरस के रहने वाले थे। यह कानपुर—'मूलचन्द्र मक्खन लाल' फर्म के मुनीम होकर आये थे। आगे चलकर इन्होने अपनी अलग फर्म स्थापित कर ली थी। यह बड़े समाज-सेवी व्यक्ति थे, पीड़ितों और दुखियों की सहायता करना ये अपना धर्म समझते थे। गोरक्षा के भी ये प्रचारक और समर्थक थे। सामाजिक कार्यों से ही लालाजी का मिश्र जी से परिचय हुआ था। प्रतापनारायण जी ने आप ही की सरक्षता और आप ही की कोठी में सर्व प्रथम 'गोरक्षणी सभा' की स्थापना की थी। लाला जी मिश्र जी से बडी श्रद्धा रखते थे और मिश्र जी भी इनके यहां सदैव आते-जाते थे तथा सामाजिक कार्यों पर विचार-विमर्श करते थे।[५] लाला जी अर्थ सम्पन्न व्यक्ति होने के नाते देशोपकारी-कार्यो में आर्थिक सहायता भी देते थे।

---

१ सं० अरोड़ा और त्रिपाठी-'प्रतापनारायण मिश्र' (१९४७ ई०) पृष्ठ १८
२. स० अरोड़ा और त्रिपाठी-'प्रतापनारायण मिश्र' (१९४७ ई०) पृष्ठ १४
३. सं० अरोड़ा और त्रिपाठी 'प्रतापनारायण मिश्र' (१९४७ ई०) पृष्ठ १७-१८
४. 'ब्राह्मण' खण्ड १ संख्या ९ 'विशेष सूचना' मनोहर लाल मिश्र
५ सं० अरोड़ा और त्रिपाठी-'प्रतापनारायण मिश्र' (१९४७ ई०) पृ० २१-२२

बिहारीलाल उर्फ बल्लू बाबू

यह हटिया (कानपुर) निवासी बाबू पूरनचन्द के सुपुत्र थे। कानपुर के प्रसिद्ध रईसो मे इनकी गणना थी।[१] बिहारीलाल जी, मिश्र जी के स्कूल के साथियो मे-से थे। इन दोनो लोगो ने अग्रेजी की शिक्षा एक ही स्कूल मे प्राप्त की थी।[२] 'प्रभाकर' जी के साथ बिहारीलाल जी ने पहले-पहल कानपुर मे नाटको के अभिनय का श्रीगणेश किया था।[३] यह एक कुशल अभिनेता थे। बिहारीलाल जी का जनता पर बडा प्रभाव था। यह कानपुर म्यूनिसिपल बोर्ड के सर्वप्रथम गैर सरकारी चेयरमैन निर्वाचित किये गये थे।[४]

मनोहरलाल मिश्र

मनोहरलाल जी 'रसिक-समाज' (कानपुर) के प्रतिष्ठित सदस्य थे। यह नवम्बर सन् १८८३ मे अप्रैल १८८४ ई० तक 'ब्राह्मण' पत्र के मैनेजर भी रह चुके थे।[५] कुछ वर्षो के तदन्तर इन्होंने 'रसिक प्रेस' और फिर 'कानपुर इण्डियन प्रेस' खोला। 'रसिक समाज' की 'रसिक वाटिका' पत्रिका इसी कानपुर इण्डियन प्रेस से ही प्रकाशित होती थी।[६] प्रारम्भ मे मनोहरलाल का प्रतापनारायण जी से बडा अच्छा सम्पर्क था पर आगे चलकर कुछ मनमुटाव हो गया। मनोहरलाल जी कवितायें भी अच्छी लिखते थे और 'रसिक मित्र' नाम की एक पत्रिका भी निकालते थे पर यह पत्रिका अधिक दिनो तक चल नही सकी।

रंगनारायण वाजपेयी

वाजपेयी जी जिला उन्नाव के रहने वाले थे और मिश्र जी की-ही भांति प्रयागनारायण तिवारी के मान्यो मे से थे। मिश्र जी से इनका परिचय तिवारी जी के ही यहाँ से हुआ। रगनारायण जी, मिश्र जी से बहुत प्रभावित थे और मिश्र जी की नाटक-मण्डली के प्रमुख सदस्यो मे-से थे।[७]

राधामोहन लाल अग्रवाल

ये अगस्त १८९० से लेकर जुलाई १८९१ ई० तक 'ब्राह्मण' के मैनेजर

---

१. सं० अरोड़ा और त्रिपाठी-'प्रतापनारायण मिश्र' (१९४७ ई०) पृ० २२
२. 'वीर भारत' ७ अक्टूबर १९४७ ई० 'पं० प्रतापनारायण मिश्र'—लक्ष्मीकांत त्रिपाठी
३. 'ब्राह्मण' खण्ड ५ सख्या १ 'कानपुर और नाटक'-प्रतापनारायण मिश्र
४. अरोड़ा और त्रिपाठी-'प्रतापनारायण मिश्र' (१९४७ ई०) पृष्ठ २२
५. 'ब्राह्मण' खण्ड २ सख्या ३ 'जरूर पढ़िये-प्रतापनारायण मिश्र
६. स० अरोड़ा और त्रिपाठी-'प्रतापनारायण मिश्र' (१९४७ ई०)पृष्ठ १४
७. सं० अरोड़ा और त्रिपाठी –'प्रतापनारायण मिश्र' (१९४७ ई०) पृष्ठ २२

रहे। यह मिश्र जी के घनिष्ट दोस्तों में-से थे। इन पर मिश्र जी बड़ा विश्वास करते थे।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

भारतेन्दु की देश-सेवा और हिन्दी प्रचार से मिश्र जी इतना प्रभावित थे कि इन्हें पूज्यपाद, प्रेमदेव और प्रेमाचार्य तक मानने लगे थे। इनकी ओर मिश्र जी का झुकाव बचपन से ही था। विद्यार्थी-जीवन में भारतेन्दु की 'कवि-वचन-सुधा' को ये बड़े प्रेम से पढ़ा करते थे और इसी से इन्हें कविता की प्रेरणा मिली।[1] भारतेन्दु जी के मिश्र जी हाथ तक जोड़ते थे और अपने को इनका सेवक कहते थे। इस पर कुछ ब्राह्मणों ने आक्षेप भी किया, पर मिश्र जी ने उनकी कुछ परवाह न की। मिश्र जी का भारतेन्दु की जाति से कोई सम्बन्ध नहीं था वह तो उनके गुणों के उपासक थे। भारतेन्दु जी इनको सदा मित्र की तरह मानते थे। मिश्र जी की 'प्रेम पुष्पावली' की इन्होंने बड़ी प्रशंसा की थी।[2] भारतेन्दु की मृत्यु पर मिश्र जी ने 'शोकाश्रु' शीर्षक से एक बड़ी लम्बी कविता लिखी थी जिसकी कुछ पंक्तियाँ इस प्रसंग में दृष्टव्य हैं—

'भारत शशि प्यारे! डारेहु कस हमरी सुधि बिसराय :
हम तो नाथ सदा के सेवक रहे तुम्हार कहाय॥
चले गये कहु रोवत तजि कै हमते बाहु छुड़ाय।
कहि-कहि हमहिं मित्रवर प्रियवर राखेहु नित हुलसाय॥"[3]

भारतेन्दु जी की मृत्यु के बाद उनकी स्मृति में मिश्र जी ने 'हरिश्चन्द्र सम्वत' चलाया। यही संवत 'ब्राह्मण' के प्रत्येक अंक में निकलता था। स्मरण स्वरूप मिश्र जी ने अपने कई ग्रन्थों के आदि में 'श्री गणेशायनम' के स्थान पर 'श्री हरिश्चन्द्रायनम' भी लिखा है। इससे मिश्र जी की भारतेन्दु के प्रति अपूर्व श्रद्धा का सहज ही परिचय मिल जाता है।

मदनमोहन मालवीय

मालवीय जी (सन् १८६१-१९४६ ई०) से मिश्र जी का परिचय बहुत पहले से था पर एक साथ कार्य करने का सुयोग इन्हें कालाकाकर में प्राप्त हुआ। जब मिश्र जी १८८९ ई० में 'हिन्दुस्थान' के सहकारी सम्पादक होकर कालाकाकर गये उस समय 'हिन्दुस्थान' के प्रधान-सम्पादक मालवीय जी ही थे। मालवीय जी मिश्र जी को गुरुवत् मानते थे। बाबू बालमुकुन्द गुप्त को कालाकाकर बुलाते समय मालवीय जी ने गुप्त जी से कहा था—"आपको 'हिन्दुस्थान' पत्र में हमारे साथ काम करना

---

१. 'निबन्ध-नवनीत', पहिला भाग (१९१९ ई०) पृष्ठ ३
२. प्रतापनारायण मिश्र—'प्रेम पुष्पावली' (१८८३ ई०) 'प्रशंसा पत्र'
३. 'ब्राह्मण' खण्ड २ संख्या १२

चाहिए। कानपुर से पण्डित प्रतापनारायण मिश्र को भी हम बुलाते है।"[१] कालाकाकर मे मालवीय जी मिश्र जी के यहा ही भोजन करते थे। कालाकाकर मे मिश्र जी की पत्नी भी साथ ही थी इससे भोजन बनाने की सुविधा थी। कालाकाकर छोडने के बाद भी मालवीय जी कानपुर मे मिश्र जी से मिलने आते थे और एक-आध दिन उनके यहा ठहरते भी थे।[२]

बालमुकुन्द गुप्त

गुप्त जी से मिश्र जी का परिचय १८८९ ई० मे कालाकाकर में हुआ। गुप्त जी भी मिश्र जी के आने के कुछ दिन बाद 'हिन्दोस्थान' के सहकारी सम्पादक होकर आये थे। मिश्र जी जब तक कालाकाकर मे रहे गुप्त जी का रहना-सहना, उठना बैठना, लिखना-पढना सब एक-साथ होता था।[३] कालाकाकर मे आने से पूर्व गुप्त जी केवल उर्दू जानते थे हिन्दी इनको न आती थी।[४] मिश्र जी ने ही गुप्त जी को हिन्दी पढाई थी। इसी से गुप्त जी मिश्र जी को अपना आदरास्पद-गुरु मानते थे।[५] वे लिखते हैं—"इस लेखक पर (गुप्त जी पर) मिश्र जी की बडी कृपा थी और यह भी उनपर बहुत भक्ति रखता था।"[६] लेकिन मिश्र जी ने सदा गुप्त जी से मैत्री सम्बन्ध ही रखा।[७] कालाकाकर छोडने के बाद मिश्र से बराबर इनका पत्र-व्यवहार होता रहा। कई बार गुप्त जी, मिश्र जी से मिलने कानपुर भी आये। यहा पर मिश्र जी के एक पत्र का जो गुप्त जी को ५ जनवरी, १८९२ ई० को लिखा गया था—कुछ अंश उद्धृत कर रहा हूँ जिससे उनकी घनिष्टता का सहज ही परिचय मिल जायगा।

"अपनी कथा तो कहिए। दुकान पर प्राप्ति का क्या हाल है, शरीर, घर, घरनी, भ्राता, पुत्रादि सब प्रसन्न है? दिन कटने की क्या राह है? हम तो 'ब्राह्मण' सम्पादन, बग-भाषा पुस्तकानुवाद तथा कविता की मौज मे रहते है, यदि दुनिया के झमेलो ने सताया, इकतारा ले बैठे, उसमे भी जी न लगा तो एक माहरू भी है बस! महात्मा सपतराम कहा है? कैसे है? क्या कहते है? अब जो जवाबी पोस्ट

---

१. 'बाल मुकुन्द गुप्त—निबन्धावली' प्रथम भाग (२००७ वि०) पृष्ठ ३४७
२. 'बाल मुकुन्द गुप्त स्मारक ग्रन्थ (२००७ वि०) पृष्ठ ५२
३ 'बाल मुकुन्द गुप्त—निबन्धावली प्रथम भाग, (२००७ वि०) पृष्ठ २
४. '—वही—' '—वही—' पृष्ठ ३४७
५ 'बाल मुकुन्द गुप्त—स्मारक ग्रन्थ' (२००७ वि०) पृष्ठ ४९
६. 'बालमुकुन्द गुप्त—निबन्धावली प्रथम भाग, (२००७ वि०) पृष्ठ २
७. 'बाल मुकुन्द गुप्त—स्मारक-ग्रन्थ' (२००७ वि०) पृष्ठ ४९

कार्ड तो आया जवाब 'नख्वाहराज' जब इधर से जवाब मे देर हो तो कारण केवल आलस्य अथवा जगज्जाल ममझिएगा। और बस फिर कभी।[1]

मिश्र जी की मृत्यु पर गुप्त जी ने बडा ही हृदयस्पर्शी शोक-गीत लिखा था जो ३० जुलाई १८९४ ई० के 'हिन्दी बगवासी' मे प्रकाशित हुआ था।[2] इसके अनन्तर १९०५ ई० मे अपनी फुटकर कविताओ की सग्रह पुस्तक 'स्फुट कविता' मिश्र जी की पवित्र-आत्मा को श्रद्धा पूर्वक समर्पित की थी और इसे 'भारत मित्र' के ग्राहको को उपहार बाटा था।[3] अब भी गुप्त जी के सग्रहालय (१४७ हरिसन रोड,कलकत्ता) मे मिश्र जी के पाच पत्र (गुप्त जी को लिखे हुए) सगृहीत है।

बालकृष्ण भट्ट

'हिन्दी-प्रदीप' सम्पादक बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण जी से उम्र मे १२ वर्ष बडे थे। मिश्र जी की भट्ट जी से बडी मित्रता थी। दोनो ही समान रूप से एक दूसरे का सम्मान करते थे। कभी भट्ट जी मिश्र जी को, कभी मिश्र जी भट्ट जी को 'गुरू' कहकर सम्बोधित करते थे। सन् १८८७ मे 'लिलार' शीर्षक निबन्ध मे भट्ट जी लिखते हैं—"हमारे कानपुर के सहगामी सम्पादक शिरोमणि 'ब्राह्मण' 'भों' पर अपने कलम की कारीगरी का उम्दा नमूना दिखला चुके है उन्ही को अपना शिक्षा-गुरू मान हम भी आज 'लिलार' पर अपनी लेखनी की बानगी का दो एक नमूना अपने पाठको को दिया चाहते है।"[4] इसी प्रकार सन् १८८८ ई० में मिश्र जी 'काम' शीर्षक निबन्ध मे लिखते है—"हिन्दी प्रदीप के सम्पादक विद्या, बुद्धि, वय और स्नेह आदि की रीति से हमसे ऐसे श्रेष्ठ हैं कि सनातन शिष्टाचार (श्रेष्ठ ऋषियो का आचार) के अनुसार हम उन्हे अहंकार पूर्वक गुरू या पिता समझ सकते है। उन्होने एक बार 'मन' के वर्णन मे अपने कलम की कारीगरी दिखाई थी, और हमारे आर्य कवियों ने 'काम' का नाम मनोभव अर्थात् मन का पुत्र लिखा है, अत: हम अपने निज अधिकार (रुतबा दर्जा) के अनुसार 'काम' का बखान करते है।"[5] इसके अतिरिक्त मिश्र जी के देहावसान पर भट्ट जी ने अपने जो हृदयोद्‌गार व्यक्त किये, उनके एक-एक शब्द मे प्रेम लिपटा हुआ दिखाई देता है।[6] मिश्र जी और भट्ट जी दोनो ही दूसरे के गुणों के प्रशंसक थे और दोनों मे मित्रत्व का घनिष्ट सम्बन्ध था।

---

१. 'बालमुकुन्द गुप्त—स्मारक ग्रन्थ' (२००७ वि०) पृष्ठ १०

२. 'बाल मुकुद गुप्त निबन्धावली' प्रथम भाग २००७ वि) पृष्ठ ६५४-५६

३. 'बाल मुकुन्द गुप्त—स्मारक ग्रन्थ' (२००७ वि०) पृष्ठ ३१

४. 'हिन्दी प्रदीप' अक्टूबर से दिसम्बर १८८७ ई० पृष्ठ १५

५. 'ब्राह्मण' खण्ड ५ सख्या २ 'काम'—प्रतापनारायण मिश्र

६. 'हिन्दी प्रदीप' जिल्द १७ संख्या ६-७-८ पृष्ठ ४२

श्रीधर पाठक

पाठक जी से भी मिश्र जी के अच्छे सम्बन्ध थे वैसे खडी बोली और ब्रज-भाषा को लेकर इनसे और मिश्र जी से बड़ा वाद-विवाद हुआ था पर वह विवाद साहित्य से सम्बन्धित था, व्यक्तिगत कोई द्वेष नही था। 'ऊजड गाँव' (कविवर गोल्ड-स्मिथ कृत 'डेजर्टेड विलेज' का पद्यमय अनुवाद) की अलोचना करते हुए मिश्र जी लिखते है—"इस ग्रन्थ को हमारे प्रिय मित्र पडितवर श्रीधर पाठक ने बडी रसज्ञता से लिखा हैं । भाषा का माधुर्य, कविता का लावण्य, सहृदय मनोहारित्व इत्यादि गुणो के अतिरिक्त योरपीय विचाराशो का एतद्देशीय लोगो को पूर्ण स्वादु देने मे भी सच्ची दक्षता दिखलाई है।[1] मिश्र जी से पाठक जी का पत्र व्यवहार भी होता था । १२ जुलाई १८८८ ई० के पत्र मे मिश्र जी पाठक जी को लिखते है—"हुजूर का प्रसाद शिरोधार्य है इसका क्या कहना है यह तो अपना धर्म-ग्रन्थ ठहरा, यहाँ श्रीधर पाठक द्वारा विरचित 'श्री हरिश्चन्द्राष्टक' कृति की ओर सकेत है । यह कृति श्रीधर पाठक के द्वारा मिश्र जी के पास समीक्षार्थ भेजी गई थी । इसकी समीक्षा मिश्र जी ने 'ब्राह्मण' खण्ड ४ सख्या १२ (१५ जुलाई, १८८८ ई०) मे निकाली थी । ब्राह्मण के साथ बाटना चाहिए तो २०० दो सौ प्रति भेज दीजिए।"[2]

राधाकृष्ण दास

ये भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के फुफेरे भाई थे। प्रतापनारायण जी भारतेन्दु से मिलने काशी जाया करते थे वही राधाकृष्ण जी से मिश्र जी की मित्रता हुई। राधाकृष्ण जी मिश्र जी का बडा सम्मान करते थे। 'प्रेम पुष्पावली' पर अपनी सम्मति देते हुए वे लिखते हैं—"प्रेमपात्र, प्रिय पात्र, श्रीयुत पडित प्रतापनारायण मिश्र जी प्रणीत 'प्रेम पुष्पावली' देखकर चित्त प्रेम से परिपूर्ण हो गया। इसके प्रति अक्षर से प्रेम, भक्ति, सहृदयता और रस टपका पडता है।[3]" राधाकृष्ण से मिश्र जी बड़ा स्नेह करते थे उक्त सम्मति पर वह कहते है—"यह सब प्यारे कृष्णदास की प्रशंसा मे किस योग्य हू।"[4]

राजा रामपाल सिंह

राजा साहब मिश्र जी का बड़ा आदर करते थे और मिश्र जी भी उनकी

---

१. 'ब्राह्मण' खण्ड ६ संख्या ६ (,समालोचना')

२. "प्रतापनारायण-ग्रन्थावली' प्रथम खण्ड (२११४ वि०) प्रारम्भ मे संकलित

३ प्रतापनारायण मिश्र-'प्रेम पुष्पावली' (१८८३ ई०) राधाकृष्ण दास की राधा-सम्मति

४ प्रतापनारायण मिश्र-'प्रेम पुष्पावली' (१८८३ ई०) राधाकृष्णदास की सम्मति पर मिश्र जी के विचार

देश-हितैषिता से बहुत प्रसन्न थे। मिश्र जी लिखते है—"तीन जनवरी का 'हिन्दोस्थान' देख कर और भी खेद हुआ कि यह बिचारा फरवरी से समाप्त ही हुआ चाहता है। केवल एक सौ बीस ग्राहकों के आसरे दैनिक पत्र के दिन चले ? तीन वर्ष चला भी तो कुछ हिंदुस्तानियों की करतूत से नहीं केवल श्रीमान विशनवंश भूषण समर विजयी राजा रामपाल सिंह महोदय के उत्साह से चला। यदि वे प्रति मास सैकड़ों रुपए की हानि सह के इसे जीवित न रखते तो अब तक कब का हो बीता होता। पर वे कबतक इस नित्य की हानि को अंगेजें।"[1] राजा रामपाल सिंह 'हिन्दोस्थान' दैनिक पत्र के मालिक थे। जब मिश्र जी कालाकाकर 'हिन्दोस्थान' के सहकारी सम्पादक होकर गये तो रामपाल सिंह इनसे 'छन्द-शास्त्र' पढ़ते थे और अपनी कविताओं का संशोधन कराते थे।[2] आगे चलकर राजा साहब से मिश्र जी का मनमुटाव हो गया और वह कालाकाकर छोड़कर चले आये। फिर भी वे राजा साहब से द्वेष नहीं रखते थे। वे अपने पाठकों से कहते है—"'हिन्दोस्थान' के साथ वैसी ही स्नेह दृष्टि रखनी चाहिए जैसे तब रखते थे जब मै कालाकाकर मे था।"[3] सत्यवादी और चाटुकारिता से दूर होने के कारण उनका प्राय लोगो से मनमुटाव हो जाता था। मनमुटाव होने पर भी मिश्र जी मे किसी प्रकार की प्रतिशोध-भावना नहीं रहती थी।

बाबू रामदीन सिंह

बाबू साहब का जन्म बलिया जिले के रपुरा तालुके मे हुआ था। बड़े होने पर ये पटना चले आये और वहीं—बाकीपुर मे 'खड्ग विलास प्रेस' की स्थापना की।[4] हिन्दी से उन्हे बड़ी रुचि थी। उनकी सदा यही इच्छा रहती थी कि उनका प्रेस हिन्दी के काम मे सबसे आगे बढ़ जाय। पुस्तकों के ऐसे प्रेमी थे कि शरीर की धूल न झाड़ते थे पर पुस्तकों की धूल झाड़ते थे। वह ब्राह्मणों के बडे भक्त थे।[5] उनके हिंदी प्रेम ने ही मिश्र जी को अपनी ओर आकृष्ट किया था। बाबू साहब मिश्र जी का बडा आदर करते थे। १८९९ ई० मे जब 'ब्राह्मण' की स्थिति बहुत बिगड़ गई और उसके बन्द होने की सूचना निकल गई तो रामदीन सिंह ने उसका पूरा भार अपने ऊपर

---

१. 'ब्राह्मण' खण्ड ५ संख्या ६ ('अहह कष्टमपंडितता विधेः')
२. 'रामराज्य' (कानपुर) १ अक्टूबर १९५६ ई० 'पूज्य श्री प्रतापनारायण मिश्र' कविवर बचनेश
३. 'ब्राह्मण' खण्ड ६ संख्या १२ ('सूचना ! सूचना !! सूचना !!!')
४. 'बालमुकुन्द गुप्त-निबन्धावली' प्रथम भाग (२००७ वि)-पृष्ठ २९
५, '—वही—' '—वही—' —,, ३१

ले लिया और वह 'खड्ग विलास प्रेस' के प्रबन्ध से प्रकाशित होने लगा। तबसे मिश्र जी इनके बड़े प्रशंसक हो गये।[1]

मिश्र जी ने अपनी सम्पूर्ण पुस्तको का भी अधिकार रामदीन सिंह को दे दिया था और सभी पुस्तके 'खड्गविलास प्रेस' मे ही प्रकाशित होनी थी।[2] मिश्र जी की मृत्यु के बाद भी उनका बहुत सा साहित्य 'खड्गविलास प्रेस' मे छपकर प्रकाशित हुआ पर उसकी अव्यवस्था के कारण प्रचार नही हो सका। रामदीन सिंह मिश्र जी के बडे भक्त थे। वह मिश्र जी की सचित्र-जीवनी निकालना चाहते थे पर वह इसे पूरा न कर पाये और स्वर्गवासी हो गये।[3]

शिवनाथ शर्मा

शर्मा जी 'आनन्द' (लखनऊ) पत्र का सम्पादन करते थे और हास्य-रस के कुशल लेखक थ। मिश्र जी से इनकी खूब पटती थी। मिश्र जी जब लखनऊ जाते थे तब इन्ही के यहाँ ठहरते थे।[4] शर्मा जी और मिश्र जी की प्रकृति मे बहुत-कुछ साम्य था दोनों ही मिलनसार, स्वाभिमानी तथा हास्य और विनोदप्रिय थे। साथ ही दोनो एक-दूसरे का बडा सम्मान करते थे।

शशिभूषण चटर्जी

चटर्जी जी भी मिश्र जी के साथ कालाकाकर मे 'हिन्दोस्थान' के सहकारी सम्पादक थे। इनसे मिश्र जी की बडी दोस्ती थी। बाबू बालमुकुन्द गुप्त, शशि बाबू और प्रतापनारायण मिश्र एक ही स्थान पर (प्राय. गुप्त जी के निवास स्थान पर) एकत्रित होकर– 'हिन्दोस्थान' के लिए लेख आदि लिखते थे।[5] सायकाल गगा तट पर टहलने भी सभी लोग साथ-साथ जाते थे। कभी-कभी चांदनी रात्रि मे रेती पर टहलते हुए विभिन्न प्रकार की अच्छी-अच्छी बाते करते थे। कालाकाकर मे ये लोग बड़े स्नेह से एक परिवार की तरह जीवन व्यतीत करते थे।

पाण्डे प्रभुदयालु

प्रभुदयालु जी आगरा ज़िले के पिनाहट नामक कसबे के निवासी थे। इनके पिता कानपुर मे रहते थे इससे पाण्डे जी ने कानपुर मे ही पिता के पास रहकर शिक्षा प्राप्त की।[6] यही पर इनका प्रतापनारायण जी से सत्सग हुआ और मिश्र जी ने इनको हिन्दी पढायी। इनका मिश्र जी से शिष्य गुरु का सम्बन्ध था। पाण्डे

१ 'ब्राह्मण खण्ड ८ संख्या १ ('मगल पाठ')
२. 'ब्राह्मण' खण्ड ९ संख्या ४ (जरा पढ़ लीजिए)
३. 'बालमुकुन्द गुप्त-निबन्धावली' प्रथम भाग (२००७ वि०)-पृष्ठ ३१।
४. प्रेमनारायण टंडन 'प्रताप समीक्षा' (१९३९ ई०) 'साहित्यिक मित्र'
५. 'बालमुकुन्द गुप्त-निबन्धवली प्रथम भाग (२००७ वि०) पृष्ठ ३५०
६. 'बालमुकुन्द गुप्त-निबन्धावली' प्रथम भाग (२००७ वि०) पृष्ठ २६

जी मिश्र जी को पिता, गुरु-सभी कुछ मानते और उनकी सेवा करते थे। आगे चलकर मिश्र जी के ही प्रयास से पाण्डे जी 'हिन्दी-बंगवासी' (कलकत्ता) के सहायक सम्पादक नियुक्त हुए। मिश्र जी का इन पर पुत्रवत् प्रेम था। बालमुकुन्द गुप्त जब 'हिन्दी-बंगवासी' के लिए कलकत्ता जा रहे थे तब मिश्र जी ने कानपुर में उनसे कहा था—"हमारा प्रभुदयालु भी वहाँ है, उसका ध्यान रखना।"[1] पाण्डे जी की भाषा-शैली आदि पर मिश्र जी की पूरी छाप थी।

इन उपर्युक्त मित्रों के अतिरिक्त गयाप्रसाद कपूर[2], डॉ० भोलानाथ मिश्र[3], स्वामी व्लाक्टानन्द[4], कल्लूमल[5], चन्द्रिकाप्रसाद मिश्र[6], रामकृष्ण खत्री[7], भगवानदास[8], बंशीधर[9], भैरवप्रसाद वर्मा[10], रामदास[11], देवीप्रसाद शुक्ल[12], जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी[13], अमृतलाल चक्रवर्ती[14], एम० डी० मोल[15], शिवराम पण्ड्या[16], त्रिलोकनाथ बनर्जी[17], अलीहसन[18], रामनारायण महेसरी[19], लाला सीताराम[20],

---

१. 'बालमुकुन्दगुप्त—निबन्धावली' प्रथम भाग (२००६ वि०) पृष्ठ २८
२. 'ब्राह्मण' खण्ड २, संख्या १ 'वर्षारम्भ' : प्रतापनारायण मिश्र
३ 'ब्राह्मण' खण्ड ४, संख्या १ 'धन्यवाद' : प्रतापनारायण मिश्र
४ सं० अरोड़ा और त्रिपाठी : 'प्रतापनारायण मिश्र' (१९४६ ई०) पृ० १६-१७
५ 'ब्राह्मण' खण्ड १, संख्या २ 'दोहा' : प्रतापनारायण मिश्र
६ 'ब्राह्मण' खण्ड ५, संख्या ८ 'आवश्यक सूचना' : प्रतापनारायण मिश्र
७. 'ब्राह्मण' खण्ड ५, संख्या ३ 'सबकी देख ली' : —वही—
८. —वही— —वही—
९. 'ब्राह्मण' खण्ड २, संख्या १ 'वर्षारम्भ' : —वही—
१०. 'ब्राह्मण' खण्ड ५, संख्या १ 'कानपुर और नाटक' —वही—
११. 'ब्राह्मण' खण्ड ५, संख्या ३ 'सबकी देख ली' : —वही—
१२. 'वीर भारत' ७ अक्टूबर, १९४७ ई० 'पं० प्रतापनारायण मिश्र' : लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी
१३. सं० प्रेमनारायण टंडन : 'प्रताप समीक्षा' (१९३९ ई०) 'साहित्यिक मित्र'
१४. —वही— —वही— —वही—
१५. 'ब्राह्मण' खण्ड ३, संख्या ८ 'सच्चे जी से धन्यवाद' —वही—
१६. 'ब्राह्मण' खण्ड १, संख्या ६ पृष्ठ ७१
१७. सं० अरोड़ा और त्रिपाठी : 'प्रतापनारायण मिश्र' (१९४७ ई० पृ० १९
१८. सं० प्रेमनारायण टंडन : 'साहित्यिकों के संस्मरण' (१९४३ ई०) पृ० ६-७
१९. 'ब्राह्मण' खण्ड १, संख्या ३ 'कानपुर' : प्रतापनारायण मिश्र
२०. 'तेरहवां हिन्दी-साहित्य'सम्मेलन कानपुर का कार्य विवरण' (दूसरा भाग) 'कानपुर का ऐतिहासिक महत्व' : लाला सीताराम पृष्ठ ५

राधाचरण गोस्वामी,[१] शिवप्रसाद सितारेहिन्द,[२] गोपालराम गहमरी,[३] मिस्टर ए० ओ० ह्यूम,[४] माधवप्रसाद मिश्र,[५] देवकीनन्दन तिवारी,[६] ईश्वरचन्द्र विद्यासागर,[७] अम्बिकादत्त व्यास,[८] मुंशी समर्थदान,[९] सत्यानन्द अग्निहोत्री,[१०] दुर्गाप्रसाद मिश्र,[११] बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन',[१२] गोविन्दनारायण मिश्र,[१३] अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध',[१४] स्वामी भास्करानन्द सरस्वती[१५] आदि भी मिश्र जी के मित्रो मे—से थे। मिश्र जी की इस मित्र-मण्डली को देखकर उनकी मिलनसारिता, सामाजिकता और सहृदयता का सहज ही परिचय मिल जाता है। उनकी देश-हितैषिता और नि:स्वार्थ-सेवा से प्रभावित होकर सामान्य जनता तक उनकी प्रशसा करती थी। देश के प्राय सभी सुधारको से इनकी मित्रता थी—चाहे वे पूंजीपति हो अथवा रक—किसी मे, किसी प्रकार का ये विभेद नही मानते थे। यहाँ तक कि यदि अज्ञानी भी देश-सेवी है तो मिश्र जी उसके भक्त थे। देश-सेवियो की मिश्र जी बढा-चढा कर प्रशसा भी करते थे जिससे वे उत्साहित होकर, अधिक तत्परता से देश-सेवा मे रत हो सके। सहयोग के पक्षपाती होने के कारण मिश्र जी अपने मित्रों को प्रेरणा देते भी थे और उनसे प्रेरणा लेते भी थे। इसलिए उनकी मण्डली इतनी व्यापक और सुगठित थी।

---

१. 'ब्राह्मण' खण्ड २, संख्या ११ 'प्रयाग हिन्दू-समाज का महोत्सव' : प्रतापनारायण मिश्र
२. सं० अरोड़ा और त्रिपाठी : 'प्रतापनारायण मिश्र' (१९४७ ई०) पृष्ठ १०
३. 'सरस्वती' जून, (१९३८ ई०) स्व० 'पं० प्रतापनारायण मिश्र' : गोपालराम गहमरी
४. सं० प्रेमनारायण टंडन : 'साहित्यिकों के संस्मरण' (१९४३ ई०) पृष्ठ ८
५. 'बालमुकुन्द गुप्त-स्मारक ग्रंथ' (२००७ वि०) पृष्ठ ५४
६. 'बालमुकुन्द गुप्त-निबन्धावली' प्रथम भाग (२००७ वि०) पृ० १८
७. सं० अरोड़ा और त्रिपाठी : 'प्रतापनारायण मिश्र' (१९४७ ई) पृष्ठ १०
८. '—वही—' '—वही—' पृष्ठ १०
९. '—वही—' '—वही—' पृष्ठ १०
१०. '—वही—' '—वही—' पृष्ठ १०
११. '—वही—' '—वही—' पृष्ठ १०
१२. '—वही—' '—वही—' पृष्ठ १०
१३. स० प्रेमनारायण टडन : 'प्रताप समीक्षा' (१९३९ ई०) साहित्यिक मित्र
१४. 'ब्राह्मण' खण्ड ४, सख्या १२ (हरिऔध जी का पत्र)
१५. ''ब्राह्मण' खण्ड ५, संख्या १ 'कन्नौज मे तीन दिन' : प्रतापनारायण मिश्र

दूसरा अध्याय

तत्कालीन परिस्थितियाँ

कवि या लेखक अपने समय का द्रष्टा और स्रष्टा, दोनो ही होता है। वह अपने समय से प्रभावित भी होता है और उसे प्रभावित भी करता है। उसका तत्कालीन स्थिति से अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। जैसी समाज की स्थिति होती है उसी के अनुरूप उसके विचारों का सृजन होता है। सामाजिक प्राणी होने के नाते कवि या लेखक पर उसके समय की प्रत्येक गति-विधि का प्रभाव पड़ता है और वही प्रभाव प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप मे उसके साहित्य मे अभिव्यक्त होता है। 'हितेन सह सहित' के अनुसार साहित्य लोक-कल्याण से पृथक् नही जा सकता। साहित्यकार सदैव यह प्रयत्न करता है कि उसका साहित्य अधिक से अधिक मानवमात्र के लौकिक या पारलौकिक जीवन का सम्बल बन सके। और यह तभी हो सकता है जब साहित्यकार अपने समय की प्रत्येक स्थिति के प्रति जागरूक हो तथा लोक की आवश्यकता के अनुसार अपने साहित्य का निर्माण करे। अतः किसी भी साहित्यकार के साहित्य के अध्ययन के लिए यह आवश्यक है की उसके समय की प्रत्येक स्थिति का, जिसमे रहकर साहित्यकार का साहित्य पल्लवित, पुष्पित और फलित हुआ है—सम्यक् ज्ञान प्राप्त कर लिया जाय। बिना साहित्यकार की तत्कालीन स्थिति को देखे उसके साहित्य की मूलवर्तिनी प्रवृत्तियों का अवगाहन नही किया जा सकता। साहित्यकार पर उसके समय की राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक-साहित्यिक सभी स्थितियो का प्रभाव पड़ता है। यहाँ पर हम प्रतापनारायण जी के समय की प्रमुख-प्रमुख स्थितियो का विवेचन करेंगे, जिससे उनके साहित्य को समझने में सहूलियत हो सके। साथ ही इन स्थितियो का मिश्र जी के ऊपर कहां तक प्रभाव पड़ा? यह भी उनके दृष्टिकोण को समझने के लिए स्पष्ट किया जायगा।

राजनीतिक स्थिति

मिश्र जी का जीवन-काल सन् १८५६ से १८९४ ई० तक है। मिश्र जी के जन्म के एक वर्ष बाद-सन् १८५७ ई० मे देश-व्यापी सिपाही-विद्रोह हुआ। जिसका प्रभाव देश के सभी कार्य-क्षेत्रों पर पड़ा। राजनीतिक क्षेत्र में तो इसका प्रभाव अविस्मरणीय है। इस विद्रोह के बाद राजनीतिक ढाँचा एक नये सिरे से निर्मित हुआ।[1] इसलिए इस विद्रोह के बाद की ही स्थिति का विवेचन यहाँ उपयुक्त होगा।

1. Jawahar Lal Nehru 'The Discovery of India' (1960) P. 328-29

सन् १८५७ के विद्रोह को अंग्रेजो ने शक्ति के बल से, बडी अमानुषिक-रीति से दबाया जिससे भारतीयो को बडा असतोष हुआ। वे समझने लगे कि अंग्रेजी-राज्य से भारत का कल्याण असम्भव है पर शक्ति के अभाव मे वे कुछ कर न सके। विद्रोह के पश्चात् 'ईस्ट इण्डिया कम्पनी' का राज्य समाप्त हो गया, और भारत का शासन ब्रिटिश मत्रि-मण्डल के हाथ मे चला गया। लार्ड कैनिंग (१८५६ से १८६१) भारत के प्रथम वाइसराय तथा गवर्नर-जनरल नियुक्त हुए। भारत मे फैले हुए असतोष को शान्त करने के लिए पहली नवम्बर, १८५८ को ब्रिटिश सम्राज्ञी विक्टोरिया का घोषणा-पत्र घोषित किया गया और उसके द्वारा यह विश्वास दिलाया गया कि प्रजा के लोग चाहे वे किसी जाति, रंग और धर्म के हो, बिना किसी रोक-टोक और भेद-भाव के सरकारी नौकरियो मे शिक्षा, योग्यता और कार्यक्षमता के अनुसार भरती किये जायेगे। देशी राजाओ के अधिकारो, प्रतिष्ठा तथा गौरव का अपने अधिकारो, प्रतिष्ठा तथा गौरव के समान ध्यान रक्खा जायगा। किसी व्यक्ति को उसकी धार्मिक भावनाओ तथा विश्वासों के कारण पक्षपात, उपेक्षा, घृणा अथवा अयोग्यता की दृष्टि से नही देखा जायगा। सब लोगो को कानून की ओर मे समान तथा पक्षपात रहित सुरक्षा प्राप्त होगी।[1] इस घोषणा-पत्र द्वारा भारतीयो के प्रति बडी सहृदयता और स्नेह के भाव व्यक्त किये गये। इस घोषणा-पत्र से भारत की निराश और 'ईस्ट इण्डिया कम्पनी' के कुकृत्यो से विक्षुब्ध जनता को बड़ा आश्वासन मिला और उसने महारानी की मुक्त-कण्ठ से प्रशसा की।

कैनिंग ने विद्रोह के समय की दमन नीति को छोडकर शातिपूर्ण नीति को अपनाया, जिससे इनके समय मे देश मे पूर्ण शाति रही। इन्होने कई सुधारात्मक कार्य भी किये। पाश्चात्य-शिक्षा का भी इनके समय मे बडा प्रचार हुआ। कलकत्ता, बम्बई, मद्रास मे विश्वविद्यालयो की स्थापना हुई। कृषि सुधार मे विशेष ध्यान दिया गया। कैनिंग बड़ा परीश्रमी, कर्त्तव्यपरायण और उदार हृदय वाला व्यक्ति था इसने बड़े धैर्य के साथ भारत की स्थिति को अपने बस मे करने का प्रयत्न किया। सन् १८६१ मे पजाब, राजपूताना, आगरा और अवध के कुछ भागो मे भीषण अकाल पड़ा, जिसमे जनसख्या का लगभग १० प्रतिशत भाग मृत्यु का ग्रास बना।[2] १८६२ ई० मे लार्ड एलगिन वाइसराय हुए। इनके समय मे कोई विशेष सुधार नही हुए। इन्होने कैनिंग की ही नीति को अपना आधार बनाया।

---

१. डा० बी० डी० महाजन तथा डा० आर० आर० सेठी - भारत का संवैधानिक इतिहास' (१९५७ ई०) पृष्ठ ३०-३१

२. डा० वी० डी० महाजन और डा० आर० आर० सेठी - 'ब्रिटिशकालीन भारत का इतिहास' (१९६० ई०) - पृष्ठ २२९

सन् १८६४ से १८६९ ई० तक सर जान लारैन्स भारत के वाइसराय रहे। ये बड़े ही कर्मठ और दूरदर्शी थे। इनके समय मे कृषि-सम्बन्धी बहुत से सुधार हुए। 'पजाब काश्तकारी अधिनियम' मे किसानो के अधिकार कुछ मामलो मे स्वीकृत किये गये। लेकिन इसी बीच भूटान और एबीसीनिया के साथ युद्ध होने के कारण भारत पर बहुत-सा कर्ज हो गया। १८६६ ई० में उडीसा तथा १८६८-६९ मे राजपूताना और बुन्देल खण्ड मे भयकर अकाल पडा जिसमें सैकडों मनुष्यों की जाने गयी, पर इसके रोकने का सरकार की ओर से कोई समुचित प्रबन्ध नही किया गया।[1] जनता मे इससे बडा असतोष फैला। लारैन्स के बाद लार्ड मेयो (१८६९-७२ ई०) भारत के वाइसराय हुए। इनको बडी लोकप्रियता प्राप्त हुई। इन्होने भारतीय नरेशो के बालको की शिक्षा के लिए अजमेर मे 'मेयो कालेज' की स्थापना की। इनके काल मे देश मे शान्ति तो अवश्य रही पर आर्थिक दृष्टि से कोई सुधार नही हुआ। विकेन्द्रीकरण के आयोजन (१८७० ई०) से जनता पर नये-नये प्रान्तीय-कर लगाये गये।[2] इससे लोगों मे बडा असतोष फैला। सन् १८६९ मे उत्तर भारत मे दुर्भिक्ष पड़ा, जिसमें बहुत से लोग अकाल काल-वलित हुए। फिर भी मेयो की शान्ति-पूर्ण-नीति से देश मे किसी प्रकार का विद्रोह नही हुआ।

मेयो के बाद लार्ड नार्थब्रुक (१८७२-७६ ई०) भारत के वाइसराय होकर आये। ये एक कुशल राजनीतिज्ञ थे। इनके समय मे भी बगाल मे (१८७० ई०) भीषण अकाल पडा।[3] भारतीयों की आर्थिक स्थिति सुधारने का इन्होने भी कोई प्रयत्न नहीं किया। इनके बाद लार्ड लिटन के समय में (१८७६-८० ई०) भारत मे बडी ही अशान्ति रही। लिटन की पक्षपातपूर्ण और प्रतिक्रियावादी नीति से जनता को बडी ठेस पहुची। इनके ही समय मे द्वितीय अफगान-युद्ध हुआ जिसमें भारत को धन, जन से बडी हानि उठानी पड़ी। यह युद्ध लिटन की साम्राज्यवादी नीति का परिणाम था। इसके अतिरिक्त यातायात के साधनों और तारों की व्यवस्था हो जाने से भारत और इग्लैड की दूरी बहुत-कम हो गयी। विदेशी वस्तुएं अधिक मात्रा मे देश मे आने लगी, जिससे शोषण-नीति मे वृद्धि हुई। सन् १८७८ मे लंकाशायर के मिल-मालिको के शोर मचाने पर भारतीय मिलों के कपडो पर कर लगा दिया दिया गया, जिससे भारतीय कपड़े की खपत कम हो गयी। लन्दन

---

१. डा० बी० डी० महाजन और डा० आर० आर० सेठी - 'ब्रिटिशकालीन भारत का इतिहास' (१९६० ई०) - पृष्ठ २३१

२. डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय—'अधुनिक हिन्दी साहित्य' (१९५४ ई०) पृष्ठ - ५८

३. डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय-'आधुनिक हिन्दी साहित्य' (१९५४ ई०) पृ० ५९

में होने वाली सिविल सर्विस की परीक्षा मे बैठने वालों की उम्र घटाने का कारण भारतीयो को इस परीक्षा मे न बैठने देना ही था। इससे भारतीयो मे बडी प्रतिक्रिया हुई।[1] सन् १८७७ मे लिटन ने दिल्ली मे एक शानदार दरबार किया और विक्टोरिया को भारत की साम्राज्ञी घोषित किया जिससे देशी राजाओ की स्थिति मे सदेह उत्पन्न होने लगा। इस दरबार मे भारत का बहुत-सा धन व्यय हुआ और वह भी ऐसे समय में जब मद्रास, हैदराबाद, मध्यप्रदेश, पजाब, बम्बई और मैसूर मे भयंकर अकाल तथा बुखार और चेचक की बीमारियां फैल रही थी।[2] इधर भारतीय काल के गाल मे समा रहे थे उधर लिटन धन का अपव्यय करके ब्रिटिश-शासको पर अपनी टही जमा रहा था। सन् १८७८ मे लिटन ने 'वर्नाक्युलर प्रेस ऐक्ट' बनाकर भारतीय भाषाओ मे प्रकाशित समाचार पत्रो की स्वाधीनता भी छीन ली। लिटन के इन सब कार्यो से जनता मे असतोष तो बढा ही राष्ट्रीय चेतना के भी बीज अंकुरित होने लगे। लिटन का शासन भारत के लिए बडा कष्टकर रहा।

लिटन के जाने के बाद लार्ड रिपन (सन् १८८० से १८८४ ई०) भारत के वाइसराय नियुक्त हुए। इन्होने अपनी उदारवादी नीति से जनता में पुन: शान्ति स्थापित करली। इनके समय मे साम्राज्यवादी नीति बिल्कुल समाप्त हो गयी और द्वितीय अफगान-युद्ध भी स्थगित कर दिया गया। इन्होने १८८२ ई० मे लिटन द्वारा लगाये गये 'प्रेस ऐक्ट' को रद्द कर दिया। रिपन के इस कार्य की भारतवासियो ने मुक्त-कठ से प्रशसा की और इनसे बडी श्रद्धा करने लगे।[3] शिक्षा के क्षेत्र मे भी रिपन ने बड़ा कार्य किया। इनके कार्यकाल में शिक्षा-सस्थाओं को पर्याप्त आर्थिक सहायता दीं गयी, और 'स्थानीय स्वायत्त शासन' (१८८२) स्थापित करने का प्रयत्न किया गया। इन्ही के समय मे (१८८३ ई०) 'इलबर्ट-बिल' का आन्दोलन प्रारम्भ हुआ जिसमे इन्होंने पूरी सहानुभूति दिखायी। १८८४ ई० मे जब इन्होने अपना पद छोडा तब सम्पूर्ण देश में बड़ा शोक मनाया गया।[4] इनका सा जनमत और आदर किसी भी वाइसराय को नही प्राप्त हुआ। इनके बाद लार्ड डफरिन (१८८४-१८८८ ई०) भारत के वाइसराय हुए। अधिक वृद्ध होने के कारण डफरिन अपने कार्य-काल मे कोई महत्वपूर्ण कार्य नही कर सके। रेलो और सैनिको के व्यय मे वृद्धि हो जाने के

---

१. "रामराज्य' (कानपुर) १ अक्टूबर १९५६ ई० 'प० प्रतापनारायण मिश्र का ब्राह्मण', लक्ष्मीकांत त्रिपाठी

२. राम गोपाल-'भारतीय राजनीति' (२०११ वि०)-पृष्ठ ८०

३. डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय-'आधुनिक हिन्दी साहित्य' (१९५४ ई०)-पृष्ठ ६१

४. डा० वी० डी० महाजन और डा० आर० आर० सेठी-"ब्रिटिशकालीन भारत का इतिहास' (१९६० ई०)-पृष्ठ २४६

कारण भारत पर कर्ज पहले से भी अधिक बढ गया। सन् १८८५ मे 'इडियन नेशनल कांग्रेस' का जन्म हुआ और डफरिन ने भी कांग्रेस की नीति का समर्थन किया। इनके कार्य-काल मे जनता प्राय. शान्त रही। १६ फरवरी, १८८७ ई० मे महारानी विक्टोरिया की रजत-जयन्ती मनायी गई, जिसमे सम्पूर्ण भारत ने सहयोग दिया। डफरिन के जाने के बाद लार्ड लैंसडाउन (१८८८-१८९३ ई०) भारत के वाइसराय नियुक्त हुए। यह भी लिटन की भांति घोर प्रतिक्रियावादी थे। इनसे भी भारत का कोई कल्याण नही हुआ। सन् १८९४ मे लार्ड एलगिन द्वितीय भारत के वाइसराय हुए और इसी वर्ष जुलाई में प्रतापनारायण जी का देहान्त हो गया। इससे आगे की स्थिति का यहा उल्लेख करना कोई मूल्य नही रखता।

प्राय सभी वाइसरायो ने (उदारवादियो को छोडकर) भारत पर दोहरी नीति से शासन किया। ऊपर से तो वे जनता के प्रति बडी साहानुभूति दिखाते और बड़े-बडे प्रलोभन देने पर भीतर से उनकी जडें काटते। १८५७ के विद्रोह से अंग्रेज यह भलीभाँति समझ चुके थे कि भारत पर शासन करना टेढी-खीर है इसलिए वे भीतर ही भीतर शोषण नीति को अपनाते चले जा रहे थे और पूरी तरह से भारतीय धन के अपहरण मे दत्तचित थे। कहना न होगा कि अपने शासन काल मे अंग्रेज रूपी घुन ने भारत रूपी वृक्ष को पूरी तरह मे खोखला कर दिया। अब उसका केवल जीर्ण-शीर्ण ढाँचा ही शेष था। अंग्रेजो की शोषण नीति को जागरूक भारतीय जल्दी ही समझ गये। ब्रिटिश साम्राज्यवाद के कारण जनता मे एक राष्ट्र के भाव उत्पन्न हुए और उसके एक सूत्र ने बंधने का प्रयत्न किया। ब्रिटिश शासन से भारत का सम्पर्क पाश्चात्य देशो से प्रारम्भ हुआ और भारतीय उनकी राष्ट्रीयता और स्वतन्त्रता की ओर आकृष्ट हुए। इसी समय जर्मनी और इटली को स्वतन्त्रता प्राप्त हुई इससे भारतीयों के हृदय मे भी स्वतन्त्रता के भाव जगे। अंग्रेजी-शिक्षा के प्रचार से भी लोगों को दूसरे देशो के साथ विचार-विनिमय करने मे सहायता मिली। यातायात के साधनो ने भी भारत को अन्य देशों से मिलाया और भारत को अन्य देशो से तुलना करने का अवसर दिया। धार्मिक-आन्दोलनो ने अतीत की स्वर्णिम-झाकी भारतीयो के सामने उपस्थित की, जिससे उनमे स्वाभिमान और आत्मिक-बल का सचार हुआ। समाचार पत्रों के विकास से राष्ट्रीयता के प्रचार मे सहायता मिली। आर्थिक कष्ट, बेकारी और अकालो से त्रस्त जनता मे प्रतिकार की भावना जगी। शासन की कठोरता और निर्ममता और अंग्रेजो की भेद-नीति से देश में बडा असंतोष फैला।[1] अन्त मे इन्ही सबके परिणाम स्वरूप भारत मे राष्ट्रीय चेतना का विकास तथा 'इडियन' नेशनल कांग्रेस' का जन्म हुआ।

---

१ डा० वी० डी० महाजन और डा० आर० आर० सेठी—'भारत का संवैधानिक इतिहास' (१९५७ ई०) पृष्ठ ३३३-३५

कानपुर की स्थिति

प्रतापनारायण की जन्मभूमि कानपुर सन् १८५७ के विद्रोह का प्रमुख केन्द्र थी। नाना साहब के नेतृत्व मे एक भयकर संघर्ष का श्री गणेश हुआ।[१] सैकडो अंग्रेज मृत्यु के घाट उतारे गये। कम्पनी बाग का कुआ अंग्रेजो की लाशो से पट गया। नाना साहब के सामने अग्रेज टिक न सके। ब्रिटिश सैनिको ने हथियार डाल दिये। पर अचानक कैम्पबैल की विशाल सेना के आ जाने से नाना साहब के सैनिको के पैर उखड गये। और अग्रेजो ने बडी निर्ममता के साथ कानपुर मे प्रवेश किया।[२] निरीह जनता के साथ अनेक अत्याचार किये। निरपराध लोग गोलियो के शिकार हुए और कानपुर पर अंग्रेजो ने पुन अधिकार जमा लिया। इस पराजय मे जनता बडी निराश हो गयी और कानपुर, विद्रोह के बाद से अग्रेजो की आँखो मे खटकने लगा। आगे चलकर कई वर्षों के बाद अनेक सुधारको के प्रयत्न से कानपुर मे फिर से चहल-पहल का सचार हुआ। राष्ट्रीय आन्दोलनो मे कानपुर कभी पीछे नही रहा। कांग्रेस के जन्म के साथ ही उसकी एक शाखा की स्थापना कानपुर मे हुई। इस शाखा ने राष्ट्रीयता के प्रचार के सक्रिय और सराहनीय कार्य किया।

देश का एक बडा शहर होने के कारण कानपुर मे (१८७५ से १८९४ के बीच) शासन द्वारा अनेक निर्माण-कार्य किये गये। सन् १८६१ मे सरसैया घाट पर नई कचहरी बनी। इसी वर्ष २२ नवम्बर को प्रथम बार कानपुर मे म्यूनिसिपल-कमेटी नियुक्त हुई। १८६२ ई० मे गगा नदी पर पहले-पहल पीपो का पुल बना जिससे आवागमन की सुविधा हो गई। आगे चलकर १८७५ मे गगा जी पर लकडी और लोहे का पुल बना।[३] तथा रेलगाड़ी की व्यावस्था हुई। वैसे १८६२ ई० मे ही कानपुर मे ईस्ट इण्डियन रेलवे का आवागमन प्रारम्भ हो गया था। लोहे का पुल बन जाने से बंगाल और नार्थ वेस्टर्न रेलवे की भी व्यवस्था हो गई। रेलगाडी का प्रबन्ध हो जाने से ने यातायात को बडा प्रोत्साहन मिला इसके पूर्व गंगा नदी से नाव द्वारा ही व्यापार होता था। व्यापार की सुविधा के लिए ही १८२५ ई० मे गगा की नहर निकाली गई थी और कानपुर के पास इसे गगा मे मिलाया गया था।[४] इस नहर से एक बडे

---

१ 'वीरभारत' ७ अक्टूबर १९४७ ई० पं० प्रतापनारायण मिश्र' : लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी

२. डा० बी० डी० महाजन और डा० आर० आर० सेठी—'ब्रिटिशकालीन भारत का इतिहास' (१९६० ई०)—पृष्ठ २१३

३. लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी और नारायण प्रसाद अरोड़ा—'कानपुर का इतिहास' (१९५० ई०) पृष्ठ १५१-५४

४. तेरहवां हिंदी-साहित्य-सम्मेलन कानपुर का कार्य विवरण' दूसरा भाग (१९-२३ ई०) पृष्ठ २-३ 'कानपुर का ऐतिहासिक महत्व'-लाला सीताराम

भूभाग की सिचाई हो जाती थी। यह नहर अब भी विद्यमान है। उक्त निर्माणो के अतिरिक्त कानपुर मे डाकघरो का भी अच्छा प्रबन्ध किया गया था सन् १८७९ तक कानपुर जिले मे २९ डाकघर स्थापित हो चुके थे।[1] आगे चलकर १७९० ई० मे फूल बाग का बनना प्रारम्भ हुआ।[2] इन निर्माणो के ही परिणाम स्वरूप कानपुर बहुत-शीघ्र विकसित होकर, एक प्रमुख औद्योगिक केन्द्र बन गया।

मिश्र जी पर प्रभाव

मिश्र जी जिस समय विद्याध्ययन छोड़कर सामाजिक क्षेत्र में आये (१८७५ ई० के लगभग) उस समय कानपुर ही क्या, सम्पूर्ण देश मे अशान्ति के बादल मंडरा रहे थे। ब्रिटिश शासन की कठोरता और शोषण-नीति से जनता की सहानुभूति को समाप्त कर दिया था। मिश्र जी को चारों ओर निरुत्साह, निराशा और अकर्मण्यता का वातावरण मिला, जिसे उन्होंने अपनी प्रतिभा के बल से मिटाने का प्रयत्न किया। मिश्र जी के जीवन पर तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियो का दो रूपों मे प्रभाव पडा। पहला, राजभक्ति के रूप में, दूसरा देशभक्ति के रूप मे जब ब्रिटिश शासकों द्वारा देश मे कोई सुधार-कार्य किया जाता उस कार्य से देश के उत्थान की आशा होती तो मिश्र जी उनको हृदय से धन्यवाद देते तथा मुक्त कण्ठ से प्रशसा करते। मिश्र की राजभक्ति के भी मूल में देश-भक्ति ही थी। उन्होंने जहा कही अंग्रेजो की प्रशंसा की है उनकी देश-हितैषिता के ही कारण की है। उनका अंग्रेजों से कोई व्यक्तिगत स्वार्थ नही था और न वह चाटुकार ही थे। प्रत्येक देश-हितैषी की प्रशंसा करना और उसे प्रोत्साहित करना वह अपना कर्त्तव्य समझते थे। इसके विरीत देश द्रोही को मिश्र जी अपना शत्रु समझते थे, जब शासकों का दमन नीति से जनता त्रसित हो तो मिश्र जी शासको की खूब खबर लेते और उनके विरुद्ध जनता को प्रोत्साहित करते, प्रतिक्रयावादी वाइसरायो की शोषण नीति को देख कर मिश्र जी अच्छी तरह समझ गये थे कि इस जाति (अंग्रेज) से देश का कल्याण नही हो सकता। इसी के परिणाम स्वरूप इनमे देश भक्ति के भाव उत्पन्न हुए और इन्होंने अंग्रेजो की कटु अलोचना की।

राजभक्ति

मिश्र जी पूरे राजभक्त थे लेकिन उसी राजा के भक्त थे जो प्रजा को पुत्र की तरह मानता हो। सच्चे राजा को मिश्र जी ईश्वर का अंश मानते थे। वे कहते है— "राजा ईश्वर का अश है''......जिस राजा ने हमको तनिक अच्छी तरह रखा हम उसी के उपासक हो जाते है। अकबर को मुसलमान इतिहासवेत्ता चाहे जो कहे पर हमारे

---

१. त्रिपाठी और अरोड़ा : 'कानपुर का इतिहास' (१९५० ई०) पृष्ठ २१३

२. '—वही—' १७०

यहा के बडे उच्चकुल के अभिमानी वीर राजपूतो ने उन्हे दिल्लीश्वरो वा, जगदीश्वरो वा कहा है। हम साहकार कह सकते है कि हम निस्सदेह सच्चे राजभक्त है।"[1] इसी सिद्धान्त के अनुसार मिश्र जी महारानी विक्टोरिया से बडी श्रद्धा रखते थे। विक्टोरिया के घोषणा-पत्र ने मिश्र जी के हृदय मे अच्छा स्थान बना लिया था। मिश्र जी का ख्याल था कि विक्टोरिया भारत को पुत्र की तरह चाहती है पर उनके द्वारा नियुक्त कार्यकर्त्ता भारत के साथ अनीति करते है और इन कार्यकर्ताओ की अनीति विक्टोरिया तक नही पहुचती। वे लिखते है—

"महारानी विक्टोरिया यद्यपि महा दयाल।
चाहति कियो प्रजान' का पुत्र सरिस प्रतिपाल॥
पै हमरी दुरभाग ते दूर बसति वह हाय।
बिन जाने भारत विपति केहि विधि करै उपाय॥[2]

इसी से आगे देशवासियो से कहते है—

"भरि न लेत को पेट निज, यामे का करतूत:
जे परस्वारथ हित कछू करहि सु होहि सपूत॥
याते सब निज देश हित जतन करहु सब रीति।
जयति राज राजेश्वरी, भाखहु सदा सप्रीति॥"[3]

मिश्र जी को पूरा विश्वास है कि—

"यहिमा संशय नाहिं जु श्री बिजयिनि महारानी।
सुनत रहै भारत वासिन की आरत बानी॥
तौ अवश्य अति दया मया उनके उर आवै।
जाते सहजहि सब हमार संकट कटि जावै॥"[4]

मिश्र जी लार्ड रिपन के भी बडे प्रशसक थे। लार्ड रिपन की उदारवादी नीति और प्रजावत्सलता ने मिश्र जी के हृदय मे घर कर लिया था। मिश्र जी रिपन के उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए लिखते है—

"सब कलंक सरकार के जाय सहजही धोय।
"राजा राज प्रजा सुखी" जन्म सुफल तब होय॥"[5]

---

१. 'ब्राह्मण' खण्ड ५ संख्या २ ('हम राजभक्त हैं')
२ 'ब्राह्मण' खण्ड ५ संख्या ५ ('महापर्व')
३. 'ब्राह्मण' खण्ड ५ संख्या ५ ('महापर्व')
४ 'ब्राह्मण' खण्ड ६, संख्या ५, (स्वागतन्ते महात्मन्)
५. 'ब्राह्मण' खण्ड १, संख्या ९ ('जन्म सुफल कब होय ?')

कहना न होगा कि रिपन के इसी उद्देश्य ने मिश्र जी को अपनी ओर आकृष्ट किया था। मिश्र जी रिपन को रामचन्द्र की पंक्ति तक मे पहुंचा देते है—

"रामचन्द्र कहं अरु अकबर कहं लार्ड रिपन कहँ।
को आदर सों नहिं सुमिरत आरज अवनी महं॥"[१]

लार्ड रिपन की देशहितैषिता पर मिश्र जी पूरा विश्वास करते थे इसीलिए वह इतनी बढ़ा-चढ़ाकर उनकी प्रशंसा करते थे। वे देश-वासियो को विश्वास दिलाते हुए कहते है—"हमारे देशानुरागियों का परम धर्म है कि किसी सज्जन धर्मिष्ठ भारत-भक्त को लेजिसलेटिव कौंसिल का मैंबर नियत करने के लिए सरकार से निवेदन करे और पूर्ण विश्वास है कि महात्मा लार्ड रिपन ऐसे निवेदन को अवश्य सुनेगे।"[२] लार्ड रिपन की भी भक्ति में मिश्र जी देशभक्ति ही प्रधान है। 'भारती' के माध्यम मे देश-दुर्दशा का वर्णन करते हुए मिश्र जी देशोद्धार की रिपन से प्रार्थना करते है—

"आलस्य बीर एक ते एक कन्त हमारे।
अपनो सर्वसु परदेशिन के कर हारे॥
धन बल विद्या बैभव सब भूलि बिसारे।
मम दुरगति देखत बैठि रहे मन मारे॥
प्रभु करौं कौन विधि आस कछू इन केरी।
अब बेगि रिपन महराज खबरि लेउ मेरी॥"[३]

इसी प्रकार सन् १८८९ ई० मे (जाड़े के दिनो मे) राजकुमार विक्टर का भारत मे आगमन हुआ। उनके आगमन पर मिश्र जी ने 'युवराज कुमार स्वागतते' नाम से एक लम्बा स्वागत-गीत लिखा। यह गीत 'ब्राह्मण' पत्र के १५ नवम्बर १८८९ के अंक मे प्रकाशित हुआ। इस स्वागत गीत मे राज-भक्ति के साथ-साथ तत्कालीन देश-दशा के भी दर्शन होते हैं। मिश्र जी राजकुमार का स्वागत करते हुए लिखते है—

स्वागत! स्वागत!! श्री विजयिनि के प्रान पियारे।
स्वागत प्रिंसेज आफ वेल्स अंखियन के तारे॥
आवहु आवहु भली करी इहि दिशि पग धारे।
तब विधु बदन विलोकि भये धन भाग हमारे॥
भारतमाता आज तुम्हे उर लाय जुड़ानी।
जुग-जुग जीयहु हृदय कमल सूरज सुखदानी॥"[४]

---

१. 'ब्राह्मण' खण्ड ६, संख्या ५, ('स्वागतंते महात्मन्')
२. 'ब्राह्मण' खण्ड १ संख्या १२ ('बेकाम न बैठ कुछ किया कर')
३. 'ब्राह्मण' खण्ड १ संख्या ८ ('भारती गाती है—गाती क्या है अपने जनम को रोती है')
४. 'ब्राह्मण' खण्ड ६ संख्या ४ ('युवराज कुमार स्वागतंते')

स्वागत करने के बाद मिश्र जी अपनी देशभक्ति को छिपा नही पाते और बडे नम्र शब्दो मे देश-दुर्दशा का वर्णन कर जाते है और अत मे कहते है—

"खिन्न कियो हम चहत नाहिं तब कोमल मनकहं।
याते ह्यां की कथा सुनाई सनछेपहि महं।।
भली होय तुम भली भांति भारत न निहारो।
बालक हो कहूं सहमि जाय जनि हृदय तिहारो।।"[1]

इसके बाद मिश्र जी राजकुमार से विक्टोरिया के लिए समाचार भी कहते है। जिसके एक-एक शब्द से दैन्य और विनम्रता टपकी पडती है—

"अहो कुवर! जब ह्यां ते तुम उनके ढिग जैयो।
सुचित देखि कछु बात चीत को अवसर पैयो।।
कहियो भारत की आरत गति धरि पद माथा।
अपनाये की लाज देखि अब तुम्हरे हाथा।।
रक्षहु-रक्षहु भारत आरत शरण तिहारी।
अब सब ह्यां की प्रजा अहै दीन दुखारी।।"[2]

इसी वर्ष दिसम्बर मे इग्लैड के प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ मि० चार्लस ब्रैडला का भारत मे शुभागमन हुआ। इनके भी आगमन पर मिश्र जी ने 'स्वागतते महात्मन्' नाम से एक स्वागत गीत लिखा। यह 'ब्राह्मण' पत्र मे १५ दिसम्बर, १८८९ ई० में प्रकाशित हुआ। इस स्वागत गीत मे भी पूर्व गीत के ही समान देश-दशा का चित्रण किया गया है पर इसमे पहले की अपेक्षा विस्तार अधिक है। श्री युत ब्रैडला का स्वागत करते हुए मिश्र जी लिखते है—

स्वागत! स्वागत!! स्वागत! श्री भारत हितकारी।
आवहु निभ्रम न्याय निरत नित सत पथ धारी।।
आवहु-आवहु भली करो इहि ओर पधारे।
बहुत दिनन के भये मनोरथ सफल हमारे।
चिर दिन सो अति आश रही तब मुख दरशन की।
धन्य विधाता आजु साध पूरी नयनन की।।"[3]

ब्रैडला को मिश्र जी बड़ी श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे। कुछ लोगो के यह कहने पर कि 'ब्रैडला नास्तिक ह फिर भी आप उनकी प्रशसा करते है' मिश्र जी ने

---

१. 'ब्राह्मण' खण्ड ६ संख्या ४ ('युवराज कुमार स्वागतते')
२. 'ब्राह्मण' खण्ड ६ संख्या ४ (युवराज कुमार स्वागतंते)
३. 'ब्राह्मण' खण्ड ६ संख्या ५ ('स्वागतते महात्मन्')

कहा—मैं देश द्रोही अस्तिकों से देशप्रेमी नास्तिकों को अधिक अच्छा समझता हूं। 'स्वागतते महात्मन्' में वे लिखते हैं—

"जदपि अनीश्वरवाद वोष सब तुमहिं लगावैं।
पै प्यारे तब मुख्य मर्म बिरले कोउ पावैं॥
लाखन जन मुखते नित ईश्वर-ईश्वर करहीं।
पै स्वारथ सनि पर सरबसहु कहं हरतहिं रहहीं॥
तुम सम पर दुख देखि द्रवहि सोई हरि कहं प्यारे।
को जानहिं या परम धरम लघु मति मतवारे॥"[1]

सन् १९९१ में ब्रैडला का देहान्त हुआ। इससे मिश्र जी को बडा दुख हुआ। मिश्र जी ने एक बहुत ही करुण शोकगीत लिखकर १५ फरवरी १८९१ ई० के 'ब्राह्मण' में प्रकाशित कराया। जिसकी कुछ पक्तिया इस प्रकार है—

"हाय विधाता फाटि पर्यो यह बजर कहां ते।
उमड़ि उठ्यो हा देव! शोक सागर चहुँधा ते॥
अरे काल चंडाल तरस तोहि नेक न आयो।
निरबल बूढ़े रोग ग्रसित पर दांत लगायो॥
आय अभागी हिन्द! भाग्य तेरो ऐसे ही।
बेगहि जात बिलाय हाय तब सहज सनेही॥"[2]

मिश्र जी की राजभक्ति, देशभक्ति के लिये थी। इन्होंने देश-हितैषी ब्रिटिश शासकों या महापुरुषों की ही प्रशंसा की है। जिसने भारत का कुछ भी अहित किया है, वह मिश्र जी के कटु-व्यग्य और भर्त्सना से बच नहीं सका।

देशभक्ति

मिश्र जी अनन्य देश भक्त थे। निःस्वार्थ देश सेवा करना उनका लक्ष्य था। वे देश के लिए 'घर फूक तमाशा देखने वाले' भक्तों में—से थे। देश का अहित उनसे देखा न जाता था। जब बार-बार समझाने पर भी देशवासी उनका कहना न मानते तो वे निराश होकर ईश्वर से भारत के कल्याण की प्रार्थना करने लगते—

"निज करुणा रस बरषावो प्रभु! अब भारत को अपनाओ।
देखि दुर्दशा आरज कुल की वेगि दया उर लाओ॥
हे प्राणेश! पतित पावन प्रिय प्रेम पंथ दरसावो।
वर्तमान दुरगुन अगनित गति नाथ! ना न्याय जतावो॥"[3]

---

१. 'ब्राह्मण' खण्ड ६ संख्या ५

२ 'ब्राह्मण' खण्ड ७ संख्या ७ ('हा हन्त! हा हन्त!! हा हन्त!!!")

३. 'ब्राह्मण' खण्ड ८ सख्या ५ ('करुणा रस बरसाओ')

मिश्र जी ने जब यह देखा कि अंग्रेजों की शोषण-नीति दिन-पर-दिन बढती ही जाती है, खुशामद का उनके ऊपर कोई प्रभाव नही पडता, तब उन्होने देश-वासियो को उकसाना प्रारम्भ किया—

"अपनो काम आपने ही हाथन भल होई ।
परदेशिन परधर्मिन ते आशा नहिं कोई ।।
धन धरती जिन हरी सु करिहैं कौन भलाई ।
जोगी काके मीत कलदर केहि के भाई ।।"[१]

कानपुर की जनता मे राष्ट्रीय चेतना भरते हुए मिश्र जी उसे १८५७ ई० के विद्रोह का स्मरण दिलाते है—

"हुआँ की बातै तौ हुअनै रहि अब आगे को सुनौ हवाल ।
सन् सत्तावन मा गलबा भौ, भये सब हिन्दू हाल बेहाल ।।
जितनी तिरियां कम्पू कढि गईं सो तौ जानत है संसार ।
बड़े लड़ैयन बालब काटे जिन मुंह बहै दूध की धार ।।[२]"

मिश्र जी ने जनता को उत्तेजित करने के लिए अंग्रेजो की चालो को स्पष्ट उनके सामने रखा । वे 'गौरागदेव उवाच' मे कहते है—

"नित हमरी लातै सहै हिन्दू सब धन खोय ।
खुलै न इंगिलिश पालसी जन्म सुफल तब होय ।।[३]"

मिश्र जी को अपने देश के प्रति महान गर्व है । देश की प्रत्येक वस्तु के प्रति उन्हे स्वाभिमान है । भारत को मिश्र जी सभी देशो का शिरोमणि मानते है—

"जय जय जगत शिरोमनि भारत ।
* * *
जासु दिव्य उपदेश पाय सब, निज आचरन सुधारत ।।
जासु सपूत पवित्र प्रीति पर, नित तन मन धन वारत ।
जाकी सुता प्रेम परिचय हित, जियत देह जिन जारत ।।
जलहू थल जहं लसत ब्रह्ममय, सुमिरत सुखहिं पसारत ।"[४]

भारतीयो मे स्वाभिमान जाग्रत करने के लिए मिश्र जी उनके मनको अतीत की ओर खीचते है और वर्तमान से उसकी तुलना कर, वास्तविकता का ज्ञान कराते हैं—

---

१. प्रतापनारायण मिश्र-'लोकोक्ति शतक' (१८९६ ई०)-पृष्ठ २
२. सं० नारायणप्रसाद अरोड़ा-'प्रतापलहरी' (१९३९ ई०)-पृष्ठ २०७
('कानपुर माहात्म्य'—प्रतापनारायण मिश्र)
३. 'ब्राह्मण' खण्ड २ संख्या ९ ('जन्म सुफल कब होय ?'')
४. 'ब्राह्मण' खण्ड ५ सख्या ४ ('जातीय गीत')

"जहं की भू मह देवहु तरसत जन्म ग्रहण करिबे को ।
तहं कायर कलही कपूत उपजहिं केवल मरिबे को ।।
रिग यजु साम अथर्व रहे जहं, आकर सब विद्या के ।
तहं व्यभिचार ग्रन्थ फैले अब मजनूं अरु लैला के ।।
ब्रह्म-ज्ञान त्रिभुवन ते बढ़कै जहं के रिषिन बतायो ।
तहां बिधर्मी प्रेत पूजि, सब ओगन ज्ञान गंवायो ।।"[1]

मिश्र जी को अपने 'विक्रमी सम्वत्' तक से महान प्रेम है। जब वह देखते है कि 'अंग्रेजी सम्वत् मे नया दिन मनाया जाता है और भारतीय सम्वत् का पता ही नही लगता कि कब आया कब गया तो उन्हे बडा क्षोभ होता है। वे कहते है—

"पै जो हमरो संम्वत् है ! जेहि हमरे पुरिखन थाप्यो ।
जेहि मह सहजहि जगत रहत है नव शोभा सुख व्याप्यो ।।
ताको गमन आगमन हू हा । केतिक लोग न जानै ।
जे जानै तेऊ निजता बिन उचित प्रमोद न ठानै ।।
सुधि विक्रमादित्य की करिकै औरौ दरकति छाती ।
जिनके राज माहि सब धरती रही धर्म धन छाई ।
तिनको कथहु दैव बस अब हा ! कतहूं न परत सुनाई ।।"[2]

मिश्र जी ने अपने समय की स्थिति का चित्रण बड़ी दीनता से—स्पष्ट शब्दो मे किया है। वह जनता को तत्कालीन स्थिति मे अवगत कराना चाहते थे। उनका यह विश्वास था कि जब भारतीय अपनी दशा को देखेंगे और समग्र रूप से उस पर विचार करेंगे तो निश्चय ही उनमे राष्ट्रीयता के भाव जागेंगे। देश-दशा का वर्णन वह इस प्रकार करते है –

'हाय जहां के धनहि सों, धनी भय सब देश ।
तहं दरिद्र छायो रहत सहत न बनत कलेश ।।
चौथाई ते अधिक जन, भरि न सकै निज पेट ।
तेहि पर पुत्र कलत्र की चिन्ता देत चपेट ।।
निज परधन एकत्र करि करहिं जो कछु रुजगार ।
दुसह राज कर को परत, तिन पर अतुलित भार ।।"[3]

ब्रैडला से देश की स्थिति का वर्णन करते हुए मिश्र जी लिखते है—

"तब लखिहौ जहं रह्यो एक दिन कंचन बरसत ।
तहं चौथाई जन रूखी रोटी कहं तरसत ।।

---

१. 'ब्राह्मण' खण्ड ५ संख्या ३ ('गाना समझो चाहे रोना')
२. 'ब्राह्मण' खण्ड ६ संख्या ८ ('नया सम्वत्')
३. 'ब्राह्मण' खण्ड ५ संख्या ५ ('महापर्व')

जहं जामुन की गुठली अरु बिरछन की छालै ।
ज्वार चून महं पेलि लोग परिवारहिं पालै ॥"
लोन तेलु लकरी घासहु पर टिकस लगै जहं ।
चना चिरौंजी मोल मिलै जहं दीन प्रजा कहं ॥"[1]

मिश्र जी को भारतीय-श्रमिको की दशा पर बडा तरस आता था । उनकी दशा का चित्रण करते हुए मिश्र जी लिखते है—

"बोझ धरत खैंचत लढा, बीतत दिन चहुं याम ।
मानुष ह्वै करनो परत, हमें बैल को काम ॥
जब है पसीना सीस को, पायन लग पहुंचैन ।
रूखे सूखे अन्न की, तब लग आशा है न ॥
घाम जेठ बैसाख को, माघ पूस को शीत ।
अपने लेखे जगत मे, सब बिधि कष्ट अजीत ॥"[2]

अग्रेजो और मुसलमानो द्वारा किये गये भारतीयो पर अत्याचारो को भी मिश्र जी, स्पष्ट जनता के सामने रखते थे जिससे भारतीयो मे प्रतिक्रिया और राष्ट्रीय चेतना का विकास होता था—

"नितहिं तुरुक तेवहारन के मिस अनरथ करहिं अपार ।
मंदिर ढावहिं दुजन सतावहिं गाय हतहिं हत्यार ॥
माया जाल डारि धन खैंचत अगरेजिहु सरकार ।
हृदय बिदारक दुखमहं हमरे लागत कोऊ न गोहार ॥"[3]

अग्रेजो की शोषण नीति के विषय मे मिश्र जी लिखते है—"जिस भारत लक्ष्मी को मुसलमान सात सौ वर्ष मे अनेक उत्पात करके भी न ले सके उसे उन्होने सौ वर्ष मे धीरे-धीरे ऐसे मजे के साथ उडा लिया कि हसते-खेलते विलायत जा पहुची ।"[4] इसीसे मिश्र जी आगे कहते है—

"सर्वसु लिए जात अंग्रेज हम केवल लेक्चर के तेज ।
श्रम बिन बातै का करती है, कहू टटकन गाजै टरती हैं ॥"[5]

बेगारी के लिए शासको द्वारा मजदूरो का पकडा जाना और उन्हे—काम के साथ-साथ नाना प्रकार से ताडना देना, मिश्र जी का कोमल हृदय सह न सका और मिश्र जी की लेखनी रो पडी—

---

२. 'ब्राह्मण' खण्ड ६ सख्या ५ ('स्वागतते महात्मन्')
२. 'ब्राह्मण' खण्ड १ संख्या २ ('बेगारी बिलाप')
३. 'ब्राह्मण' खण्ड १ सख्या १० ('विषाद-पंचक')
४. 'ब्राह्मण' खण्ड ४ सख्या २ ('द')
५. 'प्रतापनारायण मिश्र-'लोकोक्ति शतक' (१८९६ ई०)-पृष्ठ २

एक-एक के काम मे, बार-बार गहि लेत ।
पांय परत छांड़त नहीं, भारत गारी देत ।।
घर बाहर के काम में हानि कैसहू होय ।
सीस पटकिबो रोइबो, हमरो सुनतन कोय ।।
काम लेत बरिआइ के, दाम देत अति थोर ।
कहां जाय कैसे करैं, हमे बिपति अति घोर ।।"[१]

जब सरकार द्वारा जनता पर कोई नये टैक्स लगाये जाते तो मिश्र जी उनका बडा विरोध करते थे—

"लैसन इनकम चुंगी चन्दा पुलिस अदालत बरसा घाम ।
सबके हाथन असन बसन जीवन संसय मय रहत सुवाम ।।
जो इनहूं ते प्रान बचै तो गोली बोलति आय धड़ाम ।
मृत्यु देवता नमस्कार तुम सब प्रकार बस तृप्यन्ताम् ।।"[२]

* * *

"नांव न लीजै धन दौलति को टिक्कस दीजै काटि करयाज ।" [३]

सन् १८५७ के विद्रोह के बाद सरकार द्वारा हथियारों पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया था । कोई भी भारतीय बिना लाइसेन्स अस्त्र-शस्त्र नहीं ले सकता था । आज्ञा के उलंघन पर कठिन दड का विधान था । इस पर मिश्र जी ने कई बार आक्षेप किया—

"सर जहं चक्र त्रिसूल धर, धर्म ग्रन्थ धनु वेद ।
तह अब छुरिहु न देखियत खेद-खेद हा खेद ।।
जह सिंगार रस महं कहहिं रसिक सुकवि मतिमान ।
नारिन की भृकुटी ,धनुष, सूधी चितवनि बान ।।
हाय तहां लैसन्स बिन, मिलत नाहिं हथियार ।
निशि महं चाहै चोर सब, लूटि लेहिं घरबार ।।"[४]

सन् १८८३ मे मि० इलबर्ट ने भारतीय तथा यूरोपीय मजिस्ट्रेटो को समानाधिकार दिलाने के लिए एक विधेयक तैयार किया जो 'इलबर्ट बिल' के नाम से प्रसिद्ध हुआ । इस बिल का ब्रिटिश-जाति ने प्रबल विरोध किया, फिर भी कुछ परि-

---

१. 'ब्राह्मण' खण्ड १ संख्या २ ('बेगारा बिलाप')
२. स० नारायणप्रसाद अरोड़ा : 'प्रताप लहरी' (१९४९ ई०) पृ० ५६ (तृप्यन्ताम्)
३. '—वही—' 'वही' पृ० २१२ (कानपुर महात्म्य)
४. 'ब्राह्मण' खण्ड ५, संख्या ५ (महापर्व)

वर्तन के साथ यह स्वीकृति किया गया। इस पर मिश्र जी ने 'ऐंग्लो-इंडियन शक्ति' की ओर से इस बिल पर बडा अच्छा व्यग्य किया है—

"इलबर्ट मरै जिहि यह सब अनरथ कीन्हा।
'जस्टिस' उजरै अधिकार चहति मोर छीना॥
दैया रे। सबहिन अपन-अपन हक लीन्हा।
निरदई विधाता हाय दुसह दुख दीन्हा॥
करिहै विचार मम काफर कूर कुजाती।
यह बिल भई सवति हमारि जरावत छाती॥"[1]

१६ फरवरी, १८८७ मे विक्टोरिया की रजत-जयन्ती (जुबली) मनायी गयी। इसमे भारत का बहुत सा धन खर्च हुआ पर उसके प्रतिफल मे भारत को कुछ न मिला। इस पर मिश्र जी अपने 'जुबिली' शीर्षक लेख मे लिखते है—"यह दिन क्या रोज आवैगा, जुबिली सदा हमे याद आवे ऐसा कुछ करना महारानी को अवश्य है। यदि 'आर्म-एक्ट' उठा लिया जाय, हमे शस्त्रास्त्र सचालन की आज्ञा फिर हो जाय तो अथवा गोबध उठा दिया जाय तो, अथवा जो बिल्ली की सी घातै करने वाली उरदू दफतरो से उठा दी जाय तो हम और हमारे वशज सदा यही कहेगे कि साहस के बिना, घृत दुग्धादि भोजन के बिना, कचहरियो मे यथातथ्य अक्षरो के बिना भारतवासियों के ज्यू (जीव) बिल्ली की भांति अपौरुष थे सो महारानी की दया से वही जिउ बली अर्थात् बलिष्ट हो गये अथवा इनकम टैक्स ही से हमारा गला छूटे तो सदा कहेंगे कि जिउ बली अर्थात् जीव का बलिदान लेने वाला राक्षस महारानी के शतार्द्ध सम्बन्धी उत्सव ही मे मारा गया था सुनने और करने वाला हो तो ऐसे-ऐसे अनेक उपाय है जिनसे जुबिली सार्थक जुबिली हो जाय।"[2]

सन् १८८३ मे सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने अपने बगाली पत्र मे सरकार के कुछ कार्यो की आलोचना की। इस पर सरकार ने इन्हे दो माह की सजा दी (सुरेन्द्र नाथ की देश भक्ति के कारण सरकार पहले से ही इनसे असतुष्ट थी। और इसी से इन्हे लिटन के काल मे सिविल सर्विस से भी पृथक् किया गया था) मिश्र जी को सरकार के इस कार्य से बडा असतोष हुआ और उन्होने सरकार की बडी भर्त्सना की—"अपने धर्म की निन्दा का हाल सुनके किस सहृदय का जी नही दुखता? ऐसे अवसर पर मनुष्य जो न कर उठावै सोई थोड़ा है। फिर बाबू साहब ने कौन हत्या की थी जो ऐसे कठोर दंड के भागी हों। सुरेन्द्रोनाथ कोई साधारण पुरुप नही है। आनरेरी मैजिस्ट्रेट और सिविल सर्विस के मेम्बर रह चुके है। विद्या, बुद्धि और

---

१. 'ब्राह्मण' खण्ड १ संख्या ८ 'लावनी-(ऐंग्लो इण्डियन शक्ति गाती हैं')

२. 'ब्राह्मण' खण्ड ४ सख्या १

प्रतिष्ठा भी उनकी ऐसी देश भर मे बहुत ही थोड़े लोगो की है। ऐसे देशानुरागी सुयोग्य व्यक्ति को ऐसी-ऐसी बातों के लिए ऐसा दण्ड कर देने मे केवल एक ही की नही वरञ्च आर्य मात्र की बिडम्बना है। क्या यह बात अनुचित नही हुई ? निस्सदेह सबके जी पर इसका दुख हुआ।......पर क्या कीजिए बलीयसी केवलमीश्वरेच्छा।"[१]

मिश्र जी के समय मे बहुत से लोग नाम और प्रतिष्ठा के लिए देशी-हितैषिता का ढोंग बनाये फिरते थे इनसे देश-उद्धार होना तो दूर था, उलटे जनता मे भ्रम और अनाचार का प्रचार हो रहा था। ये लोग जनता को लम्बे-चौड़े असार-भाषणो से अपनी ओर आकृष्ट करते थे। इन पर मिश्र जी लिखते है—"घर की मेहरिया कहा नही मानती, चले है दुनिया भर को उपदेश देने, घर मे एक गाय नही बाधी जाती, गोरक्षिणी सभा स्थापित करेंगे, तन पर एक सूत देशी कपडा नही है बने है देश हितैषी, साढे तीन हाथ का अपना शरीर है उसकी उन्नति नही कर सकते, देशोन्नति पर मरे जाते है—कहा तक कहिए,—करते-धरते कुछ भी नही, बक-बक नाधे है।"[२] मिश्र जी सच्चे देश-भक्त थे उन्हे बनावटीपन पसन्द नही था। उनका यह विचार था कि जब तक स्वत. मनुष्य नही उठेगा दूसरो को नही उठा सकेगा—

"आपन चरित सुधारत नाहीं, जग कहं उपदेशत न लजाहीं।
धिक पंडितन धिक बबुआई, काल्हि के जोगी माई माई॥"[३]

बनावटी देश-हितैषियो के उद्देश्य और कार्य का चित्रण मिश्र जी बडे अच्छे शब्दो मे करते है—

"लेक्चर अपना व्यास वचन से तेज हो,
फैसन पर कुर्बान हरेक अंग्रेज हो।
साबुन मलना, फट्ट से बोतल खोलना,
इतना दे करतार अधिक नहीं बोलना॥"[४]

मिश्र जी देशोन्नति के लिए ऐक्य और प्रेम को आवश्यक मानते थे। उनका कहना था—"प्रेम बिना कभी, कही, किसी प्रकार, किसी की उन्नति न हुई है न होगी, न होती है।"[५] इसीलिए ये प्रेम और ऐक्य की प्रचारक सस्था—काग्रेस के प्रबल अनुयायी थे।' काग्रेस के प्रत्येक कार्य की ये हृदय से प्रशसा करते थे। काग्रेस के इलाहाबाद अधिवेशन मे मिश्र जी कानपुर के प्रतिनिधि होकर (१८८८ ई०) गये

१. 'ब्राह्मण' खण्ड १ संख्या ४ ('कचहरी में शालिग्राम जी')
२. 'ब्राह्मण' खण्ड २ संख्या १ ('घूरे के लत्ता बिनै कनातन का डौल बांधे')
३. प्रतापनारायण मिश्र-'लोकोक्ति शतक' (१८९६ ई०)-पृष्ठ ५
४. 'ब्राह्मण' खण्ड २ संख्या १-१० ('इतना दे करतार अधिक नहीं बोलना')
५. 'ब्राह्मण' खण्ड २ संख्या २ ('देशोन्नति')

थे ।[1] वहा इसके कार्यों को देखकर ये बहुत प्रभावित हुए। वे लिखते है—"कांग्रेस की जय ! क्यों न हो, कांग्रेस साक्षात् दुर्गा जी का रूप है क्योंकि वह देशहितैषी देव प्रकृति के लोगो की स्नेहशक्ति मे आविर्भूत हुई है, 'देवानाँदिव्य गुण विशिष्टाना तेजो राशि समुद्भवा' है । फिर हम ब्राह्मण होके इसकी जय क्यो न बोले ।"[2] कांग्रेस के गुणो को ही देखकर मिश्र जी ने कानपुर मे कांग्रेस की शाखा की स्थापना की थी और इसी शाखा की ओर से मिश्र जी कांग्रेस के कई अधिवेशनो मे गये थे । कांग्रेस की देश-हितैषिता से मिश्र जी इतना सन्तुष्ट थे कि इसे भगवती मानने लगे थे और इसकी इसी रूप मे ये प्रार्थना भी करते थे—

"जय जयति राज प्रबन्ध शोधन हेतु बर बपु धारिनी ।
जय जयति भारत की प्रजा उर एकता संचारिनी ॥
जय जयति सागर पार लौं निज रूप गुन बिस्तारिनी ।
जय जयति भगवति कांगरेस असेस मगल कारिनी ॥"[3]

मिश्र जी कांग्रेस के अधिवेशनों मे सम्मिलित होने के लिए जनता को भी प्रोत्साहित करते थे तथा तन, मन, धन से सहायता करने के लिए भी प्रेरित करते थे । इलाहाबाद अधिवेशन मे सम्मिलित होने के लिए वह जनता से इस प्रकार कहते है—

"साजि-साजि भूषन बसन सब मिलि चलहु प्रयाग ।
तन मन धन अरु बचन सों करहु देश अनुराग ॥
बड़े भाग ते यह बड़ो पर्व बड़े दिन माहिं ।
पै हो प्रिय भारत भगति, यहि मह ससय नाहिं ॥
यथा शक्ति धन देइ कै यहि मा लूटहु धर्म ।
महादान कर पाइहौ बेगिहि बसि फल कर्म ॥"[4]

मिश्र जी कॉंग्रेस के विपक्षियो के घोर विरोधी थे। इन पर जब-कब मिश्र जी के व्यंग्य-बाण चला करते थे । एक स्थान पर मिश्र जी ने विपक्षियो को अयन घोप (राधा का शारीरिक पति, जो राधा को कृष्ण से एकात मे बाते करते देख कृष्ण को तलवार लेकर मारने आया था) राधा को जनता और कृष्ण को कांग्रेस कह कर बडा अच्छा उपहास किया है—"कांग्रेस श्री कृष्ण है और प्रजा हितैषी देश भक्तो की जनता श्री राधा है अथवा विरोधियो का दल अयन घोष है, जो देखता है कि इस

१ 'ब्राह्मण' खण्ड ५ संख्या ६ ('कांग्रेस की जय')
२. 'ब्राह्मण' खण्ड ५ संख्या ६ ('कांग्रेस की जय')
३. सं० नारायण प्रसाद अरोड़ा-'प्रताप लहरी' (१९४९ ई०)-पृष्ठ १७
४. 'ब्राह्मण' खण्ड ५ संख्या ५ ('महापर्व')

सयोग मे हमारे लिए कुयोग है। न ठकुरसुहाती कहके मनमानी पदवी पाने का योग है, न अपनी इच्छा ही को शासन प्रणाली का मूल मन्त्र बना के काले-कलूटे मूर्ख गुलामो पर स्वेच्छाचारिता का ढंग जमाने का सुयोग है। धीरे-धीरे सबकी आखें खुलती जाती है। सब अपना स्वत्व पहिचानते जाते है। खडी-खडी बातो की पुकार सात समुद्र पार पहुंच रही है। जो घोष महाशय रोषपूर्ण हो के वाणी-कृपाण धारण करते है और चाहते है कि कृष्ण का सिर उडा दे। फिर राधा तो हमारी हुई है। पर राधा जी देखती है कि न्याय के आगे स्वेच्छाचार, देशभक्ति के आगे स्वार्थपरता, महारानी के प्रबल प्रताप के सन्मुख हमारा दुःख क्लेश निरा निर्मूल है, इससे धैर्य के साथ अपने इष्ट साधन में लगे रहना चाहिए।[1]

मिश्र जी के समय में विदेशी वस्तुएँ पर्याप्त मात्रा में देश में आने लगी थी और इनका प्रचार भी तेजी से होने लगा था जिससे देशी वस्तुओं की माग कम होती जा रही थी। साथ ही ब्रिटिश सरकार भी इस प्रचार मे पूरा सहयोग दे रही थी। देशी वस्तुओ पर टैक्स लगाकर उसे विदेशी वस्तुओं की प्रतिस्पर्द्धा मे गिराया जा रहा था जिसके परिणाम स्वरूप देश मे निर्धनता और बेकारी बढ रही थी। ऐसी स्थिति मे मिश्र जी ने टैक्सो का विरोध तो किया ही, साथ ही स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग के लिए भी जनता को प्रोत्साहित किया—'भाइयो, यह तो तुम्हारे ही मतलब की बात है, आखिर कपड़ा पहिनोहीगे, एक बेर हमारे कहने से एक-एक जोड़ा देशी कपडा बनवा डालो। यदि कुछ सुभीता देख पड़े तो मानना, दाम कुछ दूने न लगेंगे, चलेगा तिगुने के अधिक समय। देशी लक्ष्मी और देशी शिल्प के उद्धार का फल सेंत मेंत।'[2] पर जब जनता समझाने से नही मानती तब मिश्र जी खिन्न होकर कहते है—'विदेशियो का यह दाव है कि अन्न औ जल भी हम इनके हाथ बेचा करें और उधर हिन्दुस्तानियो की यह इच्छा है कि मिट्टी और हवा भी विलायत से आवे तो खरीदना चाहिए।' '''विलायती मिट्टी भी (चीनी के बर्तन दावात आदि) प्यारी लगती है अपने यहां का सोना भी अखरता है। जिसके घर में देखो सारा सामान, तो भी रुपये में बारह आने भर सामग्री विलायत ही की बनी पावोगे, जिसमे दाम तो एक-एक के चार-चार लगेंगे पर ठहरती देशी की अपेक्षा आधे दिन भी नही और तनिक बिगड जाने पर सब स्वाहा।'[3] मिश्र जी को सबसे बडा दुख तब होता है जब देश-हितैषी भी देशी वस्तुओ से घृणा करते है—'देशी कारीगरी को देश ही वाले नही पूछते-विशेषतः जो छाती ठोक-ठोंक कर, ताली बजवा-बजवा

---

१. 'ब्राह्मण' खण्ड ६ संख्या ११ ('एक कथा')

२. 'ब्राह्मण' खण्ड ३ संख्या १२ ('देशी कपड़ा')

३. 'प्रतापनारायण-ग्रन्थावली' प्रथम खण्ड (२०१४ वि०) - पृष्ठ २७२

कर, कागज के तख्ते रग-रग कर देश हित के गीत गाते फिरते है, वह और भी देशी-वस्तु का व्यवहार करना अपनी शान से बईद समझते है ।'[1]

मिश्र जी बड़े जागरूक और मूर्तिमन्त देश-भक्त थे। उनको अपने समय की प्रत्येक स्थिति का परिज्ञान था। देश मे सम्बन्धित छोटी से छोटी बात पर वे गम्भीरता से विचार करते थे। दृष्टिकोण की व्यापकता और सहृदयता के कारण वे भारत स्वरूप हो गये थे। देश का उद्धार करना ही उनके जीवन का एक लक्ष्य था और इसी लक्ष्य की ओर सदा वे लोगों को खीचते थे। वे कहते हैं—'लोगो को चाहिए कि कट्टरपन और कचढिल्लापन छोडके यह समझ रक्खे कि हम मुख और मन से चाहे जितना विदेश और विधर्म के पक्षपाती हो पर पैदा भारत मे हुए है और मरेगे भारत ही मे। अत भारत ही के भले मे हमारा भी भला है।[2] इसी दूरदर्शिता के कारण मिश्र जी पर उस समय की प्रत्येक स्थिति का प्रभाव पड़ा है और इन्होंने बडी तल्लीनता के साथ उस पर विचार किया है।

सामाजिक स्थिति

मिश्र जी के समय मे समाज का ढॉचा पूर्ण-विशृंखलित था। सभी जातिया आपसी विद्वेष की अग्नि मे जल रही थी। एक-दूसरे की बुराई करना ही उनका उद्देश्य था। दृष्टिकोण की सकीर्णता उन्हे निरन्तर अधोगति की ओर ले जा रही थी। ब्राह्मण अपने अतीत-गौरव मे चूर थे। वे अन्य जातियो को हेय-दृष्टि से देखते थे। इनके द्वारा छूआछूत और अध-विश्वास मे वृद्धि हो रही थी। ये पुरानी परम्पराओ और रूढियो के पोषक थे। अन्य जातियो को अपने से नीच और पतित समझने के कारण इनके अत्याचार बराबर उन पर बढते जा रहे थे, इससे अन्य जातियों मे बडा असतोष फैल रहा था। ब्राह्मण ही उस समय समाज के कर्णधार थे, समाज की सम्पूर्ण नीतिया उन्ही के हाथ मे थी। शिक्षा-दीक्षा की ओर इनका ध्यान न था, केवल ब्राह्मण कुल मे जन्म लेना ही उनके लिए स्वाभिमान और श्रेष्ठता की बात थी। ब्राह्मणो की विभेद-नीति के कारण सभी निम्न जातिया अपने कामो के प्रति उदासीन होती जा रही थी। ब्राह्मण नवीनता के प्रतिद्वन्द्वी थे, वे अपने प्राचीन गुरुत्व और पोपाचार के सरक्षण मे व्यस्त थे।[3] क्षत्री भी अपने वीरत्व को छोडकर, अंग्रेजो की चाटुकारिता मे ही अपनी भलाई देख रहे थे। वैश्यो के व्यापार मे भी अग्रेजो की शोषण नीति के कारण अब कोई लाभ नही रह गया था।

ब्राह्मणो की संकीर्णता के कारण सामाजिक उन्नति मे बडी बाधा पड़ रही

---

१. 'ब्राह्मण' खण्ड ९ सख्या ८ ('होली है')

२. 'ब्राह्मण' खण्ड ४ संख्या ७ ('नेशनल कांग्रेस मद्रास')

३. डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय—'आधुनिक हिन्दी साहित्य' (१९५४ ई०) पृ० ८१

थी। कोई भी व्यक्ति समुद्र यात्रा नही कर सकता था। यदि नियम को तोडकर कोई समुद्र-यात्रा करता भी था तो उसे समाज से वहिष्कृत कर दिया जाता था। इससे भारतीयो के सम्बन्ध अन्य देशों से न स्थापित हो पाते थे। धार्मिक-भीरुता और जातीयता के कारण समाज मे एक क्रान्ति सी उत्पन्न हो गई थी। समाज दो भागो मे विभक्त हो गया था। उच्च वर्ग के लोग जातीयता और प्राचीनता के पोषक थे और निम्न वर्गीय लोग इनका कडा विरोध कर रहे थे।[1] आपसी एकता और सगठन बिलकुल समाप्त हो गया था, चारो ओर फूट और विद्वेष के बादल मडरा रहे थे। इसके साथ ही समाज मे व्यभिचार और नशा-खोरी भी जोरों से फैल रही थी। ब्रिटिश-शासक भी अपने साम्राज्य और शोषण-नीति को स्थायी रखने के लिए फूट-नीति से काम ले रहे थे। भारतीयो को आलसी और अकर्मण्य बनाने के लिए बड़े पैमाने पर मादक वस्तुओ का प्रचार किया जा रहा था और विभेद नीति को अपनाकर हिन्दू और मुसलमानों को आपस मे लडाया जा रहा था।[2] इस प्रकार समाज में पूरी तरह अशान्ति छायी हुई थी।

मिश्र जी के समय में स्त्रियो की भी बडी दयनीय दशा थी। पर्दा प्रथा के कारण वे घर की चहार दीवारों मे ही बन्द रहती थी जिससे उनका बौद्धिक और मानसिक विकास नही हो पाता था। साथ ही पतियो के दुर्व्यवहार से भी उन्हे अनेक कष्ट उठाने पड़ते थे। वे एक दासी की भाति अपना जीवन व्यतीत करती थी। पतियों द्वारा उन्हे भर्त्सना और ताड़ना सदैव मिलती रहती थी। लड़कियो को पढाना भी उस समय हेय समझा जाता था। लडको की भी शिक्षा बहुत सीमित थी, इससे यदि कभी कोई लडकी पढ भी गई तो उसकी शादी होने मे बडी परेशानी होती थी तथा पढी लडकी से शादी करने में भी लोग एतराज करते थे। इसके अतिरिक्त समाज मे बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह और बहु-विवाह की भी कुप्रथाएँ फैली हुई थी। बचपन में ही लडके-लडकियो की शादी कर दी जाती थी जिससे उनका शारीरिक पतन तो होता ही था साथ ही उनका आगामी विकास भी रुक जाता था। दहेज प्रथा के कारण निर्धन व्यक्ति अपनी लडकियो की शादी वृद्ध पुरुषो से कर देते थे जिससे समाज में विधवाओ की सख्या बढ़ती जा रही थी। बहु-विवाह करने की उस समय एक परिपाटी सी बन गई थी। कई स्त्रिया रखने मे लोग अपनी शान समझते थे। इससे स्त्रियो की इज्जत भी कम होती थी और उन पर अत्याचार भी अधिक किये जाते थे। इन कुरीतियो को दूर करने के लिए समाज सुधारकों ने

---

१. किशोरीलाल गुप्त—'भारतेन्दु और अन्य सहयोगी कवि' (१९५६ ई०) पृ० २३२

२. रामगोपाल—'भारतीय राजनीति' (२०११ वि०)—पृष्ठ १४८-४९

बडे प्रयत्न किये। सन् १८७२ मे केशवचन्द्र सेन के प्रयास से बाल-विवाह और बहु-विवाह पर सरकार की ओर से प्रतिबन्ध लगाया गया। आगे चलकर पारसी सुधारक एम० बी० मालाबारी तथा अन्य सुधारको के प्रयत्न से सन् १८९१ मे सहवास-कानून (Age of consent Act) पास हुआ जिसके द्वारा विवाह करने की आयु पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। पर यह प्रतिबन्ध जनता द्वारा मान्य नही हुआ और न सरकार ने लोगो को मानने के लिए बाध्य ही किया।[1]

दहेज प्रथा का उस समय बडा जोर था। जिसके कारण निर्धन लोग अपनी लडकियो का विवाह ही न कर पाते थे। राजपूताना तथा देश के अन्य कुछ भागों मे तो विवाह की ही परेशानी के कारण कन्याओ का वध तक कर दिया जाता था। कन्या के जन्म लेते ही माताएं उसे अफीम देकर मार डालती थी। कभी-कभी वंशवृद्धि के लिए पुत्रों की बलि भी दी जाती थी। दहेज के लोभ मे लोग अनेक विवाह करते और पत्नियो को मार भी डालते थे। काली, चण्डी आदि की उपासना के लिए तान्त्रिक मत वाले नरबलि चढाते और नर मांस का प्रसाद लेते थे।[2] इस प्रकार समाज में बहुत सी कुप्रथाएँ फैली हुई थी। सरकार ने इन नृशंस प्रथाओ को सर्वप्रथम १७९५ ई० मे बन्द करने का प्रयत्न किया पर कोई विशेष सुधार नही हुआ। इसके बाद १८०२ ई० मे सरकार ने पुन कानून बनाया और उसे कडाई से लागू भी किया पर ये प्रथाये पूर्ण बन्द नही हुई।

१९वी शताब्दी के पूर्वार्द्ध मे बगाल, राजपूताना और दक्षिणी भारत मे सती-प्रथा विशेष रूप से प्रचलित थी। पति के मरने के बाद यदि स्त्रिया स्वेच्छा से सती नही होती थी तो उन्हे जबरदस्ती चिता मे ढकेल दिया जाता था। यदि कभी कोई स्त्री सती होने से बच भी गई तो उसे बड़ा कष्टमय जीवन व्यतीत करना पड़ता था। न तो वह अच्छे वस्त्र ही पहन सकती थी न अच्छा खा ही सकती थी। समाज भी उसे गिरी नजरों से देखता था। विधवा का जीवित रहना भी मृतक ही के समान था।[3] राजाराम मोहन राय ने इस प्रथा के विरोध मे एक बहुत-बडा आन्दोलन प्रारम्भ किया, जिसके परिणाम स्वरूप १८२९ ई० मे सरकार द्वारा इस प्रथा को दडनीय घोषित किया गया। सरकार द्वारा रोक लगाने से यह सती प्रथा

---

१. डा० विद्याधर महाजन और डा० आर० आर० सेठी—'ब्रिटिशकालीन भारत का इतिहास' (१९६० ई०)—पृष्ठ ५२३
२. डा० विद्याधर महाजन और डा० आर० आर० सेठी—'ब्रिटिशकालीन भारत का इतिहास' (१९६० ई०)—पृष्ठ ५२२-२३
३. डा० विद्याधर महाजन और डा० आर० आर० सेठ—'ब्रिटिशकालीन भारत का इतिहास (१९६० ई०)—पृष्ठ ५२३-२४

तो बहुत-कुछ कम हो गई पर विधवाओ की समस्या सामने आ खडी हुई। वृद्ध-विवाह आदि द्वारा समाज मे विधवाओं की सख्या बडी-तेजी से बढने लगी। अट्ठारह-अट्ठारह, बीस-बीस वर्ष की बाल-विधवाये अपना जीवन भार स्वरूप बिता रही थी। यह देखकर ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने विधवा-विवाह का आन्दोलन उठाया और सन् १८५६ मे सरकार ने विधवा-विवाह को वैध करार किया।[1] फिर भी हिन्दुओ की धर्मान्धता के कारण इस दिशा में कोई विशेष सुधार नही हुआ।

मिश्र जी के समय मे भारतीय-जनता निर्धनता से ग्रसित थी। मशीनो के आविष्कार और मिलो की स्थापना से भारतीय कुटीर-धन्धे नष्ट हो गये थे। जिससे देश की अधिकाश जनता कृषि पर निर्भर हो गयी थी। कृषि की भी स्थिति अच्छी नही थी। अनावृष्टि और जंगलो के कट जाने आदि से पैदावार बहुत कम हो गयी थी, साथ ही लगान भी बहुत बढ गया था। जो कुछ भी साल मे पैदा होता था, वह लगान ही मे निकल जाता था। इससे कृषको पर कर्ज दिन पर दिन बढ़ता जा रहा था। यहाँ तक कि भारतीय कृषक कर्ज ही मे पैदा होते और कर्ज ही मे मर जाते थे। महगाई भी कई-गुना अधिक हो गयी थी। विदेशी-वस्तुओ के प्रचार के लिए, देशी-वस्तुओ पर बराबर कर लगते जा रहे थे। विदेशी वस्तुएं तो महगी होती ही थी देशी-वस्तुए भी (करो के कारण) महगी होती जा रही थीं। देश का अधिकाश कच्चा-माल विदेश जा रहा था और उसी से निर्मित वस्तुएं देश मे आकर दुगुने और तिगुने दाम मे बिकती थी, जिसके परिणाम-स्वरूप देश का धन विदेश खिचता जा रहा था। विदेशी वस्तुओं के बदले मे (कच्चे माल मे) विशेष रूप से अन्न बाहर भेजा जाता था जिससे देश मे भुखमरी फैलने लगी थी।[2] वैसे ही भारत मे अन्न बहुत-कम पैदा हो रहा था, जो भारत ही की माग के लिए पूरा नही था। समाज मे रिश्वत-खोरी भी बढ रही थी। सरकारी कर्मचारी बिना रिश्वत लिए कोई काम नही करते थे। कचहरी और पुलिस विभाग तो रिश्वतखोरी मे सबसे आगे थे। विदेशियो की नकल और फैशन मे भी देश का बहुत सा धन व्यय हो रहा था। उक्त कारणो से हर साल अकालों की सख्या बढती जा रही थी। १९ वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे तो अकालो का ताता सा लग गया था। साथ ही हैजा और प्लेग जैसी महामारिया भी फैल रही थी जिनसे हजारो की सख्या में लोग अकाल काल-कवलित हो रहे थे। सरकार भी अकालो को बढाने मे पूरी तरह तत्पर थी। अकाल के समय मे सरकार की शोषण-नीति और भी बढ जाती थी।[3]

---

१. डा० विद्याधर महाजन और डा० आर० आर० सेठी—'ब्रिटिशकालीन भारत का इतिहास' (१९६० ई०)—पृष्ठ ५२४
२. राम गोपाल—'भारतीय राजनीति' (२०११ वि०) पृष्ठ ७२
३. राम गोपाल—'भारतीय राजनीति' (२०११ वि०) पृष्ठ ७२

समाज की विषम-परिस्थितियों से लोगो को मुक्त करने के लिए समाज-सुधारको के बराबर प्रयत्न हो रहे थे, साहित्यकार भी इस ओर विशेष दत्त-चित्त थे पर सरकार के असहयोग के कारण प्रगति बडी मन्थर गति से हो रही थी । समाज-हितैषी-अधविश्वास, धर्मान्धता, अनाचार आदि को दूर करने और ऐक्य प्रचार मे तत्पर थे आगल-प्रभाव और अग्रेजी-शिक्षा के सम्पर्क से भी जनता मे चेतना का विकास होने लगा था । नवीनता के पोषको का दृष्टिकोण पाश्चात्य-देशो के प्रभाव से बहुत कुछ वैज्ञानिक हो गया था वे धार्मिक तत्वो और रुढ़ियो मे वैज्ञानिकता खोजने लगे थे । उपदेशो आदि के परिणाम स्वरूप जनता के भी दृष्टिकोण मे व्यापकता आने लगी थी और रुढ़ियों के बन्धन ढीले पडने लगे थे । राजारामसोहन राय, दयानन्द सरस्वती आदि के प्रचार से स्वाभिमान, एकता और नवयुग की चेतना का विकास होने लगा था । जनता मे सहयोग के भाव जाग्रत होने लगे थे । इस युग के समाज सुधारको और साहित्यकारो ने समाज की अनन्य सेवा की तथा इन्ही के द्वारा समाज का एक नये सिरे से निर्माण हुआ ।

कानपुर की स्थिति

कानपुर का प्राचीन नाम कान्हपुर (कृष्ण के नाम पर) था । यह गगा के किनारे जिसे आज कल पुराना कानपुर कहते है एक छोटा सा गाव था । गंगा के किनारे बसे होने के कारण इसकी उन्नति बडी शीघ्रता से हुई । आगे चलकर ब्रिटिश साम्राज्य के प्रसार से यह एक प्रमुख औद्योगिक केन्द्र बन गया । यातायात के प्रचुर साधनो के कारण इसका व्यापार दूर-दूर के शहरो से प्रारम्भ हुआ । शक्ति के उपलब्ध होने से अनेक मिले भी स्थापित हो गयी । कानपुर मे सर्व प्रथम 'एलगिन मिल' १८६२ ई० मे स्थापित हुआ ।[2] इसके बाद कानपुर ऊलेन मिल (१८७६ ई०), कूपर एलेन एण्ड क० (१८८० ई०), कानपुर काटन मिल (१८८३ ई०), विक्टोरिया मिल (१८८६ ई०), आदि स्थापित हुए ।[3] सन् १८८१ मे कानपुर की जनसंख्या १,५१,४४४ थी ।[4] इस जिले के बिल्हौर, अकबरपुर और बिठूर कस्बो की भी आबादी ५००० से ऊपर थी ।[5] औद्योगिक केन्द्र होते हुए भी कानपुर की सामाजिक स्थिति बडी दयनीय थी । कुछ को छोड कर सभी लोग निर्धनता की बेड़ियो

---

१. लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी और नारायणप्रसाद अरोड़ा—'कानपुर का इतिहास' (१९५० ई०) पृष्ठ १५९

२. त्रिपाठी और अरोड़ा—'कानपुर का इतिहास' (१९५० ई०) पृ० १५२-५३

३. '—वही—' '—वही—' पृ० १५६

४. '—वही—' '—वही—' पृ० १९३

५ '—वही—' '—वही—' पृ० १९९

मे जकडे हुए थे । श्रमिकों की सख्या यहां अधिक थी जिनको पेट भर भोजन भी न प्राप्त होता था । फिर भी यहा की जनता मे सहयोग की भावना नही थी । अनेक कष्ट उठाते हुए भी जनता सामाजिक कार्यों मे भाग न लेती थी । छल और प्रपंच विशेष रूप से बढ रहा था ।[१]

सन् १८६५ मे इस क्षेत्र मे महगाई बहुत-अधिक थी । इसके बाद कुछ सस्ता हुआ पर सन् १८७७-७८ के दुर्भिक्ष से भाव पुन चढ गये ।[२] सन् १८६८-६९ मे अति-वृष्टि तथा पाले से फसलें नष्ट हो गयी ।[३] जिसके परिणाम-स्वरूप कृषको को बहुत कष्ट उठाने पडे । सन् १८८० मे इस जिले मे वृष्टि का औसत केवल ११.०९" था, जो साधारण वर्षा का तिहाई था । इससे खरीफ की फसल नष्ट हो गयी ।[४] १९ वी शताब्दी के अन्तिम दशक मे इस क्षेत्र मे अनेक अकाल पडे, जिसे जनता का बहुत बडा भाग भूखो मर गया । साथ प्लेग के प्रकोप से भी बहुत से लोगो की जानें गयी । यह काल जनता के लिए बडे-कष्ट और असतोष का रहा । ऐसी स्थिति मे प्रतापनारायण मिश्र और उनके सहयोगियो ने समाज-सुधार मे बडा कार्य किया । अकालियो की सहायता के लिए चन्दा और अन्न वसूल किये गये । स्वदेशी-प्रचार के लिए अनेक जातीय भडार खोले गये । जनता मे सहयोग और ऐक्य स्थापित करने के लिए बहुत-सी सस्थायें खोली गयी इन्ही समाज-सुधारकों के प्रयत्न से जनता में राष्ट्रीयता का विकास हुआ । सन् १८६५ से प्रयागनारायण तिवारी, बी० एच० गुड (सुपरिण्टेण्डेण्ट), हालसी (कलक्टर) आदि के प्रयत्न से कानपुर में दंगल लगने प्रारम्भ हुए ।[५] दगलो में इनाम का भी अच्छा प्रबन्ध किया जाता था जिससे जनता इनकी ओर विशेष आकृष्ट होती थी । इन दंगलो से स्वास्थ्य रक्षा को बडा प्रोत्साहन मिलता था ।

मिश्र जी पर प्रभाव

मिश्र जी अपने समय के जागरूक द्रष्टा थे । समाज की प्रत्येक गतिविधि से उनका परिचय था । तत्कालीन सभी स्थितियों का उनके ऊपर प्रभाव पडा है क्योकि उनकी समस्त रचनायें समाज की किसी न किसी समस्या की ओर सकेत करती हैं । समाज की तत्कालीन स्थिति का चित्र मिश्र जी ने इस प्रकार खीचा है—

---

१. 'ब्राह्मण' खण्ड ४ संख्या १० 'ककाराष्टक,—प्रतापनारायण मिश्र
२. त्रिपाठी और अरोड़ा—'कानपुर का इतिहास' (१९५० ई०) पृ० २५९
३. '—वही—' '—वही—' पृ० २५४
४. '—वही—' '—वही—' पृ० २५४-५५
५. सं० नारायणप्रसाद अरोड़ा : 'प्रतापलहरी' (१९४९ ई०) पृ० २२२

"तन मन सो उद्योग न करहीं, बाबू बनिबे के हित मरहीं।
परदेशिन सेवत अनुरागे, सब फल खाय धतूरन लागे॥"[१]

* * *

"सब प्रकार सों देखि दीनता लागति हिये जनु गोली है।
दिन-दिन निर्बल, निरधन निरबस होति प्रजा अति भोली है॥
पर्‌यो झोपड़ी माहि छुधित नित रोवत छोरा छोरी है।
ज्यों-त्यों करि काटत दुख जीवन का सूझति तेहि होरी है॥"[२]

कानपुर की स्थिति को मिश्र जी इस प्रकार व्यक्त करते हैं—

"कोऊ काहू को न कतहुं, सतकर्म सहायक।
केवल बात बनाय बनत सहसन सब लायक॥
कुटिलन सो ठगि जाहिं ठगहिं सूधे सुहृदंन कंह।
करहिं कुकर्म करोरि छपावहिं न्याय धर्म मह॥
कुछ डरत नाहिं जगदीश कहं, करत कपट मय आचरन।
कलयुग रजधानी कानपुर, भारत कहं गारत करन॥"[३]

तत्कालीन स्थिति से मिश्र जी को बड़ा क्षोभ था। वे छुआछूत, जाति-पांति खान-पान आदि दुर्गुणो के विरोधी थे। ब्राह्मणो के अत्याचारो और अन्ध-विश्वासो की वे कटु-आलोचना करते थे। ब्राह्मणो पर आक्षेप कसते हुए वे कहते है—"इनकी पैदाइस विराट भगवान के मुख से है और मुख ऐसा स्थान है, जहा थूक भरा रहता है। फिर जो थूंक के ठौर से जन्मेगा, वह कहा तक थुकैलापन न करेगा।"[४] मिश्र जी जाति को श्रेष्ठ न मानकर कर्म और ज्ञान को श्रेष्ठ मानते थे। इसीलिए ब्राह्मणो की निरक्षरता से उन्हे बडी-चिढ थी—

"का खा गा घा हू जिन पढ़े, तिरबेदी पदवी धरन।
कलह प्रिय जियति कनौजिया, भारत कह गारत करन॥"[५]

ब्राह्मणों के कर्मों का भण्डाफोड करते हुए मिश्र जी लिखते है—

"मद पियहिं मलेच्छन साथ मास नित खाहीं।
ताहू पर नहिं द्विज वंशज बनत लजाहीं॥

---

१. नारायण प्रसाद मिश्र—'लोकोक्ति शतक' (१८९६ ई०) पृष्ठ ७
२. स० नारायण प्रसाद अरोड़ा—'प्रतापलहरी' (१९४९ ई०) पृष्ठ १३२-३३ 'होली' —प्रतापनारायण मिश्र
३. 'ब्राह्मण' खण्ड ४ संख्या १० ('ककाराष्टक')
४ 'ब्राह्मण' खण्ड ४ संख्या ९ (ककाराष्टक')
५ '—वही—' ,, ४ ,, १० '—वही—'

गनिका गृह जातहि कलप वृक्ष बन जाहीं।
सत करम हेतु जनु घर मह अन्नहु नाहीं।।"[१]

समाज सुधारक होने के नाते मिश्र जी लोगो की केवल बुराई ही नही करते थे बल्कि उन्हे दुर्गुणो से अवगत कराकर आगे बढ़ने के लिए प्रोत्साहित भी करते थे। ब्राह्मणों के विषय मे वे कहते है—"हमारे कनवजिया भाई लाख गये बीते है तो क्या हुआ इनकी दृढ चित्तता अभी तक सर्वोपरि है केवल सुझाने वाला इनको चाहिए फिर देखना यह कैसे शीघ्र उन्नत होते है।"[२] मिश्र जी समाज को-डाट-डपट, समझा-बुझा, हर तरह से रास्ते पर लाने का प्रयत्न करते थे। उनका सिद्धान्त था—

"काम निकासिय साम दाम भय भेद ते।
सब संग इक से रहत लहत नर खेद ते।।
पररुख लखि चलिबो चतुरन की बात है।
आधर बैल भंवाय के जोता जात है।।"[३]

क्षत्रियो और कायस्थो का उद्देश्य मिश्र जी इस प्रकार स्पष्ट करते है—

"बालापन के मीत तनक हमसे दबै,
बल विद्या बिना कहै लोग क्षत्री सबै।
गाली छूट मुह से निकले कहि बोलना,
इतना दे करतार अधिक नही बोलना।।
* * *
कलिया और शराब सदा मिलती रहै,
जुज पूजा कोई तर्ज न हिन्दू की रहै।
बी उर्दू के जाल हमेशा खोलना,
इतना दे करतार अधिक नही बोलना।।"[४]

मिश्र जी के समय मे भारतीय-नृपति वीरता से पृथक् होते जा रहे थे। मुसलमानो और अंग्रेजो की चापलूसी करना ही उनका काम था। इस पर मिश्र जी लिखते हैं—

"जहां राज कन्यन के डोला तुरकन के घर जाय।
तहां दूसरी कौन बात है जहिमां लोग लजांय।।
भला इन हिजरन ते कुछ होना है।"[५]

---

१. ब्राह्मण खण्ड ५ संख्या ४ ('गाना समझो चाहे रोना')
२. '—वही—' „ २ „ २ पृष्ठ २०
३. प्रतापनारायण मिश्र—'लोकोक्ति शतक' (१८९६ ई०) पृष्ठ २
४. 'ब्राह्मण' खण्ड २ संख्या ९-१० ('इतना दे करतार अधिक नहीं बोलना')
५. सं० नारायण प्रसाद अरोड़ा—'प्रतापलहरी' (१९४९ ई०) पृष्ठ १३८

अन्यत्र एक स्थान पर मिश्र जी प्रमुख जातियो की आलोचना करते हुए उनके दुष्कृत्यो की ओर सकेत करते है—

"द्विज हौ पढ़िबो लिखिबो तजि कै, जु प्रतिग्रह केवल जानत है ।
नृप ह्वै रन रंग न रोचत जो, गनिकान ही सों रतिमानत है ।।
धन लाय के सालहू दीपन सो, बनिया पर दुःख न मानत है ।
निज धर्म भली विधि सों जु नहीं, पहिचानत है तिन्है लानत है ।।"[१]

मिश्र जी को स्त्रियो की दयनीय स्थिति के प्रति भी सहानुभूति थी । वह स्त्री-पुरुषो की समान उन्नति चाहते थे । समाज की उन्नति के लिए दोनो की उन्नति आवश्यक मानते थे । इसीलिए वह स्त्री-शिक्षा के पक्षपाती थे । वे लिखते है—"पुरुषो के लिए सब कही पाठशाला, इनके लिए यदि है भी तो न होने के बराबर यदि आज सब लोग इधर झुक पडें तो शायद कुछ दिनो मे कुछ आशा हो, नही आज दिन के देखे तो हमे यही जान पडता है कि अर्धांगी स्त्री का नाम इसलिए रक्खा गया है कि जैसे अर्धांगी नामक बीमारी से स्थूल शरीर, आधा किसी काम का नही रहता वैसे ही इस अर्धांगी के कारण मन, बुद्धि, आत्मा, स्वातन्त्र्य, उदार-चित्तादि आधी (नही, बिल्कुल) निकम्मी हो जाती है । मनुष्य केवल भय निद्रादि के काम का रह जाता है, सो भी निज बस नही ।'[२] इसके अतिरिक्त बालविवाह के मिश्र जी प्रबल विरोधी थे । वे कहते है—"आर्यावर्तीय जनो को सर्वथा अनिष्ट-कारक होने के कारण, वेदशास्त्र, पुराण तो क्या, बाल्यविवाह की विधि, आज्ञा या प्रमाण आल्हा तक मे नही है । शीघ्रबोध के जिन श्लोको को प्रमाण मान के हिन्दू भाई इस घोर कुरीति पर फिदा है, जिसके लिए नई रोशनी वाले बिचारे काशीनाथ पर फटके बाजी करते हैं, उनका ठीक-ठीक अर्थ ही कोई नही बिचारता, नही तो उसमे तो महा-महा निषेध, वरच भयानक रीति से बाल्य-विवाह का निषेध ही है ।"[३] अधिक बाल-विधवाओ के बढने का कारण भी मिश्र जी बालविवाह ही मानते है—"यदि बाल-विवाह की प्रथा उठ जाय तो विधवा-विवाह की बड़ी आवश्यकता ही न रहे ।"[४] बाल-विधवाओ की दशा भी मिश्र जी के हृदय को विदीर्ण करती है और इसी मे वह बाल-विवाह और वृद्ध-विवाह के विपक्षी है—

"कौन करेजो नहिं कसकत सुनि विपत बाल विधवन की है ।
ताते बढ़िकै, क्रन्दना कान्य कुब्ज कन्यन की है ।।
वैर परे पितु मातु बनाई युवति बाल वृद्धन की है ।

---

१. सं० नारायण प्रसाद अरोड़ा—'प्रतापलहरी' (१९४९ ई०) पृष्ठ ४३
२. 'ब्राह्मण' खण्ड ५ संख्या २ ('स्त्री')
३. 'ब्राह्मण' खण्ड ३ संख्या ११ ('बाल्यविवाह विषयक एक चीज')
४. 'ब्राह्मण' खण्ड ६ संख्या ६ ('सोशयल कान्फरेन्स')

पशु सम समझी जाति, नहिं बनिता रिषि बंशन की है ।।
काहे न कलपै जियत खसम पर, हा ! जेहि भसम रमाई है ।
दीन बन्धु बिन दीन को दीसत कोऊ न सहाई है ।।"[1]

सरकार मे जब सहवास बिल के पास होने की बातचीत चली (और देश के बहुत से लोगों ने विरोध किया) तब मिश्र जी ने उसका बडे जोरदार शब्दो मे समर्थन किया-और देशवासियो को भी उसके गुण बतलाकर उसकी ओर प्रेरित किया ।[2] मिश्र जी बहुत-कुछ आधुनिक विचारो के थे, वे वर-कन्या की इच्छा से होने वाले विवाह को ही श्रेष्ठ समझते थे—"इससे उत्तम यही है कि विवाह केवल वर और कन्या ही की इच्छा से होना ठीक है, नही तो दोनो की जीवन-यात्रा मे बाधा पडना सम्भव है।"[3] इसके अतिरिक्त मिश्र जी दहेज प्रथा, अपव्यय, समुद्रयात्रानिषेध आदि के विरोधी थे । अपने समय की सम्यक् स्थितियों पर दृष्टि डालते हुए मिश्र जी लिखते है—"नाना भांति के क्लेश और हानि सहना, पर पुरानी लकीर के एक अंगुल भी बाहर न होना, बिरादरी मे दो दिन की वाह-वाह के लिए, ऋण काढ के सैकडो की आतिशबाजी छिन भर मे फूक के सतान के माथे कर्ज मढ जाना, केवल नाई और पुरोहित की प्रसन्नता के लिए साठ बरस और आठ बरस के वर-कन्या की जोडी मिलाना तथा दोनो का जन्म नशाना, पॉच बरस की विधवा का यौवन काल मे व्यभिचार एव भ्रूण हत्या टुकुर-टुकुर देखते रहना, वरच छिपाने का यत्न करना, पर विधवा-विवाह का नाम लेने वालो मे मुह बिचकाना, भूखो मर जाना पर अपना पराया धन लगा के छोटा-मोटा धधा तथा दस-पाच की नौकरी न करना, लडकियो को जवान बिठला रखना, उनका मनोवेदना जनित शाप सहना पर बराबर वाले अथवा कुछ अठारह बीस विशुध वशज के साथ विवाह न करना, दहेज की दुष्ट प्रथा के मारे नई पौध की उन्नति मिट्टी मे मिलाना, बध-बांधव होटलो में खाया करे, विधर्मिनी स्त्रियो के मुह मे मुह मिलाया करे अथवा कोटि-कोटि कुकर्म कर-कर जेल में जाया करे, कुछ चिन्ता नही, पर विद्या पढने और गुण सीखने के लिए विलायत हो आवे तो उन्हे जाति में न मिलाना ।"[4]

समाज की निर्धनता के भी अनेक चित्र मिश्र जी ने अपने साहित्य मे खीचे है । उनका कहना है—"अब हमारा यह सिद्धान्त सत्य होने मे किसी को कुछ सन्देह न होगा कि जितना दरिद्र मुसलमानों के सात सौ वर्ष के प्रचंड शासन द्वारा न फैला

---

१. सं० नारायणप्रसाद अरोड़ा—'प्रताप लहरी' (१९४९ ई०) पृष्ठ ९९
२. 'ब्राह्मण' खण्ड ७ संख्या ७ ('सहवास बिल अवश्य पास होगा')
३. 'ब्राह्मण' खण्ड ५ संख्या १ ('स्त्री')
४. 'ब्राह्मण' खण्ड ६ संख्या २ (भलमंसी')

था, उतना, वरच उससे अत्यधिक, इस नीतिमय राज्य मे विस्तृत है।"[१] श्रमिक समाज की दशा का चित्रण करते हुए वे लिखते हैं—

"साग पात संग रूखो सूखो अन्न खाहिं नित।
नोन महंग अति मिलत, रहहिं तरसत तेहि के हित॥
गाय, भैंस जो होति तासु घृत दूध न खाहीं।
ताहि बेंचि कछु अन्न लाय डारहिं घर माहीं॥
मठा होय अथवा काहू के घर ते आवै।
सोई काची पाकी रोटिन कर साथ पुरावै॥
शीतकाल में तन्दुलकर तृण ओढ़ रजाई।
राति बीतावहिं वृद्ध, तरुण, सिसु, लोग, लुगाई॥"[२]

मिश्र जी के समय मे व्यापार, कृषि आदि मे भी कोई लाभ नही था इससे निर्धनता और बढ रही थी—"कृषि, वाणिज्य, शिल्प, सेवादि किसी मे भी कुछ तत्व नही है। खेतों की उपज अतिवृष्टि, अनावृष्टि, जगलो का कट जाना, रेलों और नहरो की वृद्धि इत्यादि ने मिट्टी कर दी है। जो कुछ उपजता भी है वह कट के खलिहान मे नही आने पाता, ऊपर ही ऊपर लद जाता है। रुजगार व्यौहार मे कही कुछ देख नही पडता। जिन बाजारो मे अभी दस बरस भी नही हुए कचन बरसता था, वहाँ अब दूकाने भाय-भाय होती है।[३] कृषि की उस समय बडी ही दयनीय स्थिति थी। प्राय प्रत्येक वर्ष अतिवृष्टि या अनावृष्टि से कृषि नष्ट हो जाती थी। लोग इसे दैवी-प्रकोप समझते थे और इस प्रकोप को शान्त करने के लिए अनेक अनुष्ठान किये जाते थे। मिश्र जी भी इन अनुष्ठानो मे बडी तत्परता से भाग लेते थे—सन् १८७८ ई० (१९३५ वि०) मे अवर्षण हुआ जिसके कारण कृषि नष्ट हो गई। चारो ओर त्राहि-त्राहि मचने लगी। पानी बरसने के लिए प्रत्येक गावो मे हवन, पण्डितो और कुमारिकाओ के भोज आदि होने लगे। बेथर (जिला उन्नाव) के सिद्धेश्वर मन्दिर मे भी हवन किया गया। प्रतापनारायण जी भी इस हवन मे सम्मिलित थे। जब हवन समाप्त हो गया तब मिश्र जी ने, बडे सुन्दर राग से दो मलार-गीत गाये। कहते है कि पण्डित और कुमारिकायें भोजन कर चुकी कि मूसलाधार जलवृष्टि होने लगी।[४] मिश्र जी द्वारा गाया गया एक मलार-गीत इस प्रकार है—

---

१. 'ब्राह्मण' खण्ड ३ सख्या १२ ('इनकमटैक्स')
२ '—वही—' ,, ६ ,, ४ ('युवराजकुमार स्वागतते')
३. '—वही—' ,, ९ ,, ८ ('होली है')
४. स० नारायणप्रसाद अरोड़ा—'प्रतापलहरी' (१९४९ ई०) पृष्ठ २१ ('प्रताप-लहरी') में अवर्षण का काल १९५३ वि० दिया हुआ है जब कि मिश्र जी कि मृत्यु १९५१ वि० मे ही हो गई थी। अत यह मुद्रण की अशुद्धि है। १९५३ के स्थान पर १९३५ होना चाहिए। ऐतिहासिक दृष्टि से भी १९३५ वि० भयकर अवर्षण का काल था।)

"जल बिन सूखत खेत गोपाल ।
बरसत नही मेघ जल केशव कृषक फिरत बेहाल ।
बरस्यो नहीं मघा महि जासों जल थल होत निहाल ।।
निकसि गये पूरवा अर्ध पुनि आगे कौन हवाल ।
हे घनश्याम सघन घन आवत नीर न होत विशाल ।।
कृपासिन्धु बरसावहु बहु जल भक्तन के प्रतिपाल ।
प्रेमदास कर जोरि नाथ सों गावत मेघ मलार ।।"[१]

* * *

मशीनों के हो जाने से कुटीर उद्योग-धन्धे समाप्त हो गये थे । इनके दुष्परिणाम को मिश्र जी इस प्रकार व्यक्त करते हे—"आगे सौ पचास रुपये लगा के छोटा-मोटा धधा कर उठाता तो भी चैन से दिन बिताता था । पर आज हम देखते है जो हजारो अटकाए बैठे है वे भी झीखते रहते है । हजारो गरीब लोग एक लढिया से घर भर का पालन करते थे । उनका रेल ने सर्वनाश कर दिया । हजारो अनाथ विधवा पिसौनी-कुटौनी कर खाती थी, उनकी रोटी पन-चक्कियो ने हर ली । हजारों कोरी कम्बल, खेस, गजी गाढ़ा बना के निर्वाह कर लेते थे । उन्हे सत्यानाश मे मिलाने को पुतली घर खड़े हुए है ।"[२] औद्योगिक केन्द्र कानपुर की आर्थिक दशा के विषय मे मिश्र जी लिखते हे—"हमारा कानपुर जो अब से दस वर्ष पहिले था, अब नही रहा । यह तो रोज सुन लीजिए कि आज फलाने बिगड़ गये, पर यह सुनने को हम मुद्दत से तरसते है कि इस साल फलाने इस काम मे बन बैठे । जब आमदनी के इन उत्तम और मध्यम मार्गो की यह दशा है तो सेवा-वृत्तियों का कहना ही क्या ? सैकड़ो पढे-लिखे मारे-मारे फिरते हे । बिना सिफारिश कोई सेत नही पूछता ।"[३] बेकारी मिश्र जी के समय मे अपने उग्र रूप मे थी—

"जे विद्या अरु गुन सीखत बहु वर्ष बितावैं ।
बिना सिफारिश उचित नौकरी सोउ न पावैं ।
उदर हेत जे शिर बेचन पलटन महं जाहीं ।
गोरे रंग बिन ठीक आदरित वेहू नाही ।"[४]

समाज की निर्धनता महंगी, अकाल, बेकारी आदि से मिश्र जी बहुत व्यथित थे । जब उनसे समाज का दुख न देखा गया तो वे कहने लगे—

---

१. सं० नारायणप्रसाद अरोड़ा—'प्रतापलहरी, (१९४९ ई०) पृष्ठ २०१
२. 'प्रतापनारायण-ग्रन्थावली' प्रथम खण्ड (२०१४ वि०) पृष्ठ २७२
३. 'ब्राह्मण' खण्ड ३ संख्या १२ ('इनकमटैक्स')
४. '—वही—' खण्ड ६ संख्या ५ ('स्वागतंते महात्मन्')

"अहो मित्र धन सचय करौ, सब गुन गन छप्पर पर धरो ।
जिहि बिन बुद्धि बिकल सब काल, सौ चंडाल न एक कगाल ।।"[१]

आगे मिश्र जी को अपने अतीत की याद आती है और वह फिर दुखित होकर कहते है—

"हा दुरदैव ! आज हमरे पापी मेटहु की तृपनि हराम ।
कित सो कहा लाय किमि पालै छोटे सिसु अरु कृशतनु बाम ।।
वे दिन कबहूं फेर फिरैगे ? कहं धौं गये हाय रे राम ।
जब हम कहत रहे निज बूतें, सकल सृष्टि सों तृप्यन्ताम् ।।"[२]

मिश्र जी मे वैज्ञानिक ढग से सोचने की अपूर्व शक्ति थी । उन्होंने यह अच्छी तरह समझ लिया था कि वृक्षो का पृथ्वी की उर्वरा शक्ति से घनिष्ट सबध है । वे कहते है—"जब से हमारे देश मे वृक्षो का नाश होने लगा, तभी से हमारी धरती माता जीर्ण हो गई । वर्षा की न्यूनता और रोगो की वृद्धि हो गई । यदि अब भी हमारे देश हितैषी भाई धरती का भला चाहते है तो वृक्ष और घास का नाश होना रोके । लोगो को उपदेश देना, अपनी जमीन पर के पेड़ो को न काटना, सदा उनकी संख्या बढाते रहना, सरकार से भी इस विषय मे प्रार्थना करते रहना इत्यादि ही उपाय है । पीपल का वृक्ष पोला होता है, वह औरो से अधिक जल खीचता है, इसी से उसका काटना वर्जित है । जहा तक हो सके उसको तो काटने से अवश्य ही बचाइए ।"[३] देश के कल्याण को लेकर मिश्र जी को वृक्षो से इतना प्रेम है कि पितृ-पक्ष मे उनकी तृप्ति के लिए तर्पण तक करते है—

"बिगरि जाय जलवायु बढ़ै रुज होय अवर्षन दुख परिणाम ।
पै यह समझन हार कौन ? सब बन काटहिं अरु संचहिं दाम ।।
डरियत ! कहुं तरपन हित तुम्हरों लिखन न परै चित्र अरु नाम ।
याते कहियत बची बचाई सबै बनस्पति तृप्यन्ताम् ।।"[४]

समाज मे फैली हुई नशाखोरी और रिश्वत ने भी मिश्र जी को अपनी ओर आकृष्ट किया । रिश्वत के विषय मे मिश्र जी लिखते है—"कुछ दिनो से हमारे देश मे इसका ऐसा प्रचार हो गया है कि मूर्खो की कौन कहे पढे लिखे लोग भी इस प्रकार

---

१. प्रतापनारायण मिश्र—'लोकोक्ति शतक' (१८९६ ई० पृष्ठ ३
२. सं० नारायणप्रसाद अरोड़ा—'प्रतापलहरी' (१९४९ ई०) पृष्ठ ६० 'तृप्यन्ताम्'—प्रतापनारायण मिश्र
३. 'ब्राह्मण' खण्ड ५ संख्या १० ('धरती माता की पूजा')
४. स० नारायण प्रसाद अरोड़ा—'प्रतापलहरी' (१९४९ ई०) पृष्ठ ५१ 'तृप्यन्ताम्'—प्रतापनारायण मिश्र

प्रत्यक्ष पाप से किंचित्मात्र लज्जा और घृणा नही करते । कितने ही सेवावृत्तो (नौकरी पेशा) लोगो के तो यह हराम की हड्डी ऐसी दात लग गई है कि वे अधिक वेतन की जगह छोड के, मेरी-तेरी खुशामद करके, वरंच कुछ अपनी गाठ से पूजके इस "बालाई आमदनी" के लिए थोडे से मासिक पर नियत हो जाने ही को बडी चतुरता समझते है । हम बहुतो को प्रतिदिन ऐसी बाते करते सुनते है कि कहो उस्ताद, पोस्ट तो बहुत अच्छी हाथ लगी, भला कुछ ऊपरी तरावट भी है ?"[1] नशेबाजो का भी मिश्र जी बडा अच्छा वर्णन करते है—

बिछे गलीचा है मजलिस मां खोपरी पाउडं धरत बिलाय ।
फट-फट कोऊ बोतल खोलै, कट-कट कोऊ हाड़ चबाय ।।
खाय अफीमन के कोउ गोटा आँखी उधरें और रहि जाय ।
ददकैं चिलमें रे गांजन की मानो बन मां लागि दवारी ।।"[2]

सामज की विपम परिस्थितियो ने मिश्र जी को एक सबल उपदेशक का रूप प्रदान किया था । मिश्र जी कबीर की तरह अक्खड उपदेशक नही थे वह बडे ही मिष्ट, नम्र और शिष्ट उपदेशक थे । चिढकर भी वह अपने उपदेश में कटु पर मीठे व्यग्य ही प्रयुक्त करते थे । देशवासियों को उनकी ही जन सामान्य भाषा मे तन्मयता के साथ समझाना उनका लक्ष्य था । वे कहते हैं ।

"धर्म के ऊपर तन मन वारो कीरति चली जुगाधिन जाय ।
खाय अमरौती ना कोऊ आवा ना तांबे ते पीठि मढ़ाय ।।
सरग मडैया है सबही कै कोऊ आज मरा कोउ काल्हि ।
धर्म के कारज जो करि जैहौ चलि है जुगन-जुगन लग नाउं ।।
नास्तिक इक दिन मरे धरे सब कौआ गीध मासु ना खायं ।
तेहिते भैया यह कहियत है कछु करि चलो धर्म के काम ।।"[3]

मिश्र जी समाज के आचरण पर दृष्टि रखते थे । वह किसी के किये हुए को न मानना पाप समझते थे । उनका कहना था कि इतना और स्मरण रखिए कि जिसने अपना प्राण बचाने मे सचमुच उद्योग किया हो उनके लिए यदि सारा धन काम मे आवे तो दे देना उचित है, एव जिसने मान, सभ्रम (इज्जत) बचाया हो उसके लिए धन और प्राण दोनो खो देना योग्य है । तथा जिसने अपने साथ सच्चा

---

१. ब्राह्मण खण्ड १ संख्या ३ (रिश्वत)
२. स० नारायाण प्रसाद अरोडा,' 'प्रतापलहरी' (१९४९ ई०)—पृष्ठ २१७
'कानपुर माहात्म्य' —प्रतापनारायण मिश्र
सं० नारायण प्रसाद अरोड़ा.' पतापलहरी' (१९४९ ई०) पृष्ठ २१५
३. कानपुर माहात्म्य—प्रतापनारायण मिश्र

स्नेह किया हो उस पर धन, प्रान और इज्जत सब वार देना महादान है।[१] स्वाभिमान की रक्षा करना भी मिश्र जी समाजोन्नति के लिए आवश्यक मानते है —"हम अपने पाठको को सम्मति देते है कि कभी किसी दशा मे अपने को किसी प्रकार तुच्छ न समझें, वरच महात्माओ के इस कथन पर दृढ रहे कि जगत के लोग उसी की प्रतिष्ठा करते है, जो स्वय अपनी प्रतिष्ठा करना जानता है। और विचार कर देखिये तो जितने बडे-बडे उत्तमोत्तम कीर्तिकारक कार्य है, सब मनुष्यो के द्वारा सम्पादित होते है, फिर हम क्या मनुष्य नही है वा कुछ कर नही सकते ?"[२]

मिश्र जी के समय मे आपसी फूट बहुत अधिक थी। वे लिखते है—

"भाय-भाय आपस मे लरै, परदेशिन के पायन परै।
यहै हुंब भारत शशि राहु, घर का भेदिया लंका दाहु॥"[३]
छके परस्पर बैर वारुणी, सबको ज्ञान गयो री।
घरन---घरन भाइन---भाइन मे जूता उछरि रह्यो री॥"[४]

इस फूट को मिश्र जी समाजोन्नति में बाधक समझते थे, इसस वे सदैव एकता का प्रचार किया करते थे—

"प्रीति परस्पर राखहु मीत, जइहै सब दुख सहजहि बीत।
नही एकता सरिस बल कोय, एक-एक मिलि ग्यारह होय॥"[५]

उनको एकता पर पूरा विश्वास था। वे कहते है—"यदि सरकार को यह निश्चय होता कि एक समाज पर एक स्थान पर वा एक हिन्दू पर कोई आपदा आवेगी तो जाति मात्र उसकी सहानुभूति के लिए उद्यत हो जायगी—जैसा मुसलमान करते है तो कभी सरकार हमको और मुसलमानो को दो आखो से न देखती। क्या कारण है एक ही राजा की दो प्रजा उनमे से एक का पक्ष लिया जाय दूसरे पर दबाव डाला जाय ? यही कारण है कि हिन्दुओ मे एकमत्य नही।"[६] मिश्र जी हिन्दू, मुसलमान और क्रिश्चियन तीनो मे एकता स्थापित करना चाहते थे। उनमे किसी प्रकार का साम्प्रदायिक विद्वेष नही था—

---

१. 'ब्राह्मण' खण्ड ६ सख्या ३ ('दानपात्र')
२. प्रतापनारायण मिश्र-ग्रंथावली प्रथम खण्ड (२०१४ वि०) पृष्ठ ६७५ सुचाल-शिक्षा प्रतापनारायण मिश्र
३ प्रतापनारायण मिश्र-'लोकोक्ति शतक' (१८९६ ई०) —पृष्ठ २
४. सं० नारायण प्रसाद अरोड़ा 'प्रतापलहरी' (१९४९ ई०)—पृष्ठ १३७ 'होलिका पंचक'—प्रतापनारायण मिश्र
५. प्रतापनारायण मिश्र—लोकोक्ति शतक' (१८९६ ई०)—पृष्ठ २
६. 'ब्राह्मण' खण्ड १ सख्या १० ('तीन दबावत निबल को पातक राजा रोग')

"अहैं इहा पर तीन मत, हिन्दु यवन क्रिस्तान।
भारत की शुभ देह मे, तीनहुं अस्थि समान॥
एक दूसरे सों इहाँ, पावै जो न सहाय।
तौ अतिशै निरवाह में, कठिनाई परिजाय।"[१]

मिश्र जी एकता स्थापन की ईश्वर स भी प्रार्थना करते है—

"नर नारी पशु पक्षि कुल करहिं परस्पर प्रीति।
यह इच्छा परताप की पुरवहु प्रभु भल रीति॥"[२]

मिश्र जी स्वावलम्बन पर विशेष जोर देते थे। परतन्त्र भारत को उनकी दृष्टि मे स्वावलम्बी होना नितान्त आवश्यक था। इसीलिए वह भारतीयो को प्रबोधते हुए कहते है—

"जब लगि तजि सब सक सकुच अरु आश पराई।
नहिं करिहौ अपने हाथन आपनी भलाई॥
अपनी भाषा भेष भाव भोजन भाइन कहं।
जब लग जगते उत्तम नहिं जानिहयौ जिय महं॥
तब लग उपाय कोटिन करत अगनित जनम बितायहौ।
पै सांचो सुख संपति सुजस सपनेहु नहिं लखि पाय हौं॥"[३]

मिश्र जी अपने युग के श्रेष्ठ समाज सुधारको मे-से थे। वे अपने समय की प्रत्येक स्थिति को अच्छी तरह देखकर, गहराई मे उस पर विचार कर समुचित सलाह देते थे। उनका सम्पूर्ण जीवन समाज सेवा के लिए था, वह इसके लिए अपने शरीर की भी चिन्ता न करते थे। समाज का दुख वह अपने दुख मे अधिक समझते थे और उसे दूर करने मे सदैव रत रहते थे डा० राम अवध द्विवेदी लिखते है—"अपने मित्र बाबू हरिश्चद्र के समान वे तत्कालीक समस्याओ मे गहरी रुचि लेते थे और सुधारक के उत्साह से परिपूर्ण थे। सूक्ष्मदर्शी और प्राय पैनी समीक्षाओ द्वारा उन्होने तत्कालीन जन-समाज को विक्षुब्ध करने वाली समस्याओ का समाधान करने का प्रयत्न किया।"[४]

धार्मिक स्थिति

मिश्र जी के समय तक हिन्दू-धर्म बहुत सकीर्ण हो चुका था। उसका सम्बन्ध अब केवल पोपाचार से रह गया था बहुदेव वाद, रूढि-प्रियता, अन्धविश्वास अपने

---

१. 'ब्राह्मण' खण्ड ४ संख्या १ ('पशु-प्रार्थना')
२. 'ब्राह्मण' खण्ड ४ संख्या १ ('पशु-प्रार्थना')—प्रतापनारायण मिश्र
३. 'ब्राह्मण' खण्ड ७ सख्या १२ ('अन्तिम सम्भाषण')
४. डा० रामअवध द्विवेदी—'हिन्दी साहित्य के विकास की रूप रेखा' (२०१३ वि०)—पृष्ठ १४५

उत्कर्ष पर थे। अपने-अपने देवो की श्रेष्ठता सिद्ध करना ही उस समय के उपासको को अभीष्ट था। शैव, शाक्त और वैष्णव, मतवाद मे पडकर आपस मे झगड रहे थे। एक-दूसरे की त्रुटिया निकालने और नीचा दिखाने मे ही वे अपनी विजय समझते थे। आपसी विद्वेष के कारण आध्यात्मिक विकास मृत-प्राय हो चुका था। मूर्तिपूजक अपने आराध्य की आड लेकर अनेक दुष्कृत्यो में तत्पर थे। इन बनावटी उपासको द्वारा चारो ओर अनाचार मिथ्याचार और बाह्याडम्बर फैल रहे थे। रामधारी सिंह 'दिनकर' लिखते हैं—तीर्थों मे व्यभिचार के अड्डे बने हुए थे, महन्तो के घर पापाचार के आश्रय थे और मूर्तियो को पुजवाने वाले पडे विलास मे डूबे हुए थे।'[1] काली, शक्ति और चण्डी के उपासक, अपनी उपासना मे हिंसा को विशेपस्थान देते थे, बिना बलि के उनकी उपासना सदैव अधूरी रहती थी। भूत, प्रेत और भैरव के उपासक भी दिन-पर-दिन बढते जा रहे थे जिनमे और भी अन्धविश्वास फैल रहा था। सभी मतवादी शिष्य मूडने और अपने मत के प्रचार मे बडी तत्परता से कार्य कर रहे थे। गाणपत्य और सूर्योपासको की भी उस समय कमी नही थी। बहुत से नये-नये नामधारी मत भी धार्मिक-क्षेत्र में प्रादुर्भूत हो रहे थे। इन सबमे धार्मिक एकता बिल्कुल समाप्त हो गई थी। सभी अपनी-अपनी डफली अपना अपना राग अलाप रहे थे।

धार्मिक-क्षेत्र मे भी प्राय. ब्राह्मणो का ही प्रभुत्व था। अधिकाश ब्राह्मण वैष्णव धर्म के उपासक थे, जिनसे मूर्ति पूजा, धर्मान्धता और कर्मकाण्ड का पोपण हो रहा था। ये अपने आगे, किसी दूसरे को कुछ समझते ही नही थे। पुरानी परम्पराओ और रूढियो को ही छाती से लगाये बैठे थे। इनमे बौद्धिकता तो नाम-मात्र को न थी केवल बाहरी दिखावा ही प्रमुख था। पुरानी रूढियो वह भी विकृत के पोषक होने के कारण सामयिक-विकास से उदासीन थे। ये आख मूदकर अपने ही राज्य में भ्रमण करना चाहते थे। अशिक्षा के कारण पुराणो और वेदो के अर्थ मे अनर्थ हो रहा था और ये श्रेष्ठ ग्रन्थ इनके दुराचार के पोषक बने थे। ब्राह्मणों का उस समय सामान्य जनता पर अच्छा प्रभाव था इससे आस्तिकता का विशेष प्रचार हो रहा था। वेद और पुराण देववाणी समझ कर पूजे जा रहे थे। तीर्थयात्रा, भाग्यवाद, अवतारवाद आदि पर जनता को अटूट विश्वास था।[2]

---

१. रामधारी सिंह 'दिनकर'—'संस्कृति के चार अध्याय' (१९५६ ई०)—पृ० २३८

२. रामधारी सिंह 'दिनकर'—'संस्कृति के चार अध्याय' (१९५६ ई०) पृ० ४६५-६६ और

डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय—'आधुनिक हिन्दी साहित्य' (१९५४ ई०) पृष्ठ ८० ८१

इस उपर्युक्त धार्मिक-स्थिति मे ही, भारत मे ब्रिटिश-साम्राज्य की स्थापना हुई और ईसाई-धर्म का प्रचार प्रारम्भ हुआ। पर भारतीयो की धर्मान्धता और मूर्तिमन्त आस्था के कारण ईसाई-धर्म को भारत मे सफलता नही प्राप्त हुई। केवल नव-युवक वर्ग ही इसकी ओर आकृष्ट हुआ और वह भी अंग्रेजी-शिक्षा के माध्यम से। भारतीय नवयुवक, अंग्रेजो की तडक-भडक (फैशन) और स्वच्छन्दता से विशेष प्रभावित हुए। इनकी रुचि ईसाई धर्म से उतनी न थी जितनी उनके रहन-सहन और वेश-भूषा से थी। पुराने लोग ईसाई धर्म को बडी घृणा की दृष्टि से देखते थे। इसके आचार-व्यवहार उन्हे पसन्द न थे। मास भक्षण और शराब आदि से इन्हे बड़ी नफरत थी।[1] फिर भी नवयुवको का ईसाई-धर्म की ओर आकृष्ट होना भारत के लिए कम घातक नही था। इससे भविष्य मे हिन्दू-धर्म के नष्ट होने की आशका थी। दूसरे समाज मे भी बडी अशान्ति फैल रही थी धर्म भीरु पिता का पुत्र जब ईसाई-धर्मावलम्बी बन, मास और शराब आदि का प्रयोग करने लगता तो पिता उसे परिवार मे वहिष्कृत कर देता। इससे परिवार मे विघटन और असतोष प्रारम्भ हुआ। अपने पुत्रो को लोग अग्रेजी पढाने से डरने लगे। ऐसी स्थिति मे धार्मिक नेताओ ने ईसाई-धर्म के प्रचार को रोकने का प्रयत्न किया।

ईसाई-धर्म-प्रचारक, हिन्दू धर्म की आडम्बर प्रियता, संकीर्णता, फूट आदि की आलोचना कर भारतीय नवयुवको को अपनी ओर मिलाने मे लगे थे और भारतीय नवयुवक भी उनके सम्पर्क से हिन्दू-धर्म की बुराई करने मे कटिबद्ध थे। हिन्दू-धर्म के प्रतिबन्ध नवयुवको को असह्य थे। जाति-पाति, छुआछूत, खान-पान मे परहेज आदि से नवयुवको मे विद्रोह की अग्नि भडकने लगी थी। ऐसी स्थिति मे (हिन्दू धर्म को ढहता देख) हिन्दू-धर्मावलम्बियो की आखे खुली और उन्होने नये दृष्टिकोण से अपने धर्म को देखने का प्रयत्न किया। इसके पूर्व यद्यपि, भारत मे इस्लाम धर्म का प्रचार होता चला आ रहा था पर उसके प्रति अब भारतीयो मे प्रतिशोध की भावना न रह गयी थी। सूफियो के एकेश्वरवाद को भारतीय अद्वैत से जोडने लगे थे और उनके विरक्त एव साधक पीरो के प्रति उन्हे श्रद्धा हो गयी थी। लेकिन, अचानक ईसाई-धर्म के प्रचार ने धार्मिक-क्षेत्र मे एक नई क्राति उत्पन्न कर दी। ईसाई-धर्म के प्रचारक आभ्यन्तरिक साधना पर जोर न देकर बौद्धिकता के उपासक थे तथा स्वय भी वह इस्लाम धर्म के पीरो के भाँति विरक्त न थे।[2] इससे प्राचीनता के उपासक भारतीय इनसे घृणा करने लगे और भारतीयों की ओर से इन्हे किसी प्रकार का अपनत्व न प्राप्त हुआ।

---

१. रामधारी सिंह 'दिनकर'—संस्कृति के चार अध्याय' (१९५६ ई०) पृ० ४३७-३८

२. —वही— —वही— पृ० ४३९

अंग्रेजी-शिक्षा का प्रचार भारत मे तेजी से हो रहा था। अंग्रेजी पढे-लिखे लोग प्रत्येक चीज मे वैज्ञानिकता खोजने लगे थे। धार्मिक क्षेत्र मे फैले हुए आडम्बर और पुराणो के पोपाचार की भी इनके द्वारा कटु आलोचना की जा रही थी। इससे धीरे-धीरे धार्मिक बन्धन शिथिल होने लगे। रूढिवादी भी अंग्रेजी वाजो के आक्षेपो का उत्तर देने के लिए अपने धार्मिक तत्वो को वैज्ञानिक दृष्टि मे देखने लगे जिससे समाज मे फैली हुई घोर आस्तिकता का भी आसन डिगने लगा और रूढियो का भी शनै शनै बहिष्कार प्रारम्भ हुआ। पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव से भारतीयो मे एक नयी चेतना और बौद्धिकता का विकास हुआ। धार्मिक आडम्बरो मे सोयी हुई जनता जगी और उसने अपने को युग के साथ मिलाने का प्रयत्न किया। बौद्धिक विकास से धार्मिक क्षेत्र मे फैले हुए विभिन्न मतमतान्तरो की कट्टरता भी शिथिल पडने लगी और बहुत-कुछ उनमे सहयोग स्थापित होने लगा। विदेशी जातियो के आने से देश में मास-भक्षण तेजी से बढ रहा था जिसके परिणाम स्वरूप गायो का बध अत्यधिक संख्या मे हो रहा था। चेतना के विकास के साथ ही भारतीयो की दृष्टि गोबध की ओर भी गयी और गोबध बन्द करने के लिए अनेक आन्दोलन प्रारम्भ हुए।[1] साथ ही ईसाई और हिन्दू धर्म के सघर्ष ने भी अनेक आन्दोलनो को जन्म दिया। यह काल पुनर्जागरण का काल था इसके लिए अनेक संस्थाये आगे बढी और इन्होने नये दृष्टिकोण को व्यापक, सुदृढ और सुसगठित रूप प्रदान किया। इस काल के धार्मिक आन्दोलनो मे ब्रह्मसमाज, प्रार्थना समाज, आर्यसमाज, ब्रह्मविद्या समाज, रामकृष्ण और विवेकानंद के आन्दोलन प्रमुख थे।

ब्रह्मसमाज ने धार्मिक-रूढि ग्रस्तता, सती-प्रथा, जाति-पाति के विरोध, मूर्तिपूजा, अवतारवाद पर विश्वास आदि को मिटाने का प्रयत्न किया। इस समाज के अनुयायी पुनर्जन्म पर विश्वास न करते थे ये सर्वव्यापी ब्रह्म को ही अपना इष्ट मानते थे। प्रार्थना-समाज ने शिक्षा पर विशेष जोर दिया। मजदूरो तथा स्त्रियो की शिक्षा के लिए अनेक पाठशालाएं खुलवायी और दलित-जातियो को ऊपर उठाने का प्रयत्न किया। आर्य समाज ने मूर्तिपूजा का खण्डन करते हुए वैदिक-धर्म का प्रचार किया। इसके द्वारा सगठन, नागरी प्रचार और राष्ट्रीय-जागरण पर विशेष जोर दिया गया। ब्रह्मविद्या समाज *(थियोसोफिकल सोसाइटी) का* उद्देश्य ईश्वर से सम्बन्धित अगोचर नियमो की खोज और उनका प्रचार करना था। इसने मनुष्यो के आचार-विचार पर बडा बल दिया। यह विश्व के सभी धर्मो मे समन्वय स्थापित करना चाहता था। रामकृष्ण परमहस और स्वामी विवेकानन्द के भी सिद्धान्त बडे व्यापक थे। इन्होने भारतवासियो को सदा कर्म करने, मातृभूमि की सेवा करने और

---

१. सांवलियाबिहारी लाल वर्मा : 'विश्वधर्म - दर्शन' (१९५३ वि०) पृष्ठ ३३५

आगे बढने का उपदेश दिया। इनकी दृष्टि मे कोई छोटा-बडा नही था। ये विश्व-बन्धुत्व के पोषक थे। इन्होने सभी धर्मो मे ऐक्य स्थापित करते हुए हिन्दू-धर्म की रक्षा की। इस प्रकार ये सभी आन्दोलन देश को प्रमुख मानकर चले और इनसे मानव-मात्र का बडा हित हुआ।[1]

कानपुर की स्थिति

देश-व्यापी धार्मिक आन्दोलनो से कानपुर अछूता नहीं रहा। ईसाई धर्म-प्रचार का तो कानपुर प्रमुख गढ बना हुआ था। भारतीय धार्मिक नेताओ के भाषण भी जब-कब कानपुर मे हुआ करते थे। अगस्त, सन् १८६९ मे दयानन्द सरस्वती कानपुर आये और इनका एक बहुत-बड़ी सभा के बीच भाषण हुआ। इसके बाद सन् १८७९ ई० मे कानपुर मे आर्य समाज की स्थापना हुई।[2] आर्य समाज की स्थापना के बाद आर्य समाजियो के साप्ताहिक भाषण प्रारम्भ हुए। इनसे जनता मे बडी स्फूर्ति आयी। लार्ड लिटन के शासन काल में बाबू सुरेन्द्रनाथ बनर्जी को सिविल सर्विस से पृथक् कर दिया गया। इस पर उन्होने सिविल सर्विस के भारतीयकरण का आन्दोलन किया और इसके प्रचार के लिए समस्त भारत का दौड़ा किया। कानपुर मे भी उनका सन् १८७७ ई० मे शानदार व्याख्यान हुआ।[3] २ नवम्बर १८८३ को कानपुर के 'स्टेशन थियेटर' (आजकल के बड़े तार घर) मे थियोसाफिकल सोसाइटी के प्रमुख नेता कर्नल आलकाट का भाषण हुआ।[4] तदुपरान्त मई, १८८४ ई० को स्वामी आत्मा-नन्द सरस्वती ने 'विद्या अविद्या' पर और सन् १८८८ ई० मे स्वामी भास्करानन्द ने 'गोरक्षा पर अत्यत प्रभावशील भाषण दिये। इसके साथ ही कानपुर मे ३ फरवरी, १८८४ ई० मे 'स्वदेश हितवर्धिनी सभा', जनवरी, १८९२ ई० मे 'श्री भारत धर्म महामण्डल' की स्थापना हुई। इसके अतिरिक्त भी 'सनातन धर्म सभा', 'गोरक्षिणी सभा, आदि अपना कार्य सुचारु रूप से कर रही थी।[5] कानपुर मे बढते हुए ईसाई धर्म के प्रचार को रोकने मे स्थानीय हिन्दू सुधारक पूरी तरह

---

१. सांवलिया बिहारीलाल वर्मा—'विश्वधर्म-दर्शन' (१९५३ ई०) पृष्ठ ३५२

२. 'रामराज्य' (कानपुर) ८ अक्टूबर, १९५६ ई० 'प्रतापनारायण मिश्र-एक ऐतिहासिक विश्लेषण'—लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी

३. रामराज्य' (कानपुर) १ अक्टूबर, १९५६ ई० 'प्रतापनारायण मिश्र का ब्राह्मण लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी

४. 'रामराज्य' (कानपुर) १ अक्टूबर, १९५६ ई० 'पं० प्रतापनारायण मिश्र का ब्राह्मण'—लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी

५. रामराज्य' (कानपुर) ३ दिसम्बर, १९५६ ई० 'पं० प्रतापनारायण मिश्र एक ऐतिहासिक विश्लेषण' : लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी
रमाकान्त त्रिपाठी : हिन्दी गद्य मीमांसा (तृतीय सस्करण) पृ० २५५

दत्तचित्त थे। इनकी पादरियों से मुठभेड़ प्रायः हुआ करती थी। उपर्युक्त धार्मिक संस्थाओं के महोत्सव और साप्ताहिक भाषण भी होते रहते थे। इस प्रकार कानपुर धार्मिक क्षेत्र मे बड़ी तेजी से कार्य कर रहा था। यहाँ पर यह कहने की आवश्यकता नहीं कि कानपुर के धार्मिक क्षेत्र के कर्त्ता-धर्ता प्रतापनारायण मिश्र और उनके सहयोगी ही थे।

मिश्र जी पर प्रभाव

तत्कालीन धार्मिक स्थिति का भी मिश्र जी के ऊपर अभिन्न प्रभाव पड़ा। उस समय के प्रमुख धार्मिक आन्दोलनों, ईसाई धर्म प्रचारकों, मतमतान्तरों आदि के अनेक चित्र उनके साहित्य में मिलते हैं। मिश्र जी ने अपने समय की स्थिति को बड़ी गम्भीरता के साथ देखा, समझा और विचार किया। सर्व प्रथम मिश्र जी जनता को तत्कालीन स्थिति से परिचित कराते, फिर उसके प्रभाव को दिखाते और अन्त में उसके सुधार का उपाय बताते थे। इस प्रणाली से जनता तो उनकी ओर आकृष्ट होती ही थी साथ ही सत्वर गति से देश का उत्थान भी होता था। जनता स्थिति को अच्छी तरह समझ कर उत्साह से आगे बढ़ती थी। अपने समय की धार्मिक स्थिति का चित्रण मिश्र जी इस प्रकार करते हैं—

"वेद अभेद दुरे गिरि कन्दर, शास्त्र लुके धरितन में।
पाखण्डिन के जाल बिस्तरे, मत पलटत छिनछिन में॥
* * *
विप्र वेद पढ़िबो तजि, निन्दित कर्म करे खिलाई।
झूंठ ज्ञान उपदेशत डोलें, बने समाजी भाई॥[1]
* * *
"जहां देखो तहां सब उलटी रीति दिखाई।
सब भांति सनातन कथा सबन बिसराई॥
निज धर्म प्रतिष्ठा बैठे लोग गंवाई।
बनि रहे नीच, कर नीचन की सेवकाई॥[2]

इस प्रकार मतवाद, निरक्षरता, पाखण्ड आदि से निरन्तर देश की स्थिति बिगड़ती जा रही थी। इसके परिणाम को मिश्र जी इस प्रकार अभिव्यक्त करते हैं- "मतवादी से धार्मिकता असम्भव है। जिस विषय में पूरा अनुभव न हो उससे मुँह

---

१ प्रतापनारायण मिश्र - भारत दुर्दशा रूपक' (१९०२ ई०) अंक १, दृश्य पहिला

२. प्रतापनारायण मिश्र - 'हठी हम्मीर नाटक' एक्ट ६, सीन पहिला (हस्त लिखित प्रति)

न के विज्ञ-मण्डली के मध्य प्रशसा पाना असम्भव है। शास्त्रार्थ से ईश्वर का सिद्ध कर देना असम्भव है। 'बन्धु विरोध करके लाख चतुरता के अच्छत सुख सम्पत्ति बनाये रखना असम्भव है। निरुत्साही से काम होना असम्भव है।"[1] आगे फिर वे मानवमात्र को समझाते हुए शैव वैष्णव, शाक्त, गाणपत्य और सूर्योपासको मे सहयोग स्थापित करने का प्रयत्न करते हे—"पुराणों मे गगा की उत्पत्ति विष्णु भगवान के चरणारविन्द से मानी गई है और शिव जी को परम वैष्णव लिखा है। उस परम वैष्णवता की पुष्टि और क्या हो सकती है कि यह उनके चरणोदक को सिर पर धारण करे। यों ही विष्णुदेव को परम शैव कहा है। कथा है कि लक्ष्मी-पति सदा सहस्र कमल ले के पार्वती की पूजा किया करते थे। एक दिन एक कमल घट गया तो उन्होंने यह विचार के कि हमारा नाम पुडरीकाक्ष है, एक नेत्र रूपी दम पुडरीक अपने इष्टदेव के पाद पद्म पर अर्पण कर दिया। सच है, इससे अधिक शैवता और क्या होगी।—वास्तव में विष्णु अर्थात् व्यापक एवं शिव अर्थात् कल्याण मय यह दोनो एक ही प्रेम स्वरूप के नाम है पर उसका वर्णन पूर्णतया असम्भव होने के कारण कुछ-कुछ गुण एकत्र करके दो रूप मे कल्पना कर लिए गये। अपने शैव भाइयों से पूछना चाहते है कि आप भगवान गगाधर के पूजक होके वैष्णवों के साथ किस बिरते पर द्वेष रख सकते हे?—गगा जी परम शक्ति है इससे शक्तों के साथ विरोध रखना भी अनुचित है।—गाणपत्य हमारे प्रभु (शिव) के पुत्र को ही पूजते है अत. उनके लिए भी सदाशिव से यही प्रार्थना करनी चाहिए कि 'करहु कृपा शिशु सेवक जानी' सूर्यनारायण शकर का नेत्र ही है—'वंदे सूर्य शशांक वन्हिनयन' फिर क्या नयन शरीर से अलग है जो तुम सूर्योपासको को अपने भिन्न समझते हो। यद्यपि हमारी समझ मे तो आस्तिक मात्र को किसी से द्वेष रखना पाप है, क्योकि सब हमारे जगदीश ही की प्रजा है।"[2] मिश्र जी यह अच्छी तरह जानते थे कि जब तक 'मत' है, एकता नही स्थापित हो सकती। इसीसे मतो से दूर रहने की जनता को सलाह देते है, और स्वतः भी कहते है कि 'हमारा कोई मत नही है।'[3]

मिश्र जी वास्तविकता के समर्थक थे, आडम्बरो से उन्हें बड़ी घृणा थी। ब्राह्मणो की निरक्षरता पर वह सदैव व्यग्य किया करते थे। एक बार पुरोहितों ने आर्यसमाजियों के विरुद्ध एक सभा की, जिसमे मूर्ति-पूजा का समर्थन किया गया।

---

१. 'ब्राह्मण' खण्ड ७ संख्या १० ('असम्भव है')

२. 'प्रतापनारायण - ग्रन्थावली' प्रथम खण्ड (२०१४ वि०) पृष्ठ ६२६-२७ 'शैव सर्वस्व' - प्रतापनारायण मिश्र

३. प्रतापनारायण - ग्रन्थावली' प्रथम खण्ड (२०१४ वि०) पृष्ठ ६३४ 'शैव-सर्वस्व' प्रतापनारायध मिश्र

बीच मे वेदो पर वाद-विवाद चला और वेदो को सभा मे लाने की माग हुई। पर किसी भी ब्राह्मण के यहा वेद न निकले। इस पर मिश्र जी लिखते है—

"पोथी केहि के घर ले आवै, कबहू सपन्यों देखी नांहि।
रिगविद, जुजविद, साम, अथर बन सुनियत आल्ह खड के माहि॥
वेदन देखे हम कबहूं है मोरे अनदाता जजमान।
पेटु चलैयत है कलजुग मा तुम्हारे घरन पाय के दान॥
तब लगि लाला फिर उठि बोले कहुना वेद मिले महराज।
बेद बिना तुम पण्डित कैसे दछिना लेत न आवै लाज॥
धरम के अगुआ ब्राह्मन देउता तिन घर वेद न निकरे हाय।
इतना सुनते परलो परिगा सब रहि गये सनाका खाय॥"[1]

मिश्रजी के समय मे बनावटी भक्त भी बहुत थे जो भक्ति की आड़ मे अनेक दुष्कर्म किया करते थे। भक्ति उस समय भक्तों की आमोद-पूर्ण जीविका थी। मिश्र जी लिखते हैं—"भक्त भी एक प्रकार के नही होते। कोई बगुला भक्त है अर्थात् दिखाने मात्र के भक्त, पर मन जैसे का तैसा। कोई पेटहुल भक्त है, अर्थात् यजमान से दक्षिणा मिलनी चाहिए और काम न किया, पूजा ही सही। कोई व्यवहारी भक्त है, अर्थात् 'या महादेव बाबा! भेजना तो छप्पन करोड की चौथाई।' इन्ही मे वह भी है जो ससारी पदार्थ तो नही चाहते पर मुक्ति अथवा कैलाशवास पर मरे धरे है। कोई भगत जी है तो रास्ते मे और मंदिर मे आखे-सेंकने ही को पूजा की आड पकडते है।'[2] भक्तो की दोहरी नीति भी मिश्र जी बडे अच्छे शब्दो मे व्यक्त करते है—

'मुख मे चारि वेद की बातै, मन पर धन पर तिय की घातें।
धनि बकुला भक्तन की करनी, हाथ सुमिरनी बगल कतरनी॥'[3]

भूत-प्रेत पूजक भी उस समय अपना प्रचार बडी तेजी से कर रहे थे, जिससे समाज मे आडम्बर और अन्धविश्वास बढ़ते जा रहे थे। इन पर मिश्र जी आक्षेप करते हुए कहते है—

'प्रभु करुनाकर शांति निकेत, तिहि तजि पूजत भूत परेत।
कस सुख पावै असि जासु, दही के धोखे खाय कपासु॥'[4]

---

१. सं० नाराय प्रसाद अरोड़ा - 'प्रतापलहरी' (१९४९ ई०) पृष्ठ २०९ 'कानपुर माहात्म्य' - प्रतापनारायण मिश्र
२. प्रतापनारायण - ग्रंथावली' प्रथम खण्ड (२०१४ वि०) पृष्ठ ६१७ 'शैव-सर्वस्व' प्रतापनारायण मिश्र
३. प्रतापनारायण मिश्र - 'लोकोक्तिशतक' (१८९६ ई०) पृष्ठ ५
४. '—वही—' पृष्ठ १

उस समय के भगत शिष्य मूड़ना ही अपना प्रमुख कर्तव्य समझते थे उनमें गुरुत्व की भावना बहुत अधिक थी। भोली जनता प्रायः उनकी लम्बी-चौड़ी बातो में फंस जाया करती थी। मिश्र जी लिखते है—

'कोऊ मूरख हिन्दुन को ढिग कै निज निन्दित शिष्य बनावत है।
बहकाय कुटुम्ब छुड़ाय छली फिर नेक नही अपनावत ॥
कोउ स्यामल रंगहि सों घिन कै जिय लेत बिलम्ब न लावत है।
यह दुर्गति देखि हहा! हमरी अँखियान लहू भरि आवत है ॥"[1]

समाज मे बढे हुए पाखण्ड और ढोग भी मिश्र जी को सह्य न थे। पूजा करने वालों से वे कहते है—"जो लोग केवल जगत् के दिखाने तथा सामाजिक नियम निभाने को इस विषय मे कुछ करते है, वे व्यर्थ समय न बितावे, जितनी देर पूजा-पाठ करते है उतनी देर कमाने-खाने, पढने-गुनने मे रहे तो उत्तम है।"[2] मिश्र जी बडे निश्छल आदमी थे उन्हे कपट पसन्द नही था। कृत्रिम आस्तिको पर वे लिखते है—हमे आपकी बनावटी आस्तिकता पसद नही है। हम एक सच्चे दृढ नास्तिक की प्रतिष्ठा असंख्य कृत्रिम आस्तिको से अधिक करते है।"[3]

मिश्र जी के समय मे ईसाई-धर्म का प्रचार बडे जोरो से हो रहा था, जिससे हिन्दू-धर्म को बडा खतरा था। मिश्र जी कहते है—"ईसाई हो जाना या यो कहो कि पादरियो के मायाजाल मे फंस जाना ऐसा अनिष्टकारक है कि मनुष्य देशहित और जातिहित से सर्वथा वंचित हो जाता है।"[4] मिश्र जी को सबसे बडी आशका नवयुवको से थी क्योकि वे बिना समझे हुए पादरियो के चक्कर म आ जाते थे—"उन्हे (नवयुवकों) परमेश्वर न करे पादरियो की चिकनी-चुपडी बाते असर कर जाय तो हमारी नई पोध निकम्मी हो जाय।"[5] मिश्र जी पादरियो के उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए लिखते है—

"हम जो कहै सो करै पै दुलखै मति कोय।
जग हमार चेला बने, जन्म सुफल तब होय ॥"[6]

---

१. सं० नारायणप्रसाद अरोड़ा-'प्रतापलहरी' (१९८९ ई०) पृष्ठ १००
'मन की लहर'-प्रतापनारायण मिश्र
२. 'प्रतापनारायण-ग्रन्थावली' प्रथम खण्ड (२०१४ वि०) पृष्ठ ६२१-२२ 'शैव-सर्वस्व' प्रतापनारायण मिश्र
३. 'ब्राह्मण' खण्ड ५ संख्या ५ ('नास्तिक')
४. '—वही—' „ ४ „ १२ ('दबी हुई आग')
५. '—वही—' „ ४ „ १२ (—वही—)
६. '—वही—' „ १ „ ९ ('जन्म सुफल कब होय')

ईसाई होने वाले हिन्दुओ के प्रति मिश्र जी को बडी घृणा है । वे अपने क्षोभ को इस प्रकार व्यक्त करते है—

"शिर ते पग लगि कारे कपरे शुद्ध आसुरी भेष तमाम ।
भाषा औरो मधुर आसुरी किट-पिट गिट-पिट ओ यू ड्याम ।।
भोजन अधिक आसुरी जिनमे बूझि न परै हलाल हराम ।
ऐसे असुरव्रती हिन्दुन सो होहुन आसुरि तृप्यन्ताम् ।।"[1]

यहा यह कहना अनावश्यक न होगा कि मिश्र जी को ईसाई धर्म मे कोई विरोध न था, विरोध उन्हे ईसाई धर्म की नीति और उसके हिन्दू धर्म के द्वेष मे था । वे लिखते है—"हम इजील को बुरा कदापि नही कहते वह भी एक धर्म ग्रन्थ है पर उसके पढने वाले अन्य धर्म के द्वेषी न हो ।"[2] ईसाईयो की द्वेष नीति मिश्र जी को सदैव त्रसित किये रहती थी । वे जनता को समझाते हुए कहते है कि यदि सबने ध्यान न दिया तो 'नई पौध इस दबी हुई आग (ईसाई-धर्म) मे झुलस कर रह जायगी । और हमारा इस काल का सारा परिश्रम व्यर्थ होगा । स्वर्ग मे हमारी आत्मा पछतायेगी ।[3]

मिश्र जी के समय मे मूर्ति पूजा को नये विचार वाले असार और अंधविश्वास पूर्ण समझने लगे थे और उसे समाप्त करने मे प्रत्यनशील थे । यद्यपि मिश्र जी निराकार को मानने वाले थे फिर भी मूर्तिपूजा पर उनकी स्वाभाविक आस्था थी । वे मूर्ति को मन को लगाने या एकाग्र करने का एक चिन्ह या सकेत मानते थे ।[4] वे कहते है—"ईश्वर निराकार है पर मनुष्य अपनी रुचि और दशा के अनुसार उसके विषय मे कल्पना कर लिया करता है । जिन मतो मे प्रतिमा पूजन का महानिषेध है उनके धर्म ग्रन्थो (इजील तथा कुरान आदि) मे भी ईश्वर के हाथ पाव नेत्रादि का वर्णन है, फिर हमारे पूर्वजो के लेखो का तो कहना ही क्या है जिनकी कल्पनाशक्ति के विषय मे हम सच्चे अभिमान मे कह सकते ह कि दूसरे देशवालो को वैसी-वैसी बाते समझनी ही कठिन है, सूझने की तो क्या कथा ।"[5] निराकार साकार के अभेद

---

१ स० नारायणप्रसाद अरोड़ा—'प्रतापलहरी' (१९४९ ई०) पृष्ठ ५४ 'तृप्यन्ताम्' प्रतापनारायण मिश्र

२ 'ब्राह्मण' खण्ड ४ सख्या १२ ('दबी हुई आग')

३. '—वही—' संख्या ४ सख्या १२ '—वही—'

४. 'प्रतापनारायण-ग्रन्थावली' प्रथम खण्ड (२०१४ वि०) पृष्ठ ६२४ 'शैव-सर्वस्व' प्रतापनारायण मिश्र

५. प्रतापनारायण-ग्रन्थावली' प्रथम खण्ड (२०१४ वि०) पृष्ठ ६१८ 'शैव-सर्वस्व' प्रतापनारायण मिश्र

को इस प्रकार स्पष्ट करते है—"मनुष्य की भाति वे नाडी आदि के बंधन मे बद्ध नही है इससे हम उन्हे निराकार कह सकते है और प्रेम चक्षु से अपने मनोमंदिर में दर्शन करके साकार भी कह सकते है।"[१] इसी से आगे वे कहते है—"यदि मूर्ति बनाने बनवाने की सामर्थ्य न हो तो पृथ्वी, जल आदि अष्ट-मूर्ति बनी बनाई विद्यमान है। वास्तविक प्रेम मूर्ति मन के मदिर मे है ही पर तो भी यह दृश्य मूर्तियाँ भी निरर्थक नही है।"[२] उन्हे यह विश्वास है—"जिस देश मे शिल्प विद्या का प्रचार और जहा लोगो के जी मे स्नेह एव सहृदयता का उद्‌गार होगा वहा मूर्ति पूजा किसी के हटाये नही हट सकती।"[३] मूर्ति पूजा के लिए मिश्र जी प्रेम को सर्वोपरि मानते है—"पर यह स्मरण रखना चाहिए कि जब मन मे प्रेम होगा तभी ससार के यावत् मूर्तिमान तथा अमूर्तिमान पदार्थ शिवमूर्ति अर्थात् कल्याण का रूप निश्चित होंगे।[४] प्रेम ही को लेकर वे कहते है—"प्रतिमा पूजन के द्वेषी देश-हितैषी क्यो बनते है।"[५] वह भगवान विश्वनाथ से प्रार्थना करते है—"हे विश्वपते! कभी इस मनोमदिर मे विराजोगे! कभी वह दिन दिखाओगे कि भारतवासी मात्र तुम्हारे हो जाय और यह पवित्र भूमि कैलाश बने।"[६]

मिश्र जी धर्मान्धता के घोर विरोधी थे। उन्हे किसी प्रकार का दिखावा पसन्द नही था। वे लिखते है—"यदि घर मे कुत्ता, कौआ कोई हड्डी डाल दे अथवा खाते समय कोई मास का नाम ले ले तो भी तो आप मुह बिचकाते है, पर विलायती दियासलाई और बिलायती शक्कर, जिसमे हड्डी तथा रक्त दोनो पडे हुए है, सो भी न जाने कि किन-किन जानवरो के, वह आरती के समय बत्ती जलाने की सिहासन के पास रख लेते है और भोग लगा के गटक जाने तक मे नही हिचकते।"[७] मिश्र जी धर्म को परमानदमय परमात्मा एव उनके भक्तों से प्रेम तथा ससार मे क्षेम स्थापन

---

१ 'प्रतापनारायण-ग्रन्थावली' प्रथम खण्ड (२०१४ वि०) पृष्ठ ६२१ 'शैव-सर्वस्व' प्रतापनारायण मिश्र

२. 'प्रतापनारायण-ग्रन्थावली' प्रथम खण्ड (२०१४ वि०) पृष्ठ ६२३ 'शैव-सर्वस्व' प्रतापनारायण मिश्र

३. 'प्रतापनारायण-ग्रन्थावली प्रथम खण्ड (२०१४ वि० पृष्ठ ६१७ 'शैव-सर्वस्व' प्रतापनारायण मिश्र

४. प्रतापनारायण-ग्रन्थावली' प्रथम खण्ड (२०१४ वि०) पृष्ठ ६३२ 'शैव-सर्वस्व' प्रतापनारायण मिश्र

५. 'ब्राह्मण' खण्ड ८ संख्या ८ ('प्रतिमा पूजन के द्वेषी देश हितैषी क्यों बनते हैं')

६. 'प्रतापनारायण-ग्रन्थावली' प्रथम खण्ड (२०१४ वि०) पृ० ६३१ 'शैव-सर्वस्व' प्र० ना० मि०

७. 'ब्राह्मण' खण्ड ७ संख्या १—२ ('यह तो बतलाइये')

का नेम मात्र समझते थे ।[1] उन्हें किसी प्रकार के धार्मिक बन्धन मान्य नही थे । वे सभी धर्मों और मतो के गुणो के ग्राहक थे । सगुण, निर्गुण, जप, तप, मूर्तिपूजा आदि पर उन्हे समान आस्था थी । वह धार्मिक संकीर्णता के कायल नही थे । सभी प्रकार की धार्मिक सस्थाओ और प्रवचनों मे वह भाग लेते थे । उनके सामने मानवमात्र का कल्याण था, किसी धर्म या मत का पोषण नही । इसी से उनकी सभी मतो के प्रति सहानुभूति थी ।

मिश्र जी सत्य और अहिंसा के उपासक थे । दिन-दिन बढते हुए गोवध एव पशुबध से वे बहुत क्षुब्ध थे । वे कहते है—

"गऊ बराह्मन जग जाहिर है ग्वालै पंडित और खेतिहार ।
तिन मां पहिले छाप तुम्हारी पाछे नांव बराह्मन क्यार ।।
* * *
जिनके लरिका खेति करिकै पालै मनइन के परिवार ।
ऐसी गाइन की रक्षा मां जो कछ् यतन करो सो क्वार ।।
घास के बदले दूध पियावे मरिकै देंय हाड़ औ चाम ।
धनि वह तन मन धन जो आवे ऐसी जगदम्बा के काम ।।"[2]

मिश्र जी गायो और पशुओ मे (देश के लिए उपयोगी बताते हुए) स्वत. विनय कराते है जिससे लोगो मे दया उत्पन्न हो और उनकी रक्षा करे । गो गुहार सुनिये—

"सुधा सरिस सब को पय प्याऊं घास पात निज पेट भरौं ।
असन बसन को समरथी सुत उपजाय अभाव हरौं ।।
गोबर हू मिस इन्धन दै, मूत्रहु मिस रोग बिनास करौं ।
हाड़ चाम सों करों उपकार अमित जिहि समय मरौं ।।"[3]

इस पर भी—

"दुरबल क्षुधित वृद्ध लखि मो कहं तनिक दया नहिं धारत हैं ।
भूमि पटकि कै चढ़त छाती पर प्रान संहारत हैं ।।"[4]

अन्य पशु भी इसी प्रकार चीत्कार करते है—

"बन बीहड़ परवत नदी, जहं मानव गति नाहिं ।
भांति-भांति दुख दे हमहिं, जहं चाहहिं लै जाहिं ।।

---

१. 'ब्राह्मण' खण्ड ६ संख्या ३ ('धर्म और मत')
२. स० नारायणप्रसाद अरोड़ा—'प्रतापलहरी' (१९४९ ई०) पृष्ठ २१०-११ कानपुर माहात्म्य'—प्रतापनारायण मिश्र
३. 'ब्राह्मण' खण्ड ४ संख्या १२ ('गो-गुहार')
४. 'ब्राह्मण' खण्ड ४ संख्या १२ ('गो-गुहार')

बर्तत बालुका पद तरे, उपरि अपरिमित भार।
तेहि पर पग प्रति परत है, भांति-भांति की मार॥
अपने दुख लिखि बोलि हम कर सकते जु बखान।
तौ यामे सदेह नहि, गति सुनि द्रवत पखान॥"[१]

इतने पर भी—

"लेहिं जीभ लोलुप वृथा, हा हा! प्राण हमार।
जिन वस्तुन के नाम से, लोग लंजाहिं घिनाहिं॥
तिनहिं हाथ ये कौन विधि, धोवहिं राधहिं खाहिं।
टप-टप टपकत रकत अरु, माछी भिन-भिन होय॥
जो उपजत मल मूत ते, तेहि भच्छत किमि कोय।[२]

इसके अतिरिक्त मिश्र जी स्वयं भी गोरक्षा का आन्दोलन प्रारम्भ करते है। कानपुर तथा उसके बाहर जा-जा कर व्याख्यान देना तथा गोरक्षिणी सभाये स्थापित करना उनका प्रमुख कार्य हो गया था। गोरक्षिणी सभा के लिए कानपुर वालो को उत्साहित करते हुए लिखते है—"इन शहर वालो से तो हम अपने सहृदय अकबरपुर वासियों की धर्म निष्टता, ऐक्यता, उद्योग उत्साह और साहस की सराहना करेंगे जहाँ श्री युत पण्डितवर बद्रीदीन सुकुल, श्री युत बाबू तुलसी राम जी अग्रवाल और श्री युत लाला टेकचन्द्र महोदयादिक थोडे से सज्जनो के आन्दोलन से दो ही महीना के भीतर अनुमान छ सौ रुपया भी एकत्र हो गया, सभा भी चिरस्थायी स्थापित हुई है, व्याख्यान भी प्रति सप्ताह मनोहर होते है और सबने कमर भी मजबूती से बाध रक्खी है। क्यो भाई नगर निवासियो! अधिक न करो तो अपने जिले के लोगो की कुछ तो सहाय दोगे? जहा सैकडो की आतशबाजी फूंक देते हो, हजारो दिवालियो को दे बैठते हो, अदालत मे उडाते हो, वहा गऊ माता के नाम पर क्या कुछ भी न निकलेगा? धर्म नामवरी, लोक, परलोक का सुख सब है पर हौसिला चाहिए।"[३] गायो के प्रति मिश्र जी को बडी आत्मीयता थी, उनकी महिमा वे बडे मार्मिक शब्दो मे व्यक्त करते है—

"गैया माता तुमको सुमिरौं, कीरति सबसे बड़ी तुम्हारि।
करौ पालना तुम लड़िकन कै, पुरिखन बैतरिणी देउ तारि॥
तुम्हरे दूध-दही की महिमा, जानैं देव पितर सब कोय।
को अस तुम बिन दूसर जेहिका गोबर लगे पवित्तर होय॥"[४]

---

२. 'ब्राह्मण' खण्ड ४ संख्या १ 'पशु-प्रार्थना'
३. '—वही—' ,, ४ ,, १ '—वही—'
१. 'ब्राह्मण' खण्ड ४ संख्या २ ('गौरक्षा')
२. सं० नारायणप्रसाद अरोडा-'प्रतापलहरी' (१९४९ ई०) पृष्ठ २१०
'कानपुर माहात्म्य'—प्रतापनारायण मिश्र)

मिश्र जी का काल पाश्चात्य और हिन्दू सस्कृति के सघर्ष का काल था। अग्रेजी-शिक्षा-समुदाय पाश्चात्य-सस्कृति मे प्रभावित था और प्राचीनता-पोषक-समुदाय हिन्दू-सस्कृति से। दोनो सस्कृतियो मे बडा वैभिन्य था पाश्चात्य-सस्कृति वैज्ञानिकता पर जोर दे रही थी और हिन्दू-सस्कृति धर्मान्धता पर। इस कारण दोनो सस्कृतिया एक-दूसरे की भर्त्सना मे कटिबद्ध थी। अग्रेजी पढे-लिखे लोग हिन्दू-धर्म की रुढ़ियो और अन्धविश्वासो की खिल्ली उडा रहे थे तथा हिन्दू-धर्मावलम्बी, पाश्चात्य-सस्कृति के अनुयायियो के रहन-सहन और आचरण की कटु-अलोचना कर रहे थे। इसस समाज मे बड़ी अशान्ति फैल रही थी और हिन्दू-धर्म धीरे-धीरे पतन की ओर जा रहा था। ऐसी स्थिति मे मिश्र जी ने एक-दूसरे की विद्वेष-नीति को छडकर हिन्दू-धर्म को वैज्ञानिक-दृष्टि से देखने का प्रयत्न किया, और अग्रेजी पढे-लिखे लोगो के आक्षेपो का मुहतोड़ उत्तर दिया। मिश्र जी को हिन्दू-धर्म के पोपाचार मान्य नही थे। नवीनता के पोषक होने के कारण वह हिन्दू-धर्म को युग के साथ लाना चाहते थे। युग वैज्ञानिकता की ओर बढ रहा था इसलिए धार्मिक तत्वो को वैज्ञानिक-दृष्टि से देखन की आवश्यकता थी। मिश्र जी ने बडी बौद्धिकता के साथ धार्मिक-तत्वो पर विचार किया है। नयी रोशनी वाले गगा स्नान और उसके पूर्व की क्रियाओ का बडा उपहास करते थे उनको मिश्र जी बडे अच्छे ढग से समझाते लिखते है—"गगा जमनादि के तट पर पहुंच के स्नान से पहिले सिर तथा माथे पर जल इस हेतु चढ़ाते है कि चलने से होती है गरमी। और पैरो मे अधिक गरमी हुई है उस समय जाते ही पाव जल मे डिबो देगे तो पावो की गरमी सिर पहुँच के विकार करेगी, इससे पहिले सिर पर पानी डाला तो वहाँ की गरमी पावो मे उतर आगी, इतनी देर मे बैठ जल का स्पर्श किया सकल्प पढा तब तक पाव से भी गर्मी जाती रही, बस बेखटके नहाइए।"[1] ऐसे ही मिश्र जी देवालय की बनावट मे वैज्ञानिकता सिद्ध करते हुए कहते है—"ऊपर का गुम्बद गोल होता है जिससे चाहे जितना जल बरसे कुछ क्षति नही कर सकता, इधर बूंद गिरी उधर भूमि पर आयी। वर्षा में बडे घर गिर जाते है पर कोई छोटी सी शिवालिया कदाचित बहुत ही कम सुना होगा कि गिर पडी। इसके अतिरिक्त भूगोल-खगोल, गृह-नक्षत्र सब गोल है और परमात्मा सबका स्वामी सब मे व्याप्त है, यह बात भी शिवमदिर मे उपदिष्ट होती है। उसमे चारो ओर द्वार होते है जिनसे सदा स्वच्छ वायु का गमनागमन रहने से रोगोत्पत्ति की सम्भावना नही रहती। ऊपर से यह ज्ञात होता है कि परमेश्वर के पास जाने की किसी ओर से रोक नही है, सब मार्गो से वह हमे मिल सकते है।"[2] इसी प्रकार

---

१. 'ब्राह्मण' खण्ड ४संख्या ११ ('हमारे यहां की कोई बात भी व्यर्थ नही')

२. प्रतापनारायण-ग्रन्थावली' प्रथम खण्ड (२०१४ वि०) पृष्ट ६१९ 'शैव-सर्वस्व' 'प्रतापनारायण मिश्र

मूर्ति पर मिश्र जी का विचार है—"मूर्ति बहुधा पाषाण की होती है। इसका भाव यह है कि उनसे हमारा दृढ़ सम्बन्ध है। दृढ़ पदार्थों की उपमा पाषाण से दी जाती है। हमारे विश्वास की नीव पत्थर पर है। हमारा धर्म पत्थर का है। ऐसा नही है कि सहज मे और का और हो जाय। बड़ा सुभीता यह भी है कि एक बेर प्रतिमा पधराय दी कई पीढ़ियो को छुट्टी हुई, चाहे जैसे असावधान पूजक आवे कुछ हानि नही हो सकती।"[1] मिश्र जी बडी सूक्ष्मता और तर्कों के साथ धार्मिक तत्वों पर विचार करते हैं। देवताओं के वाहनो मे वैज्ञानिकता वे इस प्रकार बताते है—"इसी भाति पुराणो में सिंह, वृषभ, मूषकादि देवताओ के वाहन लिखे हैं। इस पर भी नये मत-वाले ठट्टा किया करते है पर यह नही विचारते कि संस्कृत मे वाहन उसे कहते है जिसके द्वारा कोई चले वा किसी के द्वारा चलाया जाय। जैसे वैदक शास्त्र के परमाचार्य धन्वतरि का नाम जलौकावाहन है इससे यह तात्पर्य नही है कि वे जोक पर चढते है, किन्तु यह अभिप्राय है कि वे जोंक के चलाने वाले अर्थात् रक्त विकार के हरणार्थ जोक लगाने की रीति चलाने वाले है। इसी प्रकार सिंहवाहिनी का अर्थ है कि जो वीर पुरुष है, जिन्हे सब भाषाओ मे सिंह का उपनाम दिया जाता है उनका काम, नाम एव यश ईश्वर की वीरता शक्ति ही चलाती है। हमारे पाठक विचार तो करें कि ऐसी बातो को झूठ, गप्प, हास्यास्पद कहना विद्या और बुद्धि से वैर ही करना है कि और कुछ ?"[2] दशावतार पर भी मिश्र जी बड़े अच्छे ढंग से लिखते है—"सूक्ष्म विचार कीजिये तो विदित हो जायगा कि संसार मे जितने जड वा चेतन पदार्थ है वह सभी यदि अपनी आदिम दशा से अन्तिम गति तक निर्विघ्नता के साथ पहुँच जाय तो दशावतार मे आविर्भूत हुए बिना नही रहते, अर्थात् दस प्रकार की गति मे प्रकाशित होना ही जगत के यावत् पदार्थों का जाति स्वभाव है।"[3] ऐसे ही अनेक धार्मिक पक्षों पर मिश्र जी ने वैज्ञानिक ढंग से विचार किया है। उनकी 'शैव-सर्वस्व' पुस्तिका तथा 'पौराणिक' गूढार्थ, 'अवतार', 'दशावतार,' 'पुराण समझने के लिए समझ चाहिए' आदि निबन्ध वैज्ञानिक पीठिका पर ही लिखे गये है। जिनके देखने से उनकी विलक्षण प्रतिभा का सहज ही परिचय मिल जाता है। कहना न होगा कि मिश्र जी अपने समय के अद्वितीय वैज्ञानिक-विचारक थे।

मिश्र जी के समय मे देश मे अनेक धार्मिक-सस्थायें कार्य कर रही थीं जिनमे से आर्य समाज पर मिश्र जी की सबसे अधिक निष्ठा थी। आर्य समाज के वैदिक

---

१. 'प्रतापनारायण—ग्रन्थावली' प्रथम खण्ड (२०१४ वि०) पृ० ६२२ 'शैव-सर्वस्व' प्रतापनारायण मिश्र

२. 'ब्राह्मण' खण्ड ६, संख्या ९ (पौराणिक गूढार्थ')

३. '—वही—' ,, ८, ,, ११ ('अवार')

धर्म के प्रचार और शुद्धि कार्य ने मिश्र जी को, विशेष रूप से अपनी ओर आकृष्ट किया था। ३० अक्टूबर १८८३ ई० को जब दयानन्द जी का अजमेर मे देहावसान हुआ[1] तो मिश्र जी ने एक बहुत ही शोकपूर्ण गीत लिखा जिसमे उनकी दयानन्द के प्रति निष्ठा स्पष्ट झलकती है। उस गीत की कुछ पक्तिया इस प्रकार है—

"सुनियत शत शत बरस जियहिं बहु मानुष गुन हीना।
स्वामी दयानन्द सरस्ती की तो वैसहु बहुत रही ना॥
यूरुप अमरीका लगि हा! हा! को अब नाम करैगो।
श्रुति कलंक, गो दुख, द्विज दुर्गुन को अब हाय हरैगो॥
कहं लगि कोउ आसुन को रोकै, कहं लगि मन समझावै।
ऐसी कठिन पीर मे कैसहु धीरज हाय न आवै।"[2]

इतना होते हुए भी (अर्थात आर्यसमाज मे निष्ठा होने पर भी) मिश्र जी आर्य समाज के मूर्तिमन्त उपासक नही थे। उसके मूर्तिपूजा एव पुराणो के विरोध से वह पूरी तरह असहमत थे कारण इमसे समाज मे बडा मतभेद फैल रहा था। मिश्र जी कहते है--क्या ही अच्छी बात होती यदि हमारे आर्यसमाजी भ्रातृगण समझ लेते कि प्रतिमा पत्थर तो है ही, हमे एक पत्थर के लिए सर्वदा मान्य देश गुरु पडितो को पोप कहके चिढाने तथा अनेक कामो मे सहायता करने के बदले उनको अपना बुरा बनाने की क्या पडी ?"[3] आगे मिश्र जी जब आर्यसमाजियो को दयानन्द सरस्वती का चित्र पूजते देखते है तो उनके बनावटी पन पर चिढकर कहते है— "अपने स्वामी जी के चित्र का अनादर नही सह सकते, जिसका मूल्य छ पैसे और अधिक से अधिक दो रुपया है, तथा सुन्दरता भी ऐसी नही है जैसी हमारे रामकृष्णादि की तसवीरो मे होती है, स्मरण भी उसके द्वारा केवल एक काठियावारी विद्वान मात्र का होता है, और बस किन्तु हमारी स्वर्ण रजत हीरकादि की देव प्रतिमा पोपलीला है, उनका अनादर कोई बात नही पर स्वामी जी का फोटो बडे खूबसूरत चौकठे मे बडी इज्जत के साथ रखना चाहिए।———हमे श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती की प्रतिकृति अथवा वेद भगवान से बैर नही है पर साथ ही यह भी जिद्द नही है कि इनके सिवा और बुद्धि विरुद्ध है। नही, अपने पूर्वपुरुषो के साधारण चिन्ह का भी हमे ममत्व स्वभावतः होना चाहिए, यदि हम उनके सतान है। फिर प्रतिमा और पुराण तो उनके वर्षो के परिश्रम का फल है उनका उपहास

---

१. 'रामराज्य' (कानपुर) १ अक्टूबर १९५६ ई० ,पडित प्रतापनारायण मिश्र का ब्राह्मण—लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी
२. ब्राह्मण खण्ड १ संख्या ८ (हाय बड़ा अनर्थ हुआ)
३. ब्राह्मण खण्ड २ संख्या ६ ('देशोन्नति')

करके हम जगत एव जगदीश्वर को क्या मुह दिखावैगे ?"[1] इसके अतिरिक्त आर्य समाजियो मे भी धीरे-धीरे अशिक्षित बढने लगे और बहुत से अनाचार फैलने लगे इससे मिश्र जी को बडा असंतोष हुआ। वे लिखते है—

"हाल समाजिन को का कहिए बातन छप्पर देह उड़ाय।
पै दुइ चारि जनेन को तजि के करतूति न देखी जाय।।
सगे सभाजिन ते निक ऐंठे रांध परोसिन का धरि खांय।
मुख ते वेद-वेद गुहरावै लक्षन सबै सुलक्षन आंय।।
आंकु न जानै संसकीरति को लेइन गायत्री को नाँउ।
तिनका आरज कैसे कहिये मैं तो हिन्दू कहत लजाऊं।।"[2]

मिश्र जी उसी संस्था और व्यक्ति के प्रशंसक थे जो देश काल और जन रुचि को लेकर कार्य करें। स्वामी भास्करानन्द यद्यपि आर्य-समाजी थे पर मूर्ति पूजा और पुराणादि के विरोधी नही थे, वे एकता को ही प्रमुख मानते थे इस लिए मिश्र जी उनकी सदैव प्रशसा किया करते थे। यहा तक की मिश्र जी उन्हे दयानन्द से भी बढकर श्रेय देते थे। वे लिखते है—

"जस गुरु तस चेला, सदा सुनत रहे हम कान।
पै उनकी शिक्षाहु ते तव वच अधिक सुहान।।
विप्रन कहं कहि पोप उन देवन कहं पाषान।
करि न सके वृढ़ एकता मुख्य देश कल्यान।।
तुम सिखवत कहं मित्रता कहुं स्वदेश हित नीति।
कहु गोरक्षा, धर्म कहुं कस न करहिं तव प्रीति।।[3]

देश हितकारी कार्यों के ही कारण मिश्र जी श्री भारत धर्म महामण्डल की भी बड़ी सराहना किया करते थे देश भाइयों को समझाते हुए कहते है—"इन दिनो हिन्दुओं के लिए भारत धर्म महामण्डल और हिन्दोस्थानी मात्र के लिए नेशनल काग्रेस से बढ़ के दान पात्र कोई नही है जिन पर सारे देश का सुख सौभाग्य निर्भर है। यो सभाएं कई एक है पर वे यदि एक समुदाय का भला चाहती है तो दूसरियों के साथ स्पर्धा करती हैं। वरच कभी-कभी परस्पर द्वेष फैलाती है, अत' उनकी सहायता केवल उन्ही को योग्य है जो उनमें फसे हुए है। पर यह दोनो उपर्युक्त समाजें वर्षों से सर्वसाधारण के लिए प्रयत्न कर रही है। इससे सबका परम धर्म है

---

१. 'ब्राह्मण' खण्ड ८ संख्या ११ ('ईश्वर की मूर्ति')
२. सं० नारायण प्रसाद अरोड़ा – 'प्रतापलहरी' (१९४९ ई० पृष्ठ २०८
'कानपुर माहात्म्य' —प्रतानारायण मिश्र
३, ब्राह्मण खण्ड ४ सख्या १२ ('स्वागतंते महाभाग,)

कि इन के ऊपर तन मन धन निछावर कर दें।"[१] इसके अतिरिक्त सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के भी कार्यों से मिश्र जी बड़े प्रसन्न थे। वे लिखते है—

"कियो महापरिश्रम मातृभूमि हित जिन तन मन धनवारी।
सहि न सके स्वधर्म निन्दा बस घोर विपति सिरधारी॥
उन्नति-उन्नति बकत रहत नित मुख से बहुत लबारी।
करि दिखरावन हार आजु इक तुमहीं परति निहारी॥"[२]

उस समय की अन्य धार्मिक सस्थाओ से भी मिश्र जी का कोई विशेष विरोध नही था। कारण सभी सस्थाओ से देश का कुछ न कुछ कल्याण ही होता था। फिर भी मिश्र जी किसी संस्था के गुण-दोषो को कहने मे न चूकते थे। उस समय की कुछ ऐसी नीति थी कि प्रारम्भ मे तो सस्थायें लम्बी चौडी योजनाए लेकर उठती थी पर बाद मे उन्हे पूरा न कर पाती थो तथा कुछ दिन चलन पर और भी अनेक दोष उनमे आ जाते थे, जिनसे देश का बडा अहित होता था। इस पर मिश्र जी कहते हैं—"बहुत से बुद्धिमानो ने बहुत स्थानो पर आर्यसमाज, ब्रह्मसमाज, धर्मसभादि कई एक सभा सस्थापित भी की। पर एक तो जो काम पहिले-पहिल किया जाता है वह पूरी रीति से काम पूरा पडता है, दूसरे जिसमे एक बडा जनसमूह योग नही देता, उसके उन्नति मे बाधा अवश्य पडती है। इन दो कारणो से यह समाज जैसा चाहिए वैसी कृतकार्य न हो सकी। इनका उद्देश्य यद्यपि अनेकाश मे उत्तम है पर धर्म प्रचार के साथ ही मत मतान्तर का खडन-मडन, प्रतिमा पुराणादि ही हठ पूर्वक निन्दा स्तुति और जाति भेद, भक्ष्याभक्ष्य, विधवा विवाहादि विषयक आग्रह निग्रह के कारण देश की साधारण जनता इन पर यथोचित श्रद्धा न कर सकी।"[३] मिश्र जी को ब्रह्म समाज की ईसाइयो की ओर निष्ठा एव मूर्तिपूजा विरोध, थियोसाफिकल सोसाइटी का भूत-प्रेत पर विश्वास, जैन, बौद्ध, मुसलमान, ईसाइयो का आपसी विद्वेष आदि पसन्द न था। वह भारत दुर्दशा में इन सब पर बड़ी छीटाकसी करते है। कलयुग के मंत्री कुमत का कथन यहा पर द्रष्टव्य है—

"जैन, बौद्ध और मुसलमान, ईसाई फैलाऊं।
कनौजिये हों आठ जहाँ, नौ चूल्हे बनवाऊं॥
नेचर और थियोसोफी को दू मै भरदारी।
सर्व नास्तिक को मैं सबका, करू अगुवाकारी॥

---

१. ब्राह्मण खण्ड ६ सख्या ३ ('दान पात्र')
२. 'ब्राह्मण खण्ड १ संख्या ६ ('भैरव राग')
३. 'ब्राह्मण खण्ड ७ संख्या ४ ('श्री भारत धर्म महामण्डल')

ब्रह्मा को अज्ञानी बनवा, मूरत पूजा छुड़वाऊं ।
करके भ्रष्ट सभी के मत को मैं मन्दिर तुड़वाऊं ।।
साध, ब्रह्मक्षया इन दोनों, मतको भी करूं मशहूर ।
जाता हूं मैं भारत पर, अब दीजै हुकुम हुजूर ।।"[1]

उपर्युक्त प्रभाव को देखने से यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि मिश्र जी युग की गतिविधि को देखकर चलने वाले व्यक्ति थे । वह लोक कल्याण को प्रमुख मानते थे। उनका समन्वयवादी दृष्टिकोण लोक कल्याण का ही द्योतक है । लोक-कल्याण के लिए वह पुरातन परम्पराओं और रूढ़ियों की अवहेलना करने मे किंचित न हिचकते थे । उनके व्यापक प्रेम मे सभी मत एकीभूत हो गये थे । उनकी धार्मिक मान्यताये उदार, वैज्ञानिक, नवीनतावादी, स्पष्ट एव युगानुरूप थी जिनमे सभी जातिया, सभी मत, सभी धर्म इच्छानुसार आत्मतोष कर सकते थे ।

साहित्यिक स्थिति

आधुनिक काल से पूर्व रीतिकालीन साहित्य शृंगार और दरबारी हास-विलास मे डूबा हुआ था । वह यथार्थ को छोड आदर्श-वह भी पतनोन्मुख आदर्श भूमि पर क्रीडा कर रहा था । उसका क्षेत्र नायक और नायिका के सौन्दर्य और विलास तक ही केन्द्रित था । कवि एव साहित्यकार अपनी जीविका को प्रमुख मानकर साहित्य रचना कर रहे थे । उनकी लेखनी बहुत-कुछ उनके आश्रयदाता राजाओं के आधीन थी । इसलिए रीतिकाल में साहित्य का चतुर्मुखी विकास नही हो सका । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल लिखते है—"प्रकृति की अनेकरूपता, जीवन की भिन्न-भिन्न चिन्त्य बातो तथा जगत् के नाना रहस्यो की ओर कवियो की दृष्टि नही जाने पाई । वह एक प्रकार से बद्ध ओर परिमित सी हो गई । उसका क्षेत्र सकुचित हो गया । वाग्धारा बधी हुई नालियो मे प्रवाहित होने लगी जिससे अनुभव के बहुत से गोचर और अगोचर विषय रससिक्त होकर सामने आने से रह गये । दूसरी बात यह हुई कि कवियो की व्यक्तिगत विशेषता की अभिव्यक्ति का अवसर बहुत ही कम रह गया । कुछ कवियो के बीच भाषा शैली, पद-विन्यास, अलंकार-विधान आदि बाहरी बातों का भेद हम थोडा बहुत दिखा सके तो दिखा सकें, पर उनकी अभ्यतर प्रकृति के अन्वेक्षण मे समर्थ उच्चकोटि की आलोचना की सामग्री बहुत कम पा सकते है ।"[2] सुधाकर पाण्डेय रीतिकाल की स्थिति को और स्पष्ट शब्दो मे अभिव्यक्त करते है—"कलाकार की रोटी उनको हां मे हा मिलाने के लिए वाध्य करती थी । चित्रकला और सगीत को समाज को राह दिखाने वाला न बनाकर व्यक्तियो का पिछलगुआ

---

१. प्रतापनारायण मिश्र-'भारत दुर्दशा रूपक' (१९२० ई०) अंक २ दृश्य पहिला
२. रामचन्द्र शुक्ल 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' (२००६ वि०) पृष्ठ २३७

बनाया गया तथा गगा की तरह निर्मल कला से सुरा का कार्य लिया जाने लगा। विलासिता ने काम की स्पृहा को जगाया। कलाकार की कला ने मद का कार्य किया। ऐसा भयानक सक्रमणकालीन समय भारत के इतिहास मे खोजे नही मिलता। वास्तविक कला अन्तरध्यान हो गयी। उसका उद्देश्य विलुप्त हो गया। कामोद्दीपक स्त्रैण भावना से पूर्ण चित्रो का निर्माण आरम्भ हुआ।"[1] इस प्रकार रीति काल का साहित्य 'सत्य, शिव, सुन्दरम्' की भावन मे पृथक जा चुका था। ऐसे प्रतिबधित, सकुचित और छिछले वातावरण मे कलाकारो का अधिक समय तक रहना असम्भव था। आगे चलकर (आधुनिक काल मे) धीरे-धीरे युग की परिस्थितियो के साथ कवियों की मान्यताए बदली और साहित्य ने अपने शाश्वत परिवर्तन का नियम निभाया। ब्रिटिश-शासन के विकास के साथ ही कवियो के राजाश्रय समाप्त होने लगे। कवि राजाओं के विलास को छोडकर जनता के सम्पर्क मे आने लगे और जन-साहित्य का प्रणयन प्रारम्भ हुआ।

भारत मे ईस्ट इण्डिया कम्पनी का प्रभुत्व स्थापित हो जाने के बाद उसके शासको का ध्यान अंग्रेजी प्रचार की ओर गया। सर्व प्रथम बंगाल प्रैजीडैसी के चैपलिन जान ओवन ने अग्रेजी पढाने के लिए स्कूल स्थापित करने की सरकार से प्रार्थना की। पर ओवन की प्रार्थना पर कोई ध्यान न दिया गया। तत्पश्चात् सन् १७९२-९३ ई० मे विल्बर फोर्स ने हाउस आफ कामन्स मे भारतीयो को उपयोगी ज्ञान की शिक्षा देने के लिए अध्यापको और मिशनरियो को भारत मे भेजने का, सुझाव रक्खा। पर इस सुझाव का कडा विरोध हुआ और वह मान्य नही हो सका। इसके बाद कम्पनी के डायरेक्टर चार्ल्स ग्राण्ट ने (१७९५ ई० के लगभग) अग्रेजी, प्रचार के लिए अपना 'स्मृति-पत्र' प्रस्तुत किया जिसमे बडी नम्र नीति से अग्रेजी प्रचार की सलाह कपनी को दी गयी थी। चार्ल्स ग्राण्ट अपने स्मृति-पत्र मे लिखते है—"सरकार के लिए यह बहुत आसान होगा कि वह सामान्य व्यय पर प्रान्तो के विभिन्न स्थानो पर ऐसे शिक्षण केन्द्र स्थापित करें जहा अग्रेजी पढने-लिखने की व्यवस्था हो। अनेक व्यक्ति, विशेष रूप से नवयुवक उससे लाभ उठाऐंगे तथा अध्यापन-कार्य मे प्रयुक्त आसान पुस्तको से विभिन्न विषयो पर कुछ सामान्य सचाई की बाते प्राप्त हो सकेंगी। हिन्दू, कुछ ही समय मे, स्वय अग्रेजी के अध्यापक बन जायगे तथा सार्वजनिक कार्य-व्यवहार मे हमारी भाषा, जो राजनैतिक कारणो मे जरूरी है, अगली पीढी तक सम्पूर्ण देश मे फैल जायगी। इस योजना की सफलता के लिए किसी बात की कमी नही है। कमी है तो केवल सरकार के हार्दिक सरक्षण की।"[2] अब तक भारत

---

१. सुधाकर पाण्डेय-हिन्दी साहित्य और साहित्यिकार' (१९६१ ई०) पृष्ठ १०५
२. डा० विद्याधर महाजन और डा० आर० आर० सेठी-'भारत का सवैधानिक इतिहास' (१९५७ ई०) पृष्ठ २६३-६४

मे केवल हिन्दुओ और मुसलमानो की ही अपनी-अपनी पृथक् शिक्षण-सस्थाए थी जिनका धर्म के साथ घनिष्ट सम्बन्ध था । पण्डित लोग अपनी पाठशालाओ मे हिंदुओ को सस्कृत पढाते थे और मौलवी मस्जिदो मे मुसलमानो को फारसी पढाते थे ।"[1] कम्पनी भी इन सस्थाओ के कार्यो मे किसी प्रकार का हस्तक्षेप न करती थी बल्कि उससे कुछ प्रोत्साहन ही मिलता था ।

सन् १८११ ई० मे पुन. लार्ड मिण्टो ने अग्रेजी प्रचार पर जोर दिया जिसके परिणाम स्वरूप १८१३ ई० मे 'चार्टर अधिनियम' के अन्तरगत कम से कम एक लाख रुपये की राशि वैज्ञानिक,शिक्षा के लिए अलग रखने की योजना बनायी गयी । पर इस दिशा मे अभी तक कोई क्रियात्मक कार्य न हो सका । आगे चलकर राजा राममोहन राय ने इस दिशा मे कुछ कार्य किया और सन् १८१७ मे 'हिन्दू-कालेज' की स्थापना हुई । सन् १८१८ मे कलकत्ते के मुख्य पादरी ने एक सस्था की स्थापना की, जिसके द्वारा नवयुवक ईसाइयो को प्रचारक बनाने तथा हिन्दुओ और मुसलमानो को अग्रेजी भाषा का ज्ञान कराने की व्यवस्था की गयी ।[2] इसके बाद सन् १८२३ मे *ऐल्फिन्स्टन ने कम्पनी के शासको को अग्रेजी तथा योरोपीय विज्ञान के अध्यापन* के लिए स्कूल खोलने की प्रेरणा दी । जिससे फिर आगरा कालेज (१८२३ ई०), दिल्ली कालेज (१८३० ई०), बरेली कालेज (१८३० ई०), कलकत्ता स्कूल बुक सोसाइटी (१८३३ ई०) की स्थापना हुई ।[3] ऐल्फिन्स्टन ने स्वयं भी १८३३ ई० मे पूना मे एक कालेज की स्थापना की जिसमे साहित्यिक अग्रेजी पढाने की व्यवस्था की गई । इसी के आधार पर १८३४ मे बम्बई मे ऐल्फिन्स्टन कालेज की स्थापना हुई । इसके साथ ही अब कम्पनी-शासक तेजी से अंग्रेजी प्रचार मे लग गये । इधर ईसाई मिशनरियो से भी अग्रेजी का कुछ प्रचार हो रहा था और इनके द्वारा कुछ स्कूल भी खोले गये थे । वैसे ईसाई मिशनरिया १८ वी शताब्दी के पूर्वार्द्ध से ही अपना कार्य कर रही थी पर इनका प्रमुख उद्देश्य धर्म प्रचार ही था ।

सन् १८३५ ई० तक भारत मे अंग्रेजी अच्छी तरह फैल चुकी थी । अग्रेजी की पुस्तकें सहस्रो की सख्या में बिक रही थी । नौकरी और प्रतिष्ठा के प्रलोभन से भारतीय निरन्तर उसकी ओर खिचते जा रहे थे । अंग्रेजी की ओर झुकाव से देशी संस्थाये धीरे-धीरे समाप्त होती जा रही थी और संस्कृत तथा अरबी फारसी की पुस्तको

---

१. डा० विद्याधर महाजन और डा० आर० आर० सेठी-'ब्रिटिश-कालीन भारत का इतिहास' (१९६० ई०) पृष्ठ ४९७

२. डा० विद्याधर महाजन और डा० आर० आर० सेठी-'भारत का सवैधानिक इतिहास' (१९५७ ई०) पृष्ठ २६४

३. डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय-'आधुनिक हिन्दी साहित्य' (१९५४ ई०) पृष्ठ १२

की माग कम हो गयी थी । इस स्थिति से जनमत दो भागो मे विभक्त हो गया । नवीनतावादी अंग्रेजी के हिमायती हो गये और प्राचीनतावादी प्राच्य भाषाओ के । सन् १९३५ मे इस बढते हुए विभेद को रोकने के लिए सरकार ने समिति बनाई और उस समिति के अध्यक्ष लार्ड मैकाले नियुक्त किये गये। लार्ड मैकाले भी अग्रेजी के पक्षपाती थे इन्होंने हर तरफ से भारतीयो को समझाया और अग्रेजी को उपयोगी सिद्ध किया । उनका कहना था—"क्या हमे भारतीयो को अपने आधीन बनाये रखने के लिए अज्ञानी बनाये रखना है ।"[1] लार्ड मैकाले की ही परामर्श से तत्कालीन गवर्नर,जनरल लार्ड विलियम बैण्टिग ने ७ मार्च १८३५ ई० को एक प्रस्ताव स्वीकृत किया । जिसमे अंग्रेजी प्रचार पर विशेष जोर दिया गया और शिक्षा पर खर्च की जाने वाली सम्पूर्ण धनराशि को अग्रेजी पर खर्च करने के लिए कर्मचारियो को प्रेरित किया गया तथा भारतीय प्राच्य-संस्थाओ को दी जाने वाली सहायता को रोका गया ।[2] इस प्रस्ताव का जनता द्वारा घोर विरोध हुआ पर सरकार की नीति मे कोई परिवर्तन न हुआ । दिन-पर-दिन अग्रेजी का प्रचार बढता ही गया और अग्रेजी राज्य भाषा के रूप मे प्रतिष्ठित हो गयी । आगे चलकर शिक्षा के क्षेत्र मे, शासको द्वारा दो महत्वपूर्ण सुधार किये गये । पहला सुधार १८५४ ई० मे वुड के प्रेषित-पत्र द्वारा हुआ, जिसमे कलकत्ता, बम्बई और मद्रास मे विश्वविद्यालय खोलने की परामर्श दी गई, साथ ही और अनेक सुझाव शिक्षा के विकास के लिए दिये गये । दूसरा सुधार लार्ड रिपन के समय मे (१८८२ ई०) मे हुआ । लार्ड रिपन ने १८५४ ई० के प्रेषित-पत्र के सिद्धातो के कार्यान्वित किये जाने की जाच के लिए 'हण्टर आयोग' की नियुक्ति की। हण्टर आयोग ने भली-भाति जाच करने के उपरान्त बहुत से सुझाव रिपन को दिये, जिनके परिणाम स्वरूप शिक्षा सस्थाओ को कुछ आर्थिक सुविधायें प्रदान की गयी ।[3]

प्रारम्भ मे (लगभग १८१५ ई० से पूर्व) ब्रिटिश-शासको की, भारतीय भाषाओ के प्रति बडी सहानुभूति थी । उनका कहना था कि "हिन्दुओ की भी अन्य लोगो के समान विश्वास तथा आचार की अच्छी पद्धति है ।"[4] इसी विश्वास पर प्रारम्भ में कम्पनी शासको ने हिन्दी-गद्य के विकास मे पर्याप्त सहायता की । सर

---

१ डा० विद्याधर महाजन और डा० आर० आर० सेठी-'ब्रिटिश कालीन भारत का इतिहास' (१९६० ई०) पृष्ठ ४९९

२. डा० विद्याधर महाजन और डा० आर० आर० सेठी-'ब्रिटिश कालीन भारत का इतिहास' (१९६० ई०)-पृष्ठ ५००

३. डा० विद्याधर महाजन और डा० आर० आर० सेठी-'भारत का संवैधानिक इतिहास' (१९५७ ई०) पृष्ठ २६७-६९

४. डा०विद्याधर महाजन और डा० आर० आर० सेठी-'भारत का संवैधानिक इतिहास' (१९५७ ई०) पृष्ठ २६३

विलियम जोन्स द्वारा स्थापित 'एशियाटिक सोसायटी' (१७८४ ई०) और वेलेजली द्वारा स्थापित 'फोर्ट विलियम कालेज' के कार्य हिन्दी-गद्य के विकास की दिशा में सराहनीय है। यद्यपि हिन्दी खडी बोली गद्य के विकास की परम्परा साहित्य में अकबर के समय मे मिलती है[1] पर उसका समुचित विकास १९ वी शताब्दी मे ही हुआ। गद्य के प्रारम्भिक ग्रन्थो मे गग कवि कृत 'चन्द छन्द बरनन की महिमा' (१५७० ई० के लगभग), पटियाला के रामप्रसाद 'निरंजनी' कृत 'भाषा योग वासिष्ठ' (१७४१ ई०) और मध्य प्रान्त के प० दौलतराम कृत 'जैन पद्मपुराण' (१७६१ ई०) उल्लेखनीय है। खड़ी बोली गद्य क विकास के साथ ही, साहित्य मे ब्रजभाषा और राजस्थानी गद्य के विकास की परम्पराये भी मिलती है पर इनका समुचित विकास न हो पाया और ये परम्परायें मृतप्राय हो गयी। डा० लक्ष्मीसागर वर्ष्णेय ब्रज-भाषा और राजस्थानी गद्य के विकसित न होने का कारण इस प्रकार लिखते है—"हिन्दी की नई साहित्यिक चेतना के केन्द्र कलकत्ते से ब्रज भाषा और राजस्थानी के केन्द्र दूर पडते थे जिससे वे समयानुसार और आवश्यकतानुसार नया रूप ग्रहण न कर सँके। मध्यप्रदेश और राजस्थान के धार्मिक और राजनीतिक पतन के कारण उनका आगे और पनप सकना कठिन था।" प्रेस की सहायता ब्रजभाषा और राजस्थानी गद्य को न मिल सकी।'[2] वैसे ब्रजभाषा और राजस्थानी गद्य की परम्परायें खडी बोली गद्य से प्राचीन है पर इन्हे विकास का अवसर नही मिला। १८ वी शताब्दी के अन्त तक उत्तरप्रदेश और बिहार में खड़ी बोली गद्य का अच्छा प्रचार हो चुका था जिसको देखकर विदेशी जातियों ने इसी को भारत की प्रमुख भाषा समझा और इसी के प्रचार तथा सीखने में वे लग गये। इतना कहना यहा आवश्यक है कि उस समय के खड़ी बोली गद्य और आज के गद्य मे महान अन्तर था। उस समय के गद्य मे प्रान्तीय भाषाओ के शब्दो और उर्दू-फारसी के शब्दो का बाहुल्य था। फिर भी आधुनिक गद्य उसी के क्रमिक परिमार्जन का परिणाम है।

वेलेजली ने कलकत्ते मे फोर्ट विलियम कालेज की स्थापना, क्लर्क तैयार करने के उद्देश्य से की थी। इस कालेज से निकले हुए विद्यार्थियो को नौकरी बड़ी आसानी से मिल जाती थी। साथ ही भारतीयो को आकृष्ट करने के लिए इस कालेज मे हिन्दुस्तानी भाषाओं के अध्यापन की भी व्यवस्था की गयी। हिन्दुस्तानी विभाग के अध्यक्ष डा० जान बौर्थविक गिलक्राइस्ट (१८००-१८०४ ई०) थे। इन्होंने बड़ी सहृदयता से हिंदी-गद्य के विकास मे योग दिया। इनके निरीक्षण मे

---

१. आचार्य रामचन्द्रशुक्ल हिन्दी-साहित्य का इतिहास' (२००६ वि०) पृष्ठ ४०९-४१०

२. डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय - 'आधुनिक हिन्दी साहित्य' (१९५४ ई०) पृ० २५

अनेक पाठ्य पुस्तकें तैयार हुई, जिनमे हिन्दी गद्य को बडा बल मिला। इन्ही के समय मे लल्लू लाल और सदल मिश्र फोर्ट विलियम कालेज मे अध्यापक नियुक्त हुए। लल्लूलाल ने १८०३ और १८०९ ई० के बीच 'प्रेमसागर' तथा सदल मिश्र ने १८०३ ई० मे 'नासिकेतोपाख्यान' लिखा। ये दोनो ही पुस्तकें गिलक्राइस्ट के सरक्षण मे लिखी गयी थी। इन पुस्तकों में शुद्ध खडी बोली के दर्शन नही होते प्रेम-सागर' की भाषा मे ब्रजभाषापन और पण्डिताऊपन स्पष्ट झलकता है। 'नासिकेतोपा-ख्यान' मे भी सस्कृत, अवधी, ब्रज और बिहारी के शब्दो का प्रयोग हुआ है पर 'प्रेमसागर' मे इसकी भाषा अधिक स्वच्छ और स्वाभाविक है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल लिखते हैं—"लल्लूलाल के समान इनकी भाषा मे न तो ब्रजभाषा के रूपो की वैसी भरमार है और न परम्परागत काव्य भाषा की पदावली का स्थान-स्थान पर समावेश। इन्होने व्यवहारोपयोगी भाषा लिखने का प्रयत्न किया है और जहां तक हो सका है खडी बोली का ही व्यवहार किया है।"[1] फोर्ट विलियम कालेज से बाहर भी बहुत से साहित्यकारो ने स्वतन्त्र रूप से गद्य-रचना की, जिसका साहित्य के विकास मे विशेष महत्व है। स्वतत्र साहित्यकारो मे मथुरानाथ शुक्ल, सैयद इशा अल्ला खा और सदासुख लाल 'नियाज' विशेष उल्लेखनीय है। उन लोगो ने क्रमशः 'पचाग-दर्शन' (१८०० ई०), 'रानीकेतकी की कहानी' (१७९८-१८०३ ई०) और 'सुखसागर' (१८११ ई०) लिखा। वैसे ये सभी पुस्तके सामान्य स्तर कीहै इनमे देशज शब्दो का प्रयोग बहुतायत से हुआ है पर गद्य की प्रारम्भिक पुस्तके होने के कारण इनका हिन्दी साहित्य मे ऐतिहासिक दृष्टि से विशेष महत्व है।

इसके बाद लगभग पचास वर्ष तक खडी-बोली-गद्य का विकास स्थिर रहा। इसका प्रमुख कारण सरकार की ओर से हिन्दी-गद्य की उपेक्षा ही थी। सरकार हिन्दी से मुहमोडकर अग्रेजी के प्रचार मे कटिबद्ध थी। 'फोर्ट विलियम कालेज' भी अब अग्रेजी का ही पक्ष ले रहा था। अग्रेजी के बढते हुए प्रचार ने लोगो को अपनी ओर खीचा जिससे हिन्दी का विकास रुक गया। आगे चलकर मुसलमानो के प्रयास से उर्दू को सरकार द्वारा कुछ प्रोत्साहन भी मिला पर हिन्दी उपेक्षित ही रही। उर्दू और फारसी को अदालत मे स्थान मिल जाने से उसकी ओर लोगो की अभिरुचि बनी रही। इसके अतिरिक्त सर सैयद अहमद साहब के प्रयत्न से भी उर्दू की बडी उन्नति हुई। सरकार की इस विभेद नीति और अग्रेजी के प्रति पक्षपात से हिन्दुओं मे भी प्रतिक्रिया हुई और उन्होने हिन्दी-प्रचार का आन्दोलन प्रारम्भ किया। सन् १८६२ के लगभग राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द ने हिंदी का पक्ष लिया और शुद्ध

---

१ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल - 'हिन्दी - साहित्य का इतिहास' (२००६ वि०)- पृष्ठ ४२२

खड़ी बोली मे 'राजा भोज का सपना' लिखा पर अपनी राजभक्ति के कारण वह इस दिशा मे आगे न बढ सके।[1] अधिकारियो की रुचि के अनुसार इन्होने उर्दू-गर्भित हिन्दी लिखना प्रारम्भ किया जिससे हिन्दी का अस्तित्व ही डगमगाने लगा। इसी समय राजा लक्ष्मण सिंह शिवप्रसाद के विरोध मे सस्कृत-गर्भित भाषा लेकर हिन्दी जगत में आये। इन्होने १८६२ ई० में 'अभिज्ञान शाकुन्तल' लिखा। ये दोनो ही लेखक अतिवादी रहे, इससे इनकी प्रणाली आगे गृहीत न हुई। सन् १८७५ के लगभग भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के साहित्य क्षेत्र मे आने से खड़ी-बोली गद्य एक नई दिशा की ओर मुड़ा। भारतेन्द्र ने शिवप्रसाद और लक्ष्मण सिंह के बीच का मार्ग अपनाया। जन प्रचलित शब्दो को इन्होने अपने गद्य मे स्थान दिया। उर्दू और सस्कृत के सामान्य शब्द, जो जनता मे प्रचलित थे—उनको स्वाभाविक गति से अपने गद्य मे आने दिया। इस प्रकार भारतेन्दु से गद्य मे तरलता, सरलता और स्वाभाविकता आयी। इसी प्रणाली को लेकर उनके सहयोगी लेखक भी बढे और हिन्दी गद्य का प्रचार तेजी से प्रारम्भ हो गया। उस समय के गद्य लेखकों में प्रतापनारायण मिश्र और बालकृष्ण भट्ट विशेष उल्लेखनीय है। इन्होने हिन्दी प्रचार मे तन, मन, धन से योग दिया। अंग्रेजी की प्रतिद्वन्द्विता मे ये लोग हिन्दी को बराबर आगे बढाते रहे। सरकार की उपेक्षा हिन्दी के लिए वरदान बन गयी। कहना न होगा कि यदि सरकार हिन्दी को दबाकर अंग्रेजी की ओर न मुडती तो भारतीयो मे प्रतिक्रिया का जन्म न होता और हिन्दी का इतनी तेजी से विकास न हो पाता।

धार्मिक आन्दोलनो ने भी हिन्दी के प्रचार मे बडा कार्य किया। दयानन्द सरस्वती और ईसाई मिशनरियो के उपदेशो से (उपदेशो का माध्यम हिन्दी होने के कारण) हिन्दी को बडा बल मिला। अब तक प्रेसो की भी पर्याप्त उन्नति हो चुकी थी जिससे अनेक पत्र-पत्रिकाये निकलने लगी थी इनसे हिन्दी के प्रचार मे बड़ी सहायता मिली।[2] उस समय कलकत्ता, बनारस, इलाहाबाद और कानपुर हिन्दी प्रचार के प्रमुख केन्द्र थे, अनेक मण्डलिया इन स्थानों मे हिन्दी-प्रचार का कार्य कर रही थी। शिक्षा सस्थाओं और सरकारी कार्यो मे हिन्दी को स्थान न मिलने से लोगो मे बड़ा असतोष फैला हुआ था। अनेक मेमोरियल इसके विरोध में सरकार को भेजे जा रहे थे पर सरकार दिन-पर-दिन हिन्दी की उपेक्षा ही करती जा रही थी। इससे हिन्दी-प्रचार और भी बल पकड़ता जा रहा था। प्रचार का माध्यम प्रायः गद्य ही था। गद्य के माध्यम हो जाने से उसमे भावाभिव्यजन की

---

१. डा० राजेन्द्रप्रसाद शर्मा—'हिन्दी गद्य के निर्माता पण्डित बालकृष्ण भट्ट' (१९५८ ई०) पृष्ठ १३

२. डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय—'आधुनिक हिन्दी साहित्य' (१९५४ ई०) पृष्ठ ४७

पूरी शक्ति आ गई थी। साथ ही उसे एक सुस्थिर रूप भी प्राप्त हो गया था। गद्य के विकसित हो जाने से उसके विभिन्न रूपो का भी प्रणयन प्रारम्भ हुआ। निबन्ध आलोचना नाटक, कहानी, उपन्यास, आदि लिखे जाने लगे। सभी विधाओं के विकास ने गद्य को बडी शक्ति प्रदान की और वह सफलता के साथ आगे बढने लगा तथा उसका क्षेत्र भी बडा व्यापक हो गया।

कविता के क्षेत्र मे भी भारतेन्दु-युग ने पर्याप्त प्रगति की। कविता के अन्तरग और बहिरग दोनो पक्षो मे नये-नये प्रयोग हुए। इस युग के साहित्यकार अतीत और वर्तमान को साथ लेकर चले। अतीत परम्परा मे एक ओर कबीर, सूर और तुलसी के अनुकरण पर उपदेशात्मक एव भक्ति पूर्ण रचनाये हुई तो दूसरी ओर बिहारी और मतिराम के अनुकरण पर श्रृगार परक रचनाये की गयी। वर्तमान स्थिति के प्रभाव से राष्ट्रप्रेम समन्वित रचनाओं की भरमार रही। इस प्रकार भारतेन्दु-युग भक्ति और रीति परम्परा को निभाते हुए नवीनता की ओर बढा। इस युग के साहित्यकारो में राष्ट्रप्रेम प्रमुख रूप से विद्यमान था इससे नये-नये भावो और विचारो को साहित्य मे स्थान मिला। रीतिकाल की 'कला कला के लिए' की भावना समाप्त होने लगी। भारतेन्दु-युग मे कला जीवन के साथ अपना पग मिलाने लगी। उसकी आत्मा मे पीड़ितो और अकालियों की चीत्कारे सुनायी पडने लगी और वह जन सामान्य के गले का हार बन गयी। इस युग के साहित्यकारों का प्रमुख उद्देश्य जनता को जाग्रत करना था इससे जन-साहित्य का प्रणयन प्रचुर मात्रा मे हुआ। इसके अतिरिक्त छन्दो के क्षेत्र मे भी पर्याप्त विकास हुआ। जनता की अभिरुचि और प्रचार की सुविधा के अनुसार कविता मे विभिन्न छन्दो का प्रयोग किया गया। भक्ति और रीति काल के कवित्त पद, दोहे, सवैये आदि तो लिखे ही गये, साथ ही नये-नये साहित्यिक-गीतो और लोक गीतो की भी रचना प्रारम्भ हुई। लोक-गीत कजली, खेमटा, कहरवा, ठुमरी, गजल, होली, अद्धा, चैती, बिरहा, लावनी आदि छन्दो मे लिखे गये। इनका उद्देश्य जनता को अपनी ओर आकृष्ट करना था।

भारतेन्दु-युग मे भाषा के क्षेत्र मे भी बड़ा क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ। इस युग से पूर्व कवितायें अधिकतर ब्रजभाषा मे ही लिखी जाती थी। रीतिकाल मे तो ब्रजभाषा का कविता पर एकाधिकार था। सभी कवि ब्रज-भाषा के उपासक थे। भारतेन्दु-युग के पूर्वार्द्ध मे भी ब्रजभाषा की ही प्रधानता रही पर आगे चलकर कुछ लोगो की रुचि बदली और खडी-बोली पद्य का आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। कुछ लोग प्राचीन परम्परा के पोषक होने के नाते ब्रजभाषा का पक्ष ले रहे थे कुछ नवीन दृष्टिकोण को लेकर खडी बोली की ओर बढ़ रहे थे। इस प्रकार खडी बोली और ब्रजभाषा के बीच एक आन्दोलन प्रारम्भ हो गया। ब्रजभाषा के पक्षपाती खडी बोली को कर्कश कहकर कविता के लिए उसे अनुपयुक्त बताते थे और खडी बोली के पक्ष-

पाती खड़ी बोली मे रचनायें करके उनके, आक्षेपों का उत्तर देते थे। इनका कहना था कि गद्य और पद्य की एक ही भाषा होनी चाहिए।[1] यह आन्दोलन सन् १८८७ से १८९० ई० तक बडे जोरो से चला। व्रजभाषा के पक्षपातियों में प्रतापनारायण मिश्र, राधाचरण गोस्वामी आदि तथा खडी बोली के पक्षपातियो मे बाबू अयोध्या-प्रसाद खत्री, श्रीधर पाठक आदि प्रमुख थे।'[2] कालान्तर मे खडी बोली की ओर लोगो की रुचि बढती गयी और व्रजभाषा मृतप्राय हो गयी। वैसे खडी बोली-पद्य के विकास की क्षीण परम्परा खुसरो की मुकरियों और कबीर के दोहो से प्रारम्भ होती हे पर उसका पूर्ण विकास आधुनिक युग मे ही आकर हुआ।

इस युग के लेखको मे चमत्कार प्रदर्शन की लालसा नही थी। रीति कालीन कवियो की तरह ये अलकारिकता मे पडने वाले नही थे, न इन्हें आचार्यत्व का ही मोह था। ये बड़ी सीधी सादी भाषा मे अपने विचारो को जन-सामान्य तक पहुँचाना चाहते थे। इनक विचार सुधारवादी थे और मानवमात्र का कल्याण ही इनके लिए अभीष्ट था। भारतेन्दु-युग के साहित्य मे उस समय के त्रस्त-समाज की स्पष्ट झाकी दिखायी पडती हे। उसमे आर्थिक-शोषण, समाज की कुरीतियो, अध-विश्वासो आदि के सजीव चित्र है। इस युग का साहित्य यथार्थ को लेकर चलने वाला मानवतावादी साहित्य है। पाश्चात्य सस्कृति के सयोग से इस युग के साहित्यको के दृष्टिकोण बहुत-कुछ वैज्ञानिक हो गये थे और उन्होने नये-सिरे से सोचना प्रारम्भ कर दिया था। आधुनिक काल के साहित्य पर पाश्चात्य साहित्य का भी बडा प्रभाव पडा। गद्य के विविध रूपों पर तो पाश्चात्य प्रभाव स्पष्ट दिखाई पडता है। कहना न होगा कि इस युग मे विषय, रूप-विधान और भाषा की दृष्टि से साहित्य को अनेक रूपता प्राप्त हुई और साहित्य का चतुर्मुखी विकास हुआ। ऐसा विकासपूर्ण-युग हिन्दी-साहित्य मे कभी नही आया।

कानपुर की स्थिति

मिश्र जी के साहित्य-क्षेत्र मे आने से पूर्व साहित्यिक दृष्टि से कानपुर बहुत पिछडा हुआ था। उसका नाम केवल व्यवसायिक-जगत् मे था। प्रतापनारायण जी के प्रादुर्भाव से ही कानपुर मे साहित्यिकला का सचार हुआ। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी अपने वक्तव्य मे कहते हे—"आज से कोई तीस-पैंतीस वर्ष पूर्व, यहा दो चार मनुष्यों को छोडकर और कोई हिन्दी-भाषा और हिन्दी-साहित्य का नाम तक शायद न जानता था। इस भाषा और इस भाषा के साहित्य के बीजवपन का श्रेय परलोक वासी पडित प्रतापनारायण मिश्र को है। उन्ही के पुण्य प्रताप से आज कानपुर को

१. डा० शितिकंठ मिश्र—'खड़ी बोली का आन्दोलन' (२०१३ वि०) पृ० ३५३
२. डा० रामविलास शर्मा—'भारतेन्दु-युग' (१९५६ ई०) पृष्ठ १५८

यह सौभाग्य प्राप्त हुआ है कि हिन्दी-साहित्य की अभिवृद्धि के साधनो पर विचार करने के लिए अपने, मुडिया-लिपि के इस दुर्भेद्य दुर्ग मे, पधारने की कृपा की है।"[1] सन् १८४७ ई० मे लाला दरगाहीलाल वकील ने उर्दू मे 'तवारीखे जिला कानपुर' नामक पुस्तक लिखी। जिसमे वह अपने समय की साहित्यिक-स्थिति का चित्रण इस प्रकार करते है—"कायस्थ व मुसलमानो के लड़के फारसी खूब पढते थे। कुछ शहरो मे, कुछ घरो मे चार-पाच रुपया व खुराक पर एक शिक्षक नौकर होता है जिसे मौलवी साहब कहते है'' ' अग्रेजी पहले लोग पढना पसन्द नही करते थे क्योकि उनका ख्याल था कि उसमे लडके ईसाई हो जायँगे। बहुत कम लोग शिक्षित थे। लड़कियो को लोग पढाना बुरा समझते थे। सस्कृत केवल ब्राह्मणो के लडके पढते थे। जिले भर मे तीन-चार पडित शास्त्री थे आज कल स्कूलो मे नागरी की लिखावट मे बहुत कुछ सुधार किया गया है पर फिर भी लोग नागरी शुद्ध नही लिख पाते। जब गाव मे परदेश से चिट्ठी आती है, उसे कोई विरला ही पढ़ सकता है। बाकी लोग अपनी चिट्ठी पढवाते फिरते है। और जो कोई घर का हाल परदेश को लिखना चाहता है दूसरे से लिखाने जाता है · गाँवो मे कायस्थ लोग किसी के चबूतरे या चौपाल मे या पेड के नीचे ककहरा व पहाडा पढाते है उसे भैया जी कहते है। वह फी लडका एक या दो आने मासिक पाते है।"[2] इससे स्पष्ट लक्षित होता है कि उस समय शिक्षा की बडी कमी थी। आगे चलकर सन् १८७५ तक कानपुर जिले में कई स्कूल स्थापित हो चुके थे। लक्ष्मीकांत त्रिपाठी लिखते है—'सन् १८७५ में कानपुर जिले मे ७ तहसीली स्कूल, २ टाउन स्कूल, ३ परगना स्कूल १५७ हल्का बन्दी स्कूल और तीस लडकियो के स्कूल थे। सब १९९। इनमे कानपुर म्यूनिसिपैल्टी के चार स्कूल भी सम्मिलित हैं। जिनमे केवल १६१ लड़के पढते थे। २१० भैया जी वाले स्कूल जिले भर मे और थे, जिनमे १९३५ लड़के पढते थे। सरकारी स्कूलो मे ७१४० लडके और ४९८ लडकियाँ पढती थी।[3] पूरे जिले को देखते हुए स्कूलो की सख्या तो कम थी ही, पर उनमे पढने वाले लडकों की संख्या तो बहुत ही कम थी। एक स्कूल के औसत विद्यार्थियो की सख्या २४ से अधिक नहीं थी।

कानपुर के लोग साहित्य से बहुत-कम अभिरुचि रखते थे। व्यवसायिक शहर

---

१ 'तेरहवां हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की स्वागत कारीणी समिति के सभापति प० महावीर प्रसाद द्विवेदी का वक्तव्य' (१९२३ ई०) पृष्ठ ७

२. लाला दरगाहीलाल—'तवारीखे जिला कानपुर' जिल्द अव्वल (१८७४ ई०) पृष्ठ १०२-१०६

३. 'रामराज्य' (कानपुर) २२ अक्टूबर १९५६ ई० 'प्रतापनारायण मिश्र-एक ऐतिहासिक विश्लेषण'-लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी

होने के कारण मुड़िया से लोगो को विशेष प्रेम था । इसी से यहाँ पर कोई रचनात्मक कार्य सफल न हो पाता था । सन् १८७२ मे सर्वप्रथम कानपुर से 'हिन्दू प्रकाश' नामक पत्र निककना प्रारम्भ हुआ था पर जनता का सहयोग न मिलने के कारण वह शीघ्र ही काल-कवलित हो गया ।[1] इसके बाद १८८३ ई० तक किसी का साहस कानपुर मे पत्र निकालने का न हुआ । अन्त मे १५ मार्च १८८३ मे प्रतापनारायण मिश्र ने अपने 'ब्राह्मण' पत्र का प्रकाशन कानपुर मे प्रारम्भ किया और अनेक परेशानियो का सामना करते हुए भी जीवन पर्यन्त निकालते रहे । प्रतापनारायण मिश्र के प्रादुर्भाव से कानपुर मे नयी साहित्यिक-चेतना का विकास हुआ और अनेक साहित्यिक सस्थाये स्थापित हुई । सन् १८८५ मे प्रतापनारायण मिश्र और उनके साथियो के प्रयत्न से 'भारत एनटरटेनमेण्ट क्लब' की स्थापना हुई जिसमे विभिन्न नाटको के अभिनय किये जाते थे । तदुपरान्त सन् १८९१ मे, नागरी प्रचार के उद्देश्य से 'रसिक-समाज' की स्थापना हुई और इसी के सरक्षण मे 'रसिक वाटिका' नामक त्रैमासिक पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ । इस प्रकार प्रतापनारायण मिश्र से सशक्त साहित्यकार को पाकर कानपुर १९ वी शताब्दी के अन्त तक एक प्रमुख साहित्यिक गढ बन गया ।

मिश्र जी पर प्रभाव

मिश्र जी के ऊपर तत्कालीन साहित्यिक स्थिति का गहरा प्रभाव पड़ा है । हिन्दी की गिरी हुई स्थिति से मिश्र जी बहुत चिन्तित थे । उन्होने हिन्दी प्रचार मे तन, मन, धन की बाजी लगा दी । उनका कहना था—"हिन्दी का पूर्ण प्रचार हुए बिना हिन्दुओ का उद्धार असम्भव है ।"[2] देश की उन्नति के लिए वह हिन्दी की उन्नति आवश्यक समझते थे । जनता को हिन्दी का महत्व समझाते हुए वे कहते है—

"देव नागरिहि गरे लगाओ, पैहो मोद महान ।
रहो निशक प्रेम मद माते, श्री परताप समान ।।"[3]

आगे फिर जनता को हिन्दी प्रचार के लिए प्रोत्साहित करते है—

"रीझै अथवा खिझै जहान । मान होय चाहे अपमान ।।
पै न तजो रटिबे की बान । हिंदी, हिंदू हिन्दुस्तान ।।

---

१. 'साप्ताहिक प्रताप' (कानपुर) १० अक्टूबर, १९५५ ई० 'प्रतापनारायण मिश्र का कानपुर'—लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी
२. 'ब्राह्मण' खण्ड ४ संख्या १० ('असम्भव है')
३. सं० नारायणप्रसाद अरोड़ा-'प्रतापलहरी' (१९४९ ई०)-पृष्ठ १४० 'काफी'-प्रतापनारायण मिश्र

धनि है वह धन धनि वे प्रान । जे इन हेत होंहि कुरबान ॥
यही तीन सुख सुगति निधान । हिंदी, हिन्दू, हिन्दूस्तान ॥"[१]

मिश्र जी हिन्दी की पुस्तके खरीदने के लिए भी जनता से आग्रह करते है जिससे लेखक-गण प्रोत्साहित होकर नयी-नयी और उत्तम कोटि की पुस्तको की रचनाये करे और नागरी का प्रचार शीघ्रता मे हो सके । मिश्र जी लिखते है—"हमारे धनी, निर्धनी, समर्थ, असमर्थ का मुख्य कर्तव्य यही है कि हिन्दी पढना-पढाना शपथ-पूर्वक अंगीकार कर लें । कोई न कोई हिन्दी का पत्र अवश्य देखा करे । हिंन्दी मे जितने ग्रन्थ बने उनकी एक-एक कापी अवश्य खरीद लिया करे और यथासम्भव सस्कृत, अग्रेजी क विद्वानो मे उत्तमोत्तम विद्याओ की पुस्तके हिन्दी मे अवश्य अनुवाद कराया करे । ऐसा होने से आज दिन विद्वानो, बुद्धिमानो, सम्पादको, सुलेखको और सत्कवियो के अनेकानेक रत्न सदृश विचार अनुत्साह के कारण मन के मन ही मे रह जाते है उनका हृदय प्रोत्साहित होगा और दो ही चार वर्ष मे देखिएगा कि हम क्या थे क्या हो गये और आगे के लिए हमे तथा हमारे आगे होने वालो के लिए क्या कुछ प्राप्त हो चला । हमारे यहा विद्याओ और विद्वानो का अभाव नही है पर उनका प्रचार तथा उनको प्रोत्साहन देने वाले केवल इतने ही है कि उगलियो पर गिन लिए जाय ।"[२] आगे लेखको से भी मिश्र जी अनुरोध करते है—"हमारे सुलेखक और सुवक्तागण सर्वसाधराण के जी मे हिन्दी का प्रेम उपजाना, नित नये ग्रन्थो को प्रकाशित करना और जहा तक हो सके उन्हे सस्ते दामो विकवाना वरच किसी व्यक्ति वा समूह की सहायता से गली-गली, घर-घर में सेत बटवाना, पढने योग्य स्त्री-पुरुषो को पढाना नही तो सुनाना, अपना परम धर्म समझें ।[३] मिश्र जी जब भारतीयो को, विद्याध्ययन के लिए इग्लैंड जाते देखते है तब उन्हे भारत की दशा पर बड़ा दुख होता है । वे लिखते है—

"हाय जौन भारत रह्यो, सब विद्या को गेह ।
दूर देशवासी जहां पढ़त रहे करि नेह ॥
हाय तहां अब कैसहू पढ़ै लिखै किन कोय ।
पै बिन इगलिश-पुर गये, श्रम की सिद्धि न होय ॥"[४]

हिन्दी के प्रति भारतीयो की अरुचि देखकर, मिश्र जी सूर्य से—तर्पण देते हुए, पूछते है—

---

१. 'ब्राह्मण' खण्ड ७ संख्या १२ ('अंतिम सम्भाषण')
२. '—वही—' ,, ७ ,, ३ ('हमारी आवश्यकता')
३. 'ब्राह्मण' खण्ड ७ सख्या ३ ('हमारी आवश्यकता')
३. '—वही—' ,, ५ ,, ५ ('महापर्व')-

"सदा सकल जग भ्रमत रहत हौ करत प्रकाश ठाम ही ठाम ।
साची कहौ कहूं देख्यो है देश हिंद सम अचरज धाम ।।
निज भाषा हू ते निरास जहं बसहिं लोग हतभाग तमाम ।
होहु भानु भगवान देखि यह अद्भुत कौतुक तृप्यन्ताम् ।।"[१]

इन उपर्युक्त पक्तियो में मिश्र जी की आन्तरिक वेदना स्पष्ट झलकती है। फरवरी, १८८४ ई० मे अलवराधिपति ने पढने की फुरसत न मिलने के कारण ब्राह्मण को वापस कर दिया, इस पर किया हुआ मिश्र जी का क्रन्दन भी इस प्रसंग मे दर्शनीय है—"हाय। यह अभागिन हिन्दी अब किसकी शरण गहे। क्योंकि जब हिन्दू राजा ही इसका तिरस्कार करते हैं तो यह किसकी शरण गहे ? क्या इसके आदर करने वाले कही विलायत से आवेंगे ? या जिनकी मातृभाषा ही नही वे आदर करेगे ? यह तो सम्भव ही नही है, तो यह भारतवासियो को छोड किसकी शरण गहे ? फिर जब राजा लोगो को इस अभागिन भाषा के समाचार पत्र पढने की फुरसत नही तो यह किसकी शरण गहे ?··· 'हा ! शोक ! सहस्रश. शोक ! कि अभागिन हिंदी अब किसकी शरण गहे ?"[२] मिश्र जी को नागरी से बड़ी ममता थी। नागरी से स्नेह रखने वालों की मिश्र जी बड़ी प्रशसा करते थे। कोल्हापुर निवासी रायसिंह देव वर्मा के हिन्दी-प्रेम से मिश्र जी बहुत प्रभावित थे। वे लिखते है—"हाय एक यह सज्जन है जो इतनी दूर बैठे नागरी की इतनी प्रतिष्ठा करते है और एक यहां वाले हिन्दू जाति के कलक है जो उर्दू और अग्रेजी अखबारों की गालिया भी खाते हैं तो भी उर्दू ही अंग्रेजी पर मरे धरे है। परम धन्य है ऐसे पुरुषरत्नों के पवित्र जीवन को जो नागरीदेवी के इतने बढे-चढे भक्त है।"[३]

मिश्र जी के समय मे उर्दू और अंग्रेजी का प्रचार बडी तेजी से हो रहा था। सरकार भी उर्दू और अंग्रेजी का पक्ष ले रही थी, इससे चारों ओर बडा असतोष फैला हुआ था। यह असंतोष 'हण्टर कमीशन' से और अधिक बढ गया। हण्टर कमीशन ने उर्दू को अनेक सुविधायें प्रदान की पर हिन्दी पर कोई विशेष ध्यान न दिया। मिश्र जी ने इससे 'हण्टर कमीशन' की बडी भर्त्सना की। जनता को समझाते तथा उत्तेजित करते हुए मिश्र जी लिखते हैं—

"उरदू काहू देश की भाषा होति न सिद्ध।
केवल आर्य अभाग ते ह्यां ह्वै रही प्रसिद्ध ।।

---

१. सं० नारायणप्रसाद अरोड़ा-'प्रतापलहरी' (१९४९ ई०) पृष्ठ ६१ 'तृप्यन्ताम्'-प्रतापनारायण मिश्र

२. 'ब्राह्मण' खण्ड १ सख्या १२ "श्री अलवराधिपति का 'ब्राह्मण' न लेने के 'विषय' उर्दू में खत"-प्रतापनारायण मिश्र

३. 'ब्राह्मण' खण्ड ४ संख्या ११ ('हमारे उत्साह-वर्द्धक')

उरदू सब औगुन भरी वरण शंकरी छूत ।
हमरे सिर ते नहिं टरी कमिशन की करतूत ।।
नाम कियो निज सारथक हटर सुमतिउदार ।
हिंदी हरिणी को कियो छल सों ताकि शिकार ।।"[1]

उर्दू के बढते हुए प्रचार से हिन्दी का भविष्य कालिमापूर्ण दिखाई पड़ रहा था । मिश्र जी कहते है—

"धर्म गयो धन बल गयो, गइ विद्या अरु मान ।
रही सही भाषा हती, सोऊ चाहति जान ।।

*   *

साचेहु अरबी अरब की, फारसि फारसि केर ।
अंग्रेजी इगल्यंड की यामे हेर न फेर ।।
आर्य देश की नागरी सब गुणागरी आय ।
यामे कुछ संदेह नहिं पै न सुनत कोउ हाय ।।"[2]

सरकार के प्रलोभन से बहुत से हिन्दू भी उर्दू का पक्ष ले रहे थे । ऐसे घातक हिन्दुओ मे मिश्र जी को बडी चिढ थी, इन्ही को मिश्र जी हिन्दी के विकास मे बाधक समझते थे । वे लिखते है—"लाला मसजिद पिरशाद सिड़ी वा सितम को समझाओ कि तुम्हारे बुजुर्गो की बोली उर्दू नही है । लाला लखमीदास माडवारी मे कहो कि तुम हिन्दू हो । लाला नीचीमल खन्ना से पूछो, तुम लोग सकल्प पढते समय अपने को वर्मा कहते हो कि शेख ? पंडित यूसुफनारायण काश्मीरी से दरयाफ्त करो कि तुम्हारे दशो सस्कार (मुंडनादिक) वेद की रिचाओ से हुए थे कि हाफिज के दीवान से ? इसके पीछे सरकार हिन्दी के दफ्तर न करदे तो ब्राह्मण के एडिटर को होली का गुडा बनाना । क्या सरकार जानती नही है कि हिन्दुस्तान की बोली हिन्दी ही है ? क्या सरकार से छिपा है कि यहा हिन्दुओं की अपेक्षा मुसलमान दशमाश से भी कम है ? क्या शिक्षा कमीशन वाले अंग्रेज जो दुनिया को चरे बैठे है वे न समझते थे कि हिन्दी से प्रजा का बडा उपकार होगा ? पर हां जहान्दीहजरत से बुरा कौन बने ? फूट के लतिहल, आलस्य के आदी, खुशामद के पुतले हिन्दू नाराज ही हो के क्या कर लेंगे ? बहुत होगा एक बार रोके बैठ रहेगे ।"[3] इसके साथ ही अकर्मण्य लोगो पर भी बडी छीटाकसी करते है—

---

१. 'ब्राह्मण' खण्ड १ संख्या ११ ('भारत रोदन')
२. 'ब्राह्मण' खण्ड १ सख्या ११ ('भारत रोदन')
३. —वही— ,, २ ,, १ ('घूरे के लत्ता बिनै कनातन का डौल बांधे')

"बहुतक हिन्दू ही परे ऐसे देश कलंक।
निज भाषा को जे नहीं जानहिं एकहु अंक ॥
बहुतक कछु जानहिं तहू करहिं न देश सनेह।
हमरे लेखे उनहु की भई अनभई देह ॥"[१]

भोले-भाले हिन्दुओं को उर्दू और अंग्रेजी के प्रभाव से बचाने के लिए मिश्र जी उर्दू और अंग्रेजी की कटु आलोचना करते थे। उर्दू के क्षेत्र को बताते हुए मिश्र जी कहते हैं—"उसकी वास्तविक पूंजी यदि विचार के देखिए तो आशिक अर्थात् किसी को चाहने वाला, माशूक अर्थात् कोई रूपवान व्यक्ति जिसे आशिक चाहता हो, बाग अर्थात् वाटिका, गुल अर्थात् फूल, बुलबुल अर्थात् एक अच्छी बोली बोलने वाला और फूलों में प्रसन्न रहनेवाला पक्षी, बागवान अर्थात् माली, सैयाद अर्थात् चिड़ीमार, चांदनी रात और मेघाच्छन्न दिन, खिलवत अर्थात् एकान्त स्थान, जिलवत या मजलिस कई एक सुन्दर व्यक्तियों का समाज, शराब अर्थात् मदिरा, कबाब अर्थात् मांस, साकी अर्थात् मद्य पिलाने वाला, मुतरिब अर्थात् गवैया, रकीब दुश्मन, गैर अर्थात् जिसे तुम चाहते हो उसका दूसरा चाहने वाला, नासिह अर्थात् मद्य और वैश्यादि के संसर्ग से रोकने वाला, जायज अर्थात् उपदेशक, पर निन्दा, खुशामद, उलहना आसमान अर्थात् भाग्यवश, इतनी ही बातें हैं जिन्हें उलट फेर के वर्णन किया करो आप बड़े अच्छे उरदूदां हो जायगे।"[२] इसी प्रकार अंग्रेजीबाजों पर भी मिश्र जी व्यंग्य करते हैं—"बाप ने किसी देवता का दास, प्रसादादि बना दिया है, सो भी जहां तक हो सकता है वहां तक विधुभूषण को B. B. और देवदत्त को D. D. इत्यादि बना के अपने ढंग का कर लेते हैं।"[३] ऐसे एक स्थान पर मिश्र जी हिन्दुओं की बुद्धि की भर्त्सना करते हुए लिखते हैं—"यह हिन्दू भाइयों की बुद्धि का फल है जो अपने धर्म-ग्रन्थों को तिलांजुली दे बैठे हैं, न सही स्वामी जी की पुस्तकें, संस्कृत, बंगला और कुछ नागरी में भी एक से एक सदुपदेश की पुस्तकें मौजूद हैं, क्या सभी काटे खाती हैं? पर पढ़े कौन? यहां तो लड़का पांच बरस का हुआ नहीं कि छब्बी साक्षरी गौरडगायत्री सीखने भेज दिया सो उससे होना क्या है, सब तो एल० एल० डी० (L.L.D.) हो ही नहीं जाते। इधर अपनी भाषा अपनी रीति-नीति, अपने धर्म-कर्म में बछिया के ताऊ, उधर अंग्रेजी में भी अधकचरे ठहरे, फिर बुद्धि बिचारी डाग (Dog) कुत्ता, कैट (Cat) बिल्ली के सिवा कहां से घुस आवे? जब विद्या और बुद्धि दोनों में नीमवहशी ठहरे तो सचमुच के मनुष्यों, देश-हितैषी विद्वानों से क्यों न भड़कें? यह

---

१. 'ब्राह्मण' खण्ड १ संख्या ११ ('भारत रोदन')
२. —वही— ,, ४ ,, २ ('उरदू बीबी की पूंजी')
३. —वही— ,, ८ ,, २-३ ('बज्रमूर्ख')

तो नेचर की बात है। अब अच्छे लोगो की सगति मे भी गये, फिर क्या है चाहे ज ,
कर उठावें।"[१]

मिश्र जी हर तरह से जनता को हिन्दी के लिए प्रोत्साहित करते है। वे लिखते है—"यदि सचमुच हिन्दी का प्रचार चाहते हो तो आपस के जितने कागज पत्तर, लेखा-जोखा, टीप तमस्सुक है, सब मे नागरी लिखी जाने का उद्योग करो। जिन हिन्दुओ के यहा मौलवी साहब बिसमिल्ला कराते है उनके यहा पडितो से अक्षरारम्भ कराया जाने का उपकार करो। तन, मन धन लगा के हिन्दू मात्र के चित्त पर सर्व गुणकारी देवी नागरी का पवित्र प्रेम स्थापन करने के लिए कटिबद्ध हो। चाहे कोई धमकावे, चाहे कोई कैसा ही डर दिखावे, जो हो सो हो, तुम मनसा वाचा कर्मणा उर्दू को लू लू देने मे सन्नद्ध हो।"[२] आगे मिश्र जी बडे जोरदार शब्दो मे भारतीयो को विश्वास दिखाते है—"यदि हमारे आर्य भाई अधीर न होंगे तो एक दिन अवश्य होगा कि भारतवर्ष भर मे नागरीदेवी अखण्ड राज्य करेंगी और उर्दूदेवी अपने सगो के घर मे बैठी कोदो दरैंगी।"[३]

मिश्र जी स्कूल स्थापित करने के लिए भी जनता को प्रेरित करते थे। उनका कहना था—"हर शहर के लोगो को चाहिए कि अपने-अपने यहा कम-से-कम एक पाठशाला ऐसी अवश्य स्थापति करें जिसमे अन्य शिक्षा के साथ धर्म तथा नीति भी सिखाई जाय।"[४] हिन्दी और सस्कृत पढना वह सभी के लिए आवश्यक मानते हैं—"जब तक अपनी भाषा मे पूर्ण रूप मे पठन-पढान नही होता तब तक शिक्षा सदा अधूरी ही रहती है और पूर्ण फलदायिनी नही होती। इससे हमे हिन्दी और सस्कृत अवश्यमेव पढनी चाहिए।"[५] वे सभी शिक्षा-सस्थाओ मे हिन्दी को अनिवार्य बनाना चाहते थे। इलाहाबाद यूनीवर्सिटी मे हिन्दी को स्थान न मिलने पर वे जनता से कहते है—"यदि अपने सतान का कुछ मोह हो अपनी जाति का कुछ भी चिन्ह बनाये रखना चाहते हो तो शीघ्र इलाहाबाद यूनवर्सिटी की कुमन्त्रणा के रोकने का उपाय करो नही तो याद रक्खो कि जहा वर्तमान काल के वृद्ध और युवक मरे वही हिंदी स्थान मे हिन्दूपन की गधि भी न रह जायगी। कई पत्रो से विदित हुआ है कि वहा की यूनिवर्सिटी ने हिन्दी को सातवी क्लास तक मे नही रक्खा। इस घोर अत्याचार की इसके अतिरिक्त और क्या मनसा हो सकती है कि सस्कृत कठिन है, उसे अपने बच्चो

---

१. 'ब्राह्मण' खण्ड १ संख्या ६ ('ज्ञानचन्द्र और प्रेमचन्द्र')
२. '—वही—' ,, २ ,, १ ('घूरे के लत्ता बिनै कनातन का डौल बाधें')
३. '—वही—' ,, २ ,, २ ('हिम्मत राखो एक दिन नागरी का प्रचार हो ही गा')
४ 'ब्राह्मण' खण्ड ४ संख्या १२ ('दबी हुई आग')
५. 'ब्राह्मण' खण्ड ७ संख्या ३ ('हमारी आवश्यकता')

को पढावेगा कौन, अरबी हिन्दुओ के किस काम की ? झख मारेंगे, फारसी पढावेगे ।"[1] मिश्र जी के समय में अव्यावहारिक और आचरण भ्रष्ट शिक्षकों की भी कमी नही थी। शिक्षक विद्यार्थियो से अपने पारिवारिक कार्य कराते थे और एक-एक रुपया लेकर उन्हे उत्तीर्ण करते थे। शिक्षको को इन कार्यों की मिश्र जी बड़ी आलोचना करते थे। मोलबी शिक्षको के विषय मे मिश्र जी लिखते है—"बहुतेरे मोलवियो के यहा हमने द्विज जाति के बालको को चिलम भरते और पाव दबाते, पखा खीचते और झाड देते देख के-खेद पूर्वक यही विचार किया है कि लड़के तो अजान है, और शिक्षक भी विधर्मी होने से इतना दोषास्पद नही है, पर माता-पिता निश्चय तुच्छ एवं स्वार्थान्ध है। उनके न इज्जत है न गैरत।"[2] इसके विपरीत योग्य और सहृदय शिक्षको के प्रति मिश्र जी को सहानुभूति भी थी। मिडिल-स्कूल के शिक्षको का कम वेतन होने पर मिश्र जी बडा शोक प्रकट करते है—"हाय परमेश्वर ! हिन्दी के दिन कब फिरेगे, इसके सुविज्ञ आर्यगण की कदर कब की जायगी, मुदर्रिस महोदयो को जब हम देखते है तो शोक होता है कि एक से एक ज्ञाता, एक से एक परिश्रमी होने पर भी १०), १५) से अधिक वेतन नही पाते, हिन्दी दफ्तर होते तो यह सुयोग्य पुरुष क्या उन उरदू के चेलो से भी गये बीते है जिन्हे सीन और स्वाद का भी बोध नही है पर कचहरियो मे गुलछर्रे उडाते है और यह विचारे विद्या के पठन पाठन मे 'नीद नारि भोजन परिहरही' का अनुष्ठान करते है तिसपर भी नही पूछे जाते।"[3]

मिश्र जी के समय मे, हिन्दी में, शिक्षा-सस्थाओ के उपयुक्त पुस्तके ही है, इसे शिक्षा-सस्थाओ मे कैसे स्थान दिया जा सकता है ? मिश्र जी ने हिन्दी की इस कमी को भी पूरा करने का भरसक प्रयत्न किया और शिक्षा-सस्थाओ के उपयुक्त अनेक पुस्तके लिखी। जिनमे बहुत सी बिहार के शिक्षा विभाग के पाठ्यक्रम मे स्वीकृत भी की गई।[4] मिश्र जी की ये पुस्तके अधिकाश बंगला से अनूदित थी। इसके अतिरिक्त मिश्र जी ने हिन्दी-गद्य की अनेक विधाओ को अपनी लेखनी से परिष्कृत किया। निबन्ध, समालोचना, नाटक, उपन्यास, कहानी, सभी कुछ इन्होने लिखा और प्राय. सभी में अच्छी सफलता प्राप्त की। साथ ही इनसे आगामी साहित्यकारो का मार्ग भी प्रशस्त हुआ।

मिश्र जी हिन्दी के सच्चे हिमायती थे। वे अपने 'सरबस जाइ दीजिए जान

---

१. 'ब्राह्मण' खण्ड ६ संख्या १० ('अब बातों का काम नहीं')
२. 'ब्राह्मण' खण्ड ५ संख्या ७ ('बालशिक्षा')
३. 'ब्राह्मण' खण्ड २ संख्या १ 'मिडिल स्कूल का परीक्षाफल' पृष्ठ १०
४. 'सरस्वती' मार्च १९०६ ई० 'पं० प्रतापनारायण मिश्र'—आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी

के उद्देश्य को लेकर सदैव हिन्दी का प्रचार करते रहे। हिन्दी की भर्त्सना उन्हें असह्य थी। बाबू श्यामसुन्दर दास लिखते है—"ये हिन्दी भाषा तथा देवनागरी लिपि के बडे पक्षपाती थे। यदि इसके विरुद्ध कोई जरा भी चू करता तो आप उसके विपक्ष मे ब्राह्मण के कालम के कालम लिख मारते थे।"[1] एक बार 'फतेहगढ-पच' ने इनकी हिमायत के खिलाफ कुछ लिखा और हिन्दी मे दोष निकाले। इस पर मिश्र जी जामे से बाहर हो गये और इन्होने 'पच' की दलीलो का बडी योग्यता से खण्डन किया। यह विवाद कई महीने तक चलता रहा और मिश्र जी बराबर 'पच' की निरर्थक बातो की असारता सिद्ध करते रहे।[2]

मिश्र जी गद्य के क्षेत्र मे तो खडी बोली के पक्के समर्थक थे पर पद्य मे उनकी आस्था ब्रजभाषा की ओर विशेष थी। मिश्र जी की इस आस्था पर बहुत-कुछ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का प्रभाव था। क्योकि मिश्र जी अधिकतर भारतेन्दु के साहित्यादर्शो को अपना आधार मानते थे। भारतेन्दु जी ब्रजभाषा-पद्य के पक्षपाती थे इसी से मिश्र जी ने भी पद्य के क्षेत्र मे ब्रजभाषा का पक्ष लिया। जब खडी बोली पद्य का आन्दोलन प्रारम्भ हुआ तब उन्होने डटकर ब्रजभाषा का समर्थन किया। मार्च १८८८ ई० मे मिश्र जी लिखते है—"ब्रजभाषा भी नागरी देवी की सगी बहिन है, उसका निज स्वत्व दूसरी बहिन को सौपना सहृदयता के गले पर छूरी फेरना है। हमारा गौरव जितना इससे है कि गद्य की भाषा और रक्खे, पद्य की और, उतना एक को त्याग देने मे कदापि नही, कोई किसी की इच्छा को रोक नहीं सकता। इस न्याय से जो कविता नही जानते वे अपनी बोली चाहे खडी रखें चाहे कुदावे, पर कवि लोग अपनी प्यार की हुई बोली पर हुकुम चला के उसकी स्वतन्त्र मनोहरता को नाश नही करने के। जो कविता के समझने की शक्ति नही रखते वे सीखने का उद्योग करें। कवियो को क्या पड़ी है कि किसी के समझाने को अपनी बोली बिगाडें।[3] खडीबोली और ब्रजभाषा का यह विवाद बहुत दिनो तक मिश्र जी और श्रीधर पाठक के बीच चलता रहा। पर आगे चलकर खडीबोली पद्य के बढते हुए प्रचार को देखकर मिश्र जी की कट्टरता कुछ कम हुई और इन्होने भी खडीबोली-पद्य मे सहयोग देना प्रारम्भ किया। फिर भी मिश्र जी खुलकर खडीबोली-पद्य के मैदान मे नही आये। हा रचनायें उन्होने खडीबोली मे पर्याप्त की पर ब्रजभाषा-पद्य की ओर उनकी रुचि अन्त तक बनी रही। श्रीधर पाठक को उत्तर देते हुए लिखते हैं—"अच्छी बात

---

१. डा० श्यामसुन्दर दास—'हिन्दी कोविद रत्नमाला' पहिला भाग (१९०९ ई०)

३. 'सरस्वती' मार्च १९०६ ई० 'पं० प्रतापनारायण मिश्र'—आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी

३. 'ब्राह्मण' खण्ड ४ संख्या ८ ('खड़ीबोली का पद्य')

है। आप कविता कर चलिए। मै भी उस पर रोडा-ककड़ फेंकता चलूँगा। लेकिन याद रखिए, यह सड़क ऐसी सुन्दर नही बनेगी कि कवि की निरंकुश उक्ति बे रोक दौड सके।"[1] मिश्र जी मे विलक्षण प्रतिभा-शक्ति थी, इन्होने ब्रजभाषा और खडी-बोली मे तो कविताएँ लिखी ही, साथ ही उर्दू, फारसी, सस्कृत मे भी सफलता के साथ अपनी लेखनी चलायी। इसके अतिरिक्त अपने विचारो को जन-जन तक पहुचाने के लिए इन्होंने जन भाषाओ मे भी कविताएँ की और उनमे अनेक जन-छदो का सफल प्रयोग किया। अवधी, बुन्देली, आदि मे ये अधिकार के साथ सुन्दर गीत लिखते थे। जन-छन्दो मे इन्हे आल्हा, लावनी होली, ठुमरी आदि विशेष प्रिय थे। पुरानी परम्परा मे इन्होने कवित्त, सवैये, दोहे, पद आदि भी बहुतायत से लिखे। भाषा, छन्दो के साथ-साथ इनके विचारो मे भी अनेकरूपता के दर्शन होते है। कबीर, सूर, तुलसी आदि भक्त कवियो की सी उत्कृष्ट भक्ति-भावना भी इनमे मिलती है और रीतिकालीन बिहारी, घनानन्द आदि शृंगारिक कवियो के हाव-भाव की भी इनके साहित्य मे कमी नही है। इसके अलावा भारतेन्दु काल की राष्ट्रीय-चेतना के ये प्रचारक ही थे। अतः हम कह सकते है कि भक्ति, शृंगार और देश-प्रेम ही इनके साहित्य की सीमायें थी और इन्ही के सृजन मे ये आजीवन लगे रहे।

---

१. 'सरस्वती' जून १९३८ ई० 'स्व० पं० प्रतापनारायण मिश्र'-गोपालराम गमहरी

तीसरा अध्याय

कृतियों का विवरण

मिश्र जी अपने समय के प्रमुख साहित्यकार थे। इन्होने साहित्य की सभी विधाओ को अपने कृतित्व से समृद्धिशाली बनाया और उन्हे आगे बढने के लिए प्रोत्साहित किया। अल्पायु होते हुए भी मिश्र जी ने प्रचुर मात्रा में साहित्य-सृजन किया। ब्रज, खडी बोली, अवधी, उर्दू, सस्कृत आदि भाषाओ मे सुन्दर लेख तथा कवितायें लिखी। इनका साहित्य के सभी क्षेत्रो पर पूरा अधिकार था। ये हर तरह से मा भारती को युगानुरूप बनाना चाहते थे। हिन्दी की अकिंचनता इन्हे असह्य थी। इसकी समृद्धि के लिए इन्होने मौलिक-साहित्य तो दिया ही, साथ ही अनेक बगला पुस्तको का हिन्दी मे अनुवाद भी किया। इनकी मौलिक तथा अनूदित पुस्तको की सख्या लगभग पचहत्तर के होगी पर इनका सम्पूर्ण साहित्य आज हमे प्राप्य नही। इसका प्रमुख कारण यह है कि मिश्र जी निर्धनता के कारण अपने सम्पूर्ण साहित्य को स्वत' नही प्रकाशित करा सके, यहा तक कि इनकी कुछ पुस्तके अप्रकाशित ही नष्ट हो गयी।[1] दूसरे उस समय के लोगो को हिन्दी से रुचि भी नही थी, इसलिए जो साहित्य प्रकाहित भी हुआ उसका समुचित प्रचलन नही हो सका। वैसे बाबू रामदीन सिह ने मिश्र जी को पुस्तको के प्रकाशन मे बडी सहायता की। मिश्र जी की अधिकाश पुस्तके बाबू रामदीन सिंह के ही प्रबन्ध मे खडग विलास प्रैस, बाकीपुर (पटना) से मुद्रित तथा प्रकाशित हुई पर जनता ने उनका उचित स्वागत न किया। पुस्तको की बिक्री न होने के कारण उस समय लेखको तथा प्रकाशको को पुस्तको द्वारा हानि ही उठानी पडती थी। एक सस्करण मे दो सौ, तीन सौ पुस्तके निकालने पर भी—माग न होने के कारण वे रक्खी ही रह जाती थी। द्वितीय संस्करण तो शायद ही किसी पुस्तक का हो पाता हो। बहुत सी पुस्तके तो अप्रकाशित ही रह जाती थी।

मिश्र जी के जीवन काल मे जो पुस्तके प्रकाशित हुई उनका भी कोई संग्रह न रक्खा जा सका और मिश्र जी की मृत्यु के बाद तो मिश्र-साहित्य के प्रचार तथा संरक्षण की ओर किसी ने ध्यान ही नही दिया। हा, खगविलास प्रेस से जब-कब एक दो पुस्तके प्रकाशित हुई पर उनका प्रचार न हो सका। इसके अतिरिक्त मिश्र जी के

---

१. बालमुकुन्द गुप्त-निबन्धावली प्रथम भाग (२००७ वि०) पृष्ठ ३

परिवार मे भी कोई ऐसा व्यक्ति न रहा जो उनके साहित्य को सुरक्षित रख सकता या उसे प्रकाशित करा सकता। मिश्र जी की मृत्यु के बाद जो साहित्य उनके निवास स्थान (कानपुर) पर था उसे खडग विलास प्रेस वाले—कुछ रुपया देकर उनकी पत्नी से ले गये पर वे भी उसे प्रकाशित न करा सके[1] और वह साहित्य वही विनष्ट हो गया। इस साहित्य मे मिश्र जी की कुछ अप्रकाशित पुस्तकें भी थीं जो मिश्र जी ने अपने जीवन की अन्तिम अवस्था मे लिखी थी। मिश्र जी का कुछ प्रकाशित साहित्य बैजेगाव मे भी उनके परिवार वालो के पास था जिसे 'प्रताप' पत्र के जन्मदाता स्व० गणेशशकर विद्यार्थी ले आये थे पर आज वह भी अप्राप्य है। बांकीपुर का खडग विलास प्रेस भी अब नही रहा और अब वहा मिश्र जी का कोई भी प्रकाशित तथा अप्रकाशित साहित्य उपलब्ध नही।

मिश्र जी अपनी रचनाये तत्कालीन पत्रो मे भी भेजा करते थे। इनकी कई कविताये 'कवि-वचन-सुधा' मे प्रकाशित हुई थी।[2] कुछ उर्दू लेख 'भारत-प्रताप' मे छपे थे।[3] 'हिन्दोस्थान' मे भी इनके बहुत से लेख तथा कविताये निकली थी।[4] इसके अतिरिक्त 'ब्राह्मण' पत्र के तो मिश्र जी सम्पादक ही थे, इसमे इनकी अधिकाश रचनाये प्रकाशित हुई थी। बहुत सी पुस्तके भी ब्राह्मण मे धारावाहिक निकली थी जिनमे आगे कुछ पुस्तकाकार भी प्रकाशित हुई और कुछ ब्राह्मण तक ही सीमित रह गयीं। इन उपर्युक्त पत्रो की सम्पूर्ण फाइले तो अब कही मिलती नही केवल कुछ आशिक अक इधर-उधर प्राप्त होते है जो अपने जीवन की अन्तिम सासें गिन रहे है।

साहित्यकारो की ओर से भी मिश्र जी प्राय. उपेक्षित ही रहे। किसी भी साहित्यकार ने मिश्र-साहित्य को खोजने तथा एकत्र करने का प्रयत्न नही किया। सर्वप्रथम महावीरप्रसाद द्विवेदी ने मिश्र जी पर १९०६ ई० मे एक लेख लिखा और उसमे मिश्र जी की कृतियो का उल्लेख किया पर मिश्र जी की सम्पूर्ण कृतियो को इसमें स्थान नही मिल सका।[5] वैसे यदि द्विवेदी जी चाहते तो मिश्र जी की कृतियों को एकत्रित कर सकते थे क्योकि मिश्र जी की मृत्यु के तब केवल बारह वर्ष ही हुए थे और बहुत-कुछ साहित्य भी बाकीपुर मे उपलब्ध था। इसके बाद १९१९ ई० मे अभ्युदय प्रेस, प्रयाग से 'निबन्ध-नवनीत' पहिला भाग का प्रकाशन हुआ। इसमे

---

१. नारायणप्रसाद अरोड़ा-'मेरे गुरुजन' (१४९५ ई०) पृष्ठ २७
२. किशोरीलाल गुप्त-'भारतेन्दु और अन्य सहयोगी कवि' (१९५६ ई०) पृ०-३८७
३. 'बालमुकुन्द गुप्त निबन्धावली' प्रथम भाग (२००७ वि०)-पृष्ठ १४
४. 'सरस्वती' जून १९३८ ई० 'स्व पं० प्रतापनारायण मिश्र'-गोपालराम गहमरी
५. 'सरस्वती' मार्च १९०६ ई० 'प० प्रतापनारायण मिश्र'-आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी

'ब्राह्मण' पत्र की सहायता से मिश्र जी के केवल ४१ निबन्धो का सकलन किया गया था । इसी से मिश्र जी को निबन्ध-साहित्य मे स्थान मिला । १९३३ ई० मे रमाकात त्रिपाठी ने 'प्रताप-पीयूष' का सम्पादन किया । इसमे मिश्र जी के कुछ निबन्धो और कविताओ का सग्रह किया गया । तदुपरान्त १९३९ ई० मे प्रेमनारायण टडन द्वारा 'प्रताप-समीक्षा' का और १९४७ ई० मे नारायणप्रसाद अरोडा तथा लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी द्वारा 'प्रतापनारायण मिश्र' का सपादन हुआ । इन दोनो पुस्तकों मे मिश्र जी के थोडे-थोडे निबन्ध सकलित है । इन कृतियो मे मिश्र जी की रचनाओ पर कोई विशेष प्रकाश नही डाला गया । बहुत कुछ द्विवेदी जी के ही लेख का पिस्टपेषण हुआ है । आगे चलकर सन् १९४९ मे नारायणप्रसाद अरोडा ने मिश्र जी की कविताओं का सग्रह 'प्रताप लहरी' नाम से प्रकाशित कराया । अरोडा जी का यह कार्य वस्तुत सराहनीय है इसे ही हम मिश्र-साहित्य के उद्धार का प्रथम प्रयास कह सकते है । वैसे इस सकलन मे अनेक अशुद्धिया है और कविताओ को भी प्रकाशन क्रम के अनुसार नही रखा गया है तथा 'ब्राह्मण' मे प्रकाशित लगभग ३८ कविताए (परिशिष्ट देखिए) भी इस सग्रह मे प्रकाशित होने से रह गयी है । फिर भी इस कृति ने मिश्र जी को समुचित सम्मान दिया । इसके बाद 'नागरी प्रचारिणी सभा' ने मिश्र-साहित्य के प्रकाशन का भार अपने ऊपर लिया और सम्पूर्ण मिश्र-साहित्य को दो भागो मे प्रकाशित करने का आयोजन किया । सम्वत् २०१४ वि० में मिश्र-साहित्य का प्रथम भाग 'प्रतापनारायण-ग्रथावली' के नाम से विजयशकर मल्ल के सम्पादकत्व मे प्रकाशित हुआ । इस भाग मे 'ब्राह्मण' मे प्रकाशित मिश्र जी के लेखो और निबन्धो का संग्रह किया गया है । वैसे कार्य प्रशसनीय है पर अभी 'ब्राह्मण' मे लगभग एक सौ पन्द्रह (परिशिष्ट देखिए) ऐसे लेख और निबन्ध है जिन्हें उक्त ग्रंथावली मे स्थान नही मिला । सभा की द्वितीय ग्रथावली में नाटक और कविताओ के निकालने का आयोजन है लेकिन इससे पहले ग्रथावली सम्पादक को पुन. एक बार ब्राह्मण का अवलोकन करना और उसमे छूटे हुए लेखों, निबन्धों और समालोचनात्मक टिप्पणियो को एकत्रित कर उन्हे ग्रन्थावली के द्वितीय भाग में स्थान देना वाछनीय है । इसके अतिरिक्त सभा की ओर से केवल मिश्र जी के मौलिक-साहित्य का ही प्रकाशन हो रहा है अभी उनके अनूदित-साहित्य का प्रकाशन अपेक्षित है । यहा यह कहना न होगा कि नागरी प्रचारिणी सभा ने यदि मिश्र-साहित्य के प्रकाशन का कार्य अपने जीवन की प्रारम्भिक अवस्था में किया होता तो आज जो मिश्र-साहित्य अनुपलब्ध है वह सुलभ हो गया होता ।

साहित्यकारो ने तो मिश्र जी की यहां तक उपेक्षा की है कि जब उन्हे भारतेन्दु-युग पर कुछ लिखना पडा है तो बिना मिश्र-साहित्य को देखे बरवस समीक्षा की है । कई साहित्यकारों को तो यह भी ज्ञात नही है कि मिश्र जी की अमुक कृति गद्य

की है, या पद्य की। फिर भी वे उसकी समीक्षा करते है। इसके अतिरिक्त ब्राह्मण के दर्शन तो बहुत कम साहित्यकारो को हुए होंगे। अब इसी से समझा जा सकता है कि कहा तक मिश्र जी के प्रति न्याय हुआ होगा।

इस शोध-प्रबन्ध के लिए हमे भी मिश्र जी की कृतियो को खोजने की आवश्यकता हुई और इस कार्य में अनेक कठिनाइया उठानी पड़ी। मिश्र जी के सामयिक पत्रो के जो फुटकर अक इधर-उधर प्राप्त हुए उनमे मिश्र जी की कोई भी रचना के नही मिल सकी। केवल 'रसिक-वाटिका' (पहिली क्यारी सन् १८९१ ई०) में हमे मिश्र जी की पाच समस्या पूर्तिया मिली।[1] इसके अतिरिक्त श्री विजयशकर मल्ल के पास मिश्र जी की भक्ति रसपूर्ण पन्द्रह कवितायें मिली जो 'कवि बचन सुधा' के चौदहवे वर्ष में प्रकाशित हुई थी। विजयशकर जी के पास हमे मिश्र जी के नाटक भी देखने को मिले। मिश्र जीकी अधिकाश कृतिया हमे नागरी प्रचारिणी सभा काशी, भारती भवन पुस्तकालय, इलाहाबाद, साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, नवजीवन पुस्तकालय, कानपुर, मारवाड़ी पुस्तकालय, कानपुर और सरस्वती पुस्तकालय, मौरावा (उन्नाव) मे प्राप्त हुईं। सबसे बड़ा स्रोत जो मुझे मिश्र जी की कृतियो का प्राप्त हुआ वह 'ब्राह्मण' पत्र है। ब्राह्मण के कुछ अक नागरी प्रचारिणी सभा, काशी और भारती भवन पुस्तकालय, इलाहाबाद मे मिले तथा अधिकाश अक स्व० नारायणप्रसाद अरोडा के निवास स्थान, पटकापुर (कानपुर) मे प्राप्त हुए। इन तीनों स्थानो के अकों को मिला कर 'ब्राह्मण' पत्र के नौ वर्षों की पूरी फाइल तैयार हो जाती है। यही मिश्र जी के साहित्य की अपूर्व-निधि है। लेकिन उक्त स्थानो मे अब 'ब्राह्मण' के अक इतने जीर्ण-काय हो गये है कि कुछ ही वर्षों मे उनकी अन्त्येष्टि क्रिया होने वाली है इसके साथ ही दीमकवहादुर भी ब्राह्मण के शरीर भक्षण मे पूरी तरह कटिबद्ध है। केवल नागरी प्रचारिणी सभा के दस अंक झिल्ली कागजों से मढा दिये गये है इसलिऐ वे सुरक्षित हैं। यदि शेष दोनो स्थानों के भी 'ब्रह्मण' अंक इसी प्रकार सुरक्षित कर लिये जांय तो साहित्य-जगत् का बड़ा ही उपकार हो। पटकापुर वाले तो ब्राह्मण की फाइल बेचना भी चाहते है यदि कोई सस्था उसे खरीदकर सुरक्षित कर लेती तो बड़ा अच्छा होता।

मुझे अपने शोध मे जो मिश्र जी की कृतिया प्राप्त हो सकी है या जिनके विवरण तथा उल्लेख मुझे मिले हैं उन्ही का परिचय इस अध्याय मे दिया जायगा। मिश्र जी की मौलिक और अनूदित कृतियों की सूची इस प्रकार है।

मौलिक-साहित्य

कविता

१—प्रेमी-पुष्पावली

---

१. प्राप्ति स्थान-भारती भवन पुस्तकालय, इलाहाबाद

२—मन की लहर
३—लाकोक्ति-शतक
४—कानपुर माहात्म्य
५—दगल-खण्ड
६—शोकाश्रु
७—युवराजकुमार स्वागतन्ते
८—ब्रैडला स्वागत
९—तृप्यन्ताम्
१०—तारापात पचीसी
११—श्री प्रेम पुराण
१२—फाल्गुन माहात्म्य
१३—होली है
१४—शृंगार विलास
१५—प्रार्थना शतक
१६—दीवाने बरहमन
१७—स्फुट कवितायें

नाटक

१—कलि कौतुक रूपक
२—कलि प्रवेश नीति रूपक
३—हठी हम्मीर नाटक
४—भारत-दुर्दशा रूपक
५—सगीत शाकुन्तल (छायानुवाद)

विविध

१—शैव सर्वस्व
२—सुचाल-शिक्षा (प्रथम भाग)
३—स्वास्थ्य-विद्या
४—शिशु-शिक्षा
५—लेख, निबन्ध एव समालोचना

अपूर्ण ग्रन्थ

१—नूतन भक्तमाल
२—दूध का दूध पानी का पानी (भाण)
३—जुआरी-खुआरी (प्रहसन)
४—प्रताप चरित्र

५—पौराणिक गूढार्थ

६—रामायण रमण

संदिग्ध

१—गो संकट नाटक

२—भारतेन्दु धारामृत

३—सौन्दर्यमयी

४—प्रतापसग्रह

अनूदित-साहित्य

कहानी

१—कथा माला

२—चरिताष्टक (प्रथम भाग)

३—कथा बाल सगीत

उपन्यास

१—राजसिंह

२—युगलागुरीय

३—इन्दिरा

४—राधारानी

५—कपालकुण्डला

६—अमरसिंह

७—देवी चौधरानी

इतिहास

१—सूबे बगाल का इतिहास

२—सेनराजवश

३—त्रिपुरा का इतिहास

भूगोल

१—सूबे बगाल का भूगोल

विविध

१—पचामृत

२—नीतिरत्नावली

३—बोधोदय

४—वर्ण परिचय

५—शिशु विज्ञान

६—आर्य कीर्ति भाग १

७—आर्य कीर्ति भाग २

संग्रह ग्रन्थ

१—रहिमान शतक
२—रसखान शतक
३—मानस विनोद

मौलिक-साहित्य : कविता

प्रेम पुष्पावली

यह मिश्र जी की प्रथम कृति है। इसके विषय मे मिश्र जी समर्पण मे लिखते हैं—"हे विश्ववाटिका के स्वामी। हमे यह निश्चय है कि यह तुच्छ पुष्पावली तुम्हारे रीझने का कारण किसी भाँति नही हो सकती पर इसे तुम्हारे पास देख के हम निस्सन्देह बडे प्रसन्न होगे। अतएव जैसे हमे अंगीकार किया है तैसे हमारी प्रसन्नतार्थ हमारी पहली भेट भी अगीकार करनी पडेगी।"[1] यह कृति १८८३ ई० मे शुभ चिन्तक यन्त्रालय, शाहजहाँपुर मे छपी थी। यद्यपि इसमे प्रकाशन सन् नही दिया है, पर इस पुस्तक के अन्त मे राधाकृष्ण दास का प्रशसा-पत्र छपा है जिसमे १५ नवम्बर १८८३ ई० पडा है। अतएव यही इस कृति का प्रकाशन सन् माना जा सकता है। यह पृष्ठ की एक छोटी सी पुस्तक है। इसका मूल्य दो आना है। इसमे ५० गीत है और ये गीत प्रेमदेव की भक्ति तथा देशप्रेम से सम्बन्धित है। कुछ पद तुलसी की 'विनय-पत्रिका' की कोटि के हैं जिनमे दैन्य कूट-कूट कर भरा है। इसके गीतो का विभाजन इस प्रकार है—प्रारम्भ मे ६ प्रार्थनायें जिनमें ४ स्तुतियाँ सस्कृत मे है, २ बसन्त गीत, २५ पूर्वी गीत, ६ नागरी गीत, १ गीत योरपीय रागिनी मे, २ फारसी गजलें, १ कितअ १ कितआ, १ मुसल्लस और ५ लावनिया हैं। सभी गीतो मे प्रेम की अनन्यता दिखाई पडती है। 'प्रेम पुष्पावली' के मुख पृष्ठ पर भी लिखा है—"प्रेम पुष्पावली अर्थात् प्रेम सिद्धान्ताकूल स्तुति, प्रार्थनोपासनादि, गीत, गजल, लावनियाँ।" इससे इसका विषय प्रारम्भ मे ही ज्ञात हो जाता है। इसकी भाषा बडी परिमार्जित है और छन्द विधान भी उत्कृष्ट है। प्रथम रचना होते हुए भी यह प्रौढ रचना के गुणो से समन्वित है। इसमे मिश्र जी की प्रेम, भक्ति और सहृदयता साकार हो गयी है। मिश्र जी स्वत: इस कृति का 'ब्राह्मण' मे विज्ञापन देते हुए लिखते हैं—'देश भर मे कदाचित ऐसे कवि दस ही पन्द्रह निकलेगे जिनकी लेखनी से परमेश्वर का सच्चा प्रेम, स्वधर्म पर दृढ विश्वास एव स्वदेश की सच्ची भक्ति इत्यादि वास्तव मे लाभ जनक विषय लिखे जाते हो। यथा सामर्थ इस अभाव को दूर करने को एक छोटी सी 'प्रेम पुष्पावली' नामक पुस्तिका मैंने भी लिखी है। इसमे ईश्वरीय प्रेम और मातृभूमि सम्बन्धी प्रेम तथा मेरा आन्तरिक विश्वास सस्कृत, नागरी, ब्रजभाषा,

---

१. प्रतापनारायण मिश्र—'प्रेम पुष्पावली' (१८८३ ई०) 'समर्पण' से

फारसी और उर्दू की गीत, गजल और लावनियों मे वर्णित है जिन्हे मे समझता हूँ कि इन भाषाओ को थोड़ा-थोडा जानने वाले भी बालक, वृद्ध, स्त्री सभी समझ लेंगे और शान्त भाव से गा भी सकेगे।"[1] इस कृति के विषय में भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र लिखते है—"हमने पंडित प्रतापनारायण मिश्र जी की बनाई हुई 'प्रेम पुष्पावली' देखी। इसके विषय मे मैं कुछ विशेष लिखना नही चाहता केवल इतना ही लिख देता हूँ कि इसमे वह सुगन्ध है जो मेरे ऐसे चित्त वालो को लुभाती है अन्य को चाहे रुचे वा न रुचे। इस भूमिका के अधिकारियो का यह एक अमूल्य रत्न होगी।"[2] इसके अतिरिक्त राधाकृष्ण दास ने भी इस कृति की बडी प्रशसा की है।[3] निश्चित ही यह कृति अद्वितीय है।

मन की लहर

यह कृति १८८५ ई० मे भारत जीवन प्रेस, बनारस के प्रकाशित हुई थी। इसमे कुल ३७ पृष्ठ है और इसका मूल्य, डाक व्यय सहित ≈)॥ है। इस पुस्तिका मे ईश्वर-भक्ति और देश-प्रेम के भावो से युक्त २५ लावनिया है, जो उर्दू, फारसी, ब्रज, खड़ीबोली और सस्कृत भाषाओ में लिखी गई है। इस कृति मे मिश्र जी ने जगत् की असारता दिखाते हुए प्रेम की व्यापकता का प्रतिपादन किया है और मानवमात्र को एक प्रेम मे बधने का उपदेश दिया है। साथ ही तत्कालीन देश-दशा का भी चित्रण कुछ लावनियो मे किया गया है और प्रेमदेव से भारत के उद्धार की प्रार्थना की गयी है। इसमे मिश्र जी ने अपने हृदय के अनेक भावों को अनेक रूपो मे व्यक्त किया है। उनके हृदय की विह्वलता और दैन्यता से यह कृति परिपूर्ण है। इसके समर्पण को ही देखकर मिश्र जी की तन्मयता और उत्कट भावुकता का पता लग जाता है—'प्रियतम ! यह लेव। 'मन की लहर' तुम्हारे चरण कमल से सलग्न होकर कृतार्थ होती है। बहने न देना नही तो तुम्हारी अद्भुत लीला से कच्चे लोग भ्रम की भंवर मे पड जायगे। यस सदेह न करना कि मन मानस के तो हम आप ही स्वामी है यह लहर कैसी ? हा यह लहर ऐसी कि गगा जी को गगा जल ही से तो अर्ध दिया जाता है न ! बस ! 'त्वदीयवस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पित' हहा। 'इस पागलपन से लाभ' की खूब कही हा लहर को लाभ यह कि 'जल की शोभा कमल' हमको यह लाभ कि इसका कारण अनेकानेक भाव भरित सुन्दर मुख का कुछ देर दरशन। तुम्हारी तुम जानो हमे पागल तो बना ही चुके हो। नही तो तुमको हानि लाभ से

---

१ 'ब्राह्मण' खण्ड २ संख्या ४ ('प्रेम पुष्पावली का विज्ञापन')

२. प्रतापनारायण मिश्र—'प्रेम पुष्पावली' (१८८३ ई०) 'प्रशंसा-पत्र'—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

३. प्रतापनारायण मिश्र - 'प्रेम पुष्पावली' (१८८३ ई०) 'सम्मति'-राधा कृष्ण दास

क्या ? अपने लोगो की नानातरंगे देखना ही मात्र प्रयोजन है सो देखो।'[1] अत. इस कृति मे मिश्र जी के मन की विभिन्न लहरें ही एकत्रित है जिनमे इस कृति का नाम स्वत सार्थक हो जाता है। इसकी भाषा स्वाभाविक और निखरी हुई है। फारसी और सस्कृत भाषा की लावनियो को तो देखकर उनकी प्रतिभा पर आश्चर्य होने लगता है। इसकी माग भी उस समय जनता मे काफी थी क्योकि इसकी माग ही के परिणाम स्वरूप सन् १९१८ मे इसका द्वितीय सस्करण खगविलास प्रेस, बाकीपुर (पटना) मे प्रकाशित हुआ था। यह कृति मिश्र जी की विचार धारा का जानने के लिए दृष्टव्य है। 'प्रेम पुष्पावली' और 'मन की लहर' क्रमश लेखक की २७ और २९ वर्ष की अवस्था के पूर्व की रचनायें है जिनको देखने मे यह ज्ञात होता है कि लेखक को भक्त हृदय प्रारम्भ से ही प्राप्त था।

लोकोक्तिशतक

इस कृति का प्रकाशन धारावाहिक रूप मे 'ब्राह्मण मे खण्ड २ सख्या ७, (१५ सितम्बर १८८४ ई०) से प्रारम्भ हुआ था और ६१ कविताओ तक यह उसमें निकलती रही थी। इसके बाद १८८५ मे यह पृथक् पुस्तकाकार प्रकाशित हुई।[2] इस पुस्तिका मे केवल ११ पृष्ठ है और इसका मूल्य =) है। इसमें सौ कहावतो पर विरचित छोटी-छोटी १०० कविताए है और प्रत्येक कविता का अन्त कहावत से हुआ है। पुस्तक के अन्त मे एक और कविता है, जिसमे लेखक का नाम दिया गया है और इसका भी अन्त लोकोक्ति मे ही है। वह इस प्रकार है—

'संग्रह करी प्रताप हरि जग कहतूति प्रसिद्ध।
जैसी जाकी भावना तैसी ताकी सिद्ध ॥'[3]

यह कृति भारतीयो के हितार्थ लिखी गई है। इसके विषय मे मिश्र जी अपने प्रेमदेव मे कहते है - 'हमारी मोटी समझ मे यह सौ गोलिया तुम्हारे भारतीय प्रजा-गण के मानसिक रोगो के दूर करने मे कुछ काम आवे तो आश्चर्य नही। इन पर यदि तुम्हारी सुधामयी दृष्टि पडेगी तो 'सोने मे सुगन्ध है।'[4] इस कृति के मुख-पृष्ठ पर लिखा है— 'लोकोक्ति शतक अर्थात् सौ कहावतो मे सामयिक उपदेश जो देखनें वालो को अवश्य पेट पडे गुन देगे।' यह कृति उपदेश प्रधान है। इसमें एक ओर मतमतान्तरो, धार्मिक रूढियो, सामाजिक कुरीतियो, आपसी फूट, अग्रेजो के शोषण आदि की भर्त्सना की गई है, दूसरी ओर स्वावलम्बन, एकता, स्वाभिमान, दृढता,

---

१ प्रतापनारायण मिश्र - 'मन की लहर' (१८८५ ई०) 'समर्पण' से
२. 'ब्राह्मण' खण्ड ३ सख्या ९-१० 'विज्ञापन' - प्रतापनारायण मिश्र
३. प्रतापनारायण मिश्र - 'लोकोक्तिशतक' (१८९६ ई०) - पृष्ठ ११
४ प्रतापनारायण मिश्र - 'लोकोक्तिशतक' (१८९६ ई०) 'समर्पण' से

परोपकार आदि पर जोर दिया गया है। साथ ही देश जाति और भाषा के उद्धार के लिए भी जनता को प्रोत्साहित किया गया है। 'लोकोक्तिशतक' की कविताओं में देश-प्रेम और राष्ट्रीय चेतना की भावना को उभाड़ने की अपूर्व शक्ति है। इसके अतिरिक्त इसमे धर्म, ज्ञान और नीति से सम्बन्धित अनेक उपदेश भरे पड़े है। इसकी कविताओ मे लोकोक्तियो का बडा सफल और सशक्त प्रयोग हुआ है जिससे उपदेश बड़े प्रभावपूर्ण और हृदयस्पर्शी बन गये है। भाषा तो इसकी सरल है ही पर इसकी शैली भावो को स्पष्ट करने मे और भी सहायक हुई है। यह कृति आकार से जितनी छोटी है गुणो से उतनी ही अनूठी है। 'लोकोक्तिशतक' का द्वितीय संस्करण-बहुत शीघ्र रामनवमी हरिश्चन्द्राब्द ३ (१८८७ ई०) मे प्रकाशित हुआ और तृतीय संस्करण 'खगविलास प्रेस' बाकीपुर से १८९६ ई० मे निकला। वैसे १८९६ ई० के संस्करण मे प्रथम संस्करण लिखा हुआ है क्योंकि 'खगविलास प्रेस' मे यह पहली ही बार छपी है, पर ब्राह्मण मे इसके प्रारम्भिक संस्करणो का उल्लेख है।

कानपुर माहात्म्य

'कानपुर माहात्म्य' धारावाहिक रूप मे 'ब्राह्मण' मे खण्ड २ संख्या ६ (अगस्त, १८८४ ई०) से खण्ड ३ संख्या ९-१० (दिसम्बर १८८५ ई०) तक प्रकाशित हुआ था। आगे चलकर इसका पुस्तकाकार प्रकाशन पं० उमादत्त बाजपेयी (ब्राह्मण प्रेस के स्वामी) ने कराया यह कृति आल्हाछन्द मे लिखी गई है। इसमें कानपुर का हास्य पूर्ण और मनोरंजक वर्णन किया गया है। यह कृति तीन ओहारियों मे विभक्त है। पहली ओहारी मे देवी-देवताओ की स्तुति (आल्हा परम्परा के अनुसार) के बाद कानपुर के आस-पास के स्थानो, प्राचीन महापुरुषो और घटनाओ का वर्णन है। दूसरी ओहारी मे आर्य-समाजियों और पुरोहितो का वर्णन है। इसमे आर्य-समाजियो के मूर्ति-पूजा विरोध और उसके परिणाम स्वरूप पुरोहितो मे हुई प्रतिक्रिया का बड़े हास्यास्पद ढंग से दिग्दर्शन कराया गया है। पुरोहित लोग आर्य समाजियो का विरोध करने के लिये एक सभा करते हैं। सभा मे आर्य-समाज के सिद्धान्तो की जांच के लिए वेदो की आवश्यकता पड़ती है पर किसी भी पुरोहित के घर मे वेद नही निकलते, तब वेद खरीदने का आयोजन होता है लेकिन किसी भी पुरोहित को यह तक ज्ञात नहीं कि वेद कहा मिल सकेंगे ? अन्त मे वेदो के खरीदने के लिए चन्दे का प्रश्न उठता है। चन्दे का नाम सुनते ही धीरे-धीरे लोग सभा मे खिसकने लगते हैं। इस प्रकार इस ओहारी मे निरक्षर भट्टाचारों ब्राह्मणो की कटु आलोचना की गई है। तीसरी ओहारी मे 'गोरक्षणी सभा' का वर्णन है। सन् १८८१ मे 'भारत मित्र' पत्र में 'गोरक्षा' के सम्बन्ध मे एक मर्म स्पर्शी लेख प्रकाशित हुआ जिसमे गोवंश की दुर्दशा का वर्णन था।[1]

---

१. सं० नारायण प्रसाद अरोड़ा और लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी—'प्रतापनारायण मिश्र' (१९४७ ई०) पृष्ठ २९

उसे पढकर कानपुर के कुछ हिन्दुओ के हृदय मे एक गोरक्षिणी सभा स्थापित करने का विचार हुआ । इसके लिए कई सभाये की गई, बहुत से प्रयत्न हुए, अनेक प्रस्ताव धनाढ्य-लाला लोगो के यहा भेजे गये पर आपसी फूट के कारण गोरक्षिणी सभा स्थापित न हो सकी । इसी घटना का विस्तार से वर्णन-गोरक्षा के महत्व को समझाते हुए—किया गया है । यह कृति आदि मे लेकर अन्त तक व्यंग्यात्मक ढग से लिखी गयी है । यहा तक कि इसका नाम भी व्यग्य स उद्भूत है । इसमे कानपुर का माहात्म्य न होकर कानपुर की भर्त्सना ही है । इसकी भाषा शुद्ध अवधी है । रसात्मकता की दृष्टि मे यह कृति बडी उत्कृष्ट है । साथ ही तत्कालीन स्थिति का भी इसमे अच्छा परिचय मिल जाता है ।

दंगल खण्ड

यह कृति १८८७ ई० मे प्रकाशित हुई । इसका मूल्य–) है ।[१] यह आल्हा-छन्द मे लिखी हुई है । केवल पहला छन्द कुण्डलिया मे है । जिसमे व्यायाम का महत्व दिखाया गया है और इसके पचम चरण मे मिश्र जी का 'अक्खड अलहैत' उपनाम भी दिया हुआ है । कुण्डलिया के बाद फिर आल्हा-छन्द प्रारम्भ हो जाता है और अन्त तक यही चलता है । इसके प्रारम्भ मे पहलवानो के आराध्य महावीर और अली मुरतिजा तथा गायकों की आराध्या वाग्भवानी की स्तुति की गयी है । इसके बाद कानपुर मे किस प्रकार दगल प्रारम्भ हुए—इसका वर्णन किया गया है । तदुपरान्त कानपुर मे हुए १८८७ ई० के दगल का वर्णन है—यह दगल प्रयागनारायण तिवारी के परेड वाले अखाड़े मे प्रतिवर्ष होता था । इसे सरकारी दगल कहते थे[२] क्योकि इसे सरकार की ओर से भी विशेष सुविधाये प्राप्त थी । इसका प्रारम्भ भी १८६५ ई० मे कलक्टर हालसी, सुपरिंटेडेण्ट बी० एच० गुड (B. H. Good) तथा प्रयागनारायण तिवारी के प्रयत्न से हुआ था । सन् १८८७ के दगल मे अव्यवस्था और भीड अधिक होने के कारण बलवा हो गया जिसमे अनेक लोगो के चोटे लगी तथा पुलिस को भी शान्ति स्थापित करने के लिए कोडो और दण्डो का प्रयोग करना पडा, जिससे दर्शको मे भगदड मच गई । इस प्रकार इस वर्ष दगल के रग मे भग हो गया । मिश्र जी को दगलो से बडी रुचि थी । वे कानपुर मे होने वाले प्रत्येक दगल में जाते थे । १८८७ ई० के दगल का भी बलवा इनके सामने ही हुआ था,[३] इसलिए इनके वर्णनो मे बडी

---

१. 'ब्राह्मण' खण्ड ४ संख्या २ 'दंगल-खण्ड'—प्रतापनारायण मिश्र

२. सं० नारायणप्रसाद अरोड़ा और लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी—'प्रतापनारायण मिश्र' (१९४७ ई०) पृष्ठ ३५

३ नारायणप्रसाद अरोड़ा और लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी—'प्रतापनारायण मिश्र' (१९४७ ई०) पृष्ठ ३५

स्वाभाविकता है। पहलवानो के दाव-पेच और दर्शकों के मनोभावों के मार्मिक वर्णनों के साथ-साथ दंगलों की उपयोगिता और स्वास्थ्य के महत्व को भी इसमें समझाया गया है। इस कृति का उद्देश्य मनोरंजन के साथ ही जनता को स्वास्थ्य रक्षा की ओर प्रोत्साहित करना है वे एक स्थान पर कहते है—',धनवान और विद्वान की भाति बलवान भी देश की शोभा होते है, किसी रीति से पहलवानो को सहाय करके उनका उत्साह बढाना देश की शारीरिक उन्नति मे एक परमोपयोगी काम है।"[1] इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए मिश्र जी ने 'दगल खण्ड' की रचना की थी।

शोकाश्रु

यह भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के स्वर्गवास (६ जनवरी, १८८५ ई०) पर लिखा हुआ शोक गीत है। इसका प्रकाशन 'ब्राह्मण' के खण्ड २ सख्या १२ और खण्ड ३ सख्या १ (फरवरी-मार्च १८८५ ई०) मे हुआ था। इसमे २३ पद हैं और सभी पद भावाभिव्य और शोक से भरे हुए हैं। मिश्र जी की भारतेन्दु के प्रति अनन्य श्रद्धा भक्ति इसमें सजोयी हुई है। कही ईश्वर को उलाहना दिया गया, कही भारतेन्दु का गुणानुवाद गाया गया है, कही आराध्य रूप मे उनके विछोह पर शोक व्यक्त किया गया है, इस प्रकार सम्पूर्ण पदो मे मिश्र जी के विह्वल-हृदय के विभिन्न भाव बोलते हुए दिखाई पड़ते है। छन्द-विधान भी इसका बड़ा सबल है। कुछ पद सूर का स्मरण दिलाते हैं कुछ मे आधुनिक प्रगीततत्वो के दर्शन होते है। भाषा के क्षेत्र मे भी ब्रज, खडीबोली और उर्दू की त्रिवेणी बहती दिखाई देती है। अस्तु, 'शोकाश्रु' मिश्र जी के कोमल, कातर और निश्छल हृदय का प्रतीक है।

युवराजकुमार स्वागतन्ते

'युवराजकुमार-स्वागतन्ते' राजकुमार विक्टर के भारत आगमन पर लिखा हुआ आठ पृष्ठ का एक स्वागत-गीत है। राजकुमार विक्टर का भारत मे आगमन १८८९ ई० मे जाडे के दिनो मे हुआ था इसका उल्लेख मिश्र जी अपने स्वागत-गीत मे इस प्रकार करते हैं—

"हरि शशि सम्वत पाच महँ, सित पख अगहन मास।
श्री विक्टर आगमन ते, भयो हिन्द सुख रास॥"[2]

यह गीत १५ नवम्बर, १८८९ के 'ब्राह्मण' अक मे प्रकाशित हुआ था। इसमे स्वागत के साथ-साथ भारत की तत्कालीन दशा का बड़ा मार्मिक वर्णन किया गया है। भारतीय नरेशों, जमीदारो, पूजीपतियो के कार्यो की आलोचना करते हुए त्रसित और क्षुधित वर्ग के प्रति सम्वेदना प्रकट की गई है। इस गीत के अंत में मिश्र जी

१. 'ब्राह्मण' खण्ड ३ संख्या ७ ('दंगल')

२. ब्राह्मण खण्ड ६ संख्या ४ 'युवराजकुमार स्वागतंते'—प्रतापनारायण मिश्र

भारत की दयनीय दशा को विक्टोरिया मे कहने का—विक्टर से अनुरोध करते है जिससे भारतीयो की स्थिति मे कुछ सुधार हो सके। इस स्वागत-गीत का प्रमुख उद्देश्य-स्वागत न होकर भारत की दशा को विक्टोरिया तक पहुचाना है।

ब्रैडला स्वागत

यह भी 'युवराज कुमार स्वागतन्ते' की तरह एक स्वागत गीत है। आकार और शैली मे लगभग दोनो रचनाये एक सी ही है। 'ब्रैडला स्वागत' इग्लैड के प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ मि० चार्ल्स ब्रैडला के भारत आगमन पर लिखा गया था। चार्ल्स ब्रैडला भारत की स्थिति को देखने तथा बम्बई मे होने वाले काग्रेस के पाचवे अधिवेशन मे सम्मिलित होने के लिए दिसम्बर, १८८९ ई० मे भारत आये थे।[1] इसी समय मिश्र जी अपना यह स्वागत-गीत लिख कर 'स्वागतन्ते महात्मन्' नाम से 'ब्राह्मण' के खण्ड ६ सख्या ५ (दिसम्बर, १८८९ ई०) मे प्रकाशित कराया था। इसी वर्ष यह गीत 'ब्रैडला स्वागत' नाम से पुस्तकाकार भी हनुमत प्रेस, कालाकाकर मे छपकर प्रकाशित हुआ। आगे चलकर यही गीत 'क्रन्दन' नाम से भी कई अखबारो मे निकला। कालाकाकर से प्रकाशित 'ब्रैडला स्वागत' पुस्तक १६ पृष्ठ की है और इसके प्रत्येक पद के नीचे अग्रेजी मे अनुवाद दिया हुआ है पर यह अनुवाद किसका किया है यह ज्ञात नही। क्योंकि मिश्र जी लिखते है--'अग्रेजी न मेरी मातृ-भाषा है न मैं उसे उत्तम रीति से जानता हूँ एक मित्र (जिनका नाम प्रकाशित करना आवश्यक नही है) ने कृपा करके अनुवाद कर दिया है।'[2] चार्ल्स ब्रैडला काग्रेस तथा हिन्दुओ के बडे हितैषी थे इसीलिए मिश्र जी ने इस कृति मे इनकी बडी प्रशसा की है। 'ब्रैडला स्वागत' मे तत्कालीन देश-दशा का बडा सुन्दर चित्रण किया गया है। भारतीय कृषकों और श्रमिको की दशा के नग्न दृश्य इसमे दिखाये गये है। तथा व्यापार, कृषि, शिक्षा आदि की अवनति दिखाते हुए बेकारी की ओर भी सकेत किया गया है। भारतीयो की राज-भक्ति और अग्रेजो की दमन तथा शोषण-नीति को मिश्र जी ने बडी नम्रता के साथ, शिष्ट भाषा मे अभिव्यक्त किया है और ब्रैडला से काग्रेस तथा भारत के उत्थान मे सहयोग देने की प्रार्थना की है। वैसे यह कृति राज-भक्ति की पीठिका पर लिखी गयी है पर इसके अन्तराल मे राष्ट्रप्रेम झाकता हुआ, स्पष्ट दिखायी पडता है। 'ब्रैडला स्वागत' एक प्रकार से भारत की दीन-हीन दशा को सुधारने का प्रार्थना-पत्र है। राजभक्ति के रूप मे लिखी होने के कारण इस कृति का इग्लैड मे भी बडा स्वागत हुआ। फ्रेडरिक पिनकाट ने इस कृति का अग्रेजी मे अनुवाद करके १८९० ई० मे इसे 'इण्डिया' पत्र मे प्रकाशित कराया। इस अनुवाद

---

१. 'बालमुकुन्द गुप्त—'निबन्धावली' प्रथम भाग (२००७ वि०)—पृष्ठ ३४४-४५

२. प्रतापनारायण मिश्र—'ब्रैडला स्वागत (१८८९ ई०)—पृष्ठ १६

के विषय मे मिश्र जी लिखते है—'श्री फ्रैडरिक पिनकाट महोदय को हम इस अनुग्रह के लिए अन्त करण से अनेक धन्यवाद देते है कि उन्होने विलायत के 'इण्डिया' नामक समाचार पत्र मे हमारी 'ब्रैडला स्वागत' नामी पुस्तिका का अनुवाद बडी सुन्दर सरल एव साधु अग्रेजी मे प्रकाशित किया है इसमे हमारे देश की दीन दशा का वहाँ वालो के जी मे बहुत-कुछ बोध अथवा तद्द्वारा हमारे दुखो का बहुत-कुछ निवारण होने की सम्भावना है।'[1]

तृप्यन्ताम्

इस कृति की रचना सन् १८९० ई० के पितृपक्ष (आश्विन, कृष्ण पक्ष) मे की गयी थी। इसके रचनाकाल का उल्लेख मिश्र जी 'तृप्यताम्' के अन्तिम छन्द मे इस प्रकार करते है—

'हरि शशि वतसर छह असित, आसिन मास ललाम।
जग हित मिश्र प्रताप मुख, निकस्यों तृप्यन्ताम्॥[2]

यह कृति 'ब्राह्मण' मे धारावाहिक रूप से खण्ड ७ सख्या ३,४,५, ६ और ७ (अक्टूबर १८९० से फरवरी १८९१ तक) मे प्रकाशित हुई थी। आगे इसका पुस्तकाकार प्रकाशन १८९१ ई० मे खड्ग विलास प्रेस, बाकीपुर से हुआ। १९१४ ई० मे इसी प्रेस से इसका द्वितीय सस्करण भी निकला। यह २३ पृष्ठ की छोटी-सी पुस्तिका है। मूल्य इसका डेढ आना है। इसमे कुल ९० छन्द है जिनमे ८९ छन्दो मे तर्पण और अन्तिम छन्द (जो दोहा छन्द मे है) मे पुस्तक का रचना काल दिया हुआ है। इस कृति मे तत्कालीन देश-दशा के प्रति क्षोभ एवं असतोष व्यक्त किया गया है। इसके प्रत्येक छन्द से यह ध्वनि निकलती है कि जब भारतीय स्वय ही तृप्त नही है तो दूसरो के तृप्त होने की कामना कैसे कर सकते है? भारत को तो छल, अनाचार, निर्धनता, अकाल, शोषण, फूट, मतादि ने भ्रष्ट एवं अशक्त बना दिया है फिर कोई किस प्रकार साफ और प्रसन्न मन से तर्पण दे सकता है। हाँ, पानी उलच कर परम्परा का निर्वाह भले ही लोग करते रहे। इसमे देवी-देवताओं, ऋषि-मुनियो, पेड-पौधो, नदी-पर्वतो, नर-नारियो, पितरो आदि को एक-एक छन्द मे तर्पण दिया गया है, साथ ही उनसे सम्बन्धित स्थिति पर भी उसी छन्द के प्रारम्भ मे प्रकाश डाला गया है। प्रत्येक छन्द मे चार चरण है। पहले तीन चरणो मे देश-काल का चित्रण है और चौथे चरण मे उसी के अनुरूप देवादि को तर्पण दिया गया है। इस प्रकार 'तृप्यन्ताम्' मे मिश्र जी ने बडी कुशलता के साथ प्राचीन परम्परा

---

१. 'ब्राह्मण' खण्ड ६ सख्या ९ ('धन्यवाद')
२. 'प्रतापनारायण मिश्र—'तृप्यन्ताम्' (१९१४ ई०)—पृष्ठ २१

मे नवीनता का समावेश करते हुए तत्कालीन स्थिति को बड़े मार्मिक-शब्दो में भारतीयो के सामने रक्खा है ।

तारापात पचीसी

इसमे पचीस दोहे हैं । इसके रचना-काल का उल्लेख मिश्र जी इस प्रकार करते हैं—

> 'अगहन कृष्ण छठि निशा, हरि शशि सम्वत एक ।
> तारापात पचीसि किय द्विज प्रताप सविवेक ॥'[1]

इस दोहे के अनुसार इसकी रचना अगहन, कृष्णपक्ष ६ (रात्रि) हरिश्चन्द्र सम्वत १ (नवम्बर, १८८५ ई०) में की गयी । इसका प्रकाशन 'ब्राह्मण' के खण्ड खण्ड ३ सख्या ९-१० (नवम्बर-दिसम्बर १८८५ ई०) मे हुआ था । 'तारापात-पचीसी' के प्रारम्भिक दोहो में नक्षत्रो की छटा एव प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन है और अन्तिम दोहो मे ईश्वर का गुणगान, उसकी विचित्र सृष्टि पर विस्मय प्रकट करते हुए किया है । इसके कुछ दोहे कलापक्ष की दृष्टि से बडे उत्कृष्ट बन पडे हैं ।

श्री प्रेमपुराण

यह आख्यानक काव्य के रूप मे लिखी गयी है । इसका प्रकाशन 'ब्राह्मण' खण्ड ३ संख्या २,३-४, ९-१० (१८८५ ई०) मे हुआ था । इसमे दो अध्याय है, दोनो अध्यायो मे एक-एक प्रेम कहानी दोहे-चौपाइयो मे लिखी गयी है । दोनों कहानिया अपने मे पूर्ण तथा स्वतत्र है । वैसे मिश्र जी अभी इस पुराण मे और कहानिया बढाना चाहते थे पर किन्ही कारणो से वह इसे आगे न लिख सके । वे इसके उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए लिखते है—'प्रिय पाठक ! इस पुराण मे किसी मत विशेष की स्तुति निन्दा न होगी, किसी देश, किसी सम्प्रदाय के क्यो नही प्रेमी होना चाहिए उन्ही के इतिहास इसमे रहेगे । जिन ध्रुव, प्रह्लाद प्रेमियो की कथा पुराणो मे है उनका लिखना पिष्टपेषण है, जिनका हाल आपको नही मालूम उनके चरित्र पर ध्यान दीजिए । कोई इस ढग के इतिहास जानते हो तो लिख भेजो देश भाइयो का उपकार होगा ।'[2] इस पुराण मे आठ चौपाइयो के बाद एक दोहे का क्रम रक्खा गया है । प्रथम अध्याय के प्रारम्भ मे पाच सोरठे है, जिनमे प्रेम का माहात्म्य दिखाया गया है । प्रथम अध्याय की कथा इस प्रकार है—यवन देश के धर्म प्रचारक मूसा बडे ज्ञानी और उदार थे । इन्होने एक ब्रह्म का उपदेश दिया । एक बार मूसा कही उपदेश देने जा रहे थे । रास्ते मे उन्होने देखा कि एक सुरम्य वन मे एक

---

१. 'ब्राह्मण' खण्ड ३ सख्या ९-१० ('तारापात-पचीसी')

२. 'ब्राह्मण' खण्ड ३ संख्या २ 'श्री प्रेमपुराण'—प्रतापनारायण मिश्र

गडरिया बैठा ईश्वर का स्मरण कर रहा है और उसकी बकरियां पास ही चर रही है। गडरिया कहता है—'प्रभो एक बार हमारे घर पधारो, हम आपका बड़ा स्वागत करेंगे। बकरी का दूध पिलायेंगे आदि आदि।' गडरिये का प्रलाप सुनकर मूसा उसके पास आये और कहा—'हे भाई। ईश्वर अरूप और सर्व व्यापक है वह तुम्हारे घर नहीं आ सकता। तुम केवल उससे अपने धर्म, कर्म के सुधारने की प्रार्थना करो। उसके बुलाने का उपक्रम निरा भ्रम-पूर्ण है।' यह कह कर मूसा चले गये। अब गडरिया संशय मे पड गया। उसके मन मे अनेक तर्क-वितर्क उठने लगे। उधर मूसा को रास्ते मे आकाश वाणी हुई कि तुमने मेरे भक्त को संशय मे क्यों डाल दिया? मुझे नीरस-ज्ञान प्रिय नहीं है। तुम पुनः जाकर उसे समझाओ और उसका संशय दूर करो। मूसा ने वापस आकर गडरिये से क्षमा मांगी और दोनो प्रेम से गले मिले। इस कहानी मे ज्ञान से प्रेम को श्रेष्ठ माना गया है।

द्वितीय अध्याय के प्रारम्भ मे दो दोहे हैं जिनमे प्रेम देव की वन्दना तथा प्रेम-कथा का संकेत है। इस अध्याय की कथा इस प्रकार है—एक बार भक्त नारद ईश्वर की प्रभुता देखने के लिए मृत्युलोक का भ्रमण करने निकले। रास्ते मे उन्हे एक भयानक जंगल मिला। जहाँ हिंसक पशुओ के अतिरिक्त किसी का रहना नितान्त असम्भव था। ऐसे भयानक जंगल मे नारद देखते है कि एक अति दुर्बल मुनि अपने पैरो को एक पेड़ से बांधे उलटा झूल रहा है और उसके चारों ओर असहनीय अग्नि धधक रही है। ऐसे कठिन साधक को देखकर नारद को बड़ा आश्चर्य हुआ। वे उसके पास आकर पूछने लगे—'यह कठिन साधना किस फल के हेतु कर रहो हो? मुझे सत्य-सत्य बताओ। मैं तुम्हारी सहायता करूँगा।' कई बार नारद के पूछने पर मुनि ने कहा—'विष्णु भगवान के दर्शन के लिए कर रहा हूँ।' यह सुनकर नारद ने हंस कर कहा—'तुम्हे किसने बहका दिया है। जिस विष्णु को वेदादि व्यापक और अरूप कहते है वह तुम्हे शरीर धारण कर किस प्रकार दर्शन दे सकता है?' मुनि ने कहा—'मैं मानता हूँ ब्रह्म अरूप और अलख है फिर भी योगी-जन जन्म-जन्म उसका ध्यान किया करते है और उन्हे अनेक रूपों मे ब्रह्म के दर्शन होते है। उसी प्रकार मैं भी श्यामवर्ण विष्णु का मुख देखना चाहता हूँ।' इस पर नारद बड़ी जोर से हंसे और कहा—'तुम्हें यह कैसे ज्ञात हुआ कि विष्णु का श्यामवर्ण है?' मुनि ने कहा—'श्यामवर्ण निरर्थक नहीं है। श्याम रंग की ही आंख की पुतली है जिसमे संसार के सम्पूर्ण दृश्य दिखाई पडते है। श्याम रंग से ही सम्पूर्ण ग्रंथ लिखे हुए हैं। रात्रि मे भी सब ओर अंधकार ही दिखाई पडता है। इसलिए मैं भी अपने विष्णु को असीम और श्याम मानता हूँ।' नारद ने कहा—'यदि तुम्हे दर्शन न हुए तब क्या करोगे?' मुनि ने कहा—'इसी प्रकार जीवन भर तपस्या करूँगा, इसके बाद जो भगवान दिखायेंगे वही देखूँगा।' नारद, मुनि की दृढ आस्था

से बड़े प्रसन्न हुए और उसे फल-प्राप्ति का आशिर्वाद देकर विष्णु लोक को चले गये। वहाँ जाकर नारद ने मुनि के सब समाचार विष्णु भगवान से कहे। विष्णु भगवान ने नारद से कहा—'मुनि से जाकर कह दो इस पेड़ मे (जिसमे मुनि झूल रहा है) जितने पत्ते हैं उतने ही कल्प तपस्या करो। तब निश्चित ही तुम्हे भगवान मिल जायेगे।' नारद ने ऐसा ही मुनि से आकर कहा। नारद की बात सुनकर मुनि इतना प्रसन्न हुआ कि तपस्या छोड़कर प्रेम से नाचने लगा। उसका सब भ्रम दूर हो गया। गद्गद होकर वह कहने लगा अब तो निश्चित ही मुझे विष्णु भगवान के दर्शन होंगे। उसको प्रेम मग्न देखकर विष्णु भगवान ने तुरन्त ही वहाँ आकर उसे दर्शन दिया। उपर्युक्त अवधि तो विष्णु भगवान ने उसकी आस्था देखने के लिए दी थी। इस प्रकार दोनो ही कहानियों मे प्रेम की श्रेष्ठता प्रतिपादित है। इस कृति की भाषा सरल अवधी है। बीच-बीच मे तुलसी कृत 'रामचरित मानस' के सिद्धान्तो को भी साक्षी बनाया गया है तथा विभिन्न तर्कों से ज्ञान से प्रेम को अद्वितीय ठहराया गया है। विषय प्रतिपादन और रसात्मकता की दृष्टि से यह कृति निश्चित ही सफल है।

फाल्गुन माहात्म्य

फाल्गुन माहात्म्य मिश्र जी ने अपने तथा अपने समवयस्क मित्रो के मनोरजनार्थ लिखा था। इसमे होली मे गाने के अश्लील कवित्त है, जिन्हे मिश्र जी प्राय. होली के अवसर पर गाया करते थे जिससे लोगो का बड़ा मनोरंजन होता था। इस कृति को मिश्र जी ने व्यक्तिगत प्रयोग के लिए लिखा था इसे वे छपाना नही चाहते थे। एक बार उनके एक मित्र इसे बिना बताये उठा ले गये और सन् १८८९ ई० मे इसे छपवा डाला। मिश्र जी को जब यह बात मालूम हुई तब वे बहुत असतुष्ट हुए और सभी छपी हुई पुस्तको को प्रकाशित होने से रुकवा दिया। इसकी सूचना मिश्र जी 'ब्राह्मण' मे इस प्रकार देते है—"हमारे पास एक होली मे गाने की निर्लज्ज शब्दो मे हाथ की लिखी हुई पुस्तिका रक्खी थी। उसे एक भले मानुस हमसे पूछे बिना ले गये। और अब सुनने मे आया है कि उन्होने लोभवश होके उसे छपवाया है और कानपुर तथा और नगरो मे बेचना चाहते है। हमने यद्यपि एक प्रतिष्ठित और माननीय महाशय के यहा उनको बुलाके मना कर दिया है और उन्होने भी पुस्तकें जला देने का प्रण कर लिया है। तो भी हम विज्ञापन द्वारा सर्व साधारण को सूचित करते है कि यदि ऐसी पुस्तक किसी के पास निकलेगी तो उसके अपराधी वही होगे जिन्होने छपाई है और किसी को कोई सम्बन्ध नही।"[१] आज 'फाल्गुन-माहात्म्य' की एक भी छपी हुई प्रति कहीं उपलब्ध नही है, जिससे ज्ञात होता है कि उक्त मित्र ने

---

१. 'ब्राह्मण' खण्ड ५ संख्या ८ ('आवश्यक सूचना')

इसकी सभी प्रतिया जला दी थी। मुझे कानपुर मे कुछ लोगो से ज्ञात हुआ कि इस कृति के छपवाने वाले मित्र सनिगवा (जिला कानपुर) निवासी प० चन्द्रिकाप्रसाद मिश्र थे। मुझे अपने शोध-काल मे 'फाल्गुन-माहात्म्य' की हस्तलिखित एक-दो प्रतिया इधर-उधर देखने को मिली हे। एक प्रति पटकापुर (कानपुर) मे डा० गिरिजानन्दन त्रिवेद्वी के पास भी है जिसे वे फालगुन मे दिखाते है। 'फालगुन माहात्म्य' कोकशास्त्र के अनुकरण पर लिखा गया है। इसमे कामशास्त्र के विभिन्न अगो-केलि आदि का स्पष्ट शब्दो मे वर्णन है। साथ ही कामोत्तेजना बढाने तथा काम विषयक बीमारियो के शमनार्थ अनेक औषधिया बतायी गई है। इस कृति को देखने से मिश्र जी के कामशास्त्र विषयक ज्ञान का अच्छा परिचय मिल जाता है। इस कृति की भाषा बडी प्रौढ है। इसमे चौपाई, दोहा सोरठा, कवित्त आदि छन्दो का प्रयोग किया गया है। इसके अतिरिक्त बहुत मे अलकार भी इसमे आये है जो बडे उत्कृष्ट है। कलापक्ष म पूर्ण होते हुए भी यह कृति अत्यधिक अश्लीलता के कारण अप्रकाशनीय है।

होली है

यह कृति १८८९ ई० मे प्रकाशित हुई थी। इसका विज्ञापन १५ मार्च, १८८९ ई० के 'ब्राह्मण' मे इस प्रकार निकला था—"इस नाम की एक बडी अच्छी पुस्तिका प० प्रतापनारायण जी की लिखी हुई हमारे पास बिकने को प्रस्तुत है, दाम केवल दो पैसे है, डाक व्यय दस पुस्तक तक आध आना है, मगाकर देखो, तबियत फड़क उठेगी, उपदेश घलौनी मे है।"[१] इस पुस्तिका मे मिश्र जी का १५ मार्च, १८८३ ई० के 'ब्राह्मण' मे प्रकाशित निबन्ध 'हो ओ आ ली है!' सकलित है। इस निबन्ध मे दो कविताएँ भी हैं। इस कृति के प्रकाशन के बाद भी, होली पर मिश्र जी ने बहुत सी कविताए लिखी थी जो ब्राह्मण के कई अको मे प्रकाशित हुई थी। आगे चलकर, १५ मार्च, १९१३ ई० मे इनका पुस्तकाकार प्रकाशन 'होली है' नाम से 'माधुरी एण्ड कम्पनी' कानपुर से हुआ। पर इस सग्रह मे मिश्र जी की होली विषयक अनेक कवितायें नही सकलित हो सकी। इसमे केवल आठ कविताये और एक निबन्ध (हो ओ आ ली ह!) सकलित है। 'ब्राह्मण' खण्ड ७ सख्या ८ की कविताये इस पुस्तक मे प्रकाशित होने से रह गयी है। ये कविताये विभिन्न छन्दो और राग-रागिनियो मे लिखी गयी हैं। गेयता की दृष्टि से काफी, खमाच, फाग, होरी शीर्षक रचनाये विशेष उत्कृष्ट है। मिश्र जी की होली विषयक रचनाओं को, विषय की दृष्टि से तीन भागो मे बाटा जा सकता हे। पहली, देशदशा या राष्ट्रीय भावना से परिपूर्ण रचनाये जैसे 'होली है अथवा होरी', 'होलिका-पचक', 'होली', 'कैसी होरी' आदि। दूसरी ईश्वर-भक्ति से सम्बन्धित रचनायें जैसे 'होलिका पचीसी', 'होरी' आदि। तीसरी, होली के हास-

---

१. 'ब्राह्मण' खण्ड ५ संख्या ८ 'होली है' : पं० देवीप्रसाद शर्मा

परिहास और शृंगार रस से परिपूर्ण रचनाये जैसे 'होरी राग सूहा' आदि ये सभी रचनाये भाषा, और भाव और छन्द योजना की दृष्टि से सफल है। मिश्र जी प्रकृति से हास्य-प्रिय थे इसलिए इन्हे होली से बडा प्रेम था। ये प्रतिवर्ष फाल्गुन मे प्राय होली पर कुछ न कुछ लिखते थे। इस अवसर पर इन्हे अपने भावो को व्यक्त करने का अच्छा सुयोग मिल जाता था। ये बेधडक अपनी हंसी को रचनाओं मे बिखेर देते थे।

शृंगार विलास

यह कृति अब अप्राप्य है। वैसे इस नाम की पुस्तक मिश्र जी ने लिखी अवश्य है क्योकि 'कलि कौतुक रूपक' १८८५ ई०) के मुख पृष्ठ पर मिश्र जी की रचनाओं के अन्तर्गत इसका उल्लेख किया गया है। यह १८८५ ई० (कलि कौतुक रूपक मे पूर्व, के पूर्व की रचना है नाम से ऐसा ज्ञात होता है कि इस कृति मे शृंगार रस की कवितायें रही होंगी।

प्रार्थना शतक

इस कृति का नाम 'चरिताष्टक' प्रथम भाग (१८९४ ई०) के मुख पृष्ठ पर (मिश्र जी की रचनाओं के अन्तर्गत) दिया हुआ है पर यह कृति भी अब अनुपलब्ध है। इसमे मिश्र जी की सौ प्रार्थनाये सग्रहीत रही होंगी। इसका रचनाकाल १८९४ ई० ('चरिताष्टक-प्रथम भाग' के अनुसार) के पूर्व मानना चाहिए।

दीवाने बरहमन

इसमे मिश्र जी की उर्दू, फारसी की गजलें और शेरें सगृहीत थी। असामयिक मृत्यु हो जाने से मिश्र जी इसे प्रकाशित न करा सके थे। इसकी हस्तलिखित प्रति, जो मिश्र जी के हाथ की लिखी थी—मिश्र जी मृत्यु के बाद पाण्डे प्रभुदयाल को प्राप्त हुई पर पाण्डे जी इसे प्रकाशित न करा सके और उनका (पाण्डे जी का) स्वर्गवास हो गया। इसके बाद यह कृति उन्ही के यहा अप्रकाशित ही नष्ट हो गयी।[1]

स्फुट कवितायें

इन उपर्युक्त कृतियो के अतिरिक्त लगभग डेढ सौ स्फुट कविताए मिश्रजी की हमे और मिली है जो 'ब्राह्मण'-कवि वचन सुधा और 'रसिक वाटिका' मे प्रकाशित हुई थी। इन्हे मिश्र जी पृथक पुस्तकाकार नही निकलवा सके। इन कविताओ के अतिरिक्त मिश्र जी के नाटको मे भी बहुत सी कविताए मिलती है जो बडी उत्कृष्ट है। इसके साथ ही मिश्र जी की और भी बहुत सी कविताए तत्कालीन पत्रो मे निकली थी जो अब (तत्कालीन पत्रो के अभाव मे) अप्राप्य है। मिश्र जी ने बहुत से मुखम्मस भी—फारसी गजलो पर अपने मिसरे लगाकर बनाये थे जिनको सुनकर हसते-हसते पेट मे बल पड जाते थे पर ऐसी कविताएं मिश्र जी

---

१. 'बालमुकुन्द गुप्त-निबन्धावली' प्रथम भाग (२००७ वि० पृष्ठ ३

को प्राय जबानी ही याद थी, उनका प्रकाशन नही हुआ अत वे भी अब अनुपलब्ध हैं।[1] प्राप्य कविताओं मे बेगारी-विलाप (अप्रैल १८८३ ई०) कसीदा (अगस्त, १८८३ ई०) जन्म सुफल कब होय? (नवम्बर, १८८३ ई०) भारत-रोदन (जनवरी, १८८४ ई०) गाना समझो चाहे रोना (१८८४—८५ और १८८८ ई०) इतना दे करतार अधिक नही बोलना (नवम्बर—दिसम्बर १८८४ ई०) कलियुग ककहरा जुलाई १८८५ ई०) प्रेम-प्रमाद १८८५—८६ ई०) पशु-प्रार्थना (अगस्त १८८७ ई०) नवरात्र के पद (नवम्बर १८८७ ई०) ककाराष्टक (मई, १८८८ ई०) महापर्व (दिसम्बर १८८८ ई०) नया सम्वत् मार्च १८९० ई०) नामक कविताए लम्बी हैं जो लगभग तीन-तीन, चार-चार पृष्ठो मे होगी। बेगारी-विलाप[2] मे ३८ दोहे है इनमे सरकार द्वारा बेगार मे पकडे जाने वाले श्रमिको का करुण चित्रण है। 'कसीदा'[3] भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र पर (भारतेन्दु के बीमारी से स्वास्थ्य हो जानेपर) लिखागया था इसमे भारतेन्दु की प्रशसा की गयी है। 'जन्म सुफल कब होया'[4] हास्य-रस की रचना है इस मे तत्कालीन जातियो और लोगों के उद्देश्यो को व्यग्यात्मक शैली मे, व्यक्त किया गया है। 'भारत-रोदन,[5] ३५ दोहो मे लिखा गया है। शिक्षा कमीशन द्वारा हिन्दी को स्थान न मिलने से उत्पन्न असतोष इसमे वर्णित है। इस कविता मे मिश्र जी का हिन्दी-प्रेम कूट-कूट कर भरा है। 'गाना समझो चाहे रोना'[6] नामक से मिश्र जी ने सात कविताए लिखी जो ब्राह्मण के विभिन्न अको मे प्रकाशित हुई। ये लावनी, पदो और गीतो मे लिखी गयी है। सभी मे भारत की दयनीय दशा का चित्रण है। 'इतना दे करतार अधिक नही बोलना[7] व्यग्यात्म कविता है इसमे तत्कालीन समाज की मनोदशा का चित्रण है। 'कलियुग ककहरा[8] भी हास्य और व्यंग्य से पूर्ण है। इसमे समाज की कुरीतियों को दिखाया गया है। 'प्रेम-प्रमाद'[9] १३ पदो मे लिखी एक प्रेम विषयक कविता है। मिश्र जी ने इन १३ पदो मे अपनी प्रेम विह्वलता व्यक्त की है। 'पशु-

---

१. बालमुकुन्द गुप्त-निबन्धावली' प्रथम-भाग (२००७ वि०)-पृष्ठ १२—१३
२. ब्राह्मण खण्ड १ संख्या २
३. —वही— „ १ „ ६
४. —वही— „ १ „ ९
५. —वही— „ १ „ ११
६. —वही— „ २ „ २,४,९—१०, ११ खण्ड ५ संख्या ३,४
७. 'ब्राह्मण' खण्ड २ सख्या ९—१०
८. —वही—„ ३ „ ५
९. —वही—„ ३ „ ९—१०, ११, १२

प्रार्थना'[१] मे ५९ दोहे है इनमे पशुओं की ओर से पशु-वध रोकने की ईश्वर से प्रार्थना की गयी है। 'नवरात्र के पद'[२] सख्या मे पाच है, इनमे दुर्गा की स्तुति की गयी है। 'ककाराष्टक'[३] आठ छन्दो की कविता है इसकी सभी पक्तिया 'क' से प्रारम्भ होती हैं। इसमे ब्राह्मणो, कायस्थो, वैश्यो, भक्तो आदि के आडम्बरपूर्ण कार्यों की भर्त्सना की गयी है। 'महापर्व'[४] मे काग्रेस के कार्यो और उसके इलाहाबाद मे होन वाले चौथे अधिवेशन की सूचना है। इसके साथ ही जनता से काग्रेस की सहायता करने की अपील की गयी है। इस कविता मे कुल ६६ दोहे है। 'नया सम्वत'[५] कविता सम्वत १९४७ वि० के प्रारम्भ होने के उपलक्ष मे लिखी गयी है। इसमे विक्रमी सम्वत का गुणगान तथा आजकल उसकी भारतीयो की ओर से की जाने वाली उपेक्षा का वर्णन है। इस कविता मे मिश्र जी का अतीत-प्रेम अपने पूर्ण उत्कर्ष पर पहुचा हुआ है। इन लम्बी कविताओ के अतिरिक्त मिश्र जी ने बहुत सी कविताए ईश्वर-प्रार्थना और समस्या-पूर्तियो के रूप मे लिखी है। विषय की दृष्टि से मिश्र जी की समस्त स्फुट-कविताओ को प्रमुख रूप से छः भागो मे बाटा जा सकता है। पहली, ईश्वर-भक्ति-सगुण और निर्गुण, दोनो रूपो मे मिलती है। काली, कृष्ण दुर्गा आदि की स्तुतियो सगुणोपासना की द्योतक है और प्रेम की अनन्यता पर लिखे हुए गीत निर्गुणोपासना के। मिश्र जी प्रेमदेव के अनन्य पुजारी थे इसलिए प्रेम पर इन्होने बहुत सी कविताए लिखी है। दूसरी, देश-भक्ति से सम्बन्धित कविताएँ। ये भी सख्या मे पर्याप्त है। इनमे सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, साहित्यिक स्थिति पर विचार करते हुए हिन्दी, हिन्दु, हिन्दुस्तान के उद्धार पर बल दिया गया है। ये कविताये प्राय उपदेश प्रधान है। इनमे मिश्र जी की खडनात्मक वृत्त विशेष दिखाई पडती है। मिश्र जी तत्कालीन समास्याओ का खडन-मडन देश-हित को दृष्टि मे रखकर करते है। तीसरी, शृगार रस प्रधान कविताए, इनमे शृगारिक चेष्टाए और स्त्री पुरुषो के प्रेम व्यापार आदि वर्णित है। मिश्र जी ने सयोग शृगार और वियोग शृगार दोनो पर अपनी लेखनी चलायी है। सयोग शृगार सामान्य नायक-नायिकाओ को आधार बनाकर लिखा गया है और वियोग शृगार प्रमुख रूप से गोपियों के विरह पर आधारित है। समस्या पूर्तिया भी अधिकाश शृगारिक ही है। 'सगीत शाकुन्तल' मे भी सयोग और वियोग शृगार की कई एक कविताए बडी

---

१. 'ब्राह्मण' खण्ड ४ संख्या १
२ —वही— „ ४ „ ४
३. —वही— „ ४ „ १०
४. —वही— „ ५ „ ५
५ —वही— „ ६ „ ८

उत्कृष्ट है मिश्र जी का परिष्कृत कलापक्ष उनकी शृगारिक कविताओ मे ही देखने को मिलता है। चौथी, हास्य और व्यग्य से परिपूर्ण कविताए, इनमे किसी-न-किसी सामाजिक या धार्मिक सकीर्णता तथा भारतीयो की अकर्मण्यता पर छीटाकसी की गयी है ये सभी कविताए सोद्देश्य है। इनमे मिश्र जी की वाक्पटुता दर्शनीय है। कटु से कटु बात वे व्यग्य के माध्यम से बडी मार्मिकता के साथ कह जाते है। मिश्र जी की ये कविताए मनोरजक होते हुए भी प्रभावोत्पादक है। पाचवी, प्रकृति चित्रण सम्बन्धी कविताए, इनमें प्रकृतिक दृश्यो, ऋतुओ आदि के वर्णन है। ऐसी कविताए 'सगीत शाकुन्तल' मे बहुतायत से मिलती है। छठी, विविध विषयो पर लिखी गई कविताए जैसे स्वागत गीत शोकगीत, सेना वर्णन, वर्षा रम्भ आदि। शोकगीत मिश्र जी ने बहुत से लिखे जिनमे दयानन्द सरस्वती, चार्ल्स ब्रैडला, भारतेन्दु की मृत्यु पर लिखे गये शोक गीत विशेष उल्लेखनीय है। इन गीतो में मिश्र जी की भाव प्रबलता, कोमलता, सहृदयता एकीकृत दिखाई पड़ती है। सेनादि क वर्णन भी बडे स्वाभाविक बन पडे हैं। स्फूट कविताये मिश्र जी ने ब्रज, खड़ी बोली, उर्दू, सस्कृत आदि कई भाषाओ मे लिखी है। छन्दो मे गीत, कवित्त, सवैया, दोहा, पद, लावनी मिश्र जी को विशेष प्रिय थे, इन्ही मे उन्होने अधिकांश कविताए लिखी है। छन्द, भाषा और भाव की दृष्टि से ये कविताए बडी प्रौढ है। अलकारो का भी इनमें अच्छा प्रयोग हुआ।

नाटक

कलि कौतुक रूपक

यह रूपक भारतीय प्रेस, काशी से १८८५ ई० मे प्रकाशित हुआ। इसके समर्पण मे आश्विन कृष्ण नवमी शुक्रवार श्री हरिश्चन्द्राब्द[१] लिखा हुआ है जो सितम्बर, १८८५ई० मे पडता है। इसमे कुल ४४ पृष्ठ है और इसका मूल्य तीन आना है। यह एक सामाजिक रूपक है। इसमे नगर-निवासियो के वास्तविक चरित्र दिखाये गये है। इसके लिखने मे मिश्र जी का दृष्टिकोण पूर्ण यथार्थवादी रहा है। वे समाज का कच्चा चिट्ठा इसमे स्पष्ट खोलकर रख देते है। यह रूपक कुल चार दृश्यो मे लिखा गया है। इसमे १५ पुरुष और तीन स्त्री पात्र है जो आकार को देखते हुए बहुत अधिक है। इसके लिखने का उद्देश्य मिश्र जी के इन शब्दो से बहुत कुछ ज्ञात हो जाता है—'क्यो भाई सब प्रकार के ग्रन्थ बनाओगे पर आचरण न दिखाओगे ? इधर भी कुछ ध्यान दीजिए।'[१] इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए इन्होने रूपक की रचना की है। मिश्र जी समाज के पतित चरित्र जनता को दिखाकर उसे सुधार की ओर मोडना चाहते थे। इसीलिए समाज के अशिष्ट से अशिष्ट चित्र भी 'कलि कौतुक

---

१. प्रतापनारायण मिश्र—'कलि कौतुक रूपक' (१८९० ई०) 'देखो' से

रूपक' मे रखने मे वे नही हिचके । इस रूपक का प्रारम्भ नान्दी पाठ मे होता है। नान्दी पाठ एक दोहे म किया गया है। इमकी कथावस्तु इस प्रकार है—

रूपक की नायिका श्यामा और उसकी सखी चम्पा मे अश्लील बातचीत हो रही है। चम्पा गगा जी के एक बाबा का हाल बताती है—'बाबा जी के पास मैं सन्तान के लिए गयी थी तो बाबा जी ने कहा कि सतान तो लिखी है पर गृहस्थ मे नही।' यह सुनकर श्यामा बहुत हसी। फिर चम्पा ने बताया कि तबसे बावा जी हमारे घर के कई चक्कर लगा चुके हैं। श्यामा की भी बाबा जी से मिलने की इच्छा हुई। इतने मे श्यामा का प्रेमी रसिकविहारी बाहर से सीटी बजाता है। सीटी सुनकर चम्पा चली जाती है फिर श्यामा और रसिक बिहारी मे प्रेमालाप प्रारम्भ होता है। इतने मे श्यामा का पति किशोरीदास (नायक) दरवाजा खडखडाता है। श्यामा रसिक को छिपाकर दरवाजा खोलने चली जाती है। तत्पश्चात् किशोरी और श्यामा मे बात-चीत होती है। श्यामा पति मे बडा प्रेम दिखाती है। किशोरी भी श्यामा की तरह दुश्चरित्र है। वह लश्करीजान वैश्या के ऊपर मोहित है। श्यामा मे रहन देखने का बहाना बनाकर चला जाता है। श्यामा सब जानती है। इसलिए उसके जाने पर कहती है कि 'तुम डाल-डाल हम पात-पात'। किशोरी लश्करीजान की जूठी शराब पीता ही है साथ ही उसकी जूतियो के प्रहार भी सिर पर सहता है। जूतियो के प्रहार को ही वह प्रेम-प्रसाद समझता है। किशोरी का अधिकाश समय वैश्या शराब और कबाब मे बीतता है पर ये सभी काम वह समाज से छिपाकर कर करता है। ऊपर से वह बडा भक्त है। यहाँ तक कि जब बाहर निकलता है तब तुलसी की चौपाइया ही उसके मुख से सुनाई पडती है। सभी लोग इसे बडा धर्मनिष्ट समझते है। किशोरी के पदमचन्द नाम का एक गोद लिया हुआ लडका भी है जो प्रात.काल स्कूल का बहाना बनाकर घर से चला जाता है और पूरे दिन इधर-उधर घूमा करता है। पदम के रूप पर बहुत से लोग मोहित हैं। यहा तक की भुशुडीदास पुजारी भी पदम के पीछे पड़े है। ये लोग पदम को बहुत से पैसे देने को तैयार रहते है। अत मे तत्कालीन सभाओ पर भी दृष्टिपात किया गया है। रसिक बिहारी 'ऐक्य वर्द्धिनी सभा का सदस्य है। इस सभा की बैठक हर आठवे दिन होती है। पर इसके सदस्य समय पर नही पहुँचते। प्रेमचन्द्र इस सभा का सभापति है। यह सच्चा देश-भक्त है। इसे सभा के सदस्यो से बडा असन्तोष है। इसके बाद सभा की बैठक प्रारभ होती है पर अभी तक रसिक विहारी नही आया। कुछ देर बाद उनका आगमन होता है। लोग उससे देर से आने का कारण पूछते हैं। वह बताता है कि कचहरी चला गया था। किशोरीदास का मुकदमा था। किशोरीदास पर वैश्या, शराब आदि मे ढाई हजार का कर्ज हो गया था। इससे उसका सामान कुर्क हो गया है और उसे तीन साल की सजा हो गयी है। उसका लडका पदम भी तीन साल से लापता था।

अभी पता चला है कि एक वैश्या के यहा नौकर है । किशोरी का यह हाल सुनकर सबको बडा आश्चर्य होता है और प्रेमचन्द्र इस पर बड़ा दु.ख प्रकट करता है। इस प्रकार इस रूपक मे गृहस्थ, विद्यार्थी, साधु, पुजारी आदि के दोहरे चरित्र दिखाये गये है, ऊपर से तो ये लोग बड़े सज्जन प्रतीत होते है पर भीतर से इनमे अनेक दोष भरे हुए हैं। किशोरी का अन्तिम परिणाम दिखाकर लेखक ने जनता को सुधार की ओर मोड़ा है।

इस रूपक के लिखने मे मिश्र जी को समाज के आचरण दिखाना ही अभीष्ट रहा है इसीलिए वे लिखते है—"इनके दोष क्षमा हो, केवल आशय पर ध्यान रखिये।"[1] यह रूपक प्रारम्भ मे 'कलि प्रभाव नाटक' के नाम से लिखा गया था, लेकिन छपाते समय मिश्र जी ने इसका नाम 'कलि कौतुक रूपक' कर दिया । कुछ लोगो ने इन दो नामो को मिश्र जी के दो नाटको के रूप मे लिया है और उनकी कृतियों की सूची मे इन्हे पृथक्-पृथक् गिनाया है पर ये पृथक् रूप से कही नही मिलते न मिश्र जी ने कही इनका पृथक् उल्लेख ही किया है। मिश्र जी कृतियो के पीछे-मिश्र रचित पुस्तको की दी हुई सूची मे भी केवल 'कलि कौतुक रूपक' नाम ही मिलता है। अत उक्त दोनो नाम एक ही नाटक के प्रतीत होते है। यह नाटक पूर्णतया अभिनेय है। इसकी भाषा बडी सरल तथा पात्रानुकूल है। कही-कही इसमे ब्रजभाषा गद्य की भी क्रियाये मिलती है। गीतो और उर्दू शेरो का भी इसमे अच्छा प्रयोग हुआ है। आगे 'भारत-जीवन यन्त्रालय' काशी से इसके प्रथम और द्वितीय सस्करण (इस प्रेस के प्रथम और द्वतीय) भी क्रमश: सन् १८९० और १९०४ ई० मे प्रकाशित हुए। अपने उद्देश्य मे यह नाटक पूर्णतया सफल है।

कलिप्रवेश नीति रूपक

इस रूपक के अभिनय की सूचना १५ दिसम्बर, १८८७ ई० के 'ब्राह्मण' अक मे मिलती है । अत' यह रूपक इस तिथि से पूर्व लिखा गया है पर आज यह अप्राप्य है। इसके नाम से ऐसा ज्ञात होता है कि इसमे समाज की तत्कालीन स्थिति का चित्रण होगा। सम्भव है इसकी विचारधारा 'कलिकौतुक रूपक' से मिलती जुलती हो।

हठी हम्मीर नाटक

यह एक ऐतिहासिक नाटक है। इसकी टाइप की हुई प्रति हमे श्री विजय शकर मल्ल (काशी विश्वविद्यालय) के यहाँ देखने को मिली है पर इस प्रति मे प्रकाशन सन् आदि कुछ नही दिया है क्योंकि यह जिस मुद्रित प्रति से टाइप की गई है उसके ऊपर के पृष्ठ फट गये थे। हाॅ 'ब्राह्मण' दिसम्बर १८८७ ई० के अक मे

---

१. प्रतापनारायण मिश्र—'कलि कौतुक रूपक' (१८९० ई०) 'देखो, से

मिश्र जी इसके अभिनय की सूचना इस प्रकार देते है—'इधर श्री भारत मनोरंजिनी सभा ने २६ नवम्बर को श्री हठी हम्मीर नाटक और जयनार सिंह प्रहसन अथच २८ नवम्बर को कलि प्रवेश नीति रूपक एव गो सकट रूपक खेला था। जिसकी प्रशसा तो अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बनना है क्योकि इस पत्र का सम्पादक भी एक अभिनय कर्ता था और दोनो नाटक (हठी हम्मीर और कलि प्रवेश नीति रूपक) भी उसी के लिखे है।"[1] इस सूचना से यह सिद्ध होता है कि 'हठी हम्मीर नाटक' १८८७ ई० के पहले का लिखा हुआ है। यह नाटक छ अंको का है और इसमे कुल आठ दृश्य है। पात्रो की सख्या इसमे भी बहुत-अधिक है, गण और सिपाहियो को छोडकर इसमे ९८ पात्र है, जिनमे तीन स्त्री-पात्र है। वैसे आकार की दृष्टि से नाटक बडा नही है। इस नाटक का भी प्रारम्भ नान्दी पाठ से होता है। नान्दी पाठ दो दोहो मे है। नाटक की प्रस्तावना आदि इस मे नही है। इसकी कथावस्तु इस प्रकार है—

मरहट्टी बेगम (अलाउद्दीन की रानी) हाथ मे तीर कमान लिये जगल हिरन का पीछा कर रही है। जब हिरन नही मिलता तो एक पेड के नीचे बैठकर सुस्ताने लगती है। ठडी हवा चल रही है जो उसे महलो से भी अधिक सुखदायी मालूम होती है। ऐसे सुखद वातावरण को पाकर उसमे काम जागृत होने लगता है। सामने से मीर मुहम्मद (एक मगोल—अलाउद्दीन का सैनिक) आता दिखाई देता है। मरहट्टी उसे बुलाती है और समीप बैठाकर उससे प्रेम की बातें प्रारम्भ करती है। मीर मुहम्मद सब समझ जाता है और उसकी उपेक्षा करता है। तब मरहट्टी धमकाती है कि मैं बादशाह से शिकायत कर दूँगी कि मीर मुहम्मद हमसे गुस्ताखी कर रहे थे। अन्त मे वह मीर मुहम्मद को लेकर झाडी की ओर चली जाती है। आगे प्रसगवश ये सब बाते (मरहट्टी द्वारा) अलाउद्दीन को मालूम हो जाती हैं। मरहट्टी शीघ्र ही पत्र द्वारा राज खुल जाने की बात मीरमुहम्मद के पास भेजती है। पत्र पाकर मीरमुहम्मद वहाँ से भागता है और कई राजाओ की शरण मे जाता है पर सभी राजा अपने यहाँ रखने से उसे इंकार कर देते है। तब वह रण थम्भौर के राजा हम्मीर के पास जाता है। हम्मीर उसे निर्दोष समझकर अपनी शरण मे स्थान देते है और उसकी रक्षा का वचन देते है। जब अलाउद्दीन को मालूम होता है कि हम्मीर ने मीर को अपने यहा स्थान दिया है तो वह हम्मीर को उसे वापस कर देने को पत्र लिखता है पर हम्मीर उसे वापस करने से इकार कर देता है तथा अलाउद्दीन को उत्तर मे बडा कडा पत्र लिखता है। पत्र पाकर अलाउद्दीन रणथम्भौर पर चढाई कर देता है। घमासान युद्ध होता है। अलाउद्दीन के दाँत खट्टे हो जाते है।

---

१. 'ब्राह्मण' खण्ड ४ संख्या ५ 'कानपुर कुछ कुनमुनाया है'—प्रतापनारायण मिश्र

लेकिन इतने मे हम्मीर के दो भाई अलाउद्दीन से मिल जाते है और वे किले का सब भेद बता देते है जिससे अलाउद्दीन का साहस बढता है। इसके बाद मीर मुहम्मद बहादुरी के साथ लडता हुआ मारा जाता है। इतने मे बडी तेज हवा चलती है और हम्मीर की रण ध्वजा गिर जाती है जिसको देखकर (हम्मीर को मारा गया समझ कर) रानियाँ चिता मे जलने लगती हैं। यह देखकर हम्मीर महल की ओर दौडता है पर सरस्वती की प्रेरणा से धीरज धर कर लौट आता है। इतने मे मीर मुहम्मद को मरा हुआ देखता है फिर वह युद्ध क्षेत्र मे नही जाता। दोनो सेनाये बहादुरी से लडती हैं। अत मे यवनो की सेना दिल्ली की राह लेती है। हम्मीर लौटकर अपने पुत्र को राज्य देता है और स्वय वैराग्य धारण करता है। आगे हम्मीर को मृत्यु के बाद शिवलोक प्राप्त होता है। युद्ध का जितना भी वर्णन है नारद द्वारा शिवलोक मे कहाया गया है। इसके बाद जब हम्मीर स्वर्गवासी होकर शिवलोक जाते है तब सभी देवता उन्हे आशीर्वाद देते हैं। इस प्रकार नाटक का छठा अक बिलकुल ही अस्वाभाविक तथा काल्पनिक है। नारद, शिव, इन्द्र, भैरव, पार्वती, गणेश आदि पात्रो की योजना ऐतिहासिक नाटक के लिए उपयुक्त नही जान पडती। इसके पहले के पाँच अंक बडे स्वाभाविक और ऐतिहासिक है।

नाटक के अत मे उपसहार दिया हुआ है जिसमे नाटक की ऐतिहासिकता प्रमाणित की गयी है। उपसहार को देखने से मिश्र जी के ऐतिहासिक अनुसधान का पता चलता है। इसमें निम्नलिखित पाँच पुस्तकों के उद्धरण सकलित है—

१—सेखर कवि रचित 'हमीररायसा'

२—'इतिहासतिमिरनाशक' पहिला खण्ड

३—राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द कृत 'भूगोल हस्तामलक'

४—चारण रामनाथ रत्न कृत 'इतिहास राजस्थान'

५—मौलवी मुहम्मद उबैदुल्लाह फरहती कृत 'तारीख तुहफए राजस्थान'

इन्ही पुस्तकों के आधार पर मिश्र जी ने 'हठी हम्मीर' नाटक लिखा है। कही-कही मिश्र जी ने अपनी स्वच्छन्दता का भी उपयोग किया है पर ऐतिहासिकता में किसी प्रकार का अवरोध नही पड़ा। पहला अक—

मरहट्टी बेगम का 'हमीररायसा' के आधार पर है। केवल मर्यादा के लिए मिश्र जी ने सम्भोग का चित्रण सकेत से कर दिया है। सेखर लिखते है—

"यह सुन मीर ससंक चित भरी बाम निज अंक।
सुख मोटनि लूटन लगे, जनु आयी निधि रंक॥"[1]

---

१. प्रतापनारायण मिश्र—'हठी हम्मीर नाटक' उपसंहार से (हमीररायसा छंद ३२)

मिश्र जी इसे इस प्रकार लिखते है—"मरहट्टी—नही मीर साहब हमारे जानोमाल के हमेशा के लिए मुख्तार है (कुछ ठहर कर) चलिए उन झाड़ियो की सैर करे, यहाँ बैठे क्या करेंगे।"[१]

नाटक के लिए ऐसी मर्यादा का पालन आवश्यक कथा। शेष कथा—इस अक की - 'हमीररायसा' की ही है। अक दो, दृश्य पहला भी 'हमीररायसा' पर आधारित है। सेखर ने अलाउद्दीन के मूस मारने और मरहट्टी के हसने के प्रसग से मीर मुहम्मद का राज खोला है पर मिश्र जी ने केवल इसका सकेत कर दिया है। मरहट्टी द्वारा—मीर को पत्र लिखने की योजना दोनो मे है। अक दो का दृश्य दूसरा और अक तीन 'इतिहासितिमिरनाशक' पहिला खड के आधार पर लिखा गया है। केवल अलाउद्दीन और हम्मीर के पत्रो की योजना मिश्र जी की अपनी है। अक चौथा मिश्र जी का अपना है इसमे युद्धादि के वर्णन है पर सभी वर्णन ऐतिहासिक परिधि मे ही है। अक पाचवा भी अधिकाश मौलिक है। केवल मीर महम्मद की मृत्यु का वर्णन 'इतिहासितिमिरनाशक' का है। अंक छठा का—हम्मीर की रानियो के सती होने का प्रसग 'भूगोल हस्तामलक' के 'रणथम्भौर' के वर्णन पर आधारित है। शेष देवताओ आदि के वर्णन मिश्र जी के काल्पनिक हैं जो ऐतिहासिक दृष्टि से चिन्तनीय है। इनकी योजना मिश्र जी ने हम्मीर के चरित्र को ऊँचा उठाने तथा उसकी मर्यादा की रक्षा के लिए की है। इसके लिखने मे मिश्र जी को 'हमीररायसा' और इतिहासितिमिरनाशक' पहिला खण्ड मे विशेष सहायता मिली है। 'इतिहास राजस्थान' और 'तारीख' तुहफ़ए राजस्थान' के उद्धरणो से इस नाटक के कथानक का कोई सम्बन्ध नही है। इन दोनो पुस्तको के उद्धरणो मे केवल रणथम्भौर दुर्ग का हवाला दिया है। अन्त मे यह कहना न होगा कि छठा अक काल्पनिक होते हुए भी समग्ररूपेण हठी हम्मीर नाटक ऐतिहासिक ही है।

'हठी हम्मीर नाटक' की भाषा भी पात्रानुकूल है। मुसलमान पात्र उर्दू बोलते और हिन्दू पात्र हिन्दी। उर्दू की गजलें भी इसमे कई एक हैं जो बडी उत्कृष्ट हैं। हिन्दी के भी दो एक गीत दिये गये है। यह सम्पूर्ण नाटक अभिनेय है। मिश्र जी ने तो इसका अभिनय किया ही था, कालाकाकर मे भी इसका कई बार अभिनय हो चुका है। कविवर बचनेश जी लिखते हैं—'इस (हठी हम्मीर) छपे हुए नाटक को मैंने स्वय कालाकाकर मे लगभग १८ वर्ष की उम्र मे अपने हाथ मे परदे बनाकर खिलाया था, जिसमे ड्रेमिंग मैंने स्वय किया था और एक पार्ट भी लिया था। यह

---

१. प्रतापनारायण मिश्र—'हठी हम्मीर नाटक' एक्ट १, सीन पहिला

नाटक, मण्डली आज तक कालाकांकर मे अभिनय किया करती है।"[1] वस्तुतः 'हठी हम्मीर नाटक' एक सफल नाटक है ।

भारत दुर्दशा रूपक

यह रूपक 'श्री वेंकटेश्वर यन्त्रालय' बम्बई से सन् १९०२ ई० मे प्रकाशित हुआ । यह मिश्र जी के अन्तिम काल का लिखा मालूम होता है, क्योकि मिश्र जी इसे स्वत नही प्रकाशित करा सके । इसकी हस्त लिखित प्रति १८९५ ई० मे बलदेवप्रसाद मिश्र (मुरादाबाद) को उनके मित्र पं० हरिहर प्रसाद (मालिक जाब प्रेस, कानपुर) मे प्राप्त हुई । प्राप्त प्रति के कुछ अंश फटे हुए थे जिसके विषय मे बलदेव प्रसाद जी लिखते है—"जहां कही पत्र फट गये थे व लेख अदृश्य था, वहां अपनी लघुमति के अनुसार विषय पूरा किया । यद्यपि जरी के वस्त्र मे गजी का पैबन्द किसी भांति शोभा नही पाता है, तथापि फटे हुए वस्त्र की रक्षा अवश्य ही हो जाती है । यही विचार कर ऐसी ढिठाई की है, आशा है कि पाठक गण इस अपराध को क्षमा करेंगे । स्वर्गवासी पं० प्रतापनारायण जी हिन्दी भाषा के अद्वितीय लेखक थे। उन्होने इस वर्तमान रूपक मे भारत की हीन दशा का चित्र भली-भांति से चित्रित किया है।"[2] यह रूपक बलदेवप्रसाद मिश्र और शिवदुलारे बाजपेयी (बलदेवप्रसाद के मित्र) के ही प्रयत्न से, उक्त प्रेस से प्रकाशित हुआ । इसमे कुल ३२ पृष्ठ है। यह रूपक तीन अकों मे लिखा गया है। इसके दृश्यों की सख्या कुल चार है। इस रूपक मे प्रमुख पात्र १७ है जो आकार को देखते हुए बहुत अधिक है। 'भारत दुर्दशा' के लिखने मे मिश्र जी का उद्देश्य भारत की तत्कालीन दशा से जनता को परिचित कराना रहा है । जनता मे फैली हुई दुष्प्रवृत्तियो को मिश्र जी ने कलयुग के प्रभाव के रूप लिया । वे प्रमुख रूप से फूट और आलस्य को भारत के पतन का कारण मानते है। 'भारत-दुर्दशा' का एडीटर (एक पात्र) भारत की तत्कालीन स्थिति के विषय मे कहता है—"प्रिय भ्रातृगण । आज परमेश्वर ने वह दुर्दिन दिखलाया है कि जिन महामान्य परमपिता भारत की गोद मे हम और हमारे पूर्वज लालित पालित हुए है उनको हम इस दीन हीन क्षीण मन मलीन अवस्था मे देखते है । यद्यपि हृदय विदीर्ण हुआ जाता है, पर क्या कीजिए ?"[3] कहना न होगा कि भारत की इसी दशा ने मिश्र जी को भारत-दुर्दशा लिखने के लिए प्रेरित किया । वह रूपक भी नान्दी पाठ से प्रारम्भ होता है।

---

१. 'रामराज्य' (कानपुर) १ अक्टूबर, १९५६ ई० 'पूज्य श्री प्रतापनारायण मिश्र' कविवर बचनेश

२. प्रतापनारायण मिश्र-'भारत-दुर्दशा रूपक' (१९०२ ई०) 'भूमिका'-बलदेव प्रसाद मिश्र

३. प्रतापनारायण मिश्र-'भारत दुर्दशा रूपक' (१९०२ ई०) अंक ३, दृश्य पहिला

नान्दी पाठ एक दोहे मे दिया गया है। नाटक की प्रस्तावना आदि इस रूपक में भी नही है। 'भारत दुर्दशा रूपक' की कथावस्तु इस प्रकार है—

भारत (नायक) सो रहा है उसकी स्त्री विद्या उसे जगाती है और देर तक सोने का निषेध करती है। भारत स्वप्न देख रहा था। स्वप्न को सोच कर वह दुखित होता है। पर विद्या से स्वप्न नही बताता, क्योकि वह उसको सुनकर दुखित होगी। भारत अपनी दासी लाज से सारा स्वप्न कहता हे। स्वप्न मे उसने कलयुग का प्रभाव देखा है। आगे कलयुग की सेना का वर्णन है। कुमत, कलियुग की बीबी, आलस्य, मुसाहिब, रोग राज, मदिरा, चौपट सिह अपनी-अपनी विशेषताए कलियुग से बताते है। कलियुग उन्हे भारत पर चढाई करने का आदेश देता है। सभी अपनी-अपनी सेनाए लेकर जाते है। इतने मे कुछ लडके आकर विद्या का तिरस्कार करते है तथा खाओ, पीयो, मौज उडाओ के सिद्धान्त को सामने रखते हे फिर आलस्य आकर अपनी रामकहानी सुनाता है। इधर भारत (कलयुग की सेना के आघात से) मूर्छित पडा है। पडित, एडीटर, सेठ जी, ब्रह्मसमाजी, बगाली, आर्यसमाजी, महाराष्ट्री, पजाबी, ईसाई, मुसलमान बैठे हुए भारत को चैतन्य करने का उपाय कर रहे हैं। एडीटर पडित जी से उपचार के लिए कहता है। पडित जी कहते है बडा पैसा लगेगा। महाराष्ट्री सब भारतीयो से एक-एक रुपया चन्दा लेने का सुझाव देता है। सेठ जी व्यापार न चलने से पैसे की कमी बताते है और चन्दे का विरोध करते है। महाराष्ट्री व्यापार के लिए विलायत से कले मगाने को कहता है। एडीटर साहब सब मे सम्मति के भाव चाहते है। आर्य समाजी इसी प्रसग मे मूर्तिपूजा की बुराई करता है। बगाली इसका विरोध करके भाई-बहनो मे स्नेह स्थापित करने को कहता है। एडीटर भारत के स्वस्थ होने के लिए प्रेमासव देने का सुझाव देता है। पडित जी कहते है घाव व्यापार रूपी तेल से भरेगा। तब मुसलमान भी विलायत से कले मगाने को कहता है। एडीटर को दूसरे देश का मुह देखने पर बडा दुख होता हे। ईसाई कल मंगाने के साथ ही जाच के लिए रुधिर भेजने को कहता है। इस पर मुसलमान कहता है रुधिर तो जिस्म मे है ही नही, हा, बकरा जबह करके जख्मों मे भरना चाहिए। पर पडित जी इसका विरोध करते है। इस प्रसग मे पडित जी, एडीटर, महाराष्ट्री एक पक्ष मे बोलते हैं अर्थात् बकरे का विरोध करते है और मुसलमान ईसाई, बगाली समर्थन करते है। दोनो पक्षो मे लडाई होने लगती है। इतने मे कलियुग की सेना आती है। भारत, पंडित और एडीटर पेड की ओट मे छिपजाते हैं। बगाली, पंजाबी और मुसलमान को कलयुग की सेना पकड ले जाती हे। अन्त में एडीटर भारत की फूट आदि पर दुख प्रकट करता है। इस प्रकार सम्पूर्ण रूपक भारत के दैन्य से व्याप्त है।

'भारत-दुर्दश' रूपक 'में गीतो की बडी भरमार है। कलियुग और उसके

सैनिकों क अधिकाश कथन गीतों मे ही है । इससे यह रूपक बहुत-कुछ 'गीति रूपक' की कोटि मे पहुच जाता है । भाषा इसकी अत्यधिक पात्रानुकूल है । यहा तक कि बगाली, महाराष्ट्री, पजाबी पात्र क्रमश. बगाली, मराठी और पजाबी बोलते है । इससे अभिनय मे बडा अवरोध पडता है । इसके अतिरिक्त इसमे हास्य की योजना बडी उत्कृष्ट है । कलियुग और उनके सैनिको के कथन सुनकर हसते-हसते पेट मे बल पड जाते है । हास्य-योजना से नाटक की करुणा दर्शको को व्यथित नही कर पाती । समग्ररूपेण यह नाटक बडा सरस है । भाषा मे विविधता होते हुए भी यह नाटक अभिनेय है । इसके कथन बडे सरल तथा हृदयस्पर्शी है । यहा इतना कह देना और आवश्यक प्रतीत होता है कि इस नाटक पर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र कृत 'भारत दुर्दशा' का बहुत-कुछ प्रभाव परिलक्षित होता है बहुत से पात्रो के तो नाम भी एक से ही है, साथ ही कथानक मे भी पर्याप्त साम्य है । फिर भी दोनो मे अपनी-अपनी मौलिकता है । मिश्र जी का नाटक अपेक्षाकृत सरस और अभिनेय है । भारतेन्दु कृत 'भारत-दुर्दशा' मे गम्भीरता अधिक है तथा कथन भी बहुत-लम्बे है जिनसे दर्शको की नीर-सता प्रतीत होने लगती है जैसे छठे दृश्य का अकेला 'भारत-भाग्य' का प्रलाप दर्शको के जी को उबा देता है । मिश्र जी का 'भारत दुर्दशा रूपक' नाटकीय तत्वो से युक्त तथा देश की तत्कालीन स्थिति को चित्रित करने मे पूर्ण सफल है ।

संगीत शाकुन्तल

'संगीत शाकुतल' खडग विलास प्रेस, बाकीपुर से १८९१ ई० मे प्रकाशित हुआ । इसके समर्पण मे बसन्त पचमी, श्री हरिश्चन्द्राब्द ७ (फरवरी १८९१ ई०) दिया हुआ है, यही इसका रचनाकाल हो सकता है । यह नाटक महाकवि कालिदास रचित 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' का छायानुवाद है । मूलकथा 'अभिज्ञान-शाकुन्तलम्' की ही है पर लेखक की कल्पना और भाव प्रबलता ने, अपनी अभिव्यक्ति मे बहुत-कुछ परिवर्तन कर दिया है । मार्मिक स्थल कुछ विस्तार पा गये है तथा प्रासगिक स्थल कुछ सकुचित हो गये है । गीतात्मकता के कारण इसमे भावात्मकता अधिक है । अक दोनो मे सात है पर मिश्र जी ने उन्हे दृश्यो मे विभाजित कर दिया है जबकि कालि-दास जी ने अपने नाटक मे केवल अक ही रखे है । दृश्यो में विभाजित होने से 'सगीत शाकुन्तल' अधिक अभिनेय बन गया है । इसमे कुल सात अंको को मिलाकर उन्नीस दृश्य है । पात्रों की संख्या मे भी विभिन्नता है । 'संगीत शाकुन्तल' मे पुरुष तथा स्त्री पात्र मिलाकर पचीस है जबकि 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' मे अडतीस है । प्रमुख पात्रो के नाम दोनो मे एक से ही है । दोनों नाटको के अकों की कथावस्तु भी पृथक्-पृथक् लगभग एक सी-ही है । उक्त अन्तर के विषय मे मिश्र जी लिखते है—'आज कल की नाट्य प्रणाली और लोगो की रुचि के विचार से इसमे हमने कही-कही मुख्य ग्रन्थ का आशय कुछ-कुछ बढा भी दिया है पर काव्य रसिक-गण विचार

सकते हैं कि इस दोष मे हम कहा तक बच सकते थे ?[1] इसके अतर का बहुत-कुछ कारण इसके गीततत्व की प्रमुखता भी है। 'सगीत शाकुन्तल' गीत रूपक के रूप मे लिखा गया है। इसमे गद्य-कथन बहुत कम है। मिश्र जी लिखते है—'कुछ भी हो यदि इसके द्वारा कहने सुनने को यह उपालम्भ भी दूर हो जाय कि हिन्दी मे कोई ऐसा नाटक नही है जिसे सचमुच गीतिरूपक कह सकें तो भी हम अपना परिश्रम सफल समझेगे।'[2] इसके लिखने की प्रेरणा मिश्र जी को तत्कालीन अनुवादों (अभिज्ञानशाकुन्तलम् के) से मिली। इस प्रसग मे 'सगीत शाकुन्तलम्' की प्रस्तावना मे कहा गया नटी का यह कथन दृष्टव्य है—'यह लोग शकुन्तला नाटक से क्या रीझेंगे, उसे तो इस समय के लोगो ने मिट्टी कर डाला है। किसी ने कहानी सी लिखकर झूठ-मूठ नाटक का नाम धर दिया है किसी ने अच्छर-अच्छर का उलथा करने की धुन मे भाषा को ऐसा बिगाडा है कि देखने वाले समझें कि जैसी यह है वैसी ही ससकीरत मे भी होगी। किसी उर्दू के रसिया ने उसे अमानत की इन्दर सभा से भी अधिक चौपट किया है! हाय! कालिदास जी की कविता और उन्ही के देश मे उसकी यह दुर्दशा ?"[3] इसके अतिरिक्त मिश्र जी को 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' प्रिय भी विशेष था तथा इनके कई मित्रो ने भी इसके अनुवाद के लिए इनसे अनुरोध किया था। मिश्र जी कहते है—'शकुन्तला नाटक की महिमा सर्वोपरि है जैसा कि संस्कृतज्ञ मात्र सच्चे जी से मानते हैं कि 'काव्येषु नाटका' श्रेष्ठा नाटकेषु शकुन्तला' पर उसके जितने अनुवाद आज तक देखने मे आये प्रायः सभी निस्स्वादु निकले। हमारे कई मित्रो ने बारम्बार इस बात का उलाहना देकर अनुरोध भी किया, इससे उनकी आज्ञा माननी पडी।'[4] 'सगीत शाकुन्तल' १३५ पृष्ठ का है। इसका मूल्य आठ आना है। इसका प्रारम्भ नान्दी पाठ से होता है। नान्दी पाठ के उपरान्त नाटक की प्रस्तावना है। इसमे नट नटी द्वारा नाटक का परिचय देते हुए उसकी उपादेयता पर विचार किया गया है। 'सगीत शाकुन्तल' की कथावस्तु इस प्रकार है—

रथ पर बैठे हुए दुष्यन्त हिरन का पीछा कर रहे है। आगे कण्व ऋषि का आश्रम है। तपोवन मे एक वैखानस और दो तपस्वी हिरन मारने से रोक देते है। फिर दुष्यन्त वैखानस की आज्ञा से आश्रम मे भ्रमणार्थ जाते है। आश्रम मे शकुन्तला अपनी सखी प्रियम्वदा और अनुसूया के साथ वृक्षो को पानी दे रही है। दुष्यन्त शकुन्तला को देखकर मोहित होते हैं। आगे फिर इनका सबसे परिचय होता है। शकुन्तला भी दुष्यन्त की ओर आकृष्ट होती है। दुष्यन्त स्वय भी गगरी लेकर वृक्षो

---

१. प्रतापनारायण मिश्र-'संगीत शाकुन्तल' (१९०८ ई०) 'भूमिका' पृष्ठ १

२. प्रतापनारायण मिश्र-'संगीत शाकुन्तल' (१९०७ ई०) 'भूमिका' पृष्ठ १

३. प्रतापनारायण मिश्र-'संगीत शाकुन्तल' (१९०८ ई०)-'प्रस्तावना' पृ० २

४. प्रतापनारायण मिश्र-संगीत शाकुन्तल' (१९०८ ई०)-'भूमिका' पृ० १

को सींचने लगते हैं और अपनी अगूठी उतार कर प्रियम्वदा को देते है। इतने मे ऋषिकुमार आकर राक्षसो के आने की सूचना देते है (राक्षस तपस्या मे विघ्न पहुचा रहे थे) दुष्यन्त उनको मारने के लिए जाते हे। राक्षसों को मार कर जब वह लौटते है तब शकुन्तला का विरह उन्हे बहुत सताता है। इधर शकुन्तला भी विरह से व्यथित हें। वह लता मडप मे लेटी हुई अपनी व्यथा प्रियम्बदा और अनुसूया से कह रही है। दुष्यन्त छिपकर सब सुन रहे है। शकुन्तला दुष्यन्त को पत्र लिखती है इतने मे दुष्यन्त प्रकट हो जाते हैं। सखिया चली जाती है। दुष्यन्त और शकुन्तला मे प्रेमालाप प्रारम्भ होता हे। थोडी देर बाद गौतमी (कण्व ऋषि की बहिन) आती है। दुष्यन्त छिप जाते है और गौतमी शकुन्तला को लेकर चली जाती है। फिर दुर्वासा ऋषि का आश्रम मे प्रवेश होता है। विरह से व्यथित होने के कारण शकुन्तला ऋषि का स्वागत नही करती। इससे दुर्वासा ऋषि क्रोधित होकर दुष्यन्त के शकुन्तला को भूल जाने श्राप देते है। अनुसूया श्राप को सुन लेती है और उनसे क्षमा प्रार्थना करने जाती हे। दुर्वासा निशानी से स्मरण आने की बात कहकर अन्तर्ध्यान हो जाते हे। इसके बाद कण्व के शिष्य द्वारा, कण्व के तीर्थ यात्रा से वापस आने की सूचना मिलती हे। आश्रम म आने पर कण्व को दुष्यतन्त और शकुन्तला के मिलने की बात ज्ञात होती है वह शकुन्तला को दुष्यन्त के पास भेजने का प्रबन्ध करते है। शकुन्तला को जाते देखकर सब बहुत दुखित होते है। कण्व से स्थिर-मन ऋषि का भी हृदय दहल उठता है। सभी शकुन्तला को आशीर्वाद देते है। अनुसूया पहचानने के लिए दुष्यन्त की अंगूठी देती है। दो शिष्यो और गौतमी के साथ शकुन्तला जाती है। दुष्यन्त के राज-द्वार पर पहुच कर, कण्व के शिष्य कचुकी द्वारा-अपने आने की सूचना दुष्यन्त के पास भेजते है। तदुपरान्त सभी शकुन्तला के सहित दुष्यन्त के पास जाते है। पर दुष्यन्त शिष्यो और गौमती के बताने पर भी शकुन्तला को नही पहचानता। शकुन्तला भी याद दिलाती है पर उसे स्मरण नही आता तब शकुन्तला अगूठी दिखाना चाहती है पर अगूठी कही खो गयी है। दुष्यन्त शकुन्तला को गर्भवती देखकर हसता है। शकुन्तला उसकी उपेक्षा मे बहुत क्रोधित होती हे। इसके बाद गौतमी और शिष्य शकुन्तला को वही छोडकर चले जाते हे। तब सोमराज (राजा का पुरोहित) बच्चा होने तथा उसके लक्षण देखने तक अपने पास रखने को कहता है और उसे अपने साथ लेकर जाता है। इतने मे एक अप्सरा आकर शकुन्तला को अपने साथ आकाश मे उड़ा ले जाती है। कुछ समय बाद-शकुन्तला की खोई हुई अगूठी—एक मछुए द्वारा दुष्यन्त को प्राप्त होती है। अगूठी को देखकर दुष्यन्त को शकुन्तला की याद आती है। वे उसके वियोग मे बडे दुखित होते है। इसी समय इन्द्र का सारथी मातलि आता है और दुष्यन्त से कहता है कि कालनेमि के कुल मे शत्रु बहुत बढ गये है उनसे रक्षार्थ इन्द्र ने आपसे सहायता मागी है। दुष्यन्त तुरन्त उनकी सहायता के लिए चल देते है। अन्त मे जब

दुष्यन्त विजयी होकर लौटते है तब कश्यप मुनि के दर्शन के लिए हेमकूट पर्वत पर रथ रुकवाते है वही उन्हे भरत, सिंह के दांत गिनता हुआ दिखाई पड़ता है। भरत मे चक्रवर्ती के लक्षण देखकर दुष्यन्त को आश्चर्य होता है। वे उसके पास आते है और पृथ्वी पर पड़ी हुई राखी को उठा लेते है पर वह राखी नाग बनकर दुष्यन्त को नही काटती (यह राखी कश्यप ने भरत के बांधी थी और कहा था कि यदि यह छूटकर गिरेगी तो इसके—भरत के—माता-पिता ही इसे उठा सकते है यदि दूसरा कोई उठाएगा तो नाग बनकर डस लेगी) यह देखकर तपस्विनियां बड़ा आश्चर्य करती है और जाकर शकुन्तला से सब वृत्तान्त कहती है। फिर शकुन्तला और दुष्यन्त मिलते है और मातलि के सहित कश्यप जी के पास जाते है (अप्सरा ने ले जाकर कश्यप जी के आश्रम मे ही शकुन्तला को रक्खा था और यही पुत्र हुआ था) सभी कश्यप तथा उनकी पत्नी अदिति को प्रणाम करते है। दोनो आशीर्वाद देते है। सब प्रसन्नता से जाते है। कश्यप जी—दुष्यन्त और शकुन्तला के मिलने का समाचार कण्व जी के पास भी पहुचा देते है। यही नाटक समाप्त होता है।

यह नाटक अभिनय की एक दृष्टि से उतना सफल नही कहा जा सकता, क्योकि मृग और उसके पीछे राजा के रथ दौड़ाने का अभिनय रंगमंच पर नही दिखाया जा सकता। इसके अतिरिक्त शकुन्तला को अप्सरा द्वारा आकाश मण्डल मे उठा ले जाना, मातलि का आकाश मण्डल मे रथ दौड़ाना और प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन तथा दुष्यन्त से वार्तालाप करना (सातवा अंक) अभिनय की दृष्टि से बिल्कुल ही अनुपयुक्त है। गीतो की अधिकता भी अभिनय के लिए बाधक है। फिर भी कुछ परिवर्तन के साथ इसका अभिनय किया जा सकता है। गीति-रूपक होने के कारण अभिनय के ये दोष बहुत-कुछ क्षम्य है। 'संगीत शाकुन्तल' मे ७३ राग-रागिनियो मे गीत लिखे गये है और सभी गीत बड़े सरस तथा पुष्ट है। जन-गीतो का भी इसमे अच्छा प्रयोग हुआ है। गीति रूपक की दिशा मे यह प्रथम सफल प्रयास है। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी, मिश्र जी के सम्पूर्ण ग्रन्थो मे 'संगीत शकुन्तल' को सबसे अच्छा समझते है। वे इसके विषय मे लिखते है—"पंडित प्रतापनारायण मिश्र ने शकुन्तला का जो अनुवाद हिन्दी मे किया है, वह अनुवाद नही कहा जा सकता; हां स्वतंत्र या स्वच्छन्द अनुवाद कहा जा सकता है। मूल के भावो को इन्होने अनुवाद मे बहुत कुछ घटा-बढ़ा दिया है। इस बात पर उन्होने भूमिका मे स्वीकार किया है। ऐसा करने से अगर कही-कही मूल का मजा जाता रहा है, तो कही-कही अधिक भी हो गया है। हम यह नही कहते कि यह अनुवाद सब कही अच्छा ही हुआ है; पर इसका अधिक अंश रोचक रसवान और मनोहर है।"[१] द्विवेदी जी का उक्त कथन अक्षरशः सत्य है। मिश्र जी का

१. 'निबन्ध-नवनीत प्रथम भाग (१९१९ ई०) पृष्ठ ३२-३३

यह नाटक 'अभिज्ञान-शकुन्तम्' की अपेक्षा अधिक रोचक है। हिन्दी मे लिखा होने के कारण-जन-सामान्य तक पहुचने की इसमे सामर्थ्य है। गीतो की योजना इसकी रोचकता मे विशेष सहायक हुई है। कथन की सार्थकता के लिए यहा पर दोनो नाटको के दो समान भावो वाले अंश दिये जा रहे हैं जिनमे 'सगीत शाकुन्तल' की उपादेयता का सहज ही परिचय मिल जायगा। दुष्यन्त के न पहचानने से शकुन्तला क्रोधित होती है। क्रोधावेश मे वह और भी सुन्दर दिखाई पडने लगती है। दुष्यन्त अपने मन मे उसकी भाव-भगिमा पर विचार करता है, इसे कालिदास जी इस प्रकार व्यक्त करते हैं—

"न तिर्यगवलोकितं भवति चक्षुरालोहितं
वचोऽतिपरुषाक्षरं न च पदेषु सगच्छते।
हिमार्त्त इव वेपते सकल एव बिम्बाधरः।
प्रकामविनते भ्रुवो युगपदेव भेदं गते॥
मय्येवमस्मरणदारुणचित्तवृत्तो
वृत्तं रहः प्रणयमप्रतिपद्यमाने।
भेदाद्भ्रुवोः कुटिलयोरतिलोहिताक्ष्या
भग्नं शरासन मिवातिरुषा स्मरस्य॥"[1]

इसी भाव को मिश्र जी सुहाग छन्द मे लिखते हैं—

"अहो रिसहु समय यह सुन्दरी कैसी सुहाई है।
तपे पै और कुन्दन की मनौ निखरी निकाई है।
रगीले नैन में औरो ललाई दौरि आई है।
कि साचौं काम कैबर निश्चय शोनित में डुबाई है।
भई हैं रोस सौं भौंहैं तिरछी डंक बीछी को।
कि कारी नागिनी विश्व खानि काहू ने खिझाई है।
रसीले होंठ कांपें हैं कढ़ै है बात आधी सी।
चढ़ी सी नासिका पै औरहू सोभा सवाई है।
सधारन रूप पै देख्यो नहीं जब मोहिं मोहित सो।
तो कैसी मान के मिस सानसी छवि पै चढ़ाई है।"[2]

इसी प्रकार कण्व के शिष्य द्वारा किया गया प्रभात काल का वर्णन, कालिदास जी लिखते हैं—

"यात्येकतोऽस्तशिखरं पतिरोषधीनाम्
आविष्कृतोऽरुणपुरः सर एकतोऽर्कः।

१. कालिदास . 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' पंचमोंऽकःश्लोक २४-२५

२. प्रतापनारायण मिश्र : 'संगीत शाकुन्तल' (१९०८ ई०) पांचवां अक, तीसरा दृश्य

तेजोद्वयस्य युगपद्व्यसनोदयाभ्यां
लोको नियम्यते इवैष दशान्तरेषु ॥
अन्तर्हिते शशिनि सैव कुमुद्वतीयं
दृष्टि न नन्दयति सस्मरणीय शोभा ।
इष्ट प्रवासजनितान्यबलाजनेन
दुःखानि नूनमतिमात्रसुदुःसहानि ॥
कर्कन्धूनामुपरि तुहिनं रंजयत्यग्रसन्ध्या
दार्भं मुंचत्युटजपटलं वीतनीद्रो मयूरः ।
वेदि प्रान्तात् खुरविलिखि तादुत्थितश्चैष सद्यः ।
पश्चादुच्चैर्भवति हरिणः स्वांगमापच्छमानः ॥"[1]

इस दृश्य को मिश्र जी प्रभावनी राग मे इस प्रकार वर्णन करते है—

"कैसी कमनीय है प्रभा प्रभात काल की ।
दिनकर करि इत उजास इत लहि ससि तेज नास,
कै रहे दशा प्रकाश मानो जग जाल की ।
कुमुदिनि सोभा विहीन, विरहिन इव दुखित दीन,
लागति नैनन भली न देखत दिसि ताल की ।
दरभ की कुटीन त्यागि, उठहि मोर जागि जागि,
बेदिन ढिग सुभग लागि, ऍड़िन मृग माल की ।
इहि छिन सब साधु सत, प्रेम पूरि ह्वै इकन्त,
सुमिरत महिमा अनन्त, त्रिभुवन महिपाल की ॥"[2]

यहा मेरे कहने का यह तात्पर्य नही कि मिश्र जी ने कालिदास के 'अभिज्ञान-शाकुन्तलम् से अपना नाटक श्रेष्ठ लिखा पर इतना अवश्य कहा जा सकता है कि रोचकता और हिन्दी के सुष्ठ-प्रयोग की दृष्टि से यह नाटक सराहनीय है तथा गीति-रूपक के क्षेत्र मे तो यह अपना सानी ही नही रखता । अस्तु, सगीत शाकुन्तल अपने उद्देश्य मे पूर्ण सफल है ।

विविध

शैव सर्वस्व

इस कृति का प्रकाशन 'ब्राह्मण' मे खण्ड ३, सख्या ६ (अगस्त, १८८५ ई०) से प्रारम्भ हुआ था और कई अंको मे यह निकली थी । आगे इसका पुस्तकाकार प्रकाशन खड्ग विलास प्रेस, बाकीपुर (पटना) से सन् १८९० ई० मे हुआ । वैसे

१ कालिदास : 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' चतुर्थोअंक श्लोक २,३, ४

२. प्रतापनारायण मिश्र : 'संगीत शाकुन्तल' (१९०८ ई० चौथा अक, दूसरा दृश्य ।

इसके समर्पण मे श्रावण शुक्ला १४, श्री हरिश्चन्द्राब्द ४ (१८८८ ई०) पडा हुआ है, यह इसके प्रेस मे भेजने का (पुस्तकाकार छपने के लिए) काल हो सकता है। यह ३२ पृष्ठ की छोटी-सी गद्य-पुस्तिका है। इसका मूल्य चार आना है। इसके लिखने का मूल कारण भारतवर्ष के एक बड़े समुदाय का शिव-भक्त होना है। मिश्र जी लिखते है—'जब हम अपने पश्चिमोत्तर देश की ओर देखते है तो एक बड़े भारी समूह को शैव ही पाते है। हमारे ब्राह्मण भाई, विशेषत. कान्यकुब्ज, जिस पर भी षट्कुलस्थ कदाचित सौ मे निन्नानबे इसी ओर हैं। इधर रहने वाले गौड सारस्वत भी तीन भाग से अधिक शैव ही है। क्षत्रियो मे राजपूत सौ मे पाँच से अधिक दूसरे मत के न होंगे। खत्री भी फी सैकडा दो ही चार हो तो हो। वैश्य मे हमारे ओमर दोसरो की भी यही दशा है। हाँ, अग्रवाल थोड़े ही होगे। कायस्थ तो सौ मै क्या सहस्त्र मे दो चार होगे जो शिवोपासक न हो। इसमे हमारा यह कहना कदापि झूठ न होगा कि हमारे यहाँ तीन भाग से अधिक इसी ढर्रे मे चल रहे हैं' 'हमारे बहुत से मित्र आर्यसमाजी है, बहुतेरे अंग्रेजी ढग के है, बहुतेरे हमारे ऐसे है, वे भी कभी लगावेंगे तो त्रिपुण्ड ही लगावैंगे। माला या कण्ठा रुद्राक्ष ही पहिनेंगे। फिर हमारी तबियत क्यो न इस सीधी चाल पर झुके?'[1] इसके अतिरिक्त शिव जी मिश्र जी के कुल के इष्ट देवता भी थे।[2] इसलिये शिव के प्रति मिश्र जी की आस्था का होना स्वाभाविक है। 'शैव सर्वस्व' मे मिश्र जी पवित्र भारतभूमि को कैलाश बनाने की शंकर से प्रार्थना भी करते है।[3] अतः इस कृति की रचना का दूसरा कारण शिव के प्रति मिश्र जी की स्वाभाविक निष्ठा का होना भी है।

जिस समय यह पुस्तक लिखी गई थी उस समय शिक्षित लोग मूर्तिपूजा को अंध-विश्वास तथा ढकोसला समझते थे। अंग्रेजो के सम्पर्क मे आने के कारण लोगो मे आस्तिकता धीरे-धीरे कम होने लगी थी, बुद्धि पर ही विशेष बल दिया जा रहा था इसलिए मिश्र जी ने इस पुस्तक मे मूर्तिपूजा का वैज्ञानिक दृष्टि से विवेचन किया है। मिश्र जी लिखते हैं—'यद्यपि आजकल अविद्या के प्रभाव से सब बातो के तत्व के साथ प्रतिमा पूजन का भी तत्व लोग भूल गये है पर जिन्हे कुछ भी इधर श्रद्धा है वे इस लेख पर कुछ भी ध्यान देगे तो कुछ भेद तो अवश्य ही पावेंगे।'[4] इस पुस्तक के मुख पृष्ठ पर भी लिखा है—'शैव सर्वस्व अर्थात् शिवालय, शिवमूर्ति और

---

१. 'प्रतापनारायण ग्रन्थावली' प्रथम खण्ड (२०१४ वि०) पृष्ठ ६३४-३५
'शैव सर्वस्व' : प्रतापनारायण मिश्र
२. 'ब्राह्मण' खण्ड ५, संख्या ३ 'प्रताप चरित्र' : प्रतापनारायण मिश्र
३. 'प्रतापनारायण ग्रन्थावली' प्रथम खण्ड (२०१४ वि०) पृष्ठ ३३१
'शैव सर्वस्व' : प्रतापनारायण मिश्र
४. 'प्रतापनारायण ग्रन्थावली' प्रथम खण्ड (२०१४ वि०) पृष्ठ ६१८
'शैव सर्वस्व' : प्रतापनारायण मिश्र।

शिव-पूजा की मुख्य-मुख्य बातो का गूढार्थ।' इसमे प्रत्येक बात बडे तर्क के साथ उपस्थित की गई है। सम्पूर्ण कृति वैज्ञानिक पीठिका पर आधारित है। यह पुस्तक तीन उपशीर्षको मे विभक्त है—शिवालय, शिवमूर्ति और शिव जी की पूजा। शिवालय के अन्तर्गत शिवालय की बनावट (गोल गुम्बद, चार दरवाजे, त्रिशूल, कीर्तिमुख, नन्दिकेश्वर आदि) का और शिवमूर्ति मे, मूर्तियो के प्रकार (पाषाण मूर्ति, धातुमूर्ति, रत्नमूर्ति, मृत्तिका-मूर्त्ति, गोबरमूर्त्ति, पारामूर्त्ति आदि) रग (श्वेत, लाल और काला) आकार (लिगाकार, सिर पर गगा, दुइज का चन्द्रमा, त्रिनेत्र, कपालमाला, चिताभस्म, शरीर पर सर्प, गले की श्यामता, हाथ मे त्रिशूल तथा डमरू आदि) तथा अन्य प्रमुख देवताओ (विष्णु और भैरव) की मूर्त्तियों की विशेषताओं का और शिव जी की पूजा मे चन्दन दीप, नैवेद्य, मदार के फूल, धतूरे के फल, बिल्व पत्र आदि के चढाने का तथा भक्त लोगो के पूजा के बाद गाल बजाने का वैज्ञानिक दृष्टि से विवेचन किया गया है। इसके अतिरिक्त ईश्वर के निराकार तथा साकार रूपो का भी सक्षिप्त वर्णन है साथ ही विभिन्न देवोपासको मे समन्वय स्थापित करने का भी प्रयास किया गया है। शैव सर्वस्व की भाषा बडी प्रौढ एव परिमार्जित है। हास्य और व्यग्य की उच्छृखलता इसमे नही मिलती। इसमे लेखक बडा गम्भीर तथा तर्कपूर्ण है, मुहावरो का प्रयोग भी यत्र-तत्र ही हुआ है। इस प्रकार शैव-सर्वस्व भाषा और विचार-दोनो की दृष्टि से उत्कृष्ट है।

सुचाल-शिक्षा (प्रथम भाग)

इस गद्य-कृति का प्रकाशन खड्ग विलास प्रेस, बाकीपुर (पटना) से सन् १८९१ ई० मे हुआ। इस कृति के अन्त मे कठिन शब्दो के अर्थ भी छ पृष्ठो मे दिये गये है। इसका मूल्य आठ आना है। इसमे नवयुवको को चरित्र निर्माण के लिए— अनेक शिक्षाए दी गयी है। मिश्र जी सुधारवादी साहित्यकार थे। भारतीय नवयुवको के पतित चरित्र को देखकर उन्हे बडा दुख होता था। इस कृति मे मिश्र जी ने सच्चरित्रता को जीवन का सर्वोपरि अग माना है। इसीसे जीवन को अलकृत करने का नवयुको को उपदेश दिया है। नवयुवकों के गिरे हुए चरित्र ने ही मिश्र जी को 'सुचाल-शिक्षा' लिखने को प्रेरित किया। मिश्र जी 'सुचाल-शिक्षा' की भूमिका मे लिखते है—'यदि हमने यह न जाना कि अपने तथा दूसरो के लिए हमे किस-किस रीति से क्या-क्या कर्त्तव्य है तो हमारा दूसरे जीवो मे उत्तम बनना वृथा है। बस यही सिखलाने के उद्देश्य से यह पुस्तक लिखी गई हे। यदि इसमे लिखी हुई बाते हमारे देश के नवयुवकों के हृदय मे स्थान प्राप्त कर सकें तो हम अपना परिश्रम सफल समझेंगे।'[1] 'सुचाल-शिक्षा' उपदेशात्मक ढग से लिखी गयी है। इसमे इक्कीस

---

१. 'प्रतापनारायण ग्रन्थावली' प्रथम खण्ड (२०१४ वि०) पृष्ठ ६३९-४०
'सुचाल शिक्षा' (प्रथम भाग) : प्रतापनारायण मिश्र।

पाठ है और प्रत्येक पाठ अपने मे पूर्ण तथा स्वतन्त्र है। इसके इक्कीस पाठ क्रमश पढ़ना और गुनना, नित्यकर्म, साधारण व्यवहार, समय पर दृष्टि, अवकाश के कर्त्तव्य, मनोयोग, निर्लिप्तता, मिताचरण, लोक-लज्जा, निजत्व, आत्मगौरव, आत्मीयता, अन्तरात्मा का अनुसरण, सगति का विचार, सलग्नता, आत्मनिर्भर, अर्थशुद्धि, स्वत्व सरक्षण, आस्तिकता, कर्त्तव्य पालन, स्मरणीय वाक्य है। इन सभी विषयो का 'सुचाल-शिक्षा' मे क्रमबद्ध और स्पष्ट विश्लेषण किया गया है। उक्त सभी विषय जो नाम से ही अपने अर्थ को स्पष्ट कर रहे है—मानव जीवन क सम्बल है इन्ही के अनुसरण से मानव अपने को उच्च-से-उच्च स्थान पर अधिष्ठित कर सकता है। अन्त मे जो पचास 'स्मरणीय वाक्य' दिये है वे समाज निर्माण के अमूल्य रत्न है जिनको प्रयुक्त कर मानव आदर्श बन सकता है। उपदेश प्रधान होने के कारण इसकी भाषा बडी सरल तथा सामान्य बुद्धिवालो के लिए सहज ही बोधगम्य है। विषय का प्रतिपादन भी क्रमबद्ध रूप से, स्थिरता के साथ समझाते हुए किया गया है। यह कृति चरित्र-निर्माण की दृष्टि से अत्यन्त सुन्दर है। यद्यपि साहित्यिकता के दर्शन इसमे नही होते फिर भी अपने उपदेशात्मक उद्देश्य मे यह पूर्ण सफल है। इसकी सफलता का प्रमाण हमे इसके सन् १९११ ई० के द्वितीय सस्करण से ही मिल जाता है। इस बार इसकी दो हजार प्रतिया निकलवायी गयी जो यह सिद्ध करती हैं कि इसकी माग समाज मे बहुत-अधिक थी। इस कृति का प्रथम भाग ही प्रकाशित हुआ है, आगे इसका कोई भाग नही निकला। इसके देखने से ऐसा ज्ञात होता है कि मिश्र जी इसके और भाग भी लिखना चाहते थे पर असामयिक मृत्यु हो जाने के कारण इसे आगे नही लिख सके। वैसे स्फुट विषयो पर लिखी होने के कारण यह कृति अपने प्रथम भाग मे ही पूर्ण है।

स्वास्थ्य विद्या

यह कृति अनुपलब्ध है। इसमे स्वास्थ्य रक्षा के नियम बताये गये होगे। इस कृति का नाम 'चरितास्टक' प्रथम भाग (१८९८ ई०) के मुख पृष्ठ पर दिया हुआ है। यह खगविलास प्रेस, बाकी पुर (पटना) से प्रकाशित हुई थी। यह कृति किसी बगला-पुस्तक का अनुवाद भी हो सकती है पर जब तक देखने को न मिले, तब तक निश्चित रूप से कुछ नही कहा जा सकता।

शिशु शिक्षा

इसका भी नाम 'चरिताष्टक' प्रथम भाग के मुख पृष्ठ पर—मिश्र-रचित कृतियो के अन्तर्गत दिया हुआ है। यह भी आज अप्राप्त है। इस कृति मे बालोपयोगी शिक्षाएं रही होगी।

लेख, निबन्ध और समालोचना

मिश्र जी अपने लेख, निबन्ध और समालोचनाएं पुस्तकाकार नही निकलवा

सके । ये तत्कालीन पत्रो मे प्रकाशित होती रही हैं । मिश्र जी की मृत्यु के बाद कुछ लेखको ने आंशिक रूप मे, इन्हे संग्रहीत कर प्रकाशित कराया । इन लेखको ने—अन्य तत्कालीन पत्रो के अभाव मे—'ब्राह्मण' मे ही अपने सग्रह ग्रन्थ तैयार किये हैं । सर्वप्रथम सन् १९१९ ई० मे अभ्युदय प्रेस, प्रयाग से 'निबन्ध-नवनीत, पहिला भाग प्रकाशित हुआ इसमे मिश्र जी के ४१ लेख और निबन्ध सकलित है । 'निबन्ध-नवनीत' मे मिश्र जी के प्रमुख निबन्ध ही सकलित किये गये है । इसके बाद सन् १९३३ ई० मे प० रमाकान्त त्रिपाठी ने 'प्रताप-पीयूष' का सम्पादन किया । इसमे मिश्र जी के २५ निबन्ध सगृहीत है । सन् १९३९ ई० मे प्रेमनारायण टण्डन द्वारा 'प्रताप-समीक्षा का सम्पादन किया गया । इसमे केवल १५ निबन्ध दिये गये है । तदुपरान्त १९४७ ई० मे नारायणप्रसाद अरोडा और लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी के सम्पादकत्व मे 'प्रताप-नारायण मिश्र' का प्रकाशन हुआ । इसमे मिश्र जी के १५ लेख तथा निबन्ध और कुछ 'ब्राह्मण' की टिप्पणिया तथा समालोचनाए सगृहीत है । इसके बाद सम्वत् २०१४ वि० मे नागरी प्रचारिणी सभा, काशी मे 'प्रतापनारायण-ग्रन्थावली' प्रथम खण्ड निकला । इसमे 'ब्राह्मण' की कुछ टिप्पणियो के साथ, मिश्र जी के १८९ लेख तथा निबन्ध सकलित है । पर इन सग्रह ग्रन्थो मे मिश्र जी का सम्पूर्ण, लेख, निबन्ध और समालोचना साहित्य नही सकलित हो सका (परिशिष्ट देखिए) । मिश्र जी का प्राप्त लेख, निबन्ध और समालोचना साहित्य केवल दस वर्षो का है । इस साहित्य का प्रकाशन ब्राह्मण मे मार्च १८८३ ई० से जुलाई, १८९३ ई० तक हुआ ।

मिश्र जी के लेख सम्पादकीय टिप्पणियों के रूप मे लिखे गये हैं । इनमे देश की किसी-न-किसी समस्या पर प्रकाश डाला गया है । कुछ लेख 'ब्राह्मण' की स्थिति से सम्बन्धित है, कुछ मे मिश्र जी के जीवन तथा कृतित्व का परिचय मिलता है । ये लेख तत्कालीन स्थिति और मिश्र-साहित्य के क्रमिक-विकास को समझने मे बडे उपयोगी हैं । यद्यपि इनमे साहित्यकता के दर्शन नही होते फिर भी इनका अपना पृथक् महत्व है । इनके अभाव मे मिश्र-साहित्य के मूल स्रोतो को समझना असम्भव है । मिश्र जी के लेखो के नाम इस प्रकार हैं—जरा पढ लीजिए,[1] प्रस्तावना,[2] जरा सुनो तो सही,[3] सूचना,[4] आप बीती,[5] जरा सुनो,[6] महाविज्ञापन,[7] सब की देख ली,[8]

---

१ 'ब्राह्मण' खण्ड ९, संख्या ४,
२. ,, ,, १, ,, १,
३. ,, ,, १, ,, ११,
४. ,, ,, ३, ,, १२,
५. ,, ,, ४, ,, १,
६. ,, ,, ४, ,, ५,
७. ,, ,, ५, ,, ३,
८. ,, ,, ५, ,, ३-४,

विज्ञापन,[1] अवश्य देखिए,[2] अन्तिम सम्भाषण,[3] नव सम्भाषण,[4] वर्षारम्भ,[5] विशेष सूचना,[6] क्षमा कीजिए,[7] आदि। इनकी भाषा बड़ी सरल—समाचार पत्रों की-सी है। साहित्यिकता के न होने के कारण ही सम्पूर्ण लेखों का—आवश्यक होते हुए भी, अब तक समुचित प्रकाशन नहीं हो सका। इनका पूर्ण प्रकाशन वाञ्छनीय है।

निबन्ध-साहित्य मिश्र जी का अपना निराला है। छोटे-से-छोटे विषय को भी मिश्र ने अपनी प्रतिभा से विशिष्ट बना दिया है। इनके निबन्धों में विषय प्रधान न होकर व्यक्तित्व प्रधान हो गया है। भाषा बड़ी सरल तथा प्रभावपूर्ण है। गम्भीर विषय भी उनकी भाषा और शैली से सरल बन गये है। मिश्र जी के निबन्धों का क्षेत्र बड़ा व्यापक है। विभिन्न विषयों पर इन्होंने निबन्ध लिखे हैं। संख्या में भी इनके निबन्ध पर्याप्त है। विषय की दृष्टि से मिश्र जी के निबन्धों को निम्नलिखित भागों में बांटा जा सकता है—

राजनीतिक निबन्ध

इन निबन्धों के अन्तर्गत मिश्र जी के राष्ट्रीय विचार-धारा से सम्बन्धित निबन्ध आयेंगे। जैसे—देशोन्नति,[8] समझदार की मौत है,[9] भारत का सर्वोत्तम गुण,[10] हुची चोट निहाई के माथे,[11] रूस और मूस,[12] देशी कपड़ा,[13] भारत पर भगवान की अच्छी ममता है,[14] हम राजभक्त है,[15] कांग्रेस की जय,[16] स्वप्न,[17] सोशयल

१. 'ब्राह्मण' खण्ड ७, संख्या ६,
२. „ „ ७, „ ९,
३. „ „ ७, „ १२,
४. „ „ ८, „ १,
५. „ „ २, „ १,
६ „ „ २, „ १२,
७ „ „ २, „ ९-१०
८. „ „ १, „ ६, ७: खण्ड २, संख्या २, ५, ६, ९-१०,
९ „ „ २, „ ५,
१०. „ „ ३, „ २,
११ „ „ ३, „ २,
१२ „ „ ३, „ ३,
१३. „ „ ३, „ १२,
१४ „ „ ४, „ ७,
१५ „ „ ५, „ २,
१६. „ „ ५, „ ६,
१७. „ „ ६, „ ५.

कान्फरेन्स,[1] पचायत,[2] यह तो बतलाइये,[3] ग्रामो के साथ हमारा कर्त्तव्य,[4] सहबास बिल अवश्य प्राप्त होगा,[5] न जाने क्या होना है,[6] पुलिस की निन्दा क्यो की जाती है,[7] उन्नति की धूम[8] आदि। इनमे मिश्र जी ने शासको की नीति के सजीव चित्र खीचे है। अग्रेजो की अनैतिकता, पक्षपात, शोषण आदि का बडी निर्भीकता के साथ खण्डन किया है। साथ ही जब-कब अग्रेजो द्वारा की गई—हिन्दुओ के प्रति सहानुभूति की प्रशसा की है। पुलिस की निर्ममता, अग्रेजी शासन का देश पर प्रभाव टैक्सो मे वृद्धि, नि शस्त्री करण, देशद्रोहियो आदि की खुलकर—कठोर शब्दो मे आलोचना की गई है। स्वदेशी वस्तुओ के प्रचार और काग्रेस के प्रति निष्ठा का स्वर इन निबन्धो मे तीव्रतर होकर आया है। इन निबन्धो मे मिश्र जी एक सच्चे देश-भक्त के रूप मे दिखाई पडते हैं। देशहित की बात कहने मे वे जरा भी आगा-पीछा नही करते। 'खरी बात शाहिदुल्ला कहे सबके दिल मे उतरे रहै' ही उनके जीवन का उद्देश्य बन गया है। राजनीतिक निबन्धो मे मिश्र जी की देश और जाति की ममता कूट-कूट कर भरी है। जनता मे राष्ट्रीय चेतना के भाव भरने मे ये निबन्ध पूर्ण सफल है।

सामाजिक निबन्ध

इन निबन्धो मे मिश्र जी ने समाज की कुरीतियो की ओर सकेत किया है। आपसी फूट, अशिक्षा, अन्धविश्वास, बाल्य-विवाह, छुआछूत, अनमेल विवाह, अकर्मण्यता आदि को सामाजिक विघटन का कारण माना है और इन दोषो की बडी भर्त्सना की है तथा नारी शिक्षा, एकता, कृषि और व्यापार को बढाने की ओर जनता को प्रोत्साहित किया है। इन निबन्धो मे ठगो के हथखण्डो मे भी जनता को सचेत किया गया है। मिश्र जी अपने निबन्धो द्वारा जनता तत्कालीन स्थिति से परिचय कराते तथा उसे जीवन को सफल और उन्नतिशील बनाने का उपाय भी बताते रहते थे। सामाजिक निबन्धो के अन्तर्गत मिश्र जी के दयापात्र जीव,[9] गुप्त ठग,[10] मार-मार कह जाओ

---

१ 'ब्राह्मण' खण्ड ६, सख्या ६,
२ ,, ,, ७, ,, १-२,
३. ,, ,, ७, ,, १-२,
४. ,, ,, ७, ,, ६,
५. ,, ,, ७, ,, ७,
६. ,, ,, ७, ,, ७,
७. ,, ,, ८, ,, ४-५,
८. ,, ,, ८, ,, ६,
९ ,, ,, १, ,, ३,
१० ,, ,, १, ,, ४,

नामर्द तो खुदा ही ने बनाया है,[1] जरा अब तो आखे खोलिए,[2] मुक्ति के भागी,[3] फूटी सहैं आजी न सहे,[4] बेकाम न बैठ कुछ किया कर,[5] घूरे के लत्ता बिनै कनातन का डौल बाधै,[6] विस्फोटक,[7] बस-बस होश मे आइए,[8] तत्व के तत्व मे अंग्रेजीबाजो की भूल है,[9] बाल्याविवाह विषयक एक चीज,[10] दुनिया अपने मतलब की है,[11] ऊच निवास करतूती,[12] समझने की बात,[13] एक विचार,[14] ठगो के हथखण्डे,[15] धरती माता,[16] समय का फेर,[17] भलमसी,[18] मित्र कपटी भी बुरा नही होता,[19] पढे लिखो के लक्षण,[20] आदि निबन्ध उल्लेखनीय है ।

धार्मिक निबन्ध

धार्मिक निबन्धो मे मत-मतान्तरो, गोवध, पशुबध आदि का निषेध किया गया है तथा पाखण्डियो, बनावटी साधु-सतो, आडम्बर पूर्ण व अन्धविश्वासी पुरोहितो, मूर्तिद्वेषियो, विभिन्न देवोपासको आदि की आलोचना की गयी है। इनमे एक प्रेमो-पासना का उपदेश दिया गया है और सभी मतो मे समन्वय स्थापित करने का प्रयत्न

---

१. 'ब्राह्मण' खण्ड १, सख्या ५,
२. ,, ,, १, ,, ८,
३. ,, ,, १, ,, १०,
४. ,, ,, १, ,, १२,
५. ,, ,, १, ,, १२,
६ ,, ,, २, ,, १,
७ ,, ,, २, ,, २,
८. ,, ,, ३, ,, २,
९. ,, ,, ३, ,, ३,
१०. ,, ,, ३, ,, ११,
११. ,, ,, ४, ,, १,
१२. ,, ,, ४, ,, ५,
१३ ,, ,, ५, ,, ७,
१४. ,, ,, ५, ,, ८,
१५. ,, ,, ५, ,, ९,१० खण्ड ६, सख्या २
१६. ,, ,, ५, ,, ९,
१७. ,, ,, ५, ,, १०,११, खण्ड ६, संख्या ८,९,१०,
१८. ,, ,, ६, ,, २,
१९. ,, ,, ८, ,, १०,
२०. ,, ,, ८, ,, १,

किया गया है। तत्कालीन धार्मिक संस्थाओं के प्रति भी मिश्र जी की बड़ी सहानुभूति थी पर उनके सभी कार्य उन्हें पसन्द नहीं थे। इन संस्थाओं के एकता विरोधी तत्वों की मिश्र जी भर्त्सना करते थे। मिश्र जी धार्मिक क्षेत्र में भी एकता और शान्ति स्थापित करने के पक्षपाती थे। धार्मिक निबन्धों में कचहरी में शालिग्राम जी,[1] मतवालों की समझ,[2] प्रेम एवं परोधर्म,[3] गंगा जी,[4] पादरी साहब का व्यर्थ यत्न,[5] बलि पर विश्वास,[6] कलिमहं केवल नाम प्रभाऊ,[7] नास्तिक,[8] मतवादी अवश्य नर्क जायेंगे,[9] धर्म और मत,[10] मूर्तिपूजकों की महौषध,[11] देवमन्दिरों के प्रति हमारा कर्त्तव्य,[12] हरि जैसे को तैसा है,[13] दशावतार,[14] प्रतिमा पूजन के द्वेषी देश हितैषी क्यों बनते हैं,[15] पुराण समझने को समझ चाहिए,[16] प्रतिष्ठा केवल प्रेम देव की है,[17] गोरक्षा,[18] नवपन्थी और सनातनाचारी,[19] आदि निबन्ध दृष्टव्य है।

साहित्यिक निबन्ध

इन निबन्धों में अधिकांश सामान्य विषयों पर लिखे गये हैं पर सामान्य विषयों पर लिखे गये निबन्धों में भी इनकी विलक्षण प्रतिभा के दर्शन होते हैं। कुछ निबन्धों

---

१. 'ब्राह्मण' खण्ड १, संख्या ८,
२. ,, ,, २, ,, ३,४,
३. ,, ,, ३, ,, ३-४,६,
४. ,, ,, ३, ,, ९-१०,
५. ,, ,, ४, ,, ६,
६. ,, ,, ५, ,, ८,९,
७. ,, ,, ५, ,, १,
८ ,, ,, ५, ,, ३,५,
९. ,, ,, ५, ,, १०,११,
१०. ,, ,, ६, ,, ३,
११. ,, ,, ७, ,, ४,
१२. ,, ,, ७, ,, ८,
१३. ,, ,, ७, ,, ११,
१४. ,, ,, ७, ,, ११,
१५. ,, ,, ८, ,, ८,
१६ ,, ,, ८, ,, १२,
१७. ,, ,, ९, ,, ४,
१८. ,, ,, ९ ,, ६,
१९. ,, ,, ९, ,, १२,

मे भाषा और छन्दों का विवेचन किया गया है जिनमे इनके प्रौढ शास्त्रीय ज्ञान का परिचय मिलता हे, जैमे—आल्हा आल्हाद,[1] खडी बोली का पद्य,[2] उर्दू बीबी की पूजी,[3] अपभ्रश,[4] एक सलाह,[5] भ्रम है[6] आदि। कुछ निवन्ध भावात्मक भी हैं जैसे—मनोयोग,[7] चिन्ता,[8] काम,[9] स्वार्थ[10] आदि। सामान्य विषयों पर लिखे गये निबन्धों मे मोना,[11] द,[12] मिडिल क्लास,[13] वालक,[14] भौ,[15] युवास्था,[16] नारी,[17] मोने का डण्डा और पौडा,[18] मरे का मारै साह मदार,[19] न्याय,[20] ट,[21] प्रतिग्रना,[22] पक्ष,[23] जुवा,[24] खुशामद,[25] दात,[26] एक,[27] लत,[28] उपाधि,[29]

१. 'ब्राह्मण' खण्ड ५, सख्या ५,६,१२, खण्ड ७, सख्या १,२
२ ,, ,, ४, ,, ७,८
३ ,, ,, ४, ,, २,
४. ,, ,, ७, ,, ६,
५. ,, ,, ८, ,, ६,
६. ,, ,, ७, ,, ११,
७. 'प्रतापनारायण-ग्रन्थवली' प्रथम खण्ड (२०१४ वि०) पृष्ठ ६६०-६३
८. 'ब्राह्मण' खण्ड ९, संख्या ६,
९ ,, ,, ५, ,, २,
१० ,, ,, ६, ,, २,
११ ,, ,, ३, ,, १२,
१२. ,, ,, ४, ,, २,
१३. ,, ,, ४, ,, २,
१४ ,, ,, ४, ,, ३,
१५ ,, ,, ४, ,, ३,
१६ ,, ,, ४, ,, ४,
१७ ,, ,, ४, ,, ४,
१८ ,, ,, ४, ,, २,
१९ ,, ,, ४, ,, ९,
२०. ,, ,, ४, ,, १०,
२१. ,, ,, ४, ,, ११,
२२. ,, ,, ४, ,, १२,
२३. ,, ,, ५, ,, ७,
२४. ,, ,, ५, ,, ४,
२५. ,, ,, ५, ,, ५,
२६. ,, ,, ५, ,, ९,
२७. ,, ,, ५, ,, ११,
२८. ,, ,, ५, ,, ११,
२९. ,, ,, ५, ,, १२,

न,[1] काल,[2] वृद्ध,[3] दो,[4] सत्य,[5] ममता,[6] पेट,[7] बात,[8] स्वतन्त्रता,[9] विश्वास,[10] आप,[11] परीक्षा,[12] धोखा[13] आदि विशेष उत्कृष्ट हैं। मिश्र जी के सभी साहित्यिक निबन्ध व्यक्तिपरक है। इनमे उनकी अपनी शैली है। रोचकता की दृष्टि से मिश्र जी के सभी निबन्ध अद्वितीय है। इनके निबन्धो मे विचारो की गहनता न होकर व्यक्तित्व की प्रबलता है। साहित्यिक निबन्धो मे भी देश-प्रेम की झलक यत्र-तत्र दिखाई पडती है।

हास्य और व्यंग्य परक निबन्ध

मिश्र जी जन्म से ही विनोदी प्रकृति के थे इसलिए इनके सभी निबन्धो मे कुछ-न-कुछ हास्य और व्यग्य का पुट अवश्य मिलता है। यहा तक कि गम्भीर विषयो मे भी वे हास्य और व्यग्य मे अपने को मुक्त नही रख पाते। मिश्र जी ने कोरे हास्य और व्यग्य के लिए कोई निबन्ध नही लिखा। जो निबन्ध इस कोटि मे आते भी हैं उनमे किसी न किसी सामाजिक दशा का चित्रण प्राय. रहता है फिर भी हास्य और व्यग्य की प्रधानता के कारण उन्हे हम सामाजिक निबन्धो के अन्तर्गत नही रख सकते। इन निबन्धो मे मिश्र जी के हो ओ ओ ली है,[14] मस्ती के बड़,[15] किस पर्व मे किसकी बनि आती है,[16] किस पर्व मे किस पर आफत आती है,[17] तिल,[18] छै। छै॥

---

१. 'ब्राह्मण' खण्ड ५, सख्या १२,
२. ,, ,, ६, ,, ७,
३. ,, ,, ६, ,, ८,
४. ,, ,, ६, ,, ९,
५. ,, ,, ७, ,, १-२,
६. ,, ,, ७, ,, ३,
७. ,, ,, ७, ,, ९,
८ ,, ,, ७, ,, १०,
९. ,, ,, ७, ,, १२,
१०. ,, ,, ८, ,, ६,
११. ,, ,, ९, ,, ८,
१२. ,, ,, ४, ,, ८,
१३ ,, ,, ९, ,, ९,
१४. ,, ,, १, ,, १,
१५. ,, ,, १, ,, ७,
१६. ,, ,, ५, ,, ८,
१७. ,, ,, ५, ,, ८,
१८. ,, ,, ६, ,, ६,

छैं ।।।,[१] जवानी की सैर,[२] मुच्छ,[३] होली है,[४] आदि विशेष उल्लेखनीय है। मिश्र जी ने हास्य और व्यग्य की योजना शब्द ओर अर्थ दोनो मे की है इसके लिए इन्होने कहावतो, मुहावरो आर श्लेषो का बहुतायत से प्रयोग किया है। इनके व्यग्यात्मक निबन्ध बडे हृदयस्पर्शी है। व्यग्य के माध्यम से ये समाज की कुरीतियो की कटु-से-कटु आलोचना कर जाते है और पाठक भी उन्हे हसकर सहन कर लेते है। मिश्र जी अपने इन निबन्धो मे बडे सफल है।

• मिश्र जी का समालोचना साहित्य विज्ञापनो के रूप मे लिया गया है। जो पुस्तके इनके पास विज्ञापन के लिए आती थी, उनपर ये सक्षिप्त समालोचनाए लिखकर 'ब्राह्मण' मे प्रकाशित करते थे। इनकी समालोचनाए छोटी होते हुए भी बडी चुटीली होती थी। इनमे भाषा, विषय आदि पर पूरा बिचार किया गया है। मिश्र जी का युग समालोचना का प्रारभ काल था इसलिए इस युग मे व्यवस्थित और विस्तृत समालोचनाए नही मिलती। फिर भी जितनी प्रगति इस क्षेत्र मे हुई थी उसमे मिश्र जी पीछे नही थे बल्कि उसे आगे बढाने मे ही प्रयत्नशील थे। मिश्र जी ने समाचार पत्रो तथा तत्कालीन प्रकाशित पुस्तको-दोनो पर अपनी समालोचनायें लिखी है। इनकी, सुखद वार्ता[५] (मास्टर नन्हेमल), लतिका नाटिका[६] (अम्बिकादत्त व्यास) तप्तासवरण नाटक[७] (लाला श्री निवासदास) श्रगारलतिका[८] (नकछेदी तिवारी) देवी स्तुतिशतक[९] (महावीरप्रसाद द्विवेदी) ऊजडगाव[१०] (श्रीधर-पाठक) वेनिस का बाका[११] (अयोध्यासिह उपाध्याय) आदि पुस्तकों तथा वैष्णव पत्रिका,[१२] आनन्दकादम्बिनी,[१३] सुश्रुत-सहिता[१४] आदि पत्रों पर लिखी गयी समालो-

---

१ 'ब्राह्मण' खण्ड सख्या ८, ४-५,
२. ,, ,, ४, ,, ६,
३ ,, ,, २, ,, ९-१०,
४ ,, ,, ९, ,, ८,
५. ,, ,, १, ,, ७, ('समालोचना')
६. ,, ,, १, ,, ७, ('समालोचना')
७. ,, ,, १, ,, ८, ('समालोचना')
८ ,, ,, १, ,, ९, ('समालोचना')
९ ,, ,, ९, ,, ४, ('प्राप्ति स्वीकार')
१० ,, ,, ६, ,, ६, ('समालोचना')
११. ,, ,, ५, ,, ६, ('समालोचना')
१२. ,, ,, १, ,, ५, ('वैष्णावपत्रिका की आलोचना')
१३. ,, ,, ३, ,, ७, ('प्राप्ति स्वीकार')
१४. ,, ,, ३, ,, ८, (सुश्रुत-सहिता')

चनाएं बड़ी उत्कृष्ट है। इनमें कृति की उपयोगिता और भाषा दोनों पर विचार किया गया है। हिन्दी समालोचना-साहित्य के मूल में जाने के लिए ये द्रष्टव्य हैं। मिश्र जी की सभी समालोचनाएं ब्राह्मण में प्रकाशित हुई हैं। इनका भी एक सुव्यवस्थित प्रकाशन वांछनीय है।

अपूर्ण

नूतन भक्त माल

इस कृति का प्रकाशन 'ब्राह्मण' में खण्ड ३, संख्या ५ (जुलाई, १८८५ ई०) से प्रारंभ हुआ था पर मिश्र जी इसे पूर्ण नहीं कर सके। इसके केवल तीन छप्पय ही ब्राह्मण में प्रकाशित हुए हैं। इस कृति के प्रारम्भ में प्रेम भगवान की स्तुति दो दोहों में की गयी है। इसके बाद पहले छप्पय की दो पंक्तियाँ प्रकाशित होने से रह गयी हैं। प्राप्त प्रथम पंक्ति भी गड़बड़ है। दूसरा छप्पय बाबू केशवचन्द्र पर लिखा गया है इसमें केशवचन्द्र द्वारा किये गये कार्यों की प्रशंसा की गई है। तीसरे छप्पय में गोविन्दाश्रम स्वामी की प्रशस्ति है। इस कृति में मिश्र जी नवीन भक्तों के चरित्र अंकित करना चाहते थे क्योंकि वे इसकी भूमिका में लिखते हैं—"इसमें केवल उन भक्तों का चरित्र धीरे-धीरे प्रकाशित होगा, जिनका नाभा जी, भारतेन्दु जी और श्री गोस्वामी जी' ने वर्णन नहीं किया। हमारे पाठकों से छिपा नहीं है कि भक्त, विद्वान, परोपकारी इत्यादि संसार समुद्र के रत्न होते हैं इनके वृत्त को देखना, सुनना, अनुकरण करना महालाभकारी होता है। हमारी समझ में राजाओं के चरित्र से अधिक भक्तों की लीला स्मरणीय है।"[1] यद्यपि इस कथन के बाद मिश्र जी ९ वर्ष तक जीवित रहे, फिर भी किन्हीं कारणों से वह इसे पूर्ण नहीं कर सके।

दूध का दूध पानी का पानी (भाणका)

इस भाण प्रारम्भिक अंश 'ब्राह्मण' खण्ड १, संख्या ६, ७ (१८८३ ई०) में प्रकाशित हुआ था पर किन्हीं कारणों से मिश्र जी ने इसे पूरा नहीं किया। इस भाण का कथानक एक सत्य घटना पर आधारित है। इसके न लिखने का बहुत-कुछ कारण इस सत्य घटना से सम्बन्धित लोगों के आक्षेप भी हो सकते हैं। इसका कथानक इस प्रकार है—बाढ़ापुर निवासी ठाकुर विजयसिंह के जब कोई सन्तान न हुई तब उन्होंने अपने भांजे के लड़के बालकृष्ण को गोद लिया। विजयसिंह और उनकी पत्नी—दोनों ही दत्तकपुत्र से बड़ा स्नेह करते थे। कुछ समय के बाद विजयसिंह की मृत्यु हो गयी। अब नियमानुसार उनकी सम्पति का अधिकारी दत्तक पुत्र को ही होना चाहिए था पर उनके परिवार वाले—टेकचन्द ने विजयसिंह की सम्पत्ति हड़पनी चाही। जबकि दोनों का बटवारा विजयसिंह के पिता के समय ही हो चुका

---

१. 'ब्राह्मण' खण्ड ३, संख्या ५, 'नूतन भक्त माल' : प्रतापनारायण मिश्र

था। विजयसिंह की विधवा पत्नी बड़ी पतिव्रता थी उसको अनाथ समझ कर टेकचन्द ने – उसकी सम्पत्ति की प्राप्ति के हेतु – नालिश कर दी। इतना ही लिखकर मिश्र-जी ने इस भाण को छोड़ दिया। इसके देखने से ऐसा लगता है कि मिश्र जी रूपक के सभी भेदों पर कुछ न कुछ लिखना चाहते थे।

जुआरी-खुआरी (प्रहसन):

इस प्रहसन का पहला अंक 'ब्राह्मण' के खण्ड १, संख्या ९, (नवम्बर, १८८३ ई०) में प्रकाशित हुआ था। इसके बाद इसका कुछ अंश 'हिन्दोस्थान' में (जब मिश्र जी कालाकाकर में थे) प्रकाशित हुआ। आगे, १८९२ ई० में मिश्र जी इसे पूरा करना चाहते थे पर इसकी फाइल (जिसमें जुआरी-खुआरी प्रकाशित हुआ था) उन्हें उपलब्ध न हो सकी। वे बालमुकुन्द गुप्त को, अपने ५ जनवरी, १८९२ ई० के पत्र में लिखते हैं—"एक तकलीफ देंगे पर जल्द मदद दीजिए तो बने, नहीं तबीयत और कोठे में गई तो फिर बस! इन दिनों जी भी चाहता है, कई मित्रों का तकाजा भी है इसमें मतलब की सुनिए—आपके पास हिन्दोस्थान का फायल जरूर है, उसमें हमारा जुआरी-खुआरी प्रहसन है अधूरा, यदि उसकी नकल भेज दीजिए तो पूरा करके छपवा डालें, नहीं इच्छा आपकी, कालेकाकर वाले कहते है पुरानी कापी नही रही, इसीसे आपको कष्ट देते है। कबूल हो तो खैर नही तो अभाग्य।"[1] सम्भवत: 'जुआरी-खुआरी' की प्रतिलिपि बालमुकुन्द गुप्त से भी मिश्र जी को नहीं प्राप्त हुई और यह कार्य अपूर्ण ही रह गया। प्राप्य प्रहसन का कथानक इस प्रकार है—गप्पूमल की बैठक लगी हुई है। पचकौड़ीलाला, धनदास, कुबेरचन्द बैठे हैं। दीपावली समीप है। सभी जुआ खेलने की बात कर रहे हैं। इतने में प० लक्ष्मीदास उधर से निकलते हैं। सभी पैलागी करते हैं। पंडित जी आशीर्वाद देते हैं। लाला मक्कालाल का इकलौता लड़का बीमार है उसी का वर्षफल विचार कर पडित जी लौट रहे थे। ये लोग भी जुआ का परिणाम विचरवाते हैं। धनदास जुआ जीतने का जंतर पंडित जी से मांगता है और पंडित जी से कहता है आप भी जुए के पास रहिएगा पर पंडित जी कहते हैं हम घर पर ही तुम्हारे जीतने की पूजा करेंगे, केवल पूजा की सामग्री के लिए पचास रुपये पहले लगेंगे। धनदास रुपया देना स्वीकार कर लेता है। सभी पंडित जी की प्रशंसा करते है। इस प्रहसन की भाषा पात्रानुकूल है। इसकी हास्य योजना में भी मिश्र जी पूर्ण सफल है।

प्रताप चरित्र

इसमें मिश्र जी ने अपना जीवन-चरित्र लिखना प्रारम्भ किया था पर किसी कारण से वह इसमें अपने पूर्वजों की ही कथा लिखकर रह गये। 'प्रताप-चरित्र' का

---

१. 'बालमुकुन्द गुप्त-स्मारक-ग्रंथ' (२००७ वि०) पृष्ठ ५१ मिश्र जी के पत्र से।

प्रकाशन 'ब्राह्मण' के खण्ड ५, सख्या २, ३ और ४ (१८८८ ई०) मे हुआ था। जीवन-चरित्र लिखने के मिश्र जी बडे पक्षपाती थे वे लिखते है—"हमारी समझ मे तो जितने मनुष्य है सबका जीवन लेखनी बद्ध होना चाहिए। इसका बडा लाभ यह होगा कि उसकी भलाई को ग्रहण करके बुराइयो से बच के, दूसरे सैकडो लोग अपना भला कर सकते है। हमारे देश मे यह लिखने की चाल नहीं है इससे बडी हानि होती है। मै उनका बडा गुण मानूगा जो अपना वृत्तान्त लिख के मेरा साथ देगे, जिसके अनेक मधुर फल लेखको को यदि न भी मिले तो भी बहुत दिनो तक बहुत से लोग बहुत कुछ लाभ उठावेगे।"[1] इसमे मिश्र जी ने अपने पिता के बाल्य-जीवन तक की कथा दी है यदि यह जीवन-चरित्र पूर्ण हो जाता तो मिश्र-साहित्य के अध्ययन मे इससे बडी सहायता मिलती। बाबू बालमुकुन्द गुप्त 'प्रताप-चरित्र' के विषय मे लिखते है—"क्या अच्छा होता, जो पण्डित प्रतापनारायण मिश्र अपनी जीवनी आप लिख डालते। बडे मौके से उन्होने अपने 'ब्राह्मण' पत्र मे अपनी जीवनी स्वय लिखनी प्रारम्भ की थी। उसके बाद वह चार-पाच साल तक जीते रहे थे। यदि थोडी-थोडी भी लिखते तो बहुत-कुछ लिख जाते। अपनी जीवनी का जितना अश वह 'ब्राह्मण' के तीन अको मे लिख गये है, उसे पढकर बार-बार जी मे यही होता है कि यदि सब नही, तो अपने पिता के सम्बन्ध की पूरी बाते और अपने लडकपन की बाते तो लिख ही जाते। प्रसिद्ध लोगो की जीवनिया बहुत करके दूसरो ही की लिखी हुई होती है, पर बहुत से प्रसिद्ध लोगो ने अपनी पूरी या अधूरी जीवनियाँ स्वय भी लिखी है और वह दूसरो की लिखी जीवनियो से कम काम की नही हुई, वरच कितने ही अशो मे बढकर हुई है। मनुष्य की कितनी ही बाते और कितने ही विचार ऐसे है, जिनको वह स्वय ही भली-भाति जानता है और लिख सकता है।"[2]

पौराणिक गूढ़ार्थ

इस कृति का प्रकाशन 'ब्राह्मण' मे खण्ड ६, संख्या ८ (१८९० ई०) से प्रारम्भ हुआ था और कई अको तक यह निकलती रही थी। इसका पृथक् पुस्तकाकार प्रकाशन नहीं हुआ। यह 'शैव-सर्वस्व' की तरह वैज्ञानिक पीठिका पर लिखी गई है। 'शैव-सर्वस्व' मे मिश्र जी ने एक स्थान पर इस कृति का सकेत किया है—"जिन मतो मे प्रतिमा पूजन का महा-महा निषेध है उनके धर्मग्रन्थो मे भी ईश्वर के हाथ पाव नेत्रादि का वर्णन है, फिर हमारे पूर्वजो के लेखो का तो कहना ही क्या है जिनकी कल्पना शक्ति के विषय मे हम सच्चे अभिमान से कह सकते है कि दूसरे देश वालो को वैसी-वैसी बाते समझनी ही कठिन है, सूझने की तो क्या कथा। उनकी

---

१. 'ब्राह्मण' खण्ड ५, संख्या २, ('प्रताप-चरित्र')

२. 'बालमुकुन्द गुप्त-निबन्धावली' प्रथम भाग, (२००७ वि०), पृष्ठ १०

छोटी-छोटी बातों मे बडे-बड़े आशय है। (यह विषय दूसरी पुस्तक मे लिखा गया है) फिर यह तो धर्म का अग है, इसका क्या कहना ।"[१] यहा पर यह कहना न होगा कि मिश्र जी की यह दूसरी पुस्तक 'पौराणिक गूढार्थ' ही है। 'शैव सर्वस्व' और 'पौराणिक गूढ़ार्थ' की प्रतिपादन शैली एक-सी ही है। और दोनों पुस्तके एक दूसरे से सम्बद्ध है (विशेष रूप से शिवमूर्ति का प्रसग) 'पौराणिक गूढ़ार्थ', मे भी मिश्र जी 'शैव सर्वस्व' की सूचना देते हैं—"भगवान भोलानाथ के बाहन भूषणादि का वर्णन पुरानी सख्याओ मे लिखा जा चुका है और 'शैव सर्वस्व' नामक पुस्तिका मे पृथक् छप रहा है, इसमे बार-बार लिखने की आवश्यकता नही है।"[२] 'पौराणिक गूढार्थ' नयी बुद्धि वालो को समझाने के लिए लिखा गया है। मिश्र जी लिखते है—"अग्रेजी ढग की शिक्षा पाने वालो म न जाने यह दोष क्यों हो जाता है कि जो बातें सहज मे नही समझ पडती उन्हे मिथ्या समझ बैठते है। यदि इतना ही होता तो भी इसके अतिरिक्त कोई बडी हानि न थी कि थोडे से लोग कुछ का कुछ समझ लें। पर खेद यह है कि वे अपनी अनुमति देने मे अपने पूर्वजो की प्रतिष्ठा का कुछ भी ध्यान न करके बिन समझी बातो के विषय मे भी बहुधा ऐसी निरकुश भाषा का प्रयोग कर बैठते है जिसमे विद्वानो को खेद और साधारण लोगो को क्षोभ उत्पन्न होके परस्पर की प्रीति मे बडा भारी धक्का लगता है। आजकल सब समाजे आपस के हेल मेल को आवश्यक समझती है एव विचारशील लोग सारे धर्म कर्मादि से एकता को श्रेष्ठ समझते है। पर इन ऐक्य-भावुको मे भी बहुत से लोग ऐसे विद्यमान है जो अपने यहा के मुहावरे और प्राचीन काल के रग से अनभिज्ञ होने के कारण जब तब कह बैठते है कि पुराण मिथ्या हैं, प्रतिमा पूजन वाहियात है, यह सब पडितो के ढको-सले है।"[३] इसी स्थिति ने मिश्र जी को 'पौराणिक गूढार्थ' लिखने के लिए प्रेरित किया। इसमे मिश्र जी ने देवी, देवताओं के वाहन, भूषणादि का वैज्ञानिक ढग से वर्णन किया है। देवताओ की चार अथवा आठ भुजाओ, सिंह, वृषभ, मूषक, गरुड, मृग, उलूक, मत्स्य, मयूर आदि वाहनो; इन्द्र के सहस्र नेत्रो, शेषनाग के सहस्त्र मुखो आदि का गूढार्थ समझाया गया है। इसमें मिश्र जी की भाषा बडी प्रौढ है तथा बड़ी गम्भीरता के साथ तर्क देते हुए विषय का विवेचन किया गया है। इसके विवेचन मे इनकी दूर की सूझ स्पष्ट दिखाई पडती है।

---

१. 'प्रतापनारायण-ग्रन्थावली' प्रथम खण्ड (२०१४ वि०) पृष्ठ ६१८ 'शैव-सर्वस्व' प्रतापनारायण मिश्र

२. 'ब्राह्मण' खण्ड ६, संख्या ९, पौराणिक गूढ़ार्थ : प्रतापनारायण मिश्र

३. 'ब्राह्मण' खण्ड ६, संख्या ८, ('पौराणिक गूढ़ार्थ'):

रामायण रमण

रामायण रमण का लिखना मिश्र जी ने 'ब्राह्मण' खण्ड ९, सख्या ६ (जनवरी-१८९३ ई०) मे प्रारभ किया था। पर असामयिक मृत्यु हो जाने से आगे नही लिख सके। मिश्र जी को रामायण से बडा प्रेम था, वे इस पुस्तक के लिखने का सकेत बहुत पहले कर चुके थे—"यदि हम अपन को सुधारना चाहे तो अकेली रामायण मे सब प्रकार के सुधार का मार्ग पा सकते है (जिसका वर्णन फिर भी) हमारे कविवर बाल्मीकि ने रामचरित्र मे कोई उत्तम बात नही छोडी एव भाषा भी इतनी सरल रक्खी है कि थोड़ी सी सस्कृत जानने वाला भी समझ सकता है। यदि इतना श्रम भी न हो सके तो भगवान तुलसी दास की मनोहारिणी कविता थोडी सी हिन्दी जानने वाले भी समझ सकते है, सुधा के समान कल्यानन्द पा सकते है और अपना तथा देश का सर्व प्रकार हित साधन कर सकते हैं।"[1] "रामायण रमण मे मिश्र जी रामायण की उपदेश प्रधान-मार्मिक कथाओ को लिखना चाहते थे। इसके लिखन मे उनका उद्देश्य केवल कथा का ज्यो-का-त्यो लिख देना न था बल्कि उसमे छिपे हुए आदर्श और उपयोगी तत्वों की जनता के सामने रखना था।[2] प्राप्त' रामायण रमण' के अश मे उन्होने रामचन्द्र जी के विश्वामित्र के साथ जाने का प्रसग लिया है और उसमे रामचन्द्र जी की कर्त्तव्य-परायणता का विवेचन किया है। इसकी प्रतिपादन शैली बड़ी ही सरल और सहज ही बोधगम्य है।

संदिग्ध

गो संकट नाटक

महावीर प्रसाद द्विवेदी ने अपने लेख मे इस नाटक को प्रतापनारायण मिश्र कृत माना है।[3] लेकिन मिश्र जी की कृतियों मे इसका उल्लेख कही नहीं मिलता। हा, 'ब्राह्मण' दिसम्बर, १८८७ ई० के अश मे मिश्र जी ने 'गो सकट नाटक' के अभिनय की सूचना दी है पर इस लेख के अन्त मे इसे 'पीयूष प्रवाह' सम्पादक अम्बिकादत्त व्यास कृत लिखा है।[4] अत. यह नाटक अम्बिकादत्त व्यास का लिखा हुआ है। अब यह नही कहा जा सकता कि सन् १८८७ ई० के बाद मिश्र जी ने भी इसी नाम से कोई नाटक लिखा हो, पर ऐसा कोई नाटक (मिश्र लिखित) प्राप्त नही है।

---

१. 'ब्राह्मण' खण्ड ६, संख्या १, राम' प्रतापनारायण मिश्र
२. 'ब्राह्मण' खण्ड ९, सख्या ६, रामायण रमण' : प्रतापनारायण मिश्र
३ 'सरस्वती' मार्च, १९०६ ई० 'पडित प्रतापनारायण मिश्र महावीर प्रसाद द्विवेदी
४. 'ब्राह्मण' खण्ड ४, संख्या ५, 'कानपुर कुछ कुमुनाया है' : प्रतापनारायण मिश्र

भारतेन्दु-धरामृत

इस कृति का उल्लेख सुधाकर पाण्डे ने मिश्र जी के नाटककों के अन्तर्गत किया है।[1] लेकिन इस नाम का कोई भी नाटक मिश्र जी का लिखा हुआ प्राप्त नही होता।

सौन्दर्यमयी

इसका उल्लेख 'मिश्रबन्धु-विनोद' तृतीय भाग मे मिश्र जी की रचनाओ के अन्तर्गत किया गया है[2] पर यह आज अनुपलब्ध है, साथ ही इसका उल्लेख भी अन्यत्र कही नही मिलता।

प्रताप-संग्रह

इस कृति का नाम प्रेमनारायण टण्डन ने मिश्र जी की कविता-पुस्तको की सूची मे दिया है[3] लेकिन यह कृति भी देखने मे नही आयी।

इसके अतिरिक्त त्रिलोकीनारायण दीक्षित ने मिश्र जी को 'जयनारसिंह' प्रहसन का भी रचयिता माना है[4] पर यह नाटक 'प्रयाग-समाचार' सम्पादक प० देवकीनन्दन त्रिपाठी का लिखा है, इसका उल्लेख मिश्र जी ने स्वतः ही—'ब्राह्मण' मे किया है।[5]

अनूदित-साहित्य

हिन्दी को समृद्धिशाली बनाने तथा जनता को उसकी ओर आकृष्ट करने के उद्देश्य से मिश्र जी ने अनेक बँगला पुस्तको का हिन्दी मे अनुवाद किया। इनकी बहुत सी अनूदित पुस्तके शिक्षा-सस्थाओ मे भी स्वीकृत हुई। इन अनुवादो मे मिश्र जी ने, अपनी किसी मौलिकता का परिचय नही दिया, केवल मूल-ग्रन्थो का—सरल भाषा मे—अक्षरशः अनुवाद कर दिया है यहा तक कि पुस्तको के नाम, शीर्षक, प्रकरण, खण्ड आदि भी मूल-ग्रन्थो के सदृश ही है। इसके सभी अनूदित-ग्रन्थ खगविलास प्रेस, बाकीपुर, (पटना) से प्रकाशित हुए है। अनुवाद-कार्य मिश्र जी ने अपने जीवन के अन्तिम वर्षो मे किया था। ये अधिकाश ग्रन्थ सन् १८९० ई० से १८९४ ई० तक प्रकाशित हुए है। कुछ मिश्र जी की मृत्यु के बाद भी (जिन्हे मिश्र जी अनूदित करके छोड गये थे) उक्त प्रेस से प्रकाशित हुए। यहा पर अनूदित—ग्रन्थो का विस्तार से विवरण देना अनावश्यक होगा क्योकि मिश्र जी ने इनमे अपनी किसी नवीनता का समावेश नही किया। अत नीचे इनका सक्षेप मे परिचय दिया जायगा।

---

१. सुधाकर पाण्डेय : हिन्दी साहित्य और साहित्यकार' (१९६१ ई०) पृ० १७३
२. मिश्रबन्धु : 'मिश्रबन्धु-विनोद' तृतीय भाग (१९७० वि०) पृष्ठ १३२५।
३. स० प्रेमनारायण टण्डन : 'प्रतापसमीक्षा, (१९३६ ई०) पृष्ठ ३७
४. 'सम्मेलन पत्रिका' चैत-बैशाख २००-३ वि, 'पं० प्रतापनारायण मिश्र—एक नाटककार तथा अभिनेता' : त्रिलोकीनारायण दीक्षित।
५. 'ब्राह्मण' खण्ड ४, सख्या ५ ('कानपुर कुछ कुनमुनाया है')

कहानी

इस क्षेत्र मे मिश्र जी ने कथामाला, चरिताष्टक (प्रथम भाग), कथा बाल सगीत नामक तीन बगला-पुस्तकों का अनुवाद किया। 'कथामाला' ईश्वरचन्द्र विद्या-सागर की कथाओ का अनुवाद है, इसमे बालको के लिए उपदेश भरी लघु-कथाएँ सगृहीत है। 'चरिताष्टक' (प्रथम भाग) मे बंगला के आठ महापुरुषो के जीवन चरित्र (राजा कृष्णचन्द्र राय, जगन्नाथ तर्क पचानन, भारतचन्द्र राय गुणाकर, कृष्णपाल्नी, पद्मलोचन मुखोपाध्याय, मोतीलाल शील, हरिश्चन्द्र मुखोपाध्याय, राजाराम मोहन राय) दिये गये है। इसके अन्य भागो का मिश्र जी ने अनुवाद नही किया। 'कथाबाल सगीत' मे मिश्र जी ने बालोपयोगी बगला कथाओ का पद्यबद्ध अनुवाद किया है।

उपन्यास

मिश्र जी ने राय बकिमचन्द्र—चट्टोपाध्याय कृत सात बगला उपन्यासो का हिन्दी मे अनुवाद किया। जिनके नाम इस प्रकार हैं—राजसिंह, युगलांगुरीय, इन्दिरा, राधारानी, कपाल कुण्डला, अमरसिंह, और देवी चौधरानी। ये सभी उपन्यास जनता की माग पर लिखे गये है। मिश्र जी के समय मे बकिम बाबू क उपन्यासो का का जनता मे बडा सम्मान था इसलिए मिश्र जी के अनुवादो का जनता मे बडा स्वागत किया। साथ ही इनसे हिन्दी मे भी उपन्यास लिखने की प्रेरणा मिली।

इतिहास

मिश्र जी ने तीन इतिहास-ग्रन्थो का अनुवाद किया—सूबे बगाल का इतिहास, सेन राजवश और त्रिपुरा का इतिहास। 'सूबे बगाल' के इतिहास, मे बगाल के वीर पुरुषो का क्रमबद्ध वर्णन है 'सेन राजवश' में प्रसिद्ध सेन वश का इतिहास दिया गया है। त्रिपुरा के इतिहास में बगाल के एक पुराने राज्य का वर्णन है। ये तीनो इतिहास ग्रन्थ के इतिहास से सबधित है।

भूगोल

भूगोल, में मिश्र जी ने केवल एक पुस्तक ''सूबे बंगाल का भूगोल'' का अनुवाद किया है। इससे बंगाल की भौगोलिक स्थिति का वर्णन है।

विविध

इसके अन्तर्गत मिश्र जी की सात अनुदित-पुस्तको की गणना की जा सकती है जिनके नाम इस प्रकार है—पचामृत, नीति रत्नावली, बोधोदय वर्णपरिचय, शिशुविज्ञान, आर्यकीर्त्ति भाग १ और भाग २। 'पंचामृत', स्वामी कृष्णानंद परिव्राजक लिखित 'पचामृत' का अनुवाद है इसमे गाणपत्य, सौर, शाक्त, वैष्णव, शैव - पाचो सम्प्रदायो मे ऐक्य स्थापित करने का प्रयत्न किया गया है तथा उपासना के विभिन्न तत्वो पर भी प्रकाश डाला गया है। 'नीति रत्नावली' भी स्वामी कृष्णानन्द परि-

ब्राजक की 'नीति रत्न माला' का अनुवाद है इसमें बालोपयोगी अनेक उपदेश दिये गये है। बोधोदय ईश्वरचन्द्र विद्यासागर कृत 'बोधोदय' का अनुवाद है इसमे चरित्र निर्माण की विविध शिक्षाएँ है। 'वर्णपरिचय' भी ईश्वरचन्द्र विद्यासागर की पुस्तक का अनुवाद है। इसमे बालको को अक्षर-ज्ञान सिखाया गया है, यह शिक्षा सस्थाओ के निमित्त लिखी गयी थी। 'वर्णपरिचय' कई भागो मे (कक्षाओं के अनुसार) प्रकाशित हुई थी, कुछ भाग सचित्र भी थे। 'शिशु विज्ञान' मे बालको को विज्ञान की सामान्य शिक्षा दी गयी है। 'आर्य्यकीर्त्ति रजनीकान्त गुप्त कृत 'आर्य्यकीर्त्ति' का अनुवाद है। यह दो भागों मे प्रकाशित हुई थी। इसके प्रथम भाग मे मेवाड के वीर पुरुषो और स्त्रियो (राणा कुम्भ, रायमल्ल कमलावती, वर्णवती, पन्नाधात्री, उदयसिह, प्रतापसिह आदि) की वीरता और चरित्र का दिग्दर्शन कराया गया है। महाराणा प्रतापसिंह का वर्णन विस्तार से किया गया है। 'आर्य्यकीर्त्ति के द्वितीय भाग मे सिक्ख सम्प्रदाय की उत्पत्ति और गुरू गोविन्दसिंह के चरित्र तथा वीरता का विस्तार से वर्णन है।

संग्रह ग्रन्थ

सग्रह ग्रन्थ मिश्र जी के तीन मिलते है—रहिमन शतक, रसखान शतक, मानस विनोद। 'रहिमन शतक' का प्रकाशन 'ब्राह्मण' मे खण्ड ५, संख्या ७ (फरवरी, १८८९ ई०) से प्रारम्भ हुआ था। इसमे रहीम के १०१ दोहे सकलित है। इन दोनो पर मिश्र जी कुण्डलिया बनाना चाहते थे पर यह कार्य पूरा नही हो सका। मिश्र जी लिखते है—'श्री रंगनारायण बाजपेयी के द्वारा यह अमूल्य रत्न प्राप्त हो गया। हमारा विचार है कि इसके प्रत्येक दोहा पर कुण्डलियां बनाके अलग पुस्तकाकार छपावें पर इसके लिए अभी कुछ देर है अतः दोहे ही 'ब्राह्मण' के रसिको को भेंट करते है।'[1] 'रसखान शतक' मे रसखान के सौ भक्ति और शृंगार रस के कवित्त सकलित है। इसका प्रकाशन 'ब्राह्मण' मे खण्ड ८, संख्या २-३ (सन् १८९१ ई०) मे 'रसखान के कवित्त' नाम से प्रारम्भ हुआ था और ७२ कवित्त तक प्रकाशित हुए थे इसके बाद यह कृति पुस्तकाकार (सन् १८९१ ई०) मे 'रसखान शतक' के नाम से प्रकाशित हुई। 'मानस-विनोद' मे 'रामचरितमानस' के उपयोगी-तत्व (प्रमुख-प्रमुख दोहे और चौपाइया) सगृहीत किये गये है। पर यह सग्रह उपर्युक्त दोनो सग्रहो से भिन्न है इसमे मिश्र ज़ी ने प्रत्येक उपदेश के साथ अपनी ओर से - विषय के अनुरूप - टिप्पणिया जोडी है जो देशकाल से भी बहुत-कुछ सम्बन्ध रखती है। इस सग्रह मे 'मानस' के सातों काण्डो से उपयोगी अश उद्धृत किये गये है। बालकाण्ड से १०४, अयोध्या काण्ड से १२६, अरण्यकाण्ड से १६, किष्किन्धाकाण्ड मे ११,

---

१. 'ब्राह्मण' खण्ड ५, संख्या ७, 'रहिमन शतक': सं० प्रतापनारायण मिश्र

सुन्दरकाण्ड से १७, लकाकाण्ड मे ११, उत्तरकाण्ड से १८ अंश लिये गये है। इन अशो का 'मानस' की कथा से कोई सम्बन्ध नही है। सभी अंश स्वतन्त्र-नीति और उपदेश से भरे हुए हैं। इसका प्रकाशन सवप्रथम 'मानस-रहस्य' के नाम मे 'ब्राह्मण' मे खण्ड २, संख्या ८ (१८८४ ई०) से प्रारम्भ हुआ था, और अयोध्याकाण्ड के ६६ अशो तक यह उसमे प्रकाशित हुई थी। इसके बाद सन् १८८६ ई० मे यह 'मानस विनोद' नाम से पुस्तकाकार, भारत जीवन प्रेस काशी से प्रकाशित हुई। इसके विषय मे मिश्र जी लिखते है—'उस अद्वितीय कवि की जादू भरी कविता शक्ति है, जिसमे बडे-बडे पाडित्याभिमानी स्वर्ग पाताल देखा करते है पर शका की निवृत्ति नही होती और सीधे-सादे ग्रामीण भी समझ ही लेते है कि 'चले राम धरि सीस रजाई' रामचन्द्र मूडे मा रजाई धरि के चलत भे। जिन्होने इस रामायण को कामधेनु कहा है निश्चय ठीक कहा है। ऐसी कोई बात नही है जो एतद् द्वारा न प्राप्त हो पर समझने वाला चाहिए, इसका नाम 'रामचरितमानस' है अब हम उसमे की अखंडनीय बातें एकत्र करते है जो त्रिकाल मे सत्य है, विशेषत वर्तमान समय के लिए तो 'भेषज भेषजताया' समझिए। विश्वास न हो तो कुछ दिन स्वय परीक्ष कर देखो। हम यह तो नही कह सकते कि सब रत्न हमने निकाल लिए है पर इस विषय मे दूसरो को हम सहायक होगे। यदि किसी भारतीय भाई का इस ग्रन्थ से कुछ भी उपकार हो तो हमारा थोडा सा श्रम और बडी सी आशा सफल है।'[1] 'मानस विनोद' के अन्त मे मिश्र जी ने 'श्री रामायण तत्व' शीर्षक से-देवनागरी भाषा लंगड़ी धुन मे-सात लावनिया भी लिखी है जो राम कथा से सबधित है। प्रत्येक काण्ड पर एक-एक लावनी लिखी गयी है। इन सात लावनियो मे सक्षेप मे पूरी राम कथा वर्णित है। गेयता की दृष्टि से ये लावनिया बडी उत्कृष्ट है।

उपर्युक्त अनूदित-कृतियो के अतिरिक्त मिश्र जी ने सस्कृत की 'रत्नावली' का भी अनुवाद करना प्रारम्भ किया था पर असामयिक मृत्यु हो जाने से इसे पूरा नही कर सके थे। आगे यह कार्य बाबू बालमुकुन्द गुप्त द्वारा पूरा हुआ।[2] मिश्र जी के सभी अनुवाद सरल और सरल तथा अपने उद्देश्य मे सफल है।

मिश्र जी पर लिखा गया आलोचना-साहित्य

मिश्र-साहित्य पर-पृथक् रूप से-अभी तक कोई भी आलोचनात्मक पुस्तक नही लिखी गयी। हिन्दी-साहित्य के इतिहास और भारतेन्दु-युग सम्बन्धी ग्रन्थो मे प्रसग-वश इनके साहित्य का विवेचन किया गया है पर वह बड़े सामान्य स्तर का है; उसमे अध्ययन की गहराई तथा मौलिकता के दर्शन नही होते। मिश्र-साहित्य

---

१. प्रतापनारायण मिश्र : 'मानस विनोद' (१८८६ ई०) भूमिका, पृष्ठ १-२

२. 'बालमुकुन्द गुप्त - स्मारक-ग्रन्थ' (२००७ वि०), पृष्ठ ७६

के सम्पादित ग्रन्थों - निबन्ध-नवनीत, प्रतापपीयूष, प्रताप-समीक्षा, प्रताप लहरी - की भूमिकाओं में भी इनके साहित्य की समीक्षा की गयी है परन्तु वे इतनी संक्षिप्त हैं कि उनको पढ़कर कोई दृढ़ तथा स्थायी विचार नहीं बनाये जा सकते। केवल 'निबन्ध-नवनीत' की भूमिका कुछ अच्छी है। इसमें आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी का सरस्वती (मार्च १९०६ ई०) वाला लेख (पंडित प्रतापनारायण मिश्र) संकलित है। इसी के आधार पर अन्य संग्रह-ग्रन्थों की भी भूमिकाएँ लिखी गयी हैं। इसके अतिरिक्त पत्र-पत्रिकाओं में भी मिश्र जी पर कुछ लेख प्रकाशित हुए हैं जिनमें इनके साहित्य के अध्ययन में कुछ सहायता मिल सकती है। ये लेख इस प्रकार हैं :—

१—'पंडित प्रतापनारायण मिश्र' बाबू बालमुकुन्द गुप्त 'भारतमित्र' १९०७ ई०।

२—'पण्डित प्रतापनारायण मिश्र' . रमाकान्त त्रिपाठी 'विशाल भारत' अक्टूबर, १९२९ ई०।

३—'पण्डित प्रतापनारायण मिश्र' कमलाकान्त 'सम्मेलन पत्रिका' माघ-फाल्गुन, सं० १९९३ वि०।

४—'स्व० पं० प्रतापनारायण मिश्र' : गोपालराम गहमरी, 'सरस्वती' जून, १९३८ ई०।

५—'पं० प्रतापनारायण मिश्र—अनुवादक के रूप में' : त्रिलोकीनारायण दीक्षित, 'सम्मेलन पत्रिका' पौष सं० २००२ वि०।

६—'पं० प्रतापनारायण मिश्र-कवि और निबन्ध लेखक', त्रिलोकीनारायण दीक्षित, 'सम्मेलन पत्रिका' माघ-चैत्र, सं० २००३ वि०।

७—'पंडित प्रतापनारायण मिश्र' : लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी, 'वीर भारत' ७ अक्टूबर, १९४७ ई०।

८—'विनोद और व्यंग्य के अवतार—पं० प्रतापनारायण मिश्र' . ब्रह्मदत्त शर्मा—'साप्ताहिक हिन्दुस्तान', ८ अक्टूबर, १९५० ई०।

९—'प्रतापनारायण मिश्र का कानपुर' : लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी 'साप्ताहिक प्रताप', १० अक्टूबर, १९५५ ई०।

१०—'श्री प्रतापनारायण मिश्र' : नरेशचन्द्र चतुर्वेदी, 'साप्ताहिक प्रताप' १० अक्टूबर, १९५५ ई०।

११—'अहर्निश साधना तथा सर्वोत्कृष्ट पत्रकला का प्रतीक—पं० प्रतापनारायण मिश्र का ब्राह्मण' : लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी, 'रामराज्य' १ अक्टूबर १९५६ ई०।

१२—'पं० प्रतापनारायण मिश्र—एक ऐतिहासिक विश्लेषण' : लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी, 'रामराज्य' ८ अक्टूबर, १९५६ ई० से ३ दिसम्बर १९५६ ई० तक—धारावाहिक प्रकाशित।

इन उपर्युक्त लेखो मे 'प० प्रतापनारायण मिश्र एक ऐतिहासिक विश्लेषण' लम्बा है और सुन्दर तथा द्रष्टव्य है। इसमे मिश्र जी की तत्कालीन स्थिति का अच्छा चित्रण किया गया है तथा मिश्र-साहित्य का भी सक्षेप मे विवेचन है। शेष लेख दो-दो, तीन-तीन पृष्ठो मे लिखे गये है जो मिश्र-साहित्य के गहन अध्ययन के अभाव मे बडे छिछले है। कहना न होगा कि मिश्र-साहित्य के अध्ययन का समीक्षको ने अभी तक कोई प्रयत्न नही किया जबकि मिश्र जी भारतेन्दु-युग के प्रमुख तथा श्रेष्ठ साहित्यकार है। मिश्र जी की विचार-धाराये अब भी, सूक्ष्म रूप से साहित्य मे—पुष्पित होती आ रही है तथा आधुनिक-साहित्य की नींव मिश्र जी से ही कर्मठ एव त्यागी साहित्यकारो से निर्मित है। समीक्षको की यह उपेक्षा, वस्तुत. चिन्तनीय है।

द्वितीय खण्ड

समीक्षा

पहला अध्याय

मिश्र जी की कविता

मिश्र जी प्रगतिशील साहित्यकार थे। उनकी कविता मे उनके युग की सक्रान्ति पूरी तरह व्याप्त है रीति-कालीन परम्परा का अवसान और आधुनिक काल की जनवादी विचारधारा का उत्थान, दोनो उनमे एकीकृत हो गये है। उन्हे, युग की गतिविधि के साथ चलाना ही अभीष्ट था। उस समय तक कविता के क्षेत्र मे जितनी भी प्रगति हुई थी उसको तो वे साथ लेकर चले ही, साथ ही उन्होने अपनी प्रतिभा से उसे आगे भी बढाया। मिश्र जी का काल कविता के नवजागरण का काल था। कविता का प्रत्येक पक्ष, एक नयी दिशा मे-पूर्ण स्फूर्ति के साथ-आगे बढ रहा था। मिश्र जी ने भी उसी के अनुरूप अपने काव्य का सृजन किया। अत मिश्र जी की कविताओ के मूल मे पहुचने के लिए कविता की युगीन-प्रवृत्तियों को यहाँ देना अपेक्षित है।

कविता की युगीन-पृष्ठभूमि

रीतिकालीन कविता शृगारिक हास-विलास मे डूबी हुई थी। उसका क्षेत्र नायक-नायिका के हाव-भाव और कटाक्षो तक ही सीमित था कवि अपने आश्रय-दाताओ को प्रसन्न करने के लिए स्थूल-शृगार के वर्णन मे तन्मय थे। कविता, कवियों के भरण-पोषण का साधन बनी हुई थी। कवियो की वाणी अन्नदाता के आधीन थी। विलासी राजाओ के सरक्षण मे रहने के कारण कविता मे वर्णित शृगार, वासना और अश्लीलता की कोटि मे पहुच गया था। डा० केसरीनारायण शुक्ल के शब्दो मे- "रीतिकाल मे प्रेम वासना का पर्याय बन गया और प्रेम की कविता नायक-नायिका-विषयक रचना मात्र रह गयी। कवि अपने को बाह्य-सौन्दर्य की मोहनी से मुक्त कर आभ्यन्तर रमणीयता के वर्णन मे प्रवृत्त करने मे असमर्थ रहे। इस कारण इनकी स्थूल-दृष्टि रमणीयता की सच्ची परख मे असफलता रही। रीतिकाल के अधिकाश कवियों की इतने बडे ससार मे केवल नायिका के बाहरी रूप-रग में ही सौन्दर्य की झलक मिली। कवियो ने प्रकृति के भी उन्ही दृश्यो का कविता मे समावेश किया जिनसे उनकी वासनामय प्रेमवृत्ति के उद्दीपन मे सहायता मिल सकती थी। इसलिए शिशिर और ग्रीष्म का ग्रहण विरह-वेदना की अभिव्यक्ति के ही लिए अपेक्षित हुआ। वर्षा प्रवासी को अपनी विरहिणी का स्मरण दिलाकर घर लौटाने के लिए प्रेरित करने वाली ही दिखाई पड़ी। विप्रलम्भ और सम्भोग

शृगार के विषाद-हर्ष को उद्दीप्त करने के अतिरिक्त षट ऋतुओ का मानो कोई और उपयोग ही नहीं था ।"[1] इस प्रकार वासना की अधिकता ने प्रेम की सघनता को समाप्त कर दिया था । रीति-कालीन कविता का उद्देश्य केवल राजाओ का मनोरजन या उनकी वासना को उद्दीप्त करना, रह गया था । कहना न होगा कि रीतिकाल मे कविता सुन्दरी, शृगार और वासना मे डूबी हुई एक वारागना की भाति-अपने हाव-भाव और कटाक्षो से-राजाओ को रिझाने मे व्यस्त थी और उनके अनुवर्ती विभिन्न आभूणो से युक्त कर उसे अर्थसिद्धि के उपयुक्त बनाने मे कटिबद्ध थे ।

इसके अतिरिक्त रीतिकालीन कविता अचार्यत्व के मोह और अलकारिकता के दबाव मे पंगु हो गयी थी । भाषा, भाव और छन्द भी पुरानी परम्परा से आबद्ध होने के कारण विकासहीन हो गये थे । इसमे कविता की संजीवनी शक्ति तो लुप्त हो ही गयी थी, उसकी सरसता और सरलता भी धीरे-धीरे समाप्त होने लगी थी । कविता का कलापक्ष सीमा का अतिक्रमण कर रहा था । कवि पाण्डित्य-प्रदर्शन और आश्रयदाताओ को आकृष्ट करने के लिए आकाश-पाताल के कुलाबे एक करने मे लगे थे । कविता मे ऊहात्मकता भी विशेष बल पकडती जा रही थी । कविता का आत्मपक्ष अश्लीलता और वासना से दूषित हो ही चुका था, कवियो की चमत्कार प्रियता ने उसके बाह्य पक्ष को भी निन्दनीय बना दिया ।

इसके साथ ही रीतिकालीन कविता अपने आहार-विहार मे ही मग्न थी । लोक से उसका कोई सम्बन्ध नही था । श्रमिको और दीन-दुखियो की चीत्कारें उसे नही सुनायी पडी । कवियो का कार्य-व्यापार राजदरबारो तक ही सीमित था । लोक- भावना से विमुख होने के कारण यह कविता जन-सामान्य तक नही पहुच सकी । प्राचीनता के पिष्टपेषण और अन्धविश्वास ने उसकी चेतन-शक्ति को समाप्त कर दिया । कविता पूर्णतया रूढिग्रस्त हो गयी । वैज्ञानिकता तो उसमे लेशमात्र को भी न रही । यहां यह कह देना आवश्यक प्रतीत होता है कि कुछ कविताए इस सीमा से पृथक् होकर भी लिखी गयी पर उनकी सख्या शृंगारिक कविताओ की तुलना मे बहुत कम है । प्रधानता रीतिबद्ध रचनाओ की ही रही ।

सकीर्णता की सीमा मे बधी होने के कारण रीतिकालीन कविता युग के अनुरूप चलने मे असमर्थ रही । भारतेन्दु-युग मे आकर उसका शृगारिक-कलेवर धीरे-धीरे क्षीण होने लगा । राष्ट्रीय चेतना ने उसे नयी दिशा की ओर मोडा । धार्मिक आन्दोलनो और अंग्रेजी शासन और शिक्षा के प्रसार से देश बौद्धिकता का विकास हुआ । जनता अन्धविश्वास से हटकर वैज्ञानिकता की ओर उन्मुख हुई । कवि भी रीतिकालीन परम्परा को छोड़कर, युग के अनुरूप अपने को जन-मन के

---

१ डा० केसरीनारायण शुक्ल: 'आधुनिक काव्यधारा' (२००७ वि०), पृ० १

साथ मिलाने लगे । अब उनकी कविता के आधार नायक-नायिका न होकर, क्षुधित श्रमिक हो गये । इससे कवियों के दृष्टिकोण मे व्यापकता आयी और उनके द्वारा उद्भूत कविता देश के लिए वरदान बन गयी ।

रीतिकालीन कवि जितना ही लोक पक्ष से दूर रहे, भारतेन्दु युगीन कवि उतना ही उसके समीप आये । अब कवियो की कविता चादी के चन्द टुकडो मे न बिककर, निर्धनो की आहो मे बिक रही थी । इस युग के कवियो ने भारत की पराधीनता को दूर करने के लिए सतत प्रयत्न किया । इनमे देश के प्रति अपूर्व ममता थी । देश-दशा से दुखित होकर ये ईश्वर तक से भारत के उद्धार की प्रार्थना करते थे । इन कवियो मे 'वसुधैव कुटुम्बकम' का भाव पूर्णरूपेण व्याप्त था । इस युग के कवि अलकारिकता के पीछे नही पडे । ये बडी सरल भाषा मे लोक हित की बात जन-जन तक पहुचाना चाहते थे ।

इस युग के कवि बडे स्वतन्त्र विचारो के थे उन्हे किसी प्रकार का प्रतिबन्ध सह्य नही था । विचार, भाषा और छन्द - सभी मे उनकी स्वच्छन्दता दिखाई पडती है । अपने स्वतंत्र विचारो मे ही उन्होने हिन्दी के, पूर्व तीनो कालो को भारतेन्दु-युग मे एकीकृत कर दिया । उनके काव्य में उनकी वैयक्तिकता की प्रमुखता सर्वत्र दिखाई पडती है ।

विचारों में स्वच्छन्दता

भारतेन्दु-युग के कवि स्वच्छन्दता के साथ अपने विचारो को अभिव्यक्त करते थे । इसी स्वच्छन्दता ने ही उस समय की कविता मे विभिन्न विचार धाराओ को एकत्रित कर दिया है । भारतेन्दु-युग मे एक ओर यदि प्राचीन परम्परा - वीर, भक्ति और शृगारिक भावनाओ से युक्त कविताएं मिलती है तो दूसरी नवीन विचार-धारा मे राष्ट्रीय चेतना और जनपुकार सुनायी पड़ती है । दूसरी ओर विचारधारा कुछ प्रबलतम रूप मे दिखाई पड़ती है । उसका कारण यह है कि भारतेन्दु-युग राष्ट्रीय चेतना का युग था । उस समय राजनीतिक क्षेत्र मे अनेक उथल-पुथल हो रहे थे इसलिए कवियो ने भी उन्ही के अनुरूप अपने विचार व्यक्त किये । प्राचीनतावादी कविताए तो सक्रान्ति युग का परिणाम थी जो आगे चलकर धीरे-धीरे क्षीण होती गयी । कविता की चेतन-शक्ति प्रमुख रूप से नवीन विचार धारा की कविताओ मे ही दिखाई पड़ती है । इस युग मे कोई भी विषय कविता के क्षेत्र से बाहर नही था । छोटे-से-छोटे विषय पर कवि सफलता के साथ कविताए जनता में राष्ट्रीय चेतना फैलाने के उद्देश्य से लिखी गयी है इसलिए उनमे उपदेशात्मकता का पुट अधिक है । उपदेशात्मकता के आधिक्य से एक ओर तो जनता का हित हुआ है पर दूसरी ओर कविता का कलापक्ष न्यून हो गया है । हां, प्राचीनतावादी कविताए कलापक्ष की दृष्टि से सुन्दर है ।

भाषा में स्वच्छन्दता

रीतिकाल मे कवि प्राय ब्रजभाषा मे ही कविताए लिखते थे पर भारतेन्दु-युग मे आकर कवियो ने विभिन्न भाषाओ मे कविताए लिखी । इस काल के कवि बडे जागरूक थे इन्होने राष्ट्रीयता के प्रचार के लिए जन भाषाओ तक को काव्य का माध्यम बनाया और बुन्देली, अवधी आदि भाषाओ मे कविताएं की । ब्रज भाषा तो इस युग के साथ चली ही, साथ ही खडी बोली का भी इसी युग में आकर विकास हुआ और खडी बोली मे अच्छी-अच्छी कविताए की गई । खडी बोली का आन्दोलन इस युग की एक प्रमुख घटना है । वैसे खडी 'बोली की क्षीण परम्परा खुसरो की मुकरियो और कबीर के दोहो से प्रारम्भ होती है पर इसका पूर्ण विकास भारतेन्दु-युग से पहले नही हो सका । यहां तक कि खडी बोली शब्द का प्रयोग भी १९ वी शताब्दी मे ही आकर हुआ । डा० शितिकण्ठ मिश्र लिखते है– 'जहा तक ज्ञात हो सका है 'खडी बोली' शब्द का सबसे प्राचीन प्रयोग सन् १८०३ ई० मे लल्लू जी लाल और सदल मिश्र ने फोर्ट विलियम कालेज, कलकत्ते मे किया और उसी वर्ष इन्ही प्रयोगो के आधार पर गिलक्रिस्ट ने भी 'खडी बोली' शब्द का बार बार प्रयोग किया । इसके पूर्व इस भाषा का कोई विशेष नाम नही था और न नामकरण की आवश्यकता ही समझी गयी ।'[1] सन् १८७० ई० से खडी बोली कविता की भावना कवियो मे प्रारम्भ हुई और भारतेन्दु ने खडी बोली कविता के उत्थान की घोषणा की तथा इस दिशा मे कुछ प्रयत्न भी किया[2] पर इसका जोरदार प्रचार सन् १८८७ ई० से – अयोध्याप्रसाद खत्री और श्रीधर पाठक द्वारा प्रारभ हुआ । श्रीधर पाठक का कहना था – "हम यह नही कहते कि नवीन हिन्दी की कविता ब्रज भाषा से मधुर होती है । हमारा तो केवल इतना ही मतव्य है कि नवीन हिन्दी मे जैसे गद्य है वैसे ही पद्य भी होना चाहिए......यह कभी भूल से मत बोलना कि खडी बोली हिन्दी कविता के उपयुक्त नही है,. .. गद्य और पद्य की भिन्न भाषा होना हमारे लिए उतना अहकार का विषय नही है जितना लज्जा और उपहास का है कि जिस भाषा मे हम गद्य लिखते है उसमे पद्य नही लिख सकते ।"[3] खडी बोली के पक्षपाती गद्य और पद्य की भाषा एक करना चाहते थे, इसी उद्देश्य से प्रेरित होकर उन्होने खडी बोली का आन्दोलन प्रारम्भ किया । दूसरे ब्रजभाषा श्रृंगारिकता द्वारा इतनी कोमल हो गयी थी कि उसमे राष्ट्रीय चेतना के भाव-प्रभावोत्पादक ढग से वहन करने की शक्ति न रह गयी थी । डा० आशा गुप्ता के शब्दो मे–श्रृंगार के इस आतिशय्य के

---

१. डा० शितिकंठ मिश्र : 'खड़ी बोली का आन्दोलन' (२०१३ वि०), पृष्ठ १
२. डा० शितिकंठ मिश्र : 'खडी बोली का आन्दोलन' (२०१३ वि०), पृष्ठ ३५१
३. 'हिन्दोस्थान' ८ मार्च, १८८८ ई० ।

कारण ब्रजभाषा इतनी कोमल, मधुर और मसृण हो गई थी कि उसमे युग की नवचेतना उद्भूत ज्ञान-विज्ञान, विभिन्न धार्मिक आन्दोलन, समाज देश भक्ति आदि विविध विषयो की अभिव्यक्ति सम्भव ही न रही ।'[१] प्रमुख रूप से इन्ही दो कारणो ने खडी बोली पद्य के आन्दोलन का सूत्रपात किया ।

थोडे ही दिनो मे यह आन्दोलन इतना बढा कि ब्रजभाषा के पक्षपाती खडी बोली की और खडी बोली के पक्षपाती ब्रजभाषा की कटु आलोचना करने लगे । और ये आलोचनाए प्रमुख रूप मे 'हिन्दोस्थान' पत्र मे प्रकाशित हुई । ब्रज भाषा के पक्षपातियो मे प्रतापनारायण मिश्र और राधाचरण गोस्वामी तथा खडी बोली के पक्षपातियो मे श्रीधर पाठक और बाबू अयोध्याप्रसाद खत्री प्रमुख थे । वैसे प्रतापनारायण मिश्र को खडी बोली के प्रति निष्ठा प्रारम्भ से थी क्योकि वे जून १८८४ मे लिखते है—'आर्य कवियो से हम सानुरोध प्रार्थना करते है कि नागरी भाषा की कविता का भी ढग डाले, जिस भाषा के इतनी हाय-हाय करते है उसमे कविता का चलन हो। प्रियवर्ग हमे सहायता दो ।'[२] लेकिन खडी बोली के समर्थको द्वारा की गयी ब्रजभाषा की भर्त्सना वे न सह सके[३] और वे खडी बोली के विरोध मे खडे हो गये । श्रीधर पाठक की आलोचना का उत्तर देते हुए वे लिखते है – "उर्दू के बीस बाईस छन्दो को छोडकर खडी बोली अन्य छन्दो के लिए पूर्णतया अनुपयुक्त है । आप छन्दार्णव जैसी कोई भी पिंगलशास्त्र की पुस्तक लेकर बैठ जाइए और उसी 'हिन्दोस्थान' मे प्रत्येक छन्द का उदाहरण खडी बोली मे दीजिए और मै ब्रजभाषा मे देता हूँ । देखिए कि काव्योचित सरसता किसमे अधिक मिलती है ।"[४] मिश्र जी दोनो भाषाओ के विरोध के पक्षपाती नही थे । आगे वे इसी लेख मे लिखते है—"क्षमा करे । हम खडी बोली के विरोधी होते तो हानि पर हानि सहकर 'ब्राह्मण' का सम्पादन क्यो करते । इसके कविता के मार्ग की दागबेल आप डालिए, यथा सामर्थ्य हम भी कक्कर, पत्थर डालते रहेगे । परन्तु कविता इस भाषा की ब्रजभाषा के देखे रूखी होती है और होगी ।"[५] मिश्र जी की निष्ठा खडी बोली की अपेक्षा ब्रज भाषा मे अधिक थी । वे ब्रज भाषा की कोमलता पर मुग्ध थे । वे कहते है—"सिवाय फारसी छन्द और दो तीन चाल की लावनियो के और कोई छन्द उसमे (खडी बोली मे) बनाना भी ऐसा है जैसे किसी कोमलागी सुन्दरी को कोट बूट पहिनाना । हम आधु-

---

१. डा० आशा गुप्ता : खड़ी बोली-काव्य मे अभिव्यंजना' (१९६१ ई०) पृ० १९९
२. 'ब्राह्मण' खण्ड २, संख्या ४, (हिन्दी-कविता)
३ 'हिन्दोस्थान' ८ मार्च, १८८८ ई० ।
४. 'हिन्दोस्थान' २१ मार्च, १८८८ ई० ।
५ 'हिन्दोस्थान' २१ मार्च, १८८८ ई० ।

निक कवियों के शिरोमणि भारतेन्दु जी से बढ़के हिन्दी भाषा का आग्रही दूसरा न होगा। जब उन्ही से यह न हो सका तो दूसरो का यत्न निष्फल है। बाम को चूसने से यदि रस का सवाद मिल सके तो ईख बनाने का परमेश्वर को क्या काम था।"[१] आगे मिश्र जी यहा तक कह गये कि—"जो लालित्य, जो माधुर्य, जो लावण्य कवियो की उस स्वतन्त्र भाषा मे है जो व्रज भाषा, बुन्देलखण्डी, बैसवाडी और अपने ढग पर लायी गई सस्कृत व फारसी से बन गयी है, जिसे चन्द्र से ले के हरिश्चन्द्र तक प्राय. सब कवियो ने आदर किया है, उसका सा अमृतमय चित्तचालक रस खडी और बैठी बोलियो में ला सके यह किसी कवि के बाप की मजाल नही।"[२] मिश्र जी का यह कथन समय को देखते हुए सत्य था। उस समय तक खडी बोली मे कोई प्रगति नही हो सकी थी इसलिए वह सरसता से बहुत दूर थी। वैसे भी सरसता का जहा तक प्रश्न है खडी बोली ब्रजभाषा से प्रतिद्वन्द्विता नही कर सकती। ब्रज-भाषा को श्रेष्ठ मानते हुए भी मिश्र जी ने खडी बोली मे पर्याप्त कविताए लिखी। डा० शितिकठ मिश्र के शब्दो मे—"इसका यह कदापि अर्थ नही कि राधाचरण गोस्वामी और प्रतापनारायण मिश्र जैसे लोग रूढिवादी थे। इन लोगो ने हर प्रकार की प्रगति और आवश्यक नवीनता का जी खोलकर स्वागत किया, रूढियो का विरोध किया और स्वय खडी बोली मे कवितायें भी की।"[३] आगे तो पाठक जी को मिश्र जी से प्रेरणाए भी मिली। श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' लिखते है—"बाबू हरिश्चन्द्र, प० प्रतापनारायण और प० बदरीनारायण चौधरी ने तो उसके कतिपय स्फुट पद्य बनाकर उसे वह शक्ति प्रदान की जिसके आधार से प० श्रीधर पाठक ने उसको दो सुन्दर पुस्तकें भी प्रदान की।"[४]

इस प्रकार भारतेन्दु-युग मे, खडी बोली मे भी पर्याप्त कविताए हुई। इसके अतिरिक्त उर्दू, फारसी और सस्कृत मे भी कुछ कवियो ने कविताए लिखी। वैसे भाषा की दृष्टि से यह युग बडा धनी रहा पर भाषाओ मे परिमार्जन नही हो सका। कवियो का उद्देश्य केवल अपने भावो को अभिव्यक्त करना मात्र था, भाषा के सुधार पर उन्होने ध्यान नहीं दिया। उस युग के कवियो के पास इतना समय ही नही था कि वे उसे भाषा के सुधार मे लगाते। उस समय तो उन्हे सबसे अधिक चिन्ता थी देश के उद्धार की। दूसरे वे भाषा को अधिक प्रौढ बनाना भी नही चाहते थे क्योकि उनका लक्ष्य कविता को जन-जन तक पहुंचाना था और भाषा के ही माध्यम से

१. 'ब्राह्मण' खण्ड ४, सख्या ७, ('खड़ी बोली का पद्य')
२. 'ब्राह्मण' खण्ड ४, संख्या ७, ('खड़ी बोली का पद्य')
३. डा० शितिकठ मिश्र : 'खड़ी बोली का आन्दोलन' (२०३१ वि०) पृष्ठ १९८
४. अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' : 'हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास' (१९९७ वि०), पृष्ठ ५४५।

राष्ट्रीयता का प्रचार करना था। इस युग के कवि साहित्यकार होते हुए भी समाज-सुधारक थे इसलिए उनकी कविता में उपदेशात्मकता अधिक थी। और उपदेश के लिए सरल भाषा की आवश्यकता होती है अत भाषा के परिमार्जन के लिए कवि दोषी नहीं थे बल्कि वह युग ही उसके अनुरूप था।

छन्दों में स्वच्छन्दता :

इस युग के कवियों ने अनेक छन्दों में कविताए लिखी। वीरगाथा काल के छप्पय, भक्ति काल के दोहे, चौपाई और पद, रीतिकाल के कवित्त और सवैये— सभी इस युग में देखने को मिलते है। इसके साथ जनगीतों का भी इस युग मे पर्याप्त प्रयोग हुआ। कजली, ठुमरी, होली, खेमटा, कहरवा, गजल, अद्धा, चैती, साझी, लावनी, बिरहा, चनैनी, लम्बे, जाने के गीत आदि सफलता के साथ लिखे गये। कुछ नवीन गीत भी साहित्य-क्षेत्र मे आये। लावनी का इस युग मे विशेष प्रचार हुआ। जन-गीतों के लिखने की ओर भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने लेखकों को विशेष रूप से प्रेरित किया। क्योंकि जन-गीतों में जनता मे जाग्रति, शीघ्र और सरलता से हो सकती थी। मई १८७९ ई० की 'कवि-वचन-सुधा' मे भारतेन्दु जी लिखते है— "भारतवर्ष की उन्नति के जो अनेक उपाय महात्मागण आज कल सोच रहे है उनमे एक और उपाय भी होने की आवश्यकता है। इस विषय के बडे-बडे लेख और काव्य प्रकाशित होते हे, किन्तु वे जनसाधारण को दृष्टिगोचर नही होते। इसके हेतु मैने यह सोचा हे कि जातीय सगीत की छोटी-छोटी पुस्तके बने और वे सारे देश, गाव-गाव मे साधारण लोगो मे प्रचार की जाय। यह सब लोग जानते हे कि जो बात साधारण लोगो मे फैलेगी उसी का प्रचार सार्वदेशिक होगा और यह भी विदित हे कि जितना शीघ्र ग्रामगीत फैलते है और जितना काव्य को सगीत द्वारा सुनकर चित्त पर प्रभाव होता है उतना साधारण शिक्षा से नही होता। इससे साधारण लोगो के चित्त पर भी इन बातो का अकुर जमाने को इसलिए इस प्रकार से जो सगीत फैलाया जाय तो बहुत कुछ सस्कार बदल जाने की आशा है। इसी हेतु मेरी इच्छा है कि मै ऐसे-ऐसे गीतो का सग्रह करू और उनको छोटी-छोटी पुस्तको मे मुद्रित करू। इस विषय मे मै जिनको कुछ भी रचना शक्ति है, उनसे सहायता चाहता हू कि वे लोग भी इस विषय पर गीत व छन्द बनाकर स्वतत्र प्रकाश करे या मेरे पास भेज दें, मै उनको प्रकाशित करूगा और सब लोग अपनी-अपनी मण्डली मे गाने वालो को यह पुस्तके दे।"[1] भारतेन्दु जी ग्राम-गीतो का प्रचार राष्ट्रीय चेतना फैलाने के उद्देश्य से करना चाहते थे इसलिए उन्होने इन गीतो के लिए विषय भी निर्धारित कर दिये थे। विषयो मे उन्होने बाल-विवाह से हानि, जन्मपत्री मिलाने की अशास्त्रता, बालको

---

१. डा० रामविलास शर्मा : 'भारतेन्दु-युग' (१९५६ ई०) पृष्ठ ५-६

की शिक्षा, अंग्रेजी फैशन मे शराब की आदत, भ्रूण हत्या, फूट और बैर, बहुजातित्व और बहुभक्तित्व, जन्मभूमि, 'इससे स्नेह और इसके सुधारने की आवश्यकता का वर्णन', नशा, अदालत, स्वदेशी—'हिन्दुस्तान की वस्तु हिन्दोस्तानियो को व्यवहार करना—इसकी आवश्यकता, इसके गुण, इसमे न होने से हानि का वर्णन' आदि पर विशेष बल दिया था।[1] भारतेन्दु जी की इस घोषणा का तत्कालीन कवियो ने स्वागत किया और प्रचुर मात्रा मे जनगीतो की रचना की।

भारतेन्दु-युग मे-जनगीतो मे-लावनी का इतना प्रचार हुआ कि प्राय. सभी कवियो ने, सभी प्रमुख भाषाओ मे लावनियाँ लिखी। उस समय बनारस, दिल्ली, कानपुर, लखनऊ आदि लावनीबाजो के प्रसिद्ध केन्द्र थे। वैसे लावनी का प्रारम्भ १७०० ई० के लगभग माना जाता है। स्वामी नारायणानन्द लिखते हैं—"तुकनगिरि दसनामी सन्यासी थे और सन्त शाहअली मुसलमान फकीर थे। इन्ही दोनो महापुरुषो को इस गान कला के ईजाद करने का एव उत्तर भारत मे लाने का श्रेय प्राप्त है। इनका समय सन् १७०० के लगभग अनुमान किया जाता है। सम्भवत उस समय ये नौजवान रहे होगे। यद्यपि यह उभय महापुरुष उत्तर भारत के निवासी थे किन्तु मध्यप्रदेश—छोटा नागपुर मे बहुधा रहा करते थे।"[2] लेकिन हिन्दी-साहित्य मे इनका विकास भारतेन्दु-युग मे ही आकर हुआ। लावनी के दो समानार्थी शब्द मिलते है—खयाल और मरैठी। मरैठी शब्द इसके उद्भव स्थान का द्योतक है। कहते है कि तुकनगिरि और शाहअली ने इस गान कला को महाराष्ट्र प्रान्त मे प्राप्त किया था। इसीलिए इसका नाम मरैठी पडा।[3] भारतेन्दु-युग मे लावनी लिखने वालो के, प्रमुख रूप से दो सम्प्रदाय थे—तुर्रा और कलगी। 'तुर्रा' सम्प्रदाय के प्रवर्तक महात्मा तुकनगिरि और 'कलगी सम्प्रदाय' के प्रवर्तक सन्त शाहअली माने जाते है। इसके विषय मे नारायणानन्द जी इस प्रकार लिखते है—"एक बार यह उभय महात्मा भ्रमण करते हुए किसी मराठा दरबार मे गये और वहा जाकर उन्होने अपनी इस गान कला का परिचय दिया, जिसको दरबार ने पसन्द किया। उपहार स्वरूप महात्मा 'तुकनगिरि जी' को एक वेश कीमती 'तुर्रा' और महात्मा शाहअली को बहुमूल्य 'कलगी' बडे सम्मान पूर्वक दरबार की तरफ से प्रदान किये गये। जिनको दोनो ने अपने-अपने चगों (लावनी का एक बाजा) पर चढाकर कृतज्ञता प्रकट की। बस तभी से यह

---

१. डा० रामविलास शर्मा : 'भारतेन्दु-युग' (१९५६ ई०), ,, ८
२. स्वामी नारायणानन्द सरस्वती : लावनी का इतिहास' (१९५३ ई०) भूमिका, पृष्ठ १९।
३. स्वामी नारायणानन्द सरस्वती : 'लावनी का इतिहास' (१९५३ ई०) भूमिका, पृष्ठ १८।

तुर्रे वाले तुकनगिरि जी और शाहअली कलगी वाले मशहूर हुए ।"[1] भारतेन्दु-युग के साहित्यकार सम्प्रदायो के पीछे विशेष नही पडे । उनका तो उद्देश्य केवल लावनी लिखना मात्र था । प्रारम्भ मे लावनी साधु-सतो के गानों मे प्रसिद्ध थी और इसमे केवल ज्ञान और वैराग्य के गीत लिखे जाते थे । लेकिन भारतेन्दु-युग मे आकर इसका क्षेत्र व्यापक हो गया और यह जन-जन का गान बन गयी । इसमे देश-प्रेम, ईश्वर भक्ति, शृगार आदि, सभी भाव स्थान पाने लगे । इस युग मे लावनीबाजी की एक लहर सी दौड गयी । नारायणप्रसाद अरोडा लिखते है—"ख्यालबाजी का एक युग था । जिधर देखिए उधर ही खयालो की रगते लडा करती थी । मोहल्ले-मोहल्ले जमाव होते थे और खयालो पर ख्याल और टेको पर टेके गढी जाती थी । अच्छे और गुणी गाने वालो की कदर होती थी । हर बालक बूढे और जवान की जबान पर कोई न कोई टेक फडका करती थी । वह युग अब बीत गया, किन्तु वह अपना काम कर गया । उसी युग ने खडी बोली कविता को जन्म दिया ।"[2] लावनी पिगल-शास्त्र के अनुसार एक छन्द है जो २२ मात्राओं का होता है इसे राधा छन्द भी कहते है पर भारतेन्दू-युग मे मात्राओ पर कोई ध्यान नही दिया गया । विभिन्न मात्राओ मे विभिन्न लावनिया लिखी गयी । लावनी के चार चोक माने गये है, प्रथम और द्वितीय मिसरे या कडी को 'टेक' कहते है । इसके बाद चार मिसरो को 'चौक' कहा जाता है और पांचवा मिसरा 'उडान' (मिलान) कहलाता है जिसके साथ टेक का दूसरा मिसरा भी मिला दिया जाता है । इस प्रकार के चार चौको को मिलाकर एक लावनी बनती है । चौको की कडियाँ कभी-कभी कम, ज्यादा, भी हो जाती है—कुछ लावनिया ऐसी मिलती है जो दो कडियो के चौको मे ही लिखी गयी है कुछ मे आठ कडिया तक मिलती है । इससे कडियो का कोई निश्चित नियम नही है । कडियो में कही-कही मात्रायें नही गिनते । वे तो अपनी ध्वनि पर उनको उतारते है ।

भारतेन्दु-युग की उपर्युक्त स्वच्छन्दता से ही स्वच्छन्दतावादी कविता का जन्म हुआ । यह युग बडी विलक्षणता के साथ हिन्दी-साहित्य मे अवतरित हुआ । आगे चलकर, इसीकी पीठिका पर अनेक वाद हिन्दी-साहित्य मे प्रस्फुटित हुए । इस युग के कवियो का दृष्टिकोण मानवतावादी था । वे मानव मात्र के दुख को अपना दुख समझते थे और उसके दूर करने का उपाय सोचते थे । उनमे और पाठको मे कोई दूरी न रह गयी थी । लेखक और पाठक हृदय खोलकर एक-दूसरे मे मिल रहे थे । इन लेखको मे तकल्लुफी तो नाम मात्र को न थी । अपने काव्य मे भी ये बडे खुले

---

१ स्वामी नारायणानन्द सरस्वती : 'लावनी का इतिहास' (१९५३ ई०) भूमिका, पृष्ठ १९ ।

२. स्वामी नारायणानन्द सरस्वती : 'लावनी का इतिहास' (१९५३ ई०) 'दो शब्द' : नारायणप्रसाद अरोड़ा ।

हुए और स्पष्ट रूप से सामने आते थे। यह स्पष्टता और सहृदयता उनके सबल व्यक्तित्व का परिणाम थी। उन्होंने जिस जिन्दादिली से हिन्दी कविता को रीतिकालीन पंकिलता से बाहर निकालकर मानवता की भूमि पर खड़ा किया, वह एक चिरस्मरणीय घटना है।

मिश्र जी का दृष्टिकोण

मिश्र जी कविता के लिए लोक-हित और सरसता को प्रमुख मानते थे। वे अम्बिकादत्त व्यास की 'ललिता नाटिका' की आलोचना करते हुए लिखते हैं—"न तो उसमे कोई सदुपदेश ही निकलता, न किसी रस का कुछ असर ही जी पर होता है।"[1] मिश्र जी की कविता मे ये दोनों तत्व मिलकर एक हो गये है। वे सरसता के लिए ही अपनी कविताओं मे हास्य और व्यंग्य तथा लोकोक्तियों का प्रयोग करते थे। इसमें मनोरंजन भी होता था और देश का हित भी होता था। लोकोक्तियों के विषय मे मिश्र जी लिखते है—"लोकोक्तियां बड़े-बड़े बुद्धिमानों के अनुभूत सिद्धान्त है और बर्ताव मे लाने से अपना तथा पराया भी बहुत-हित हो सकता है फिर भी जानबूझ के हाथ पर हाथ रक्खे अमूल्य वाक्य रत्नों का तिरस्कार करते है।"[2] इसके साथ ही गीतात्मकता को भी मिश्र जी ने कविता के लिए प्रभावोत्पादक माना है—"सहज मे चित्त को अपने बस मे कर लेने और चाहे जिधर झुका देने की शक्ति जैसी कविता मे होती है वैसी किसी वस्तु मे होती ही नही। रोते को हसा देना, हसते को रुला देना, युद्ध मे कटा देना, मन के प्रत्येक भाव को अपनी सिमित तक पहुचा देना सब कविता ही के खेल है। जिसमे भी जो कही उस कविता के साथ गान विद्या का योग हो गया तो मानो 'सोने मे सुगन्ध' अथवा 'बाघ और बन्दूक बाधे' की कहावत आखों के आगे आ जाती है।"[3] लोक-हित की भावना मिश्र जी मे युगानुरूप थी वे सामाजिक और धार्मिक क्षेत्र मे फैले हुए अंधविश्वास, स्वार्थ, अशिक्षा, मतभेद और कुरीतियों को दूर करके समाज को उत्थान के शिखर पर अधिष्ठित करना चाहते थे। इसके लिए वे तत्कालीन कवियों को भी प्रेरित करते थे—"कवि को जनता के मानसिक उन्नयन मे सहायक कृतियों की रचना करनी चाहिए।"[4] डा० सुरेशचन्द्र गुप्त मिश्र जी के काव्य-सिद्धान्तों का उल्लेख करते हुए लिखते है—"मिश्र जी ने लोक-मगल की स्थापना को काव्य का आदर्श माना है, अत काव्य के वर्णनीय विषयों के सम्बन्ध मे

---

१. 'ब्राह्मण' खण्ड १, संख्या १०; ('प्राप्ति स्वीकार')
२. 'प्रतापनारायण मिश्र : 'लोकोक्ति शतक' (१८९६ ई०) पृष्ठ ४
३. 'ब्राह्मण' खण्ड २, संख्या ४, ('प्रेम पुष्पावली का विज्ञापन')
४. राधाकृष्णदास : 'महारानी पद्मावती' (द्वितीय संस्करण) प्रतापनारायण मिश्र की सम्मति।

उनके विचार इसके अनुरूप ही रहे हे । वे काव्य मे नैतिक मूल्यो का समावेश को उसका आधार भूत तत्व मानते थे । अत उन्होने अभद्र आचरण को प्रोत्साहित करने वाले कवियो की स्पष्ट शब्दो मे भर्त्सना की हे । उनका मत है कि काव्य मे देश प्रेम, ईश्वर-भक्ति आदि ऐसे विषयो को स्थान प्राप्त होना चाहिए जो पाठक की नैतिक भावना का परितोष कर सके ।"[१]

मिश्र जी कविता के लिए कवि-स्वातन्त्र्य को भी बडा महत्व देते थे । वे लिखते हे—"कवि होते है निरकुश, उनकी बोली भी स्वच्छन्द ही रहने मे अपना पूरा बल दिखा सकती है ।"[२] मिश्र जी को छन्दो ओर शब्द शक्तियो का विशद-ज्ञान था, आल्हा आल्हाद, ट, ल, त आदि निबन्ध इसके प्रमाण हे । जन-गीतो से भी मिश्र जी को बडा प्रेम था । वह स्वय जन-गीत लिखते थे और अन्य कवियो को लिखने के लिए प्रोत्साहित भी करते थे ।[३] इसके अतिरिक्त भाषा पर भी उन्हे पूरा अधिकार था । वे अम्बिकादत्त व्यास को उनके यह पूछने पर कि हिन्दी मे 'मे' मे के' आदि विभक्ति चिन्ह शब्दो के साथ मिला के लिखने चाहिए अथवा अलग-अलग समझाते हुए लिखते हे—'हमारी समझ मे अलग ही अलग ठीक है, क्योकि एक तो यह व्यास जी ही के कथनानुसार 'स्वतत्र' विभक्ति नामक अव्यय है, तथा इनकी उत्पत्ति भिन्न शब्दो ही से है, जैसे - मध्यम, मज्झम, माझ, मधि, माहि, महि, मे इत्यादि, दूसरे अंगरेजी, फारसी, अरबी आदि जितनी भाषा हिन्दुस्तान मे प्रचलित हैं, उनमे प्राय सभी के मध्य विभक्ति सूचक शब्द पृथक रहते है । और भाग्य की बात न्यारी है । नही तो हिन्दी किसी बात मे किसी मे कम नही है ।'[४] इससे मिश्र जी के भाषा-ज्ञान का परिचय मिलता है । मिश्र जी ने ब्रज भाषा, खडी बोली, उर्दू, फारसी, बैसवाडी, संस्कृत आदि कई भाषाओ मे अधिकार के साथ कविताएँ लिखीं हैं । मिश्र जी सरल और स्वाभाविक भाषा लिखने के पक्षपाती थे क्योकि वे कविता को जन सामान्य तक पहुँचाना चाहते थे । मिश्र जी शब्दो को भी कविता मे—सरसता के लिए - तोडमोड देने को बुरा नही मानते थे । वे कहते हे -'कवि लोग यदि अवसर पड़ने पर माधुर्य एव लावन्य के अनुरोध मे शब्दो मे कुछ परिवर्तन न करें तो निरसता कानो और प्रानों मे खटकने लगती है । इस बात के जाने बिना केवल गद्य लेखको का तर्क-वितर्क उठाना निरा भ्रम है ।'[५] इसी से मिश्र जी अपनी

---

१. डा० सुरेशचन्द्र गुप्त : 'आधुनिक हिन्दी-कवियो के काव्य-सिद्धान्त' (१९६० ई०) पृष्ठ ७५ ।

२. 'ब्राह्मण' खण्ड ४, सख्या ७, ('खड़ी बोली का पद्य'

३. 'ब्राह्मण' खण्ड ५, सख्या ५-६ ('आल्हा आल्हाद')

४. 'ब्राह्मण' खण्ड ८, संख्या ६, ('एक सलाह')

५. 'ब्राह्मण' खण्ड ७, सख्या ११, ('भ्रम है')

कविताओ मे बिगड़े हुए - पर सरस शब्दो का धड़ल्ले के साथ प्रयोग करते थे। इसके साथ ही कविता के क्षेत्र मे मिश्र जी को ब्रज भाषा से विशेष प्रेम था वैसे कविताएँ उन्होंने उस समय की सभी प्रचलित भाषाओ मे लिखी है।

मिश्र जी की हिन्दी के प्रति बडी निष्ठा थी। वे सदैव इसके प्रचार पर जोर देते थे और उन्होने कई कविताएँ भी हिन्दी प्रचार के हेतु लिखी थी। हिन्दी के विषय मे वे कहते है—'संस्कृत के गूढ आशय यदि किसी अन्य भाषा मे कुछ दरसाये जा सकते हे तो हिन्दी ही मे दरसाये जा सकते है।'[1] वे हिन्दी को ही देश की उन्नति का प्रमुख साधन मानते थे। उनका कहना था—'भाषा की उन्नति के बिना देश की उन्नति सर्वथा असंभव है।'[2] इस क्षेत्र मे मिश्र जी ने बहुत-कुछ भारतेन्दु के ही विचारो को अपना आधार बनाया क्योंकि इनके समय तक भारतेन्दु के साहित्यादर्श हिन्दी-साहित्याकाश मे पूरी तरह छा चुके थे। कविताएँ भी भारतेन्दु जी की प्रयोगात्मक रूप से पर्याप्त साहित्य-क्षेत्र मे आ चुकी थी। इनसे मिश्र जी को आगे बढने में बडी सहायता मिली।

मिश्र जी प्राचीनता और नवीनता को जोडने वाली एक कडी के सदृश साहित्य-क्षेत्र मे अवतरित हुए। इन्हे प्राचीनता से मोह होते हुए भी नवीनता से प्रेम था। इन्होने प्राचीन सद् तत्वो को नवीनता का जामा पहनाकर युग के उपयुक्त बनाया। इनका दृष्टिकोण बडा वैज्ञानिक था जो नवीन-युग के अनुरूप सिद्ध हुआ। इन्हे युग की स्थिति ने तो अपनी ओर प्रभावित ही किया, साथ ही इन्होने अपने सशक्त व्यक्तित्व से युग को भी अपनी ओर आकृष्ट किया। कविता भी इनके से उपासक को पाकर अपने अपूर्व-गुणो से युक्त हो गयी। यहाँ यह कहना न होगा कि कवि ही कविता का नियन्ता होता है अत व्यक्तित्वशील कवि को पाकर कविता भी धन्य हो जाती है। आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी का यह कथन यहाँ पर निश्चित ही उल्लेखनीय है—'अवश्य कविता सार्वजनीन और शाश्वत वस्तु है, किन्तु कवि के व्यक्तिगत विकास और संस्कार के अनुसार उसकी सौन्दर्यानुभूति की शक्ति, मात्रा और कीमतीपन मे अन्तर हुआ करता है; और उन अनुभूतियो को व्यक्त करने का सामर्थ्य या योग्यता कम या अधिक हुआ करती है।'[3] मिश्र जी अपने युग मे, अपने व्यक्तित्व के निराले व्यक्ति थे। उनके सरस, लोकोपयुक्त और वैज्ञानिक दृष्टिकोण के ही कारण उनकी कविता हंसती, हंसाती और समझाती हुई चलती है।

---

१. प्रतापनारायण मिश्र : 'संगीत शाकुन्तल' (१९०८ ई०) भूमिका से उद्धृत।
२. 'ब्राह्मण' खन्ड ८, संख्या २-३ ('रसिक समाज')
३. आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी : 'नया साहित्य : नये प्रश्न' (१९५९ ई०) पृष्ठ १९।

कविता का रूप-विधान

मिश्र जी ने प्रबन्ध-काव्य नही लिखे। इनका सम्पूर्ण कविता-साहित्य स्फुट-काव्य के अन्तर्गत आयेगा। हाँ, इनकी लम्बी कविताओ मे कुछ प्रबन्धात्मकता मिलती है पर उनमे महाकाव्य या खण्ड काव्य का सा रूप-विधान नही है। इनकी ये लम्बी कविताएँ निबन्ध-काव्य या पद्यात्मक-निबन्ध की कोटि मे रक्खी जा सकती है क्योकि इन कविताओ मे निबन्धो की-सी ही इतिवृत्तात्मकता मिलती है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल लिखते है—'भारतेन्दु जी स्वय पद्यात्मक निबन्धो की ओर प्रवृत्त नही हुए पर उनके भक्त और अनुयायी प० प्रतापनारायण मिश्र इस ओर बढे। उनके कुछ इतिवृत्तात्मक पद्य भी है जिनमे शिक्षितो के बीच प्रचलित बाते साधारण भाषण के रूप मे कही गई है।'[१] मिश्र जी के अधिकाश पद्यात्मक-निबन्ध उपदेश और देश दशा के चित्रण के रूप मे लिखे गये है। इनमे मिश्र जी के हृदय की आकुलता दिखाई पडती है। ऐसे पद्यो मे पशु प्रार्थना,[२] नया सम्वत्,[३] महापर्व,[४] बेगारी बिलाप,[५] युवराजकुमार स्वागतते,[६] स्वागतते महात्मन्,[७] भारत-रोदन[८] आदि उल्लेखनीय हैं। छोटी-छोटी कविताएँ, मिश्र जी की सख्या मे बहुत अधिक हैं। 'प्रेम पुष्पावली' और 'मन की लहर'—दो सग्रह-ग्रन्थ ही इन कविताओ के पृथक रूप से प्राप्त है। इनके अतिरिक्त और भी बहुत सी स्फुट कविताएँ मिलती है। इन कविताओ मे प्रमुख रूप से मिश्र जी की भक्ति और शृगार भावना व्यक्त हुई है।

इन उपर्युक्त कविताओ के अतिरिक्त—एक तीसरे प्रकार का रूप-विधान भी मिश्र जी की कविताओ मे मिलता है जिसमे कथातत्व प्रधान होकर आया है लेकिन कथानक और कविताओ का आकार इतना छोटा है कि हम उन्हे खण्ड-काव्य नही कह सकते। हा, इन्हे आख्यानक-काव्य कहा जा सकता है। ऐसी कविताओ मे 'मानस विनोद' के अन्त मे दी हुई सात लावनिया और 'प्रेम पुराण' प्रमुख है। 'मानस

---

१ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' (२००६ वि०) पृष्ठ ५९१

२. 'ब्राह्मण' खण्ड ४, संख्या १,

३. 'ब्राह्मण' खण्ड ६, सख्या ८,

४. 'ब्राह्मण' खण्ड ५, संख्या ५,

५. 'ब्राह्मण' खण्ड १, सख्या २,

६. 'ब्राह्मण' खण्ड ६, संख्या ४,

७. 'ब्राह्मण' खण्ड ६, संख्या ५,

८. 'ब्राह्मण' खण्ड १, संख्या ११,

विनोद' की लावनियो मे राम कथा का वर्णन है और 'प्रेम-पुराण' मे प्रेम विषयक-छोटे-छोटे-दो आख्यान पद्यबद्ध है। मिश्र जी के आख्यानक-काव्य और निबन्ध-काव्य मे केवल इतना अन्तर है कि आख्यानक-काव्य कथा पर और निबन्ध-काव्य विभिन्न विवरणो पर आधारित हे तथा निबन्ध-काव्य से आख्यानक-काव्य अधिक प्रवाहपूर्ण और सरस है। वैसे स्थूल रूप मे देखा जाय तो मिश्र जी की सम्पूर्ण कविताए स्फुट-काव्य ही है।

विषय-विवेचन

मिश्र जी की कविताओ के विषय का विवेचन प्रथम खण्ड के तीसरे अध्याय (इसी शोध-प्रबन्ध के) मे हो चुका है। इन्होने शृगार, हास्य और व्यग्य, देश-प्रेम, ईश्वर-भक्ति आदि से सम्बन्धित विषयो पर कविताए लिखी है। इनमे कुछ प्राचीन काव्य शैली पर आधारित हैं कुछ आधुनिक-पीठिका पर लिखी गयी है। दोनो प्रकार की रचनाये अपना पृथक् अस्तित्व रखती हे, क्योकि दोनो भिन्न सस्कृतियो से सबधित है और दोनों के लिखने मे भी मिश्र जी का दृष्टिकोण भिन्न-भिन्न रहा है। प्राचीनता से सम्बन्धित अधिकाश कविताए स्वान्त: सुखाय है और आधुनिकता से सम्बन्धित परान्त: सुखाय। स्वान्त: सुखाय कविताए अधिक सजीव तथा हृदय-पक्ष से पूर्ण है। इनमे मिश्र जी की ईश्वर भक्ति और शृगार रस की कविताओ की गणना की जा सकती है। त्रिलोकीनारायण दीक्षित के शब्दो मे—"स्वान्त: सुखाय उद्भूत काव्य वह है जो कवि अपनी आत्मा की प्रेरणा से अथवा अपनी इच्छा की पूर्ति के लिए लिखता रहता है। इस प्रकार की कविता सबसे अधिक सजीव तथा कवित्व पूर्ण होती हे। उसमे कवि की भावनाओ का आद्योपान्त चित्रण रहता है। बुढापा, मन की लहर, साधो मनुआ अजब दिवाना' कविताए इसी प्रकार की है। उनकी शृगार रस की सभी रचनाए भी स्वान्त: सुखाय उद्भूत कही जा सकती है।"[१] परान्त: सुखाय कविताओ मे लोक-हित प्रमुख होने से उपदेशात्मकता अधिक है इस लिए इनमे रसात्मकता कम है; देशप्रेम से सम्बन्धित सभी कविताए परान्त सुखाय ही है। यहा पर, प्राचीन और आधुनिक काव्य शैली के ही अन्तर्गत मिश्र जी की कविताओं का पर्यवेक्षण करना अधिक वैज्ञानिक होगा क्योकि इसी के माध्यम से उनकी कविताओ के मूल मे पहुचा जा सकता है।

प्राचीन काव्य शैली

प्राचीन भावनाओं से युक्त मिश्र जी की बहुत-सी कविताए है। इनपर, इनसे पूर्व के—वीर, भक्ति और रीति-तीनो कालो का प्रभाव पड़ा है और इन तीनो कालो

---

१. 'सम्मेलन पत्रिका' माघ-चैत्र, स० २००३ वि०, 'पं० प्रतापनारायण मिश्र कवि और निबन्ध लेखक' : त्रिलोकीनारायण दीक्षित।

की भावनाओ मे सम्बन्धित कविताए पृथक्-पृथक् लिखी गयी है। मिश्र जी द्वारा किये गये युद्धादि के वर्णन वीरगाथा कालीन परम्परा पर आधारित है, भक्ति भावना मे सम्बन्धित कविताए भक्ति काल का स्मरण कराती है और शृंगारिक कविताए रीतिकालीन परम्परा पर लिखी गयी है। यहा पर इन तीनो भावनाओ का पृथक्-पृथक् विवेचन करना अधिक समीचीन होगा।

वीर भावना

वीर भाव से युक्त कविताए मिश्र जी की सख्या मे बहुत कम है। इनके लिखने मे मिश्र जी का मन अधिक नही रमा। फिर भी प्रसगवश जो वर्णन उन्होने किये, वे बडे अच्छे बन पडे है। 'हठी हम्मीर' मे किया गया उनका युद्ध-क्षेत्र का वर्णन बडा उत्कृष्ट है। इसकी चित्रात्मकता देखिए—

"कहूं घन सों गरजै गजराज। कहू महि खूदहि कूदहि बाज॥
कहू झमकै रथ भांतिन भाति। कहू फबि फैलि पदातिनु पाति॥
लसै अति सेन सजी चतुरंग। फबी फहिराहि ध्वजा बहुरग॥
विराजहि वीर सजे तन तानि। गहे कोउ शूल कोऊ धनुबान॥
लिये कर पट्टिम तोमर कोय। जिन्हे लखि कालहु को भय होय॥
चमकि रही चहुंघा असि मग्न। सकै करि परवत हू कहं भग्न॥
चढ़ी चरखीन भयकर तोप। करै छिन माहि त्रिलोकहि लोप॥"[१]

मिश्र जी के आल्हे मे भी वीर भावो का अच्छा प्रयोग हुआ है। कुछ पक्तिया उदाहरण के लिए अवलोकनीय है—

*"बतनै बातन बतबढ़ ह्वैगा औ बातन मां बढ़िगै रारि।
जालिम धक्का भो पाछे ते कोउ न देखै अपनि परारि॥
तड़ तड़ तड तड़ कुरसी टूटै बिचे गिरी भरहरा खाय।
कपड़ा फाटि गये लोगन के ह्वै गइ तस्त-पस्त पोसाक॥
हुंकरातुकरी भइ लरिकन मा घूसा चलन लगे औ लात।
लोग सयाने तब लग कूदे जिनके बाट परी तकरार॥"*[२]

इसके अतिरिक्त कई होलिया भी मिश्र जी ने वीर रस की लिखी है, जो बैसवाड़ा-क्षेत्र मे अब भी होली के अवसर पर गायी जाती है। इन होलियो मे 'अवध मे राना भयो मरदाना' नामक होली विशेष प्रसिद्ध है। इसमे सन् १८५७ ई० के विद्रोही नेता 'राना बेनीमाधव सिह' की वीरता का वर्णन है। मिश्र जी की वीर

---

१ प्रतापनारायण मिश्र . 'हठी हम्मीर' (प्रथम सस्करण) एक्ट ४, सीन दूसरा।
२. सं० नारायणप्रसाद अरोड़ा: 'प्रताप लहरी' (१९४९ ई०) पृष्ठ २२६-२७ 'दंगल खण्ड' : प्रतापनारायण मिश्र।

रस पूर्ण रचनाओ की शैली भी बहुत-कुछ वीरगाथा कालीन गीतो से मिलती-जुलती है। मिश्र जी के आल्हा, होली और चौपाइयाँ इसका प्रमाण है। हा, भाषा मे पर्याप्त अन्तर है। वीरकालीन रचनाये डिंगल भाषा मे है और मिश्र जी की अवधी तथा बैसवाडी मे। मिश्र जी वीर-भावो के चित्रण मे पूर्ण सफल है। इनकी ये रचनाये बड़ी प्रभावोत्पादक तथा राष्ट्रीय-भावनाओं से युक्त है।

भक्ति-भावना

मिश्र जी 'प्रेम' के सच्चे उपासक थे (इसका उल्लेख पीछे हो चुका है) ये भक्ति के क्षेत्र मे फैले हुए मतवादो के चक्कर मे नहीं पडे। इनका कहना था—

"झूठे झगड़ो से मेरा पिण्ड छुड़ाओ।
मुझको प्रभु अपना सच्चा दास बनाओ॥"[१]

आगे वे स्पष्ट कहते है—

"न कैदी हूं किसी मजहब का न पाबन्द मिल्लत का।
किसी अपने का कोई एक हूं बन्दा मुहब्बत का॥"[२]

मिश्र जी समन्वयवादी दृष्टिकोण के थे इसलिए उन्होने सभी मतो को अपने एक प्रेम मे मिला लिया था। वे भक्ति मे तर्क-वितर्क और वाद-विवाद को कोई महत्व नही देते थे। वे कहते है—

"वाद विवादन में फंसि प्रानी नाहक जनम गवांवै रे।
सुख चाहे तो दुविधा तजिकै काहे न हरि गुण गावै रे॥"[३]

साकार और निराकार का भी वाद-विवाद उन्हें पसन्द नही था। वे लिखते है—

"निराकार है, या कि साकार है, गुणागार या निर्गुणागार है।
निराधार का जो कि आधार है, उसे ही हमारा नमस्कार है॥
सभी ज्ञान का जो कि आगार है, दया का बड़ा जो कि भंडार है।
मिटाता सदा जो अहंकार है, उसे ही हमारा नमस्कार है॥"[४]

मिश्र जी अपने ब्रह्म को संसार मे ही व्याप्त देखते है। जगत् मे जितने भी सुन्दर दृश्य है वे सभी ईश्वर की प्रतिकृति है। वे उक्त प्रार्थना की अगली पंक्तियो मे कहते है—

---

१. सं० नारायणप्रसाद अरोड़ा : 'प्रताप लहरी' (१९४९ ई०) पृष्ठ ८५ ('मन की लहर')
२. 'ब्राह्मण' खण्ड ५, संख्या ६, (उसकी मुहब्बत')
३. सं० नारायणप्रसाद अरोड़ा : 'प्रताप लहरी' (१९४९ ई०) पृष्ठ १८३ ('गीत')
४. सं० नारायणप्रसाद अरोड़ा : 'प्रताप लहरी' (१९४९ ई०) पृष्ठ २५६ ('ईश-विनय')

"सुसौन्दर्य, जो पुष्प का सत्व है, सुआनन्द जो प्रेम का तत्व है।
कि जिसका यही सत्य आकार है, उसे ही हमारा नमस्कार है॥"[1]

सासारिक प्राणियो से भी वे कहते है—

"जो कोउ ब्रह्म अरूप को, देख्यो चहै स्वरूप।
नेह नयन सों लेहि लखि, जग के सुन्दर रूप॥"[2]

प्रेम के आगे मिश्र जी सासारिक-माया जाल को तुच्छ समझते थे। उन्हे प्रेम के अतिरिक्त, सारा ससार एक बखेडा जान पडता है—

"दीवारी दुनियादारी यह नाहक का उलझेड़ा है।
सिवा इश्क के, यहां जो कुछ है निरा बखेड़ा है॥"[3]

मिश्र जी का भी 'प्रेम' कबीर, सूर, तुलसी के 'ब्रह्म' की तरह अकथनीय था। वे कहते है—

"अकथ अनन्द प्रेम मदिरा को, कैसे कोउ कहि पावै है।
महा मुदित मन होत कबहुं जो, ध्यानौ याको आवै है॥"[4]

मिश्र जी ईश्वर की विराट सृष्टि को देखकर विस्मित और आत्मविभोर हो जाते है उन्हे चारो ओर प्रेम देव की ही छटा दिखायी पड़ती है—

"चहुं ओर मेरे नाथ की महिमा अमित लखि परे हो।
सब भाति सर्व समर्थ है अति अकथ प्रभुता करे हो॥
चल देख प्यारे विपिन में जह विटप अगनित खरे हो।
जल देन को तुम में गयो ? तौहूं रहत नित हरे हो॥
चल देख प्यारे समुद्र में अति अगम जल जहं भरे हो।
बन्धन न कहुं कछु देखिये हर ठौरते नहिं टरे हो॥
चल देख प्यारे अगिन मे जहं सब पदारथ जरे हो।
विद्वान मूरख एक को तेहि बिन न कारज सरे हो॥"[5]

---

१. सं० नारायणप्रसाद अरोड़ा : 'प्रताप लहरी' (१९४९ ई०) पृष्ठ २५६ ('ईश-विनय')
२. 'ब्राह्मण' खण्ड ५, संख्या ४ ('प्रेम स्तोत्र')
३. सं० नारायणप्रसाद अरोड़ा : 'प्रताप लहरी' (१९४९ ई०) पृष्ठ ७५ ('मन की लहर')
४. 'ब्राह्मण' खण्ड ५, संख्या ६, ('प्रेम सिद्धान्त')
५. स० नारायणप्रसाद अरोड़ा : प्रताप लहरी' (१९४९ ई०) पृष्ठ १५१ ('प्रेम पुष्पावली')

मिश्र जी का ब्रह्म अरूप होते हुए भी साकार है। उसे भक्त नेह के नेत्रो मे देख सकता है। उसकी आभा ससार मे तो है ही, पर यदि भक्त चाहे तो अपने हृदय मे भी उसका साक्षात्कार कर सकता है—

"प्रेम सिन्धु उमगत उर जबही, ईश्वर मिलत ततच्छन तबही ।।
औरहु मुनि राखहु बुधभूपा, यदपि जगतपति अतनु अरूपा।
पै भक्तन की रुचि अनुसारा, दरश देत नित प्राण पियारा ।।"[१]

मिश्र जी अनन्य भक्त थे। उन्होने पूरी तरह से अपने को प्रेम देव का गुलाम समझ लिया था। वे प्रेम के आगे अपने तक को भूल गये थे—

"कहने सुनने को था मुझ पास एक दिले नाकाम अपना।
मुद्दत गुजरी, बनाया तूने उसे गुलाम अपना ।।
"अब तो तेरे सिवा न कोई खुदा न कोई राम अपना।
जो कुछ है सो तू ही है और से क्या है काम अपना ।।
तेरी याद में भूल गया अब आग़ाज़ो अंजाम अपना।
किसे खबर हैं, कहां हू ? कौन हू ? क्या है नाम अपना ।।"[२]

मिश्र जी की अनन्यता देखकर यह विस्मय होने लगता है कि यह कवि भक्ति काल का है कि आधुनिक काल का ? वह प्रेम की हर दशा से अपने को मिलाने को तैयार है। प्रेम-पथ मे उन्हे यश, अपयश का ध्यान नही है—

"इस मुरशद के पैरो इस आक़ा के ख़िदमतगार हैं हम।
हर सूरत से, हज़रते इश्क के ताबेदार हैं हम ।।
इश्क़ अगर है खुदा तो उसके बंदए गुनहगार हैं हम।
इश्क़ जो बुत है, तो उसके लिए अहले जुन्नार हैं हम ।।
इश्क अगर ईमान है तो पाबंदे शरए दीदार हैं हम।
इश्क कुफ्र है, तो कहते क्यो डरिए, कुफ्फ़ार है हम ।।"[३]

मिश्र जी अपने प्रेमदेव मे पूरी तरह तन्मय थे। उन्हे उसके बिना कुछ अच्छा न लगता था। वे अपना पूरा समय उसी के ध्यान मे बिताते है—

"सिवा तेरी सूरत के देखना और तो कुछ भाता ही नहीं।
मेरे प्यारे, चैन मुझको तुझ बिना आता ही नहीं ।।
तेरे दर्वाजे की तरफ दिन भर में सौ दफा जाता हूं।
अपने घर मे, जो दम भर बैठा तो घबराता हूं ।।

१, 'ब्राह्मण' खण्ड ३, सख्या ९-१०, ('श्री प्रेमपुराण') :
२. सं० नारायणप्रसाद अरोड़ा : 'प्रताप लहरी' (१९४९ ई०) पृष्ठ ८० ('मन की लहर')
३ सं० नारायणप्रसाद अरोड़ा : 'प्रताप लहरी' (१९४९ ई०) पृष्ठ ९५ ('मन की लहर')

"काम जो कुछ दुनिये के आ पड़ते हैं तो उकताता हूं।
ध्यान मे तेरे, हमेशा अपना वक्त बिताता हूं ॥"[१]

मिश्र जी मे इतने दीवाने हो गये थे कि उन्हे उनके कष्टो तक की चिन्ता नही थी। वे प्रेम-पथ के कष्ट सहने को सहर्ष तैयार है। वे कहते है—

"लुत्फ अगर मजूर नहीं तो शौक मे सतालो साहब।
पर मुह को छिपाके, दीद के लिए न तरसावो साहब ॥
तुम्हारे जब हो चुके तो फिर अपने से रहा कुछ काम नही।
मरजी से तुम्हारी कभी सर फेरें हम वह गुलाम नहीं ॥
सहेंगे सब दुख सर आखों से उज्र का लेंगे नाम नहीं।
हां अर्ज है इतनी कि बिन देखे दिल को आराम नहीं ॥"[२]

मिश्र जी मे भक्ति भावना-दास्य और दाम्पत्य-दो रूपों मे मिलती है। दास्य भाव मे उनका दैन्य बडा प्रबल है। वे अपने को पातकी कहकर, ईश्वर को पुकारते है—

"मेरे कर्मों का न्याय जो तुमने ठाना।
तो नाथ ! नहीं है मेरा कही ठिकाना ॥
करता हू, करूगा, किये है पातक नाना।
जाना है तो भी नहीं धर्म को माना ॥
ऐसों को बचाना हो तो शीघ्र बचाओ।
मुझको प्रभु सच्चा दास बनाओ ॥"[३]

दास्य भाव वही पूर्ण उत्कृष्टता को पहुचता है जहा भक्त अपने को छोटा, नीच और अधम तथा ईश्वर को बडा, उच्च और पवित्र समझता है। भक्त का लघुत्व ही उसका गुरुत्व है। मिश्र जी ईश्वर की शरण तजकर अन्यत्र नही जाना चाहते। ईश्वर ही उनका एक आधार है—

"मेरो दूसरो नहिं द्वार।
दीनबन्धु कृपायतन ! मै सर्बाहि भांति तुम्हार ॥
कौन शरणागत सुखद तुम सरिस सर्व प्रकार।
गहहु जाकी आश तुम बिन हे दया आगार ॥"[४]

---

१. सं० नारायणप्रसाद अरोड़ा : 'प्रताप लहरी' (१९४९ ई०) पृष्ठ ७६ ('मन की लहर')
२. स० नारायणप्रसाद अरोड़ा : 'प्रताप लहरी' (१९४९ ई०) पृष्ठ ८९ ('मन की लहर')
३. सं नारायणप्रसाद अरोड़ा : 'प्रताप लहरी' (१९४९ ई०) पृष्ठ ८५ ('मन की लहर')
४. सं० नारायणप्रसाद अरोड़ा : 'प्रताप लहरी' (१९४९ ई०) पृष्ठ १५४ ('प्रेम पुष्पावली')

मिश्र जी का दास्य भाव बहुत-कुछ तुलसी के दास्य भाव से मिलता-जुलता दिखाई पडता है। दाम्पत्य भाव की भक्ति भी मिश्र जी की उत्कृष्ट है। वे अपने प्यारे से मिलने के लिए तड़फडाते दिखाई पडते है। उनकी स्थिति एक विरहिणी की-सी हो गयी है—

"बस बस बहुत भई अब आवो।
हा हा सहि न जात दुख कैसेहुं बेगिहि मुख दिखरावो॥
प्राणहि लियौ चहत तौ प्यारे, और जुगुति ठहरावो।
बिरह वाण सों बेधि दयामय, निज नामहिं न लजावो॥
कै निज हाथन विषहि देहु कै अधर सुधा रस प्यावो।
काहू विधि अपने प्रताप को जरत जीव जुड़वावो॥"[1]

मिश्र जी का विरह करुणा की चरम सीमा तक पहुच गया है। वे कहते है—

"करो प्रिय अब तो जीवन दान।
तुम बिन बुरी बियोगिन की गति, निकसत पैठत प्राण॥
कबहु कैसेहु सुधिहु भई तौ, नाहिन दूजो ध्यान।
द्वारे की दिशि देखि रहत धरि, पग आहट पर कान॥
मुख ते कढ़त अध खुले अखरन हा गुण रूप निधान।
बिन तव दर्श सुधा परतापहिं रह्यो उपाय न आन॥"[2]

मिश्र जी ने अपने को स्त्री और ईश्वर को पुरुष मानकर दाम्पत्य भाव की उपासना की है। मिश्र जी की यह प्रेमोपासना संत-परम्परा की परिचायक है।

प्रेमोपासक होते हुए भी मिश्र जी ने सगुणोपासना की अवहेलना नही की, बल्कि उपासना का सुगम साधन मानकर, उसका समर्थन किया और कृष्ण, काली, दुर्गा आदि की स्तुतिया की। धार्मिक क्षेत्र मे भी उनका दृष्टिकोण बडा व्यापक था। उनके विराट प्रेम मे सभी मत एक हो गये थे। दुर्गा की स्तुति वे बड़ी तन्मयता के के साथ करते है। कुछ पक्तियाँ देखिए—

"जय जय जय त्रिभुवन महरानी।
विबुध वृन्द पूजित पद पंकज नेहमयी जननी जग जानी।
पुरुष सिंह मानस अरूढ़ नित शूल प्रहार कुशल बल खानी॥
सेवक रच्छिनि, अरि दल मच्छिनि, अतुल प्रभाव न जात बखानी।
सिरजन पालन, नाशत निरता सुख दुख बंध मुक्ति बरदानी॥
निशि दिन रहित प्रेम मदमाती, चहति सदा मैं, मै की हानी॥"[3]

१. 'ब्राह्मण' खण्ड ३, सख्या ११, ('प्रेम-प्रमाद')
२ 'ब्राह्मण' खण्ड ३, सख्या ११, ('प्रेम-प्रमाद')
३. 'ब्राह्मण' खण्ड ४, संख्या ४, ('नवरात्र के पद')

मिश्र जी धार्मिक क्षेत्र मे फैले हुए विभिन्न मतवादो को मिटाना चाहते थे क्योंकि उस समय इन मतवादो से देश की शक्ति का बड़ा विघटन हो रहा था। इसीलिये वे काली, कृष्ण, दुर्गा आदि की स्तुतियां करते है। काली और कृष्ण के उपासको का मतभेद देखकर' मिश्र जी ने उन्हे एक करने के लिए—कृष्ण और काली की अभेद स्तुति की है। उदाहरणार्थ कुछ पंक्तिया दर्शनीय है—

"जय काली अद्भुत गति वारी।
लीला हित वृन्दावन बिहरति ह्वै नटवर वपु रासबिहारी॥
एकहि ज्योति लसति द्वै तनु धरि नदनन्दन वृषभानु दुलारी।
को समझै यह भेद अकथ अति आपहि पुरुष आपहि नारी॥
सोई कटि जो रही वसन बिन यहि छिन लसति पीत पटधारी।
सोई लटै रही जे लटकत बेनी बनि छाजहि छवि भारी॥"[1]

सगुण और निर्गुण के भी विवाद को मिश्र जी बड़ी कुशलता से समाप्त करते है—

"अगुण सगुण व्यापक पृथक्, अगणित रूप अरूप।
अमित महिम अचरज्जमय, जय जय त्रिभुवन भूप॥"[2]

मिश्र जी समन्वयवादी भक्त थे। उन्होंने सभी मतो को एक मे मिलने के लिए प्रेरित किया। इससे भारत मे फैली हुई विषमता बहुत-कुछ समाप्त हुई और मिश्र जी की स्वान्त सुखाय भक्ति, परान्त सुखाय हो गयी।

मिश्र जी की भक्ति भावना, पूरी तरह से भक्ति कालीन परम्परा पर आधारित है। इनकी भक्ति मे कबीर, सूर, तुलसी आदि—सन्त और भक्त कवियो के विचार तत्व मिले हुए है। इनमे यदि एक ओर कबीर की-सी प्रेमाकुलता है तो दूसरी ओर तुलसी और सूर की-सी अनन्यता, तन्मयता और सगुणोपासना के प्रति निष्ठा है। यही नही, इनकी भाषा-शैली भी बहुत-कुछ भक्ति-कालीन कवियो से मिलती-जुलती है। नीचे दो पंक्तिया कबीर के पदो से कितना साम्य रखता है ? यह स्वत: ही देखने से ज्ञात हो जाएगा—

"मनुआ काहे इत उत धावै।
मतवालेन की चाल सीखिकै नाहक बुद्धि गंवावै॥
मसजिद मन्दिर औ गिरजे में दौरत पांव थकावै।
घट के भीतर साहब बैठा तेहिते लौ न लगावै॥

---

१. सं० नारायण प्रसाद अरोड़ा : 'प्रलाप लहरी' (१९४९ ई०) पृष्ठ १८१-८२ 'कृष्ण और काली की अभेद स्तुति'

२. 'ब्राह्मण' खण्ड ५, संख्या १, ('नमों प्रेम भगवान')

अपने हाथन अपनी महिमा लिखि-लिखि दुनिया गावै ।
बिना पढ़े एक प्रेम की पोथी कबहूं मरम न जावै ।।"[१]

सूर और तुलसी की भी परम्परा मे लिखी गयी कुछ पक्तिया देखिए—

"प्रभु तजि शरण काको जाउ ।
आश करिबे योग जन के एक ही तो ठाउं ।।
तिन्हु की सुधि लेत जो जानत न दाहिन बाउं ।
कौन ऐसो और जाको प्रणत पालक नाउं ।।
कौन सुख लूटत जो जग के फिरत पूजत पाउं ।
कौन दुख मोको जो तेरे आसरे ऐंड़ाउं ।।"[२]

इसके अतिरिक्त मिश्र जी की उर्दू मे लिखी—प्रेम-विषयक कविताओ में कुछ सूफी-कवियो का प्रभाव भी परिलक्षित होता है । यद्यपि मिश्र जी ने अपने प्रेमदेव को पुरुष रूप मे माना है फिर भी विरह की व्याकुलता, शराब का प्रेम-नाद के रूप मे वर्णन आदि उन्हे सूफी-कवियो की परम्परा मे पहुँचा देता है । उदाहरण के लिए निम्नलिखित पक्तिया देखिए—

"मए इश्क़ तलखो से मुंह ज़रा न बिचकाओ यारो ।
बड़ा मज़ा है, जो आंखें मूंद के पी जाओ यारो ।।
कड़वाहट बदबू बदनामी सिर्फ देखने वाले को ।
लेकिन अजहद लुत्फ़ बख़्शे है यह मतवाले को ।।
अजब सैर दिखलाती है यह खोल के दिल के ताले को ।
यकीं न हो तो चढ़ाकर देखो एक पियाले को ।।"[३]

इसके साथ ही रीतिकालीन कवि घनानन्द की-सी विरहानुभूति भी मिश्र जी के कुछ कवित्तो मे दिखाई पड़ती है । यथा—

"मोद मयी मूरत निहारी जौन दिन ते,
भुलानी तौन दिन ते हमारी मति गति है ।
'परताप' मिलिवे की बानक बनै न क्योंहू,
मिले बिन चित्त बिन चैन होत अति है ।।

---

१. स० नारायण प्रसाद अरोड़ा—'प्रतापलहरी' (१९४९ ई० पृष्ठ १६० ('प्रेम पुष्पावली')

२. स० नारायाण प्रसाद अरोड़ा —'प्रतापलहरी' (१९४९ ई०)—पृष्ठ १४५ ('प्रेम पुष्पावली')

३. सं० नारायण प्रसाद अरोड़ा—'प्रतापलहरी' (१९४९ ई०) पृष्ठ ९० ('मन की लहर')

कहा जाय, कैसी करें, तो सो न बसाति कछू,
मीठी छुरी उर मे सदैव ही गड़ति है।
तेरी सुधि प्यारे मन बसी है हमारे,
न निसारे निसरति, न बिसारे बिसरन है ॥[१]

मिश्र जी मे, भक्ति के साथ ही, भक्ति कालीन कवियो की-सी उपदेशात्मकता भी मिलती है। वे सासारिक प्राणियो को—ससार के भयावह परिणामो से अवगत कराते हुए—ईश्वर की ओर उन्मुख होने की शिक्षा देते हैं—

"जागो भाई जागो रात अब थोरी।
काल चोर नहिं करन चहत है जीवन धन की चोरी ॥
औसर चूके फिर पछतैहो हाथ मींजि सिर फोरी।
काम करो नहिं काम न ऐहैं बातें कोरी कोरी ॥
जो कुछ बीती बीत चुकी सो चिंता से मुख मोरी।
आगे जामें बनै सो कीजै करि तन मन इकठौरी ॥"[२]

मिश्र जी ने प्रेमोपासना की ओर भी लोगो का ध्यान आकृष्ट किया। उन्होने बताया कि मनुष्य धन, बल, विद्या से कितना पूर्ण क्यो न हो जाय, पर जब-तक वह अपने धर्म और पूर्वजो की बतायी हुई रीति तथा प्रेम को अपना कर नही चलेगा, तब-तक वह वास्तविक सुख नही प्राप्त कर सकता। देखिए—

"जोरि धन लेहु सुमेरु समान,
सबै पढि लेहु कुरान पुरान ॥
बनौ विधिते बढ़िकै बुद्धिमान,
करै सुरराजहु तव सनमान।
ब्याहि किन लेहु लक्ष्मी जोय,
प्रेम बिन साचो सुख नहिं होय ॥
* * *
करो हरिसों हिय साची प्रीति,
धरो मन माहिं धर्म की भीति।
गहो अगिले ऋषिगण की रीति,
तबहिं सुख पैहो करहु प्रतीति ॥

---

१. 'कवि वचन सुधा' के १४ वें वर्ष में प्रकाशित।
२. स० नारायणप्रसाद अरोडा—'प्रतापलहरी' (१९४९ ई०) पृष्ठ १९-२० ('जागो भाई जागो')

कहै परताप सुनहु प्रिय लोय,
प्रेम बिना सांचो सुख नहीं होय ।।"[१]

मिश्र जी ने ईश- प्रार्थनाएं भी लिखी है, जो बडी श्रेष्ठ हैं। इनमे 'पितु-मातु सहायक स्वामी सखा,'[२] 'शरणागत पाल कृपाल प्रभो !'[३] 'निराकार है या कि साकार है,'[४] प्रार्थनायें विशेष प्रसिद्ध है। जिसमे प्रथम प्रार्थना तो 'मानस' की चौपाइयो नक मे प्रतिद्वन्द्विता करती दिखायी पडती है। इसका प्रचार उत्तर -भारत मे तो पूर्णतया है ही, साथ ही देश के अन्य प्रान्तो मे भी इसकी अच्छी ख्याति है। कही-कही स्कूलो मे भी यह प्रात: कालीन प्रार्थनाओ के रूप मे प्रचलित है। इस प्रार्थना की कुछ पंक्तिया इस प्रकार हैं—

"पितु मातु सहायक स्वामी सखा, तुमहीं इक नाथ हमारे हो।
जिनके कछु और आधार नहीं तिनके तुमहीं रखवारे हो।।
सब भांति सदा सुखदायक हो दुख दुर्गुन नासन हारे हो।
प्रतिपाल करौ सिगरे जग को अतिसै करुना उर धारे हो।।

इस प्रकार मिश्र जी की भक्ति, पूर्ण पराकाण्ठा पर पहुंची हुई है। उन्हे एक भक्त का हृदय प्राप्त था। उनकी कविताओ मे सच्चे भक्त की-सी अनन्यता, तन्मयता और दैन्यता दिखाई पडती है। सहृदयता और परदुख कातरता उनमे इतनी थी कि एक सामान्य प्राणी के भी दुख को देखकर द्रवित हो जाते थे। उनका हृदय बडा कोमल था। वे 'प्रेमदेव' के प्रेम मे पूरी तरह दीवाने थे और अपने को प्रेमदास कहते थे। 'प्रेम पुष्पावाली' उनकी प्रेमोपासना का सच्चा प्रतीक है। इसके अतिरिक्त उन्होने जितनी भी पुस्तकें लिखी हैं प्राय. सभी 'प्रेमदेव' को ही समर्पित की है और सभी पुस्तको के समर्पणो मे उनकी विह्वलता, प्रेमाकुलता, भावुकता और अनन्यता दिखाई पडती है। मिश्र जी निश्चित ही निश्छल भक्त थे।

शृंगार भावना

मिश्र जी का शृगार रीतिकालीन पीठिका पर लिखा गया है। इसमें रीति-बद्ध और रीति-मुक्त-दोनो परम्पराओ के दर्शन होते हैं। वैसे स्वतन्त्र प्रकृति के होने के कारण मिश्र जी रीति-बद्ध रचनाओ मे अधिक नही रमे। फिर भी जितनी कवि-

---

१ सं० नारायण प्रसाद अरोड़ा: 'प्रताप लहरी' (१९४९ ई०) पृष्ठ १७१ 'प्रेम पुष्पावली')

२. स० नारायण प्रसाद अरोड़ा: 'प्रताप लहरी' (१९४९ ई०) पृष्ठ १३-१४।

३. सं० नारायण प्रसाद अरोड़ा. 'प्रताप लहरी' (१९४९ ई०) पृष्ठ १३

४. सं० नारायण प्रसाद अरोड़ा: 'प्रताप लहरी' (१९४९ ई०) पृष्ठ २५६

५. स० नारायण प्रसाद अरोड़ा 'प्रताप लहरी' (१९४९ ई०) पृष्ठ १३-१४

ताए उन्होने इस परम्परा मे लिखी है वे उनके प्रौढ-रीति विषयक-ज्ञान का प्रतीक है। मिश्र जी को नायिका-भेद और अलकारो का पूर्ण ज्ञान था। एक स्थान पर वे नवोढा-नायिका के गुणो का चित्रण बड़ी कुशलता के साथ करते है। शीत ऋतु के प्रभाव से लोगो की स्थिति नवोढा-नायिका की तरह हो गयी। देखिये—

"भावै अवासहि मे दुरि बैठिबौ, बास में आनन ढाकि रहै है।
बात चले परतापनारायण, गात सबै थहरात महै है।।
सोर करे सिसकी के घने, निशि नाथ ते दूरि रह्योई चहै है।
लोग सबै रितु सीत की भीत ते, नारि नओढा की रीति गहै है।।"[१]

ऐसी ही दृढानुरागिनी परकीया-नायिका के भाव भी निम्नलिखित सवैया मे दृष्टव्य है—

"योंहूं हंसे हसिहै सब वोहू, दुहू बिधि सो उपहास तो हैऐ।
तौ परताप वियोग की ताप मे, क्यों फिर आपनो जीव जरैऐ।।
होनी जु होय सु होय भले खुलि, खेलिये और उपाय न पैऐ।
यों मन होत रहै सजनी, मनमोहनै लैकै कहूं कढ़ि जैऐ।।"[२]

कही-कही मिश्र जी की वर्णन शैली भी रीति-बद्ध परम्परा से आबद्ध दिखाई पडती है—वर्षा ऋतु मे वे वसन्त का आभास ऐसी पटुता से कराते है कि उनकी विलक्षणता पर आश्चर्य होने लगता है। देखिए—

"कारे-कारे बादर मतग मतवारे जासु,
लाले-लाले लसत रिसालेन को साज है।
चपला की चमक पताका फहरात भौन,
घन घहरात तौन दुन्दुभी अवाज है।।
धावन पवन यश गावन चकोर मोर,
राजत प्रताप सब राजसी समाज है।
कैसे कविराज धौं बसन्तै रतिराज कहैं,
बीस बिसे देख्यो वर्षा ही ऋतुराज है।।"[३]

पर ऐसे वर्णन मिश्र जी के बहुत-कम है। उनकी अधिकांश रचनायें रीति-मुक्त परम्परा पर ही आधारित हैं। मिश्र जी ने शृंगार के—सयोग और वियोग-दोनो पक्षो का अपनी कविताओ मे चित्रण किया है और ये चित्रण बडे सरस और वास्तविक है। इनमे किसी प्रकार की खीच-तान एव चमत्कारिकता नही है। इन

१. सं० नारायण प्रसाद अरोड़ा: 'प्रताप लहरी' (१९४९ ई०) पृष्ठ १९८।
२. सं० नारायण प्रसाद अरोड़ा 'प्रताप लहरी' (१९४९ ई०) पृष्ठ १९९।
३. 'ब्राह्मण' खण्ड ३, संख्या ५, ('स्फुट कविता')

रचनाओ मे उनका हृदय पूरी तरह सयुक्त दिखाई पड़ता है। मिश्र जी के शृंगार के आलम्बन राधा-कृष्ण, दुष्यन्त-शकुन्तला और सामान्य नायक-नायिका है और उद्दीपन प्राकृतिक दृश्य-ऋतुएं आदि है।

कृष्ण जी होली के अवसर पर—रास्ते मे किसी गोपी को पकड लेते है, वह अनेक प्रकार से छोडने की विनय करती है। इसका वर्णन मिश्र जी निम्नांकित पंक्तियो मे इस प्रकार करते है।

"पांय परौं कर छोड़ दै ब्रजराज दुलारे।
आवत जात लखैगो कोई मारग मे मति लाज लै ब्रजराज दुलारे॥
हौ तो लाल सदा तेरो हौं होरिहि को कछु नेग है ब्रजराज दुलारे।
गारी बकत कहा रस निकसै राखि न जात इकंत पै ब्रजराज दुलारे॥
परब मनाय सकै सब सो सब दूरिहु सों रंग डारिकै ब्रजराज दुलारे।
प्रेमदास ऐसी क्यो कीजै बुरी लगै जो काहुवै ब्रजराज दुलारे॥"[1]

इसी प्रकार राधिका की एक सखी कृष्ण को पकडने का प्रयास कर रही है—

"ठाढ़ो रहै किन लाल आज तोहि देखोगी कैसो है वीर।
बहुत दिना मेरी सखियन के हरत फिर्यो चित चीर॥
कालिह अचानक भागि बच्यो हो, यों मुख मोड़ अबीर।
तब साची जब मारि भगाऊ, तब सगिनि की भीर॥
तो कौं गहि गुलचाय भली विधि, बोरौं केसरि नीर।
लै जै हौं कस बांधि भुजन सों श्री राधा के तीर॥
प्रेमदास तबही छोड़ौं जब वे बकसै तकसीर।"[2]

होली के अवसर पर कृष्ण जी—रास्ता चलने वाली गोपियो को बहुत परेशान करते है। इस पर एक सखी से दूसरी सखी कहती है—

"जु फगुवानों डोलै छैल।
रग राते रसिया के मारे चलि न सकै कोउ गैल॥
* * *
तकि-तकि गात हनै पिचकारी निधरक निलज अरैल।
गावत निपट कुफारी गारी लावत नहिं मन मैल॥
सब की लाज लेन मे दैया गिने सधारन सैल।
प्रेमदास धौ काह करैगो, जसुमति को बिगरैल॥"[3]

---

१. 'ब्राह्मण' खण्ड ७, संख्या ८, ('होरी')
२. 'ब्राह्मण' खण्ड ७, संख्या ८, ('होरी')
३. सं० नारायणप्रसाद अरोड़ा : 'प्रताप लहरी' (१९४९ ई०) पृष्ठ १४४

मिश्र जी ने प्रेमी-प्रेमिकाओ के प्रेम-सम्वाद भी बडी कुशलता से कराये है। एक बार कृष्ण जी राधा से किवाड़े खोलने के लिए कहते हैं। राधार उनसे नाम पूछती है। कृष्ण जी अपना नाम वनमाली बताते है। तब राधा जी कहती है कि जब वनमाली हो तो वन मे जाकर विहार करो। ऐसे ही कई नाम अपने कृष्ण बताते हैं और राधा उन्ही के अनुरूप उन्हे पढाती रहती है—

"खोलो जू किवार, ऐती बेर कौन टेरत हो,
हौ तो वनमाली जाव बिहारौ वन बाग में।
नाम मेरो माधव है, कौन सी वसन्त ऋतु,
नाही घनश्याम, जाय बरसो तड़ाग मे॥
हौं तो हौ चक्रीधर, भाजन बनावो जाय,
हरि हौं प्रताप जाय डोलो दल नाग मे।
जेती-जेती प्यारे ब्रजराज जूने अरज कीन्ह,
तेती-तेती प्यारी ने भुलायो अनुराग मे॥"[१]

नायिका के हावो-भावो का चित्रण भी मिश्र जी ने बडी कुशलता के साथ किया है। देखिए—

"छनक लजौहे सतरौहे ह्वै छनक नैन,
छनक हसौहैं ह्वै अनन्द उमहत है।
हां हां नही रस भरे बैन परताप छन—
कहि आवै एक छन मुख ही रहत है॥
मन्द मुसकान भौंह नासिका की मुरि जानि
देखिवे मै स्वादित सुधाहूं सों महत है।
गोरस के हेत ज्यो-ज्यों हठति पियारी त्यों-त्यों,
जो रस चहत लाल सो रस लहत है॥"[२]

ऐसे ही शकुन्तला के हाव-भाव देखकर दुष्यन्त आकृष्ट होता है और कहता है—

"होत भली सब बात भलेन की, होत भली सब बात।
रूप सरूप दियो बिधिना जिहिं, तिहि सब चाल सुहात॥
चितवनि चलनि हसनि मुख फेरनि देखत जिय ललचात।
सब बिधि सबै अनोखी छवि सों, नेही नैन जुड़ात॥

---

१. स० नारायणप्रसाद अरोड़ा : 'प्रताप लहरी' (१९४९ ई०) पृष्ठ १८५
२. 'ब्राह्मण' खण्ड ३, सख्या ५ ('स्फुट कविता')

आहा कैसी प्रान पियारी यहि छिन लसति लजात।
निज दृग विजित कमल पखुरिन गनि बरबस मन लिए जात ॥"[१]

शृगारिक-दृश्यो के वर्णन भी मिश्र जी ने यत्र-तत्र किये है जो बडे स्वाभाविक है—शकुन्तला के मुख पर एक भ्रमर मडरा रहा है। दुष्यन्त यह दृश्य देखकर—भ्रमर के भाग्य की बडी सराहना करता है। दुष्यन्त का यह कथन शृगारिक भावो से ओत-प्रोत है। देखिए—

"धन्नि भवर बड़ि भागि तिहारी रे।
कौन तप करि कीन्हीं देही कारी-कारी रे।
फिर-फिर परसि-परसि भागत हौ,
बड़े-बड़े नैनन की निकै अनियारी रे॥
उड़ि-उड़ि गुजत कानन के ढिग,
रस की कहत मानौं बातै प्यारी-प्यारी रे।
भागत होंठन को रस लै-लै,
बाहु सो हटावै ज्यों-ज्यों यह सुकुमारी रे॥"[२]

वियोग-शृगार का वर्णन मिश्र जी ने विस्तार से किया है। कृष्ण के मथुरा चले जाने से गोपिया दुखित है। जो भी पथिक उन्हे मथुरा जाते दिखाई देते है उन्ही को रोककर वे अपना सदेशा भेजती है पर वहा से उनके सदेशो का कोई उत्तर नही आता और वे सदैव चित्रवत् खडी उनका रास्ता देखा करती है—

"जेते गये धीरज दै मधुपुर पथिक लोग,
तेऊ फिरे ना एक नैन थकि रहियो।
चित्र सी ठाढ़ी ह्वै जोवतीं धरीन मग,
तुमको विलोकि उर धीर कछू लहियो॥
जात हौ कहा पै प्रताप नेक ठाढ़े होहु,
एक हम दीनन की बात हिये गहियो।
हा हा बटोही बीर मधुपुर पधार्‌यो तो,
मेरी गोपाल जी सो जै गोपाल कहियो॥"[३]

अन्त मे निराश होकर वे पवन से अपना सदेशा कहती है और उसे अपना दूत बनाकर कृष्ण के पास भेजती है—

---

१. प्रतापनारायण मिश्र : 'संगीत शाकुन्तल' (१९०८ ई०) तीसरा अंक, द्वितीय दृश्य।
२. प्रतापनारायण मिश्र 'संगीत शाकुन्तल' (१९०८ ई०) पहिला अंक द्वितीय दृश्य।
३. स० नारायणप्रसाद अरोड़ा 'प्रताप लहरी' (१९४९ ई०) पृष्ठ १८५

"पीत पट अंग अंक जाल गुंज माल राजै,
चन्द्रिका मयूर चूडवशी कर चहियो।
मकराकृत कुण्डल, प्रताप शुभ कानन में,
देखि-देखि आभा अपन नैन लाभ लहियो॥
हा हा समीर वीर लीनो है निहोर एक,
नेक वा विस्वासी के पास ह्वै बहियो।
मो पै कृपा करि बहु भांति तू पायनपरि,
मेरी गोपाल जी सों जै गोपाल कहियो॥"[1]

उक्त कवित्त में कृष्ण को पहचानने के लिए उनकी आकृति का वर्णन भी—पवन से किया गया है। मिश्र जी की यह योजना बडी अनूठी है। इसी के अनुकरण पर आगे चलकर, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने भी अपने 'प्रिय प्रवास' में पवन-दूत की कल्पना की।

इसके बाद जब उद्धव जी मथुरा से कृष्ण का संदेशा लेकर गोकुल आते हैं और कृष्ण की पाती गोपियों को देते हैं तब वे उसमें लिखी-योग की बातें पढकर बहुत दुखित होती हैं और संयोग-कालीन बातों का स्मरण कर ऊद्धव से कहती हैं—

"सींचि-सींचि चन्दन सुगन्धन सो अंग ऊधो,
फूलन सो सांवरे छबीले छवि लटके।
कुंज-कुंज वेलिन में नवल - नवेलिन मे,
लै - लै प्रताप डोलें ओढ पीतपट के॥
ते गात मेरे अब राखन चढ़ाइबे को,
सांवरो पठाई जो पाती जग जटके।
ऊधो उपाय अब दूसरो न आनि रह्यो,
तजि है परान अब कान्ह-कान्ह रटिके॥"[2]

तदुपरान्त जब ऊद्धव गोकुल से मथुरा वापस जाने लगते हैं तब गोपिया बडी ही दैन्यता से उनसे निवेदन करती है—

"आंखिन ते आंसू के प्रवाह नित व्यापे रहै,
कारे भये शोभा प्रताप कुच पटके।
आह के दाह मे दहत निशिवासार देह,
कृशत कलेवर मे खाल रह्यो सटके।

---

१. सं० नारायणप्रसाद अरोड़ा : 'प्रताप लहरी (१९४९ ई०) पृष्ठ १८४-८५।
२. सं० नारायप्रसाद अरोड़ा-'प्रतापलहरी' (१९४९ ई०) पृष्ठ १८५

ऊधो जी कृपा करि कहियो सदेशो ऐतो,
गहि के चरण सरोज वा नट के।
व्रज की नवेली विरहाकुल वियोग धारी,
तजि हैं परान अब कान्ह-कान्ह रटिके ।।"[1]

मिश्र जी ने दुष्यन्त और शकुन्तला के विरह का चित्रण भी बड़े अच्छे ढग से किया है। दुष्यन्त का विरह दोनो ओर से है, दोनो ही एक-दूसरे से मिलने के लिए विकल है। शकुन्तला भूख, प्यास और निद्रा तक को भुला बैठी है। वह कहती है—

"मेरे प्रान प्यारे, मेरी अंखियन के तारे,
मोहि तेरे बिन देखे, कहू कछु न सुहाय है।
भूली नींद भूख प्यास एक सुधि तेरी रही,
तेरो मिलनोई रह्यो जीवन उपाय है ।।
तेरे जिय में है कहा, सो तो नहिं जानौ नेक,
मेरी गति सूरति पै प्रगट दिखाय है।
नेह की तपनि तपि-तपि छन-छन तन,
आसुन सों भीजत ह्व छीजत ह्वो जाय है ।।"[2]

दुष्यन्त शकुन्तला के उपर्युक्त विरह को छिपकर सुन लेता है और उसी के अनुरूप अपनी भी दशा का वर्णन वह शकुन्तला से करता है—

"जानौ जनि जीय मै हमारी ही दशा है ऐसी,
मेरी गति मेरी प्यारी याहू ते सिवाय है।
सूरज उदै मे कुमुदिनि कुम्हिलाही जाति,
चन्द्रमा बिचारे को तो रूप ही हिराय है ।।
ताप ही करति अनुराग की अगिन तुम्हे,
मेरे तो करेजे रही होरी सी लगाय है।
कैसी करौं हाय जी की व्यथा है बलाय जो,
न सहो सहि जाय है, न कहो कहि जाय है ।।"[3]

मिश्र जी के विरह वर्णन मे ऋतुए, विशेष रूप से-विरह को उद्दीप्त करने मे सहायक हुई हैं। वर्षा, ग्रीष्म और वसन्त ऋतुओ के वर्णन उन्होंने कई स्थानो पर किये है। वसन्त ऋतु विरहिणी के लिए सबसे अधिक दुखदायिनी होती है। वसन्त के आगमन से उद्भूत-एक विरहिणी के हृदयोद्गार यहा पर द्रष्टव्य है—

---

१. सं० नारायणप्रसाद अरोड़ा-'प्रताप लहरी' (१९४९ ई०) पृष्ठ १८५
२. प्रतापनारायण मिश्र: 'संगीत शाकुन्तल' (१९०८ ई०) तीसरा अंक, द्वितीय दृश्य।
३. प्रतापनारायण मिश्र : 'सगीत शाकुन्तल' (१९०८ ई०) तीसरा अंक, द्वि० दृश्य।

"कीन्हो कहा तरुन जु लूटि लीन्हो नाहक मे,
दीन्हो बन कोकिलन सहज पुकारे मे।
आगि सी लगाय दई किंसुक गुलाबन मे,
भौंरन को डार्यो वाही बरत अगारे मे॥
परताप नरायनहू को ना करन डर,
काम को जगाय दियं हृदय हमारे मे।
सबहिं सताय हाय लेकै रितुराज पापी,
जै है कि जमराजपुर आठ-अठवारे मे॥"[1]

मिश्र जी ने समस्या पूर्तियो के रूप मे भी कई शृगारिक कविताए लिखी है। मिश्र जी के समय मे समस्या पूर्तियो का बडा चलन था और समस्या पूर्तियो मे ही कवि की वास्तविक कला को आका जाता था। 'बीर बली धुरवा धमकावै' की पूर्ति मिश्र जी ने बडे अच्छे ढग से की है। देखिए—

"बूड़ि मरै न समुद्र मे हाय,
ये नाहक हाथ निछोछे डुबावै।
का तजि लाज गराज किये,
मुख कारो लिए इत ही उत धावै॥
नारि दुखारिन पै बजमारे,
वृथा बुदियान के बान चलावै।
बीर है तो बलिबीरहि जाय कै,
बीर बली धुरवा धमकावै॥"[2]

मिश्र जी ने शृगार के सयोग और वियोग-दोनो पक्षो पर अनक समस्या पूर्तिया की है और सभी पूर्तिया अपनी कला मे अद्वितीय ह। इस प्रकार मिश्र जी अपने शृगार वर्णन मे पूर्ण सफल है। यह वर्णन स्वाभाविक, सरस और हृदयस्पर्शी है, इनमे मिश्र जी की भावात्मकता विशेष दर्शनीय है। भाव पक्ष और कलापक्ष का भी इसमे अच्छा सामजस्य है।

मिश्र जी की प्राचीन-काव्य-धारा की कविताए यद्यपि प्राचीन-काव्य परम्परा पर आधारित है फिर भी उनमे अपनी ताजगी और व्यक्तित्व की छाप है। इन्हीं कविताओ मे मिश्र जी का कवि रूप पूर्ण विकास पर पहुचा दिखाई पडता है। कल्पना, भावुकता और काव्यशिल्प की दृष्टि से इन कविताओ को अपना पृथक् महत्व है।

---

१. सं० नारायणप्रसाद अरोड़ा : 'प्रताप लहरी' (१९४९ ई०) पृष्ठ १९९
२. 'रसिक वाटिका' (कानपुर) १८९१ ई०, 'पहिली बयारी पृष्ठ ११

आधुनिक काव्य-शैली

आधुनिक काव्य शैली की कविताओं का सम्बन्ध मिश्र जी के काल विशेष में है। इनमें उस समय की तत्कालीन स्थिति का पूर्ण चित्रण है। ये कविताएं मिश्र जी के नवीन, उदार और व्यापक दृष्टिकोण की परिचायक हैं। इनमें उस युग की स्वच्छन्दता पूरी तरह परिलक्षित होती है क्या भाषा, क्या भाव-सभी दृष्टियों से उनमें नवीनता दिखाई पड़ती है। इन कविताओं में देश-प्रेम कूट-कूट कर भरा है। जैसा पीछे कहा जा चुका है कि मिश्र जी का काल राष्ट्रीय चेतना का काल था। ब्रिटिश-साम्राज्य से उत्पन्न असन्तोष सभी ओर फैला हुआ था। देश के जागरूक कार्यकर्त्ता इस असन्तोष को मिटाने में तत्पर थे। मिश्र जी की कविताओं में भी यही असन्तोष पूरी तरह व्याप्त दिखाई देता है। देश की गिरी हुई स्थिति से उन्हें बड़ा दुख था। वे देश की स्थिति को सुधारने के लिए विशेष चिन्तित थे। उन्होंने अपनी कविताओं द्वारा जनता में राष्ट्रीय-चेतना फैलाने का प्रयत्न किया तथा विभिन्न प्रकार से उसे समझाकर आगे बढ़ने के लिए प्रोत्साहित किया। कहना न होगा कि मिश्र जी अपने युग के साथ इतना घुल मिल गये कि उनका आधुनिक स्वर, प्राचीन स्वर से अधिक तीव्र और व्यापक हो गया। वे एक उपदेशक और समाज सुधारक की तरह देशोद्धार में तन्मय हो गये और उनकी कविता का उद्देश्य ही देशोद्धार हो गया। अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' के शब्दों में—'जितने पद उन्होंने देश और जाति-सम्बन्धी लिखे हैं, उनमें उनके हृदय का जीवन्त भाव बहुत ही जाग्रत मिलता है जो हृदयों में तीव्रता के साथ जीवनी-धाराएं प्रवाहित करता है।"[१] मिश्र जी के देश-प्रेम का वर्णन दूसरे अध्याय में विस्तार से किया जा चुका है इसलिए यहां पर संक्षेप में ही—प्रसंगवश—उनकी विचार-धारा का विवेचन करना अपेक्षित होगा।

देश-प्रेम

मिश्र जी में देश-प्रेम, राज-भक्ति-दो रूपों में मिलता है। राजभक्ति भी देश के हित को लेकर ही की गई है। इसे हम मिश्र जी की नम्र-नीति भी कह सकते हैं। इसके द्वारा मिश्रजी शासकों की प्रशंसा करके, उन्हें भारत के अनुकूल बनाना चाहते थे। इसमें शासकों के छोटे-से-छोटे देश-हितैषी कार्यों की मुक्त-कण्ठ से प्रशंसा की गई है। कई स्वागत गीत भी मिश्र जी ने राजभक्ति के रूप में लिखे हैं जिनमें अभिनन्दन के साथ-साथ देश-दशा का चित्रण भी किया गया है और देशोद्धार की प्रार्थना भी की गई है। युवराजकुमार विक्टर का स्वागत करते हुए मिश्र जी कहते हैं कि यदि तुम महारानी विक्टोरिया से भारत की दयनीय दशा बताओगे और

---

१ अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' : "हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास" (द्वितीय संस्करण), पृष्ठ ५१४-५१५।

वे अपनी प्रजा के दुखो का निवारण करेंगी तो हम कभी उनका उपकार हृदय से न भुलायेगे—

"कछु उपाय करि प्रजा वर्ग की बिपति बिदरिहु।
सहजहि महं आनन्द अमृत की वर्षा करिहैं॥
फिर हम कबहुं तुम्हरो गुण जिय ते न भुलैहे।
कहिहैं जय,जयकार सदा इमि आशिष देहे॥
जुग-जुग जीवहु जय जय जस युत युवराज दुलारे।
जुग-जुग जीवहु श्री विजयिनि के प्रान पियारे॥"[१]

देश-भक्ति मिश्र जी की बड़ी व्यापक है। उन्हें भारत की छोटी-से-छोटी वस्तु से प्रेम था। जब उन्होने देखा कि अग्रेजो की शोषण-नीति बढ़ती ही जाती है और खुशामद का कोई प्रभाव नही पडता, तब उन्होंने अंग्रेजो की भर्त्सना करनी प्रारम्भ की और भारतीयो को उभाड़ना शुरू किया—

'अपनो काम आपने ही हाथन भल होई।
परदेशिन परधर्मिन ते आशा नहिं कोई॥
धन धरती जिन हरी सु करि है कौन भलाई।
जोगी काके मीत कलदर केहि के भाई॥
सब तजि गहौ स्वतन्त्रता नहि चुप लातें खाव।
राजा करै सो न्याव है पासा परै तो दाव॥"[२]

होली का त्योहार भी मिश्र जी को दुख-दायी प्रतीत होता है उसमे भी श्रमिको की चीत्कारे ही उन्हे सुनाई पड़ती है। होली का बनावटी हास-परिहास उन्हे अच्छा नही लगता। वे कहते हे—

"जब सर्वसु कढ़ि गयो हाथ ते तब न उचित हुरिहाई।
उपज घटे धरती को दिन-दिन नाज नितहि महगाई॥
कहा खाय त्यौहार मनावे भूखे लोग-लुगाई।
सब धन ढोयो जात बिलायत रह्यो दलिद्दर छाई॥
अन्न वस्त्र कहं सब जन तरसे होरी कहां सुहाई।"[३]

मिश्र जी हिन्दी प्रचार पर भी बडा जोर देते थे क्योकि राष्ट्रीयता के प्रचार के लिए अपनी प्रौढ-भाषा का होना आवश्यक था। उनका कहना था कि हिन्दी के प्रचार के बिना देश की उन्नति असम्भव है। भारतीयो को समझाते हुए कहते हे—

---

१. ब्राह्मण खण्ड ६, संख्या ४, ('युवराजकुमार स्वागतन्ते'
२. प्रतापनारायण मिश्र : 'लोकोक्ति शतक' (१८९६ ई०) पृष्ठ २।
३. स० प्रतापनारायण मिश्र 'प्रताप लहरी' (१९४९ ई०) पृष्ठ १४१।

"देव नागरिहि गरे लगाओ, पैहो मोद महान ।
रहो निशंक प्रेम मद माते श्री परताप समान ।।"[1]

भारत मे फैली हुई फूट को देखकर मिश्र जी को बडा दुख होता था । यह फूट ही भारत के पतन का कारण थी । मिश्र जी इसे समाप्त कर भारत को एकता के सूत्र मे बाधना चाहते थे ।

"प्रीति परस्पर राखहु मीत, जइहैं सब दुख सहजहिं बीत ।
नहि एकता सरिस बल कोय, एक-एक मिल ग्यारह होय ।।[2]

मिश्र जी ईश्वर स भी भारत के कल्याण की प्रार्थना करते है ' इससे उनकी देश-ममता का सहज ही परिचय मिल जाता है—

"हमरे धन सो तन सो परदेशिन भोग विलास कियो ।
करता धरता सब आप बने अति तुच्छ हमै निज दास कियो ।।
इन स्वारथ मीत विधर्मिन के पद पूजत हा ! कब लौ मरिए ।
हम आरत भारतवासिन पैं अब दीनदयाल दया करिए ।।"[3]

मिश्र जी का दृष्टिकोण पूर्ण यथार्थवादी था । वे भारत की वास्तविक स्थिति को स्पष्ट सामने रख देते थे । सत्य बात कहने मे उन्हे जरा भी हिचक न लगती थी । वे निर्भिकता के साथ अपनी बात कह जाते थे । यहा तक कि शासन आदि का भी उन्हे किंचित भय न था , वे खुलकर ब्रिटिश-शासन की भर्त्सना करते थे । नाग देवता को तर्पण देते हुए वे कहते है—

"महंगी और टिकस के मारे हमहिं छुधा पीड़ित तन छाम ।
साग पात लौं मिलै न जिय भरि लेबो वृथा दूध को नाम ।।
तुम्हे कहा प्यावै जब हमरो कटत रहत गोवंश तमाम ।
केवल सुमुखि अलक उपमा लहि नाग देवता तृप्यन्ताम् ।।"[4]

मिश्र जी नवीनता के पुजारी थे । पुरानी परम्पराओ, रूढियो अधविश्वासो आदि को वे देशोन्नति मे बाधक समझते थे । उन्हे वही मार्ग और कार्य पसन्द था जो देशोन्नति मे सहायक हो । इसीलिए वह सामाजिक कुरीतियो की निन्दा करते हुए समाज सुधार, नारी-शिक्षा आदि पर बल देते थे । बाल्य-विवाह की निन्दा करते हुए वे लिखते है—

---

१ 'ब्राह्मण' खण्ड ५, संख्या ८, ('काफी')
२. प्रतापनारायण मिश्र : 'लोकोक्ति शतक' (१८९६ ई०) पृष्ठ २ ।
३. सं० नारायणप्रसाद अरोड़ा : 'प्रताप लहरी' (१९४९ ई०) पृष्ठ ९९, ('मन की लहर')
४. 'ब्राह्मण' खण्ड ७, संख्या ३, ('तृप्यन्ताम्')

"बाल व्याह ने बल नहिं रक्खा, चलते काया डोली है।
नहिं आने की मुख पर लाली, वृथा बिगाड़ी रोली है॥"[1]

मिश्र जी मे धर्मान्धता नही थी लेकिन अपने स्वर्णिम अतीत के प्रति उन्हे स्वाभिमान अवश्य था। वे जब-कब उसकी दुहाई देकर भारतीयो को उत्साहित करते रहते थे—

"बालमीक मुनि, सत्यवती-सुत, कालिदास आदिक मतिधाम।
त्यागि गये सब भूमि अभागिनि, करै परमपद मे विश्राम॥
अब तो ह्यां के लोग हाय भूले हरिचन्दहु के गुन ग्राम।
कासो आस कौन कहि है हा! छन्द प्रबंधहि तृप्यन्ताम्॥"[2]

मिश्र जी की देश-प्रेमियो पर बडी श्रद्धा थी। वे बढा-चढाकर उनके गुणो की प्रशसा करते थे और उन्हे अनेक प्रकार से प्रोत्साहित करते रहते थे। जब किसी देश-प्रेमी का स्वर्गवास हो जाता था तब उनका हृदय रोने लगता था। मिश्र जी को देश-प्रेमी की मृत्यु पर उतना ही दुख होता था जितना कि अपने किसी परिवार वाले की मृत्यु पर होता है। उनका हृदय इतना विस्तृत था कि सम्पूर्ण देश ही उनका अपना परिवार था। उन्होने कई देश-प्रेमियो की मृत्यु पर शोक-गीत लिखे है और उनके इन शोक-गीतो मे उनका हृदय पूरी तरह झाकता दिखाई देता है। उनके कोमल हृदय की सहृदयता एक-एक शब्द मे टपकी पडती है। दयानन्द सरस्वती की मृत्यु पर वे ईश्वर को कोसते हुए लिखते है—

"करुणानिधि कहवाय हाय हरि आज कहा यह कीन्हों।
देश अधार जतन ततपर वर पुरुष रतन हरि लीन्हों॥
जो ऐसे ही बोझ लगत हो काल चक्र तव हाथे।
कस न गिराय दियो काहू भारत कलक के माथे॥"[3]

इस प्रकार मिश्र जी की सम्पूर्ण देश-प्रेम विषयक कविताए लोक भावना से परिपूर्ण है; उनमे एक सच्चे देश-भक्त की पुकार है। उस समय का पूरा चित्र इन कविताओं मे साकार हो गया है। ये कविताएं जनता मे स्फूर्ति, स्वाभिमान और राष्ट्रीय-चेतना जगाने मे समर्थ हैं। इनमे मिश्र जी की स्पष्टवादिता और निस्वार्थ सेवा पूरी तरह समायी हुई है। ये कविताएं मिश्र जी के सशक्त आत्मबल का प्रतीक है।

---

१. सं० नारायणप्रसाद अरोड़ा : 'प्रताप लहरी' (१९४९ ई०) पृष्ठ १४०।
२ ब्राह्मण' खण्ड ७, संख्या ३, ('तृप्यन्ताम्')
३. 'ब्राह्मण' खण्ड १, संख्या ९, ('हाय बड़ा अनर्थ हुआ')

हास्य-व्यंग्य

मिश्र जी हास्य और व्यंग्य के अवतार थे। वे गम्भीर से गम्भीर विषयो मे भी हास्य की सामग्री जुटा लेते थे, इससे उनके गम्भीर विषय भी सरस और प्रभावपूर्ण हो जाते थे। मिश्र जी से पूर्व हास्य और व्यंग्य का समुचित विकास नही हो सका था। मिश्र जी ने ही इसमे प्राण फूके और इसके क्षेत्र को विस्तृत बनाया। मिश्र जी का हास्य और व्यंग्य पूर्ण सामाजिक है, उसमे समाज की किसी-न-किसी कुरीति की ओर सकेत किया गया है। इससे पाठको का मनोरजन तो होता ही है साथ ही उनका नैतिक सुधार भी होता है। मिश्र जी की दृष्टि में कोरे हास्य का कोई महत्व नही था वह तो प्रत्येक क्षेत्र मे समाजोपयोगी तत्व ही ढूढते थे। उनका यह दृष्टिकोण उनके हास्य का भूषण बन गया है। हास्य मे सामाजिकता का होना बड़ा जरूरी है। फ्रेन्च दार्शनिक बर्गसा लिखने है—"हास्य कुछ इस प्रकार का होना चाहिए जिसमे सामाजिकता की झलक हो।"[1] सामाजिकता से युक्त हास्य पाठको को निर्माण की ओर प्रेरित करता है जबकि कोरा हास्य पाठको को थोडे समय के लिए आकाश की हवा खिलाकर फिर यथार्थ भूमि पर पटक देता है।

हास्य, अपनी रजनात्मक-शक्ति द्वारा पाठको का मन बडी सत्वर गति से अपनी ओर आकृष्ट करता है इसलिए यदि इसमे जीवन-निर्माण के तत्व हुए तो मानव मात्र का बडा कल्याण होता है। इसके साथ ही लेखक भी अपनी कटु-से-कटु बात-हास्य के माध्यम से-बडी निर्भीकता और स्पष्टता के साथ कह जाता है और पाठक भी उसकी बात हसकर सह लेते है पर उसका प्रभाव उनके अन्तराल पर गहरा पडता है। मिश्र जी हास्य के ही माध्यम से समाज की कडी-से-कडी भर्त्सना कर जाते है। देखिए, कनधजियो और अग्रेजो की इच्छाओ को मिश्र जी कितने अच्छे ढग से व्यक्त करते है—

"मरे नित्त एक नारि बिटेवा होयना,
बकरा मच्छत चिकवा समझै कोयना।
करि धाकर घर व्याह रुपैया रोलना,
इतना दे करतार अधिक नही बोलना॥
हम घर आवै धन सब हिन्दुस्तान का,
छल बल अपना हो न किसी के ज्ञान का।
कुछ कसूर होय खुलै हमारी पोल ना,
इतना दे करतार अधिक नहीं बोलना॥"[2]

---

1. "Laughter must be something of this kind, a short of social gesture." 'Laughter' Page 20 by Henri Bergson.
२. 'ब्राह्मण' खण्ड २, संख्या ९-१०, ('इतना दे करतार अधिक नहीं बोलना')

मिश्र जी ने अधिकतर वक्र-उक्तियों के प्रयोग द्वारा हास्य की योजना की है 'जन्म सुफल कब होय ?' की निम्नांकित पंक्तियाँ इसके लिए द्रष्टव्य हैं—

गोरण्डदास उवाच

जग जानै इंगलिश हमैं वाणी वस्त्रहिं जोय।
मिटै वदन कर श्याम रंग जन्म सुफल तब होय॥

* * *

सेठ उवाच

बुधि विद्या बल मनुजता छूवहिं न हम कहं कोय।
लछमिनियाँ घर में बसै जन्म सुफल तब होय॥[1]

छोटे-से-छोटे विषयों में भी हास्य पैदा कर देना मिश्र जी के बायें हाथ का खेल था। 'ब्राह्मण' का चन्दा न मिलने पर वे जब-तब ग्राहकों की अनुनय-विनय किया करते थे फिर भी ग्राहक कोई ध्यान न देते थे। इस पर, एक बार वे बड़े ही मनोरंजक ढंग से लिखते हैं—

"आठ मास बीते जजमान।
तब तो करौ दच्छिना दान॥ हरि गंगा॥
आजु कालिह जो रुपया देव।
मानौ कोटि यज्ञ करि लेव॥ हरि०॥

* * *

हंसी खुशी ते रुपया देव।
दूध पूत सब हमते लेव॥ हरि०॥
काशी पुन्नि गया मा पुन्नि।
बाबा बैजनाथ मा पुन्नि॥ हरिगंगा॥"[2]

मिश्र जी के हास्य में इनकी अपनी वैयक्तिकता है। व्यंग्य भी इनके बड़े तीखे है। भारतीयों की अकर्मण्यता पर इनके अनेक व्यंग्य-बाण चले हैं। 'कलियुग ककहरा' में इन्होंने तत्कालीन समाज की अच्छी खबर ली है। वे नये ढंग से ककहरा पढ़ने की लोगों को सलाह देते हैं। उनके ककहरा की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

"नन्ना ना नाम नागरी केर मिटैए।
पप्पा पा पंडित जी को पोप बनैए॥
फफ्फा फा फिक्र देश का कभी न करिए।
बब्बा बा बड़ों का नाम फुलिशचेप धरिए॥

१. 'ब्राह्मण' खण्ड १, संख्या ९ ('जन्म सुफल कब होय ?')
२. 'ब्राह्मण' खण्ड ३, संख्या ८, ('हरिगंगा')

सम्भा भा भाई-भाई नित उठि लरिए।
मम्मा मा मात-पिता को लातन मरिए॥
* * *
लल्ला ला लेडी जी की सेवा कीजै।
बव्वा वा वाही पन में तन तजि दीजै॥
सस्सा सा साहब की ठोकर तक सहिए।
हहहा हा हिन्दू भात्र स ऐंठे रहिए॥"[1]

मिश्र जी का अधिकाश हास्य, व्यग्यात्मक ही है और उनके व्यग्य का सम्बन्ध व्यक्ति विशेष से न होकर पूरे समाज या देश मे है, उसम लोक-भावन की प्रधानता है। व्यापक दृष्टिकोण के कारण इनके व्यग्यो का प्रभाव भी व्यापक है, वे सीधे हृदय पर चोट करत ह पर वे व्यग्य ऐसे ढग से किये गये हे कि पाठक हसते हुए उनकी चोटो को सह लेत ह। डा० बरसानेलाल चतुर्वेदी मिश्र जी के व्यग्य के विषय मे लिखते हे—"*इनका व्यग्य भाप। के बीच कुनैन की गोली पर शक्कर सा है पर शक्कर इतनी* नही होने पाती थी कि कुनैन की कडवाहट छिप जाय।"[2] व्यग्य द्वारा कवि अपनी बात को बडे प्रभावोत्पादक ढग से कह जाता है और उसमे किसी को तर्क-वितर्क करने की भी गुजाइश नही रहती। मिश्र जी मे हास्य और व्यग्य की शक्ति जन्मजात थी इसलिए इनके व्यग्य बडे स्वाभाविक ह। विनोदी प्रकृति क होने के कारण ये बात-बात मे हास्य और व्यग्य की योजना करते चलते ह। हास्य और व्यग्य के क्षेत्र मे मिश्र जी हिन्दी साहित्य मे अद्वितीय हे। इन्हे यदि हास्य और व्यग्य का सम्राट कहा जाय तो कोई अतिशयोक्ति न होगी।

प्रकृति वर्णन

स्वतन्त्र और यथार्थवादी दृष्टिकोण के होने के कारण मिश्र जी प्रकृति वर्णन मे अधिक नही रमे। ऐसे ही, चलतू-ढग पर किये गये इनके कुछ प्रकृति वर्णन मिलते है। कण्व के तपोवन की प्राकृतिक छटा का वर्णन-चित्रात्मकता की दृष्टि से अवलोकनीय है—

छाई है कैसी वृक्षों पर हरियाली।
झुक-झुक कर जिनकी झूम रही है डाली॥
नीचे शुक-कुल ने कुतर-कुतर है डाली—
कोटरों से अपने विविध अन्न की बाली।

---

१. 'ब्राह्मण' खण्ड ३, संख्या ५, ('कलियुग ककहरा')
२. डा० बरसानेलाल चतुर्वेदी : 'हिन्दी साहित्य हास्य रस' (१९५७ ई० पृष्ठ १६७

होता है कलरव भांति-भांति खग-गन में ।
आहा क्या ही शोभा है इस तपवन में ।।"[1]

मिश्र जी को ऋतुओं में विशेष प्रेम था। ऋतुओं के वर्णन उन्होंने कई स्थानों पर किये हैं। ग्रीष्म-ऋतु का वर्णन वे बड़े अच्छे ढंग से करते हैं। देखिए—

"लागत भल जल बिहार, तैसी शीतल समीर,
जो गुलाब की सुगन्ध मन्द-मन्द लावै ।
सांझ के समय सुहात विचरत वन बाग माहिं,
छाहिं को सहारो लहि सहज नींद आवै ।।
जोबन की मातो तिय धारती सिरीस फूल,
भौंर जासु कोमल दल चूमत सुख पावै ।
भांति-भांति भोग-जोग कीजत जिहि के संजोग,
प्यारी ऋतु ग्रीषम यह कौन को न भावै ।।"[2]

स्वाभाविक रुचि के अभाव में मिश्र जी के प्रकृति वर्णन अधिक मनोहर तथा सजीव नहीं हो सके। प्रकृति वर्णन करते-करते वे ईश्वर की ओर उन्मुख हो जाते हैं और प्राकृतिक-रम्यता में ईश्वर को ही व्याप्त देखने लगते हैं इससे प्रकृति वर्णन का स्वतन्त्र रूप समाप्त हो जाता है और वे कोरी-भक्ति के पीछे दौड़ते दिखाई देते हैं। इस प्रसंग में इनका वर्षा ऋतु का वर्णन द्रष्टव्य है—

"बरसा ऋतु सबको सुखकारी, प्रकटति महिमा नाथ तिहारी ।
नाचि उठे बन मोर मुदित मन, लखि उमड़े घन गगन मझारी ।
चहुंदिशि तव वैभव विलोकिकै, ज्यों सज्जन अति होत सुखारी ।
बरसत नीर उमग भरि सरिता, मिलन चलहिं सागर कहं सारी ।
तव करुणाबल पाव हर्ष भरि, ज्यों तव शरणहोत सुविचारी ।"[3]

ऐसे ही बसंत ऋतु का वर्णन देखिए—

"आयो-आयो रितुपति बसन्त, प्रकटत प्रभु तव महिमा अनंत ।
वाटिका सुशोभित और भांति, जिमि जानि तोहिं गति बदलिजाति ।।
तरु-तरु डोलत रस लेत भौंर, तव रसिक मुदित ज्यों सबहिं ठौर ।
प्रफुलित कुसुमावलि रंग-रंग, मुनिमन जैसे तव प्रेम संग ।।
भावति सुगन्ध शीतल समीर, तैसेहि तव करुणा हरति पीर ।
बौरे रसाल सौरभ समेत, तव कीरति इमि सुख सबहिं देत ।।"[4]

---

१. प्रतापनारायण मिश्र: 'संगीत शाकुन्तल' (१९८० ई०) पहिला अंक, द्वितीय
२. —वही— ,, प्रथम दृश्य ।
१. डा० नारायणप्रसाद अरोड़ा : 'प्रताप लहरी' (१९४९ ई०) पृष्ठ १५०-१५१ ('प्रेम पुष्पावली')
२. ,, ,, —वही— ,, पृष्ठ १४९

कहीं-कहीं मिश्र जी की लोक-हितैषिता भी प्रकृति-वर्णन में स्थान पा गयी है। इसमें प्रकृति वर्णन उपदेश के माध्यम बने से दिखाई पड़ने लगते हैं। एक अन्यत्र स्थान पर—वसन्त ऋतु के वर्णन में—मानव की दशा का चित्रण मिश्र जी इस प्रकार करते हैं—

"कछु है बसन्त की तुमहि चेत।
बौराने प्रियवर कौन हेत॥
अपनो हित अनहित रहे भूल।
कैसी सरसों रहि दृगन फूल॥
मत पंच भूत छवि पर भुलाव।
कछु करहु भविष्यत् को उपाव॥
निज करमन भये मुख पीत चाह।
पियरे रंग की फिर वृथा चाह॥"[1]

इस प्रकार मिश्र जी के प्रकृति वर्णन-ईश्वर और देशभक्ति के दबाव के कारण—अपनी स्वतंत्र छटा नहीं दिखा सके। हां, जो इन भावनाओं से पृथक् रहकर लिखे गये हैं वे अवश्य कुछ रमणीय हैं पर ऐसे वर्णन बहुत-कम हैं।

रस-निरूपण

मिश्र जी की अधिकांश कविताएं शृंगार, हास्य, शान्त और करुण रस में लिखी गयी हैं—स्थूल प्रेम से सम्बन्धित सभी कविताएं शृंगार रस में, हास्य और व्यंग्य से युक्त हास्य रस में, भक्ति विषयक शान्त रस में और शोक-गीत करुण रस में लिखे गये हैं। इसके अतिरिक्त कुछ कविताएं वीर रस की भी हैं जिनमें इनकी वीर भावना व्यक्त हुई है। शेष रसों में इनकी कविताएं नहीं के बराबर हैं, बहुत ढूंढने पर उनके एक-आध उदाहरण मिलते हैं। नीचे सभी रसों का एक-एक उदाहरण देकर, मिश्र जी के रसाधिकार को स्पष्ट करना अपेक्षित होगा।

शृंगार-रस

शृंगार के संयोग और वियोग—दो पक्ष होते हैं, दोनों में मिश्र जी ने पर्याप्त रचनाएं की हैं। संयोग का एक उदाहरण देखिए—

"पाय परौं कर छोड़ दै ब्रजराज दुलारे।
आवत जात लखैगो कोई मारग में मति लाज लै ब्रजराज दुलारे॥
हौं तो लाल सदा तेरो हौं होरिहि को कछु नेग है ब्रजराज दुलारे।
गारी बकत कहा रस निकसै राखि न जात इकत पै ब्रजराज दुलारे॥
परब मनाय सकै सब सों सब दूरिहु सों रंग डारिकै ब्रजराज दुलारे।
प्रेमदास ऐसी क्यों कीजै बुरी लगै जो काहुवै ब्रजराज दुलारे॥[2]

---

१. 'ब्राह्मण' खण्ड १, संख्या ११ ('वसन्त')
२. 'ब्राह्मण' खण्ड ७, संख्या ८, ('होरी')

वियोग मे एक प्रेमी के हृदयोद्गार यहा दृष्टव्य है—

"कल पावै न प्रान तुम्हे बिन देखे, इन्हे अधिकौ कलपाइये ना।
परतापनारायण जू के निहोरे, पिरीति प्रथा बिसराइये ना॥
अहो प्यारे बिचारे दुखारिन, पै इतनी निठुराई जताइये ना।
करि एकही गाव मे बास हहा, मुख देखिबे को तरसाइये ना॥"[1]

हास्य रस

यह रस हास, परिहास और विनोद मे युक्त होता है। इसका स्थायी भाव हास और है। मिश्र जी की निम्नांकित पक्तियो मे अच्छी हास्य योजना है।देखिए,—

"कक्का का करम धरम सब दूर बहैए।
खख्खा खा खुले खजाने होटल जैए॥
गग्गा गा गोरो का सा भेप बनैए।
घघ्घा घा घर क घास पयार मिलैए॥
चच्चा चा चुरुट सरे बजार चबैए।
छछ्छा छा छल बल करि दूथ-दूथ चिल्लैए॥
जज्जा जा जुवा नही चूडी फिकवैए।
झझ्झा झा झगड़ा करि धर्मी कहवैए॥"[2]

शान्त रस

इसका स्थायी भाव निर्वेद है, इसमे प्रमुख रूप से भक्ति की रचनाए की जाती है। मिश्र जी की ये पक्तिया शान्त रस मे अवलोकनीय है—

"दयानिधि तुम ही साचे मीत।
तुम बिन और कौन करि है प्रभु बिन निज स्वारथ प्रीत॥
प्रत्युपकार बिना जीवन को भलो करत सब रीत।
जनम देत रक्षत निशि बासर सिखवत सुखप्रद नीत॥
को पितु-मातु बन्धु जग जिनकी कीजै कछु परतीत।
जब निज देहहि काम न आवत पौरुष भए विनीत॥"[3]

करुण रस

इसका स्थायी भाव शोक है। इसके लिए भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के स्वर्ग-वास पर लिखे गये 'शोकाश्रु की कुछ पक्तिया देखिए—

"काह करै कित जाय हमै तो भावत प्राय कछू ना॥
खान पान सनमान गान में लागत चित्त कहू ना।

---

१. सं० नारायणप्रसाद अरोड़ा : 'प्रताप लहरी' (१९४९ ई०) पृष्ठ १९८
२. 'ब्राह्मण' खण्ड ३, संख्या ('कलियुगककहरा')
३ सं० नारायणप्रसाद अरोड़ा : 'प्रताप लहरी' (१९४९ ई०) पृष्ठ १५२, पुष्पावली')

सुख उपजावन हार पदारथ देत और दुख दूना ।।
हाय हाय रे हाय बाम बिधि करि दीन्हेसि मनऊना ।
तो सन असि आशा प्रताप हरि करत रह्यो कबहूना ।।"[१]

वीर रस

वीर रस मे उत्साह प्रमुख होता हे । इसके उदाहरण के लिए हम्मीर का निम्नलिखित कथन दृष्टव्य है—

"कर धरि कठिन कृपान अस्त्र औ शस्त्र चलावहु ।
क्षत्रिय कुल को बल प्रताप बैरिन दिखरावहु ।।
जिमि मृगगण महं सिह यथा ईंधन मह आगी ।
धसहु शत्रु दल माहि, सबहि नाशहु भय त्यागी ।।"[२]

अद्भुत रस

जिस वर्णन मे आश्चर्य का भाव व्यक्त हो उसमे अद्भुत रस होता है । मिश्र जी ने एक तपस्वी का बड़ा आश्चर्ययजनक चित्र निम्नाकित पक्तियो मे खीचा है , देखिए—

"मारग कबहुं न लखि परत, भूमि न कतहुं समान ।
जाहि कौन जह जीव के सुधिकरि सूखत प्रान ।।
तह सुर रिषि एक तापस वेषा ।
अति कृश अस्थि मात्र अवशेषा ।।
झूलति इक तरु महं पग बांधे ।
मुंदे आखि स्वास निज साधे ।।
बार बड़े बिथरे महि माहीं ।
तन पर नाम बसन कर नाही ।।
धधकति असह अगिनि चहुं ओरा ।
तिहि पर दिनकर किरनि कठोरा ।।"[३]

रौद्र रस

इसका स्थायी भाव क्रोध ह । 'दगल खण्ड' मे दर्शको के कुछ कथन क्रोध से ओतप्रोत है, इन्हे हम रौद्र रस के अन्तर्गत ले सकते है—

"अरे सन्तरी अरे सन्तरी, दडुआ लागो मोर गुहार ।
इनका आगे ते बैठारो नाहितु होन चहे तकरार ।।

---

१. 'ब्राह्मण' खण्ड २, संख्या १२,

२. प्रतापनारायण मिश्र : 'हठी हम्मीर' (प्रथम संस्करण), एक्ट ४, सीन दूसरा

३. 'ब्राह्मण' खण्ड ३, संख्या ९-१०, ('श्री प्रेमपुराण')

दियो रुपैया का हम नाही, एई बडे दिगैया आंय।
अपने-अपने रंग मव माते कोउ न सुनै लाख चिल्लाय।।"[१]

वीभत्स रस

इस रस मे घृणित वस्तुओ का वर्णन होता ह इसका स्थायी भाव जुगुप्सा है। उदाहरण के लिए नीचे दी पक्तिया अवलोकनीय ह—

"ठौरहि ठौर मसान परे हैं, मरे डरे हे मृतक तमाम।
इनके शिर कदुक क्रीड़ा हित तुमहि दए शकर सुखधाम।।
सुख सों खेलहु खाहु सजहु तन जो कुछ मिलै हाड़ औ चाम।
लहौ जु एकौ बूंद रक्त तौ बसि पिशाच कुल तृप्यन्ताम्।।"[२]

एक पक्ति और देखिए—

"खोपरी फूटीं, बाहें टूटीं, औ बुबकारिन बोलें धाव।"[३]

भयानक रस

इसका स्थायी भाव भय है इसमे भयानक और अनिष्टकारी विषयो का वर्णन होता है। इसके उदाहरणार्थ मिश्र जी की निम्नलिखित पक्तिया द्रष्टव्य है—

"कानिस्टिबिलन को डडा चलै कोड़ा फटकि-फटकि रहि जाय।
जौनी कैती हंटर फटकै सब टीडी अस जाय उड़ाय।।
भगदड़ि परिगै रे दगल मां, देखुआ करै तराहि-तराहि।
हमें न मरियो, हम न मरियो, हमना करी कवौ तकरारि।।
पहिले हल्ला कायर भागे, दुसरे भागे पतुरिया बाज।
तिसरे हल्ला उइ भागत है जो परिनारिन के असनाहि।।
कोऊ लरिकन का गोहरावै, कोऊ पुरिखन को चिल्लाय।
टोपी उछरति है काहू की पगिया फंसै गरे बिच आय।।"[४]

इस प्रकार सभी रसो मे मिश्र जी ने कविताए लिखी है पर अद्भुत, रौद्र, वीभत्स और भयानक रस का पूर्ण विकास इनमे नही हुआ। शेप रस अपने पूर्ण उत्कर्ष पर पहुचे दिखाई देते है।

---

१. सं नारायणप्रसाद अरोड़ा : 'प्रताप लहरी' (१९४९ ई०) पृष्ठ २२६, दंगल खण्ड)
२. 'ब्राह्मण' खण्ड ७, संख्या ३, ('तृप्यन्ताम्')
३. सं० नारायणप्रसाद अरोड़ा : 'प्रताप लहरी' (१९४९ ई०) पृष्ठ २२७ ('दंगल खण्ड')
४. ,, —वही— ,, पृष्ठ २२८

भाषा

मिश्र जी की भाषानुरूपिणी है। भाव के अनुसार उन्होंने सरल और संस्कृत-निष्ठ भाषा का प्रयोग किया है। उपदेश और सामान्य वर्णनों में उनकी भाषा सरल तथा स्तुतियों और शृंगारिक कविताओं में संस्कृतनिष्ठ या परिमार्जित है। दोनों प्रकार की भाषाएं वे पूर्ण अधिकार के साथ लिखते थे। देखिए, होली का वर्णन उन्होंने कितनी सरल भाषा में किया है—

"कोऊ भाट बन्यो डोलै है, संग मे भाटिनी गोरी है।
सुघरे सांई बन्यो फिरे कोउ लै दण्डन की जोरी है॥
साहब मेम, कुंजरी कुंजर, कुजड़ा, सिड़ी अघोरी है।
गलियन-गलियन विविध रूप के स्वांग दिखावति होरी है॥
नृत्य सभा में नव रसिकन की लसति रंगीली टोली है।
बीच विराजति वारबधूटी, सूरत भोली-भोली है॥"[1]

अधिकतर मिश्र जी ने ऐसी ही भाषा का प्रयोग अपनी कविताओं में किया है। संस्कृतनिष्ठ भाषा मे लिखी इनकी कविताएं संख्या में बहुत कम है, पर जितनी है वे इतनी पुष्ट है कि उनको देखकर मिश्र जी की भाषा-शक्ति पर आश्चर्य होने लगता है। नीचे एक उदाहरण मिश्र जी की संस्कृतनिष्ठ-भाषा का देखिए—

"जयति सर्वज्ञ सर्वेश सर्वत्रगत सच्चिदानन्द आनन्ददाता।
ब्रह्मविश्वेश विज्ञानिवल्लभ विशदविष्णु विभुविश्व विद्या विधाता॥
तीव्र त्रैताप तापित परित्राणरत सर्वदा साधु सकष्टहर्ता।
सर्वथा सेव्य सम्पूर्ण संशय शमन भाव्य भगवान भुवनैक भर्त्ता॥
आप्त आश्चर्यमय अखिल ऐश्वर्यपति सत्य सौजन्यप्रिय सृष्टि स्रष्टा।
सर्वथा शक्ति सम्पन्न शुभकृद्दयाम्भोधिदेवाधि पति दिव्यदृष्टा॥"[2]

मिश्र जी मे प्रौढ तथा संस्कृतनिष्ठ भाषा लिखने का पूर्ण सामर्थ्य था पर लोक-हित को प्रमुख मान कर उन्होंने सामान्य भाषा को ही, विशेष रूप से अपनाया। यहां तक कि ग्रामीण शब्दों को भी उन्होंने अपनी कविताओं में स्थान दिया। मिश्र जी अपनी कविताओं को जन-जन तक पहुंचाना चाहते थे, इसके लिए सरल तथा ग्रामीण शब्दों से युक्त भाषा ही उपयुक्त थी। कुछ साहित्यकार-बिना मिश्र जी को उद्देश्य समझे—उनपर ग्रामीणता का आरोप लगाते है ऐसे साहित्यकारों को मिश्र जी की संस्कृतनिष्ठ कविताओं की शरण मे जाना चाहिए। यह तो मिश्र जी की अपनी प्रतिभा थी कि वे दोनों प्रकार की-सरल तथा संस्कृतनिष्ठ भाषा-पूर्ण सामर्थ्य के साथ लिखते थे।

---

१. सं० नारायणप्रसाद अरोड़ा : 'प्रताप लहरी' (१९४९ ई०) पृष्ठ १३२ ('होली')
२. सं० नारायणप्रसाद अरोड़ा : प्रताप लहरी' (१९४९ ई०) पृष्ठ १४८ ('प्रेम पुष्पावली')

स्वाभाविक भाषा के पक्षपाती और स्वतन्त्र प्रकृति के होने के कारण मिश्र जी ने अनेक भाषाओ के शब्दो को भी अपनी भाषा मे मिलाया तथा बहुत से शब्दो को तोड़ा-मरोड़ा भी है। उर्दू, अरबी फारसी और अग्रेजी के शब्द उनकी कविताओ मे बहुत से मिलते है। नीचे दी कविता मे अग्रेजी और अरबी के शब्द देखिए—

"हमरी ही जाति हमही को दोष लगावै।
'सेलफिश' की नैया बूड़त कोउ न बचावै॥
सुनि न्याय नाम बिलखत बीतत दिन राती।
यह बिल भई सवति हमारि जरावत छाती॥"[1]
*   *   *

"जग सुरति धर्म की चर्चा माहि भुलानी।
कै राज काज ते मुशकिल फुरसत पानी॥
कैधौं 'एलाऊ' नहि करहि मेम महरानी।
कै कतहु खलन के खल-भल ते भय हानी॥
जो नाथ अजहुं नहि मेरी बिपति निबेरी।
अब बेगि रिपन महराज खबरि लेउ मेरी॥"[2]

मिश्र जी की कई कविताओ मे खड़ी बोली, अवधी और ब्रज भाषा का मिश्रित रूप भी मिलता है। यह बहुत-कुछ उनकी मौजी प्रकृति का परिणाम है। उदाहरणार्थ कुछ पक्तिया द्रष्टव्य है—

"स्वागत ! स्वागत ! स्वागत ! श्री भारत हितकारी।
आवहु निश्रम न्याय निरत नित सत पथ धारी॥
आवहु - आवहु भली करी इहि ओर पधारे।
बहुत दिनन के भये मनोरथ सफल हमारे॥
चिर दिन सो अति आश रही तव मुख दरशन की।
धन्य विधाता आज साध पूरी नयनन की॥
प्रियवर तुम कहं रोग ग्रसित सुनि पायो जबते।
रहे मनावत देव पितर पितर चिन्तित चित तबते॥
धन्य आजु कर दिवस तुम्हैं लखि हृदय जुड़ान्यो।
जगिहै भारत भाग आज निहचै हम जान्यौ॥
जब अनेक जन एक होय कछु करन विचारै।
काज सिद्ध विश्वास तबहि सहृदय हृदि धारै॥"[3]

---

१. 'ब्राह्मण' खण्ड १, सख्या ८, ('ऐंग्लो इण्डियन शक्ति गाती है')
२ 'ब्राह्मण' खण्ड १, सख्या ८, ('भारती गाती है')
३ 'ब्राह्मण' खण्ड ६, संख्या ५, ('स्वागतन्ते महात्मन्')

पर ऐसा मिश्र जी ने सभी कविताओं में नहीं किया। बहुत-सी कविताएं उन्होंने-अवधी, खड़ी बोली और ब्रज भाषा में-पृथक्-पृथक् भी लिखी है जो बड़ी उत्कृष्ट है।

इसके अतिरिक्त मिश्र जी की भाषा मे कहावतो और मुहावरो का भी अच्छा प्रयोग हुआ है। कहावतो और मुहावरो द्वारा उनकी भाषा अधिक सजीव और प्रभावपूर्ण हो गयी है। कुछ उदाहरण अवलोकनीय है—

"व्यापक ब्रह्म सदा सब ठौर, बादि चारि धामन की दौर।
कस न देखु मन नयन उघारि, कनियां लरिका गांव गुहार॥"[1]

* * *

"बिन व्यवहार कुशलता सिखे, होइह कछु न पढ़े औ लिखे।
हंसिहं बात-बात पर लोग, 'ब्राह्मण साठ बरस लग पोग॥"[2]

* * *

"इष्ट सिद्धि महं परैं जु विघ्न, तबहु मन न करौ उद्विग्न।
होइहिं अवसि अटुट श्रम करो, 'सेतुआ बांधि के पाछे परौ॥"[3]

* * *

मुहावरो का भी प्रयोग निम्नांकित पंक्तियो मे द्रष्टव्य है—

"सरकार को अपनो जीव एक करि दैहौं।
कछु नहिं चलिहै तौ पेट मारि मरि जैहौं॥
दासी की उन्नति हमसे नहिं सहि जाती।
यह बिल भई सवति हमारि जरावत छाती॥"[4]
"तव मुख दरशन बिना, नहिं मानिहिं मन मोर।
कस न दिखावै लाख कोउ, नभ के तारे तोर॥"[5]

* * *

मिश्र जी ने ब्रज भाषा, खड़ी बोली, अवधी, संस्कृत, उर्दू, फारसी आदि भाषाओं में अनेक कविताएं लिखी है और सभी कविताओं की भाषा बड़ी साफ-सुथरी और प्रौढ है।

---

१. प्रतापनारायण मिश्र : 'लोकोक्ति शतक' (१८९६ ई०), पृष्ठ १
२. '—वही—' ,, २
३. '—वही—' ,, ३
४. 'ब्राह्मण' खण्ड १ संख्या ८, (एंग्लो इण्डियन शक्ति गाती है')
५. 'ब्राह्मण' खण्ड ३, संख्या ९-१० ('तारापात पचीसी')

ब्रज भाषा

मिश्र जी को ब्रज भाषा से बड़ा प्रेम था। इसी भाषा में इन्होंने अधिकांश कविताएं लिखी है। निम्नांकित सवैया उनकी प्रौढ़ ब्रज भाषा का प्रतीक है। देखिए—

"बनि बैठी है मान की मूरति सी, मुख खोलत बोले, न 'नाहीं' न 'हां'
तुमही मनुहारि कै हारि परे, सखियान की कौन चलाई तहां॥
बरसा है 'प्रताप जू' धीर धरो अबलों मनको समझायो जहां।
यह ब्यारि तबै बदलैगी कछू पपिहा जब पूछिहै पीव कहां।"[1]

खड़ी बोली

युग की मांग को देखकर मिश्र जी ने खड़ी बोली में भी अनेक कविताएं लिखी और आगे आने वाले कवियों का मार्ग प्रशस्त किया। खड़ी बोली पर भी मिश्र जी का अच्छा अधिकार था। एक उदाहरण देखिए—

"हा! जगदीश्वर हम नहीं जानते क्या है?
क्यों आर्य देश पर क्रोध तुझे इतना है॥
भारत भक्तों को शीघ्र बुला लेता है।
अच्छा, स्वीकृत है जो तेरी इच्छा है॥
पर यों करना था तुझे न मेरे दाता।
हा! हन्त! हन्त! यह दुःख सहा नहीं जाता॥"[2]

अवधीभाषा

अवधी में भी मिश्र जी ने पर्याप्त रचनाएं की है जिनमें इनका आल्हा बड़ा ही सरस और मोहक है। मिश्र जी की अवधी में बैसवाड़ीपन अधिक है। कुछ पंक्तियां देखिए—

"देवी गैये आदि अविद्या जिनकी लीला अपरम्पार।
हिन्द वासिनी बोलल धारिनि दुइ पद गदहा पर असवार॥
बड़े-बड़े पंडित बड़े-बड़े भूपति तुम्हरे बिना मोल के दास।
बालक बुढ़वा नर नारिन के हिरदे बैठी करो विलास॥
गाजी पीर नारसिंह बाबा देउता सब मिलि होउ सहाय।
जलम भूमि को जसु गावत हौं भूले अच्छर देव बताय॥
गावन वारे को गरु दीजै औ बजवैये दीजै ताल।
नाचन वारे को नैना देव मरद का देव ढाल तरवारि॥"[3]

---

१. 'रसिक वाटिका' (कानपुर) १८९१ ई० 'पहिली क्यारी', पृष्ठ १
२. 'ब्राह्मण' खण्ड ३, संख्या १ ('शोकाश्रु')
३. 'ब्राह्मण' खण्ड २, संख्या ६, ('कानपुर माहात्म्य')

बैसवाडी मे लिखा गया, मिश्र जी का 'बुढापा' शीर्षक गीत भी बडा लोकप्रिय है। इस गीत की भाषा तो प्रवाहपूर्ण है ही, इसकी स्वाभाविकता एव चित्रात्मकता तो और भी उत्कृष्ट है। देखिए—

"हाय बुढ़ापा तोरे मारे,
अब तो हम नकन्याय गयन।
करत धरत कछु बनतै नाहीं,
कहां जाय औ कैस करन ॥
छिन भरि चटक छिनै मां मद्धिम,
जस बुझात खन होय दिया।
तैसे निखवख देखि परत है,
हमरी अबिकल के लच्छन ॥

*　　　　*　　　　*

दाढ़ी नाक याक मा मिलिगै,
बिन दातन मुंहु अस पोपलान।
दढ़ही पर बहि-बहि आवति है,
कबौं तमाखू जो फांकन ॥
बार पाकिगे रीरौ झुकिगै,
मूड़ौ सासुर हालन लाग।
हाथ-पांय कुछ रहे न आपनि,
कहिके आगे दुखु रवावन ॥"[1]

संस्कृत

मिश्र जी ने संस्कृत मे कई—एक स्तुतिया, लावनी और गजले लिखी है, जिनसे उनके सस्कृत-ज्ञान का अच्छा परिचय मिलता है। संस्कृत के पदो मे इनकी सामासिकता द्रष्टव्य है—

"किमप्यन्यत्तु न याचेऽहम् । देहि मे नाथ दृढ़स्नेहम् ॥
वैभवस्याकाङ्क्षानैवास्ति । ममत्वेप्सिता प्रेमभिक्षास्ति ।
नमोक्षस्याप्यस्मत्तृष्णास्ति । प्रेमजाले मतिः प्रसन्नास्ति ॥
दृढ़म्बद्धनीव्व प्रार्थयेऽहम् । देहि मे नाथ दृढ़स्नेहम् ॥
गमय दूरे शुष्कज्ञानम् । कुरुत प्रेम प्रमाद दानम् ॥
बलात्यक्त्वा लौकिकमानम् । करिष्ये प्रेमासवपानं ॥

---

१. 'ब्राह्मण' खण्ड ९, संख्या ४, ('बुढ़ापा')

येन शुद्धयत्यधमन्देहम् । देहि मे नाथ दृढ़स्नेहम् ॥
गौरबन्धारयितुन्नालम् । भान्तु विघटय ध्रुवबद्धालम् ॥
छिन्धि सर्वाभिमान जालं । स्वदास्ये क्षेपय मम कालम् ॥
महत्वमिदं हि प्रमण्येह देहि मे नाथ दृढ़स्नेहम् ॥"[1]

संस्कृत-साहित्य मे समासनिष्ठ शैली उत्तम कोटि की' मानी गयी है, इसके बिना संस्कृत-काव्य रचना सर्वांगीण-सौन्दर्य मे हीन समझी जाती है। मिश्र जी ने इसी परम्परा का निर्वाह करने के लिए कतिपय समासपूर्ण पदावली का प्रयोग करके, स्वकीय समास सम्बन्धी पाडित्य का परिचय दिया है। उपर्युक्त लावनी मे बन्नीाब, कुरुत, विघटय, छिन्धि, क्षेपय आदि प्रयोगो मे—तत्तत् धातुओं के, लोट्लकार के मध्यम पुरुष का प्रयोग, उनके प्रौढ व्याकरण सम्बन्धी ज्ञान का प्रतीक है। किसी भी व्याकरणानभिज्ञ द्वारा—उक्त क्रियाओं के—ऐसे प्रयोग नही किये जा सकते।

उर्दू

उर्दू को मिश्र जी ने कविता के लिए उपयुक्त माना है। उर्दू के विषय मे वे लिखते है—'कविता के लिए उर्दू बुरी नही है। बारविलासिनी के कटाक्षों का-सा सुख दे रहती है[2]।" यद्यपि मिश्र जी ने हिन्दी उर्दू के आन्दोलन को लेकर उर्दू की बडी भर्त्सना की है फिर भी उन्हे उर्दू के प्रति खिचाव अवश्य था। उन्होंने उर्दू मे पर्याप्त कविताए लिखी है और सभी भाषा आदि की दृष्टि से अत्यन्त प्रौढ हैं। उदाहरणार्थ एक गजल की कुछ पंक्तियाँ नीचे दी जाती है :—

"गरचे यह तर्क की बला है इश्क़।
लो भी देता अजब मजा है इश्क ॥
बुलहवस को तो खेल सा है इश्क।
आशिक़ों के लिए क़जा है इश्क़ ॥
आकिलों जाहिलो गदावो शाह।
एक सा सब को जानता है इश्क ॥
उसको इसका मज़ा मिला ही नही।
क्यों न वायज़ कहे बुरा है इश्क़ ॥"[3]

फारसी

फ़ारसी में लिखी मिश्र जी की कुछ कविताएँ मिलती है जिनको देखकर उनके फारसी-भाषा के ज्ञान का पता लगता है। जिस प्रकार संस्कृत मे श्लोक

---

१ सं नारायणप्रसाद अरोड़ा : 'प्रताप लहरी' (१९४९ ई०) पृष्ठ ८४-८५ ('मन की लहर')
२ 'ब्राह्मण' खण्ड ५, संख्या ४, ('प्रेमियों के लायक गजल')
३. 'ब्रह्माण' खण्ड ५, संख्या ४, ('प्रेम-प्रसंग')

लिखना कठिन है उसी प्रकार फारसी मे गजल लिखना कठिन होता है फिर भी मिश्र जी अधिकार के साथ फारसी मे गजले लिखते है —

"चरादर गर्दिशे गर्दू शके बज़ दस्त बिगुजारम् ।
खुदा दारम् चिग़िम् दारम् खुदादारम् चिगमदारम् ॥
बखवानद होशयारीरा जुनू दीवानए यारम् ।
शुमारद हेच शारीरा गदाए कुएदिल्दारम् ॥
बसस्तऐ जानेजां बर्गर्दन मन् रिश्तए इश्कत ।
मरा पर्वाय तसबीहस्तो नैख्वाहाने जुन्नारम् ॥
तुई मअबूदमो मक़सूदमो मअशूकमो मुशफिक् ।
चरा बाशद् चिबाशद् बाकसे दीगर सरोकारम् ॥"[1]

मिश्र जी का उपर्युक्त सभी भाषाओ पर पूरा अधिकार था। वे स्वच्छता से सभी भाषाओ पर अपनी कलम चलाते थे। उनकी भाषा बहुज्ञता को देखकर वस्तुत आश्चर्य होता है। अपने युग मे वे ही ऐसे एक कवि थे जिन्होने सस्कृत और फारसी मे भी उत्कृष्ट कविताएँ लिखी है। यद्यपि मिश्र जी ने सस्कृत और फारसी का बधकर अध्ययन नही किया था फिर भी अपनी प्रतिभा के बल पर उन्होने इन भाषाओ पर अच्छा अधिकार प्राप्त कर लिया था। कहना न होगा कि मिश्र जी से प्रतिभा सम्पन्न कवि हिन्दी मे कम ही दिखाई पडते है।

छन्द-विधान

मिश्र जी ने मात्रिक और वर्णिक—दोनों प्रकार के छन्द लिखे है। मात्रिक छन्दो की तो सख्या बहुत अधिक है; उनका नामकरण करना ही दुरूह है। वर्णिक छन्दों मे उन्होने केवल कवित्त और सवैये लिखे है। मिश्र जी के छन्दो को—अध्ययन की सुविधा के लिए—तीन भागो मे बाटा जा सकता है—प्राचीन छन्द, उर्दू छन्द और लोकगीत।

प्राचीन छन्द

प्राचीन छन्दो मे मिश्र जी ने कवित्त, सवैया, दोहा, चौपाई, पद, छप्पय, कुण्डलियाँ, बरवै, सोरठा आदि छन्दो की रचना की है। परम्परागत जितने भी छन्द मिश्र जी के समय मे प्रचलित थे, सभी उनकी कविताओ मे मिलते है। प्रचीन छन्दो मे दोहा मिश्र जी को विशेष प्रिय था, इस छन्द मे उन्होने कई कवितायें लिखी है। नीचे प्रमुख छन्दो के उदाहरण देखिए—

---

१. सं० नारायणप्रसाद अरोड़ा : 'प्रताप लहरी' (१९४९ ई०) पृष्ठ १६१-६२ ('प्रेम पुष्पावली')

दोहा—

"छवि सागर नागर नवल, सब गुन गन आगार ।
छैल छबीले रसिक बर, प्रेमिका प्रान अधार ।।"[1]

पद—

"सर्व धर्म पर धर्म गही बस ।
जो चाहे आनन्द अखण्डित, पान करै प्रभु प्रेम सुधारस ।।
और कर्म ससारिक जितने, है सब सात्विक राजस तामस ।
सबके फल सुख दुःख अल्प हैं, बने सदा नहिं रहै एक रस ।।
करके कठिन मुक्ति के साधन, फेर देखिए मार्ग बहु दिवस ।
है कि नहीं कुछ कैसी क्या है, हमको मुक्तिहि मे असमंजस ।।
मिले सहज मे बढ़े निरन्तर, मिटै कदापि न हृदय रहै बस ।
यह सुख पावै जो प्रताप सो, सुखमय देखे नित्य दिशा दस ।।"[2]

सवैया—

"बाम बसें सित पारवती, तउ जोगि सिरोमनि काम अराती ।
पान कियो अति तिच्छ हलाहल, तौहू अनन्द रहै दिन राती ।।
भूत सखा घर घोर मसान, तऊ शिवरूप सदा सब भाँती ।
धन्य है प्रेम प्रभाव पवित्र, बिचारत ही जिहि बुद्धि बिलाती ।।"[3]

कवित्त—

"जात हौ पथिक लोग मधुपुर जो भरोसो दै,
तुमहूं प्रताप हरि सी गाढ़ तान गहियो ।
आपनु समाने हो कहिये कहालौं और,
जब-तब ब्रजवासिन की सुधि लेत रहियो ।।
बिरह आवेसन मे जो कछु कह्यो होय,
बिसरेसो ऊँच नीच बातन को सहियो ।
हा हा बटोही मधुपुर पधारयो जो,
मेरी गोपाल जी सो जै गोपाल कहियो ।।"[4]

---

१. 'ब्राह्मण' खण्ड ६, संख्या १, ('वर्षारम्भ')

२. सं० नारायण प्रसाद अरोड़ा 'प्रताप लहरी' (१९४९ ई०) पृष्ठ १५५ ।
('प्रेम पुष्पावली')

३. स० नारायण प्रसाद अरोड़ा: 'प्रताप लहरी' (१९४९ ई०) पृष्ठ १९८ ।

४. ,, '—वही—' ,, पृष्ठ १८४

चौपाई—

"वेदादिकन बहुल गुण गावा। पै सब भेद बरणि नहि पावा॥
नेति-नेति कहि-कहि सब थाके। कहि न सके यश जगतपिता के॥"[१]

कुण्डलियाँ

"कविता तरु कुम्हिलात लखि, दुरदिन ग्रीषम हेत।
सींचन को ताके भये, श्री हरिश्चन्द्र सचेत॥
श्री हरिश्चन्द्र सचेत, सदा रहि प्रफुल्लित कीन्ह्यों।
थोरहि दिन में सरस मधुर फल को रस लिन्ह्यो॥
हाय! अचानक उयो आज दुख दाहन सविता।
भारतेन्दु भो अस्त विलानी उडगन कविता॥"[२]

इस प्रकार मिश्र जी को छन्दो का अच्छा ज्ञान था। उन्होने ललित कवि से छन्द-शास्त्र का अध्ययन भी किया था। अपने छन्द-शास्त्र के ज्ञान के ही विश्वास पर वे - खडी बोली के आन्दोलन मे—श्रीधर पाठक को चुनौती देते हुए कहते हैं—"आप छन्दार्णव जैसी कोई भी पिंगल-शास्त्र की पुस्तक लेकर बैठ जाइए और उसी 'हिन्दोस्थान' मे प्रत्येक छन्द का उदाहरण खडी बोली मे दीजिए और मैं ब्रजभाषा मे देता हूं।"[३]

उर्दू छन्द

उर्दू छन्दो मे, प्रमुख रूप मे मिश्र जी ने गजल, शेर, कसीदा, मुसल्लस, कितअ् आदि को अपनाया है। इनके उदाहरण इस प्रकार है:

गजल—

"मुह तो हमसे वह गो करता बहुत खिल खिल रहा।
शुहदपन का हो भला जिसकी बदौलत मिल रहा॥
भाड़ मे जावें ये दिल पत्थर पड़ें इस इश्क पर।
उम्र भर वह सग दिल छाती को मेरे सिल रहा॥
वह लगे उड़ाने तो या कदुवा ही पड़ना ठीक है।
वरना कब ऐ हमनशीं! काफूर वे फिल-फिल रहा॥
दिल दिया हमने तो तेरे बाप का नुकसान क्या।
नासिहा किस वास्ते है हमसे कर टिल-टिल रहा॥"[४]

---

१. 'ब्राह्मण' खण्ड ३, सख्या ९-१० ('श्री प्रेमपुराण')
२. 'ब्राह्मण' खण्ड ८, सख्या ९, ('भारतेन्दु बाबू हरिश्चंद्र का मर्सिया')
३. 'हिन्दोस्थान' २१ मार्च, १८८८ ई०
४. 'ब्राह्मण' खण्ड ३, संख्या ३-४ ('श्री उर्दूजान के सफ़र-दाइयो के याद रखने लायक गज़ल')

हिन्दी मे भी मिश्र जी ने गजलें लिखी है—

"क्यो दीनानाथ ! मुझ पै तेरी कुछ दया नही,
आश्रित तेरा नही हूँ कि तेरी प्रजा नही।
मेरे तो नाथ ! कोई तुम्हारे बिना नही,
माता नहीं बन्धु नहीं है पिता नही ॥
माना कि मेरे पाप बहुत हैं पै है प्रभो,
कुछ उनमे न्यूनतर तो तुम्हारी दया नहीं।
करुणा करोगे क्या मेरे आसू ही देखकर,
जी का भी मेरे दुख तो तुम से छिपा नही ॥"[1]

शेर—

"पूछे है कौन खाकनशीनो का हाले जार।
रहता है आसमान पै सरकार का दिमाग ॥"[2]

कसीदा—

"कि जिस जा ख्वाब मै पहुंचे, खयाल इंसा का नामुमकिन।
फरिश्तों ने जहां जाने मे, अकसर जक उठाई है ॥
वहां तक कीजिए तौसीफ, उसकी सब बजा लेकिन।
नही उरफी को दावा, दूसरो की क्या चलाई है ॥
यही बिहतर कि हक में हम—हरदम दुवा मांगें।
यही बस फर्ज अपना है, इसी मे सब भलाई है ॥
खुदाया खुश रहे वह फखरे आलम रोजे महशर तक।
कि जिसकी जाते बा बरकत की, जेबा सब बड़ाई है ॥"[3]

मुसल्लस

उर्दू मे दूसरे शायरो की गजलो पर अपने मिसरे लगाकर मुसल्लस बनाये जाते है। मिश्र जी ने भी इसी रीति के अनुकरण पर दूसरे कवियो के पदों पर अपने मिसरे लगाकर मुसल्लस बनाये है। कबीर के दोहो पर बना मुसल्लस देखिए :—

"तुम्हारी ही खुशी मे खुश है यां अपनी रजा क्या है।
दिलो जां लीजिए इसमे हमे उज्रो गिला क्या है ॥

---

१. 'ब्राह्मण' खण्ड ३, सख्या ९-१० ('हिन्दी गजलें')
२. 'ब्राह्मण' खण्ड ५, संख्या ८, ('नये उर्दू छन्द')
३. 'ब्राह्मण' खण्ड १, सख्या ६, ('कसीदा')

पोथी पढ़-पढ़ जग मुआ पंडित हुआ न कोय।
ढाई अच्छर प्रेम का पढ़े सो पंडित होय॥"[1]

किंतअ

"खुदा है ही नहीं यह बात काफ़िर।
बसिदके दिल कभी कहता न होगा॥
वगैरज़ सिव्त नामुमकिन है इनकार।
मुक़र्रर उसने यह समझा न होगा॥
बवक्ते बेबसी ख्वाहाने इमदाद।
वही बतलाये होगा या न होगा॥
बरहमन तेरी इन बातों में यह लुत्फ़।
गुमा था हमको तू दीवाना होगा॥"[2]

लोक-गीत

राष्ट्रीय चेतना और हिन्दी-प्रचार के उद्देश्य से मिश्र जी ने लोक-गीतों का लिखना प्रारम्भ किया। इस दिशा में उन्होंने पर्याप्त गीत लिखे और उन्हें अच्छी सफलता भी मिली। इनके लोक-गीत बड़े सरल, स्वाभाविक और मनोरंजक हैं, इन्हीं गुणों के कारण उन्हें बड़ी लोकप्रियता प्राप्त हुई। डा० रामविलास शर्मा के शब्दों में—"जनता के लिए जन-भाषा में जिन लोगों ने कविता लिखी है, उनमें प्रताप नारायण मिश्र का स्थान अन्यतम है। उनकी उक्तियों में वही सिधाई है जो उनके निबन्धों में है, वह सिधाई जो अति साधारण पाठकों का हृदय भी हिला देती है। उनमें वह बांकपन भी है जो एक सफल हास्य और व्यंग्य लेखक को ही सुलभ हो सकता है।"[3] मिश्र जी के गीत—लोक गीतों के क्षेत्र में आदर्श हैं क्योंकि इनसे पूर्व ऐसे गीत कोई कवि नहीं लिख सका। लोक-गीतों में मिश्र जी ने लावनी, आल्हा, होली, कजली, दादरा आदि लिखे हैं।

लावनी

लावनी मिश्र जी को विशेष प्रिय थी क्योंकि इसका प्रचार उन दिनों बहुत बढ़ा-चढ़ा था। तुर्रे वालों में नत्थासिंह 'तालिब', बाबा रामकरन गिरि, बाबा शम्भु-पुरी, पंडित रामप्रसाद आदि तथा कलँगी वालों में बाबा बनारसीदास, उस समय विशेष प्रसिद्ध थे। इन लावनी-बाजों का, भारतेन्दु-युग के कवियों पर बड़ा प्रभाव

---

१. स० नारायणप्रसाद अरोड़ा : 'प्रताप लहरी' (१९४९ ई०) पृष्ठ १६५ ('प्रेम पुष्पावली')

२. '—वही—' पृष्ठ १६३

३. डा० रामविलास शर्मा : 'भारतेन्दु-युग' (तृतीय संस्करण), पृष्ठ १४७

पडा, और प्राय सभी कवियो ने लावनिया लिखी । मिश्र जी कानपुर के लावनी-बाजो मे प्रमुख थे । इन्ही के कारण कानपुर लावनी-बाजो का केन्द्र बन गया था । मिश्र जी को लावनी के किसी सम्प्रदाय विशेष से प्रेम नही था । वे स्वतत्र रूप मे लावनी लिखते थे । वैसे तुर्रा सम्प्रदाय के प० प्रभूदयाल से प्रभावित अवश्य थे पर उनमे सम्प्रदायगत सकीर्णता नही थी । कहते है कि जब कोई भी दल पराजित होने लगता था तब मिश्र जी उसकी ओर से लावनी कहते थे और अपनी 'आशु' रचना की शक्ति से बाजी मार ले जाते थे । यहा तक कि एक बार बाबा बनारसीदास, को इनसे मुह की खानी पड़ी—बाबा बनारसीदास प्राय. कानपुर आते थे और महीनो वहा ठहरते भी थे : उस समय बाबा बनारसीदास को उत्तर देने वाला कानपुर मे कोई नही था । इससे कुछ लोगो ने प्रतापनारायण मिश्र जी को उनसे भिडा दिया । जिसके परिणामस्वरूप कई दिन तक उनके और मिश्र जी के बीच लावनी होती रही पर अन्त मे बनारसीदास जी को मैदान छोडना पडा । मिश्र जी ब्रजभाषा खडी बोली, बैसवाडी, उर्दू, फारसी, सस्कृत आदि कई भाषाओ मे लावनी लिखते थे तथा चग बजाकर बडे सुरीले राग मे उन्हे गाते भी थे । मिश्र जी लावनियो मे—मात्राओ आदि का ध्यान न रखकर, राग को ही विशेष महत्व देते थे इससे उनके मिसरो मे मात्राये कम या ज्यादा हो गयी है पर राग मे उनमे कोई अवरोध नही पडता । उदाहरण के लिए एक उर्दू-लावनी की कुछ पक्तिया देखिए—

"यो दुनिया मे कहने कोई को पडित है कोई दाना है ।
भेद खुदा का मगर, कुछ मस्तो ही ने जाना है ॥
यकीन यह हर शखस को है महदूद अक्ल इन्सान की हे ।
अपार महिमा, हमारे मालिक श्री भगवान् की है ॥
'लाओहीसी' और 'नेति' जबकि तहरीर वेद कुरआन की है ।
बया कर सके, यह ताकत हरगिज़ नही जुबान की है ॥"[1]

सम मात्राओ की भी उनकी अनेक लावनिया है पर उनमे स्वत ही मात्राये सम हो गयी है, मिश्र जी ने उन्हे, सम करने का प्रयत्न नही किया । उदाहरणार्थ एक खड़ी बोली-लावनी की—निम्नाकि पक्तिया द्रष्टव्य है—

"जब से देखा प्रियवर । मुखचन्द्र तुम्हारा ।
संसार तुच्छ जचता है हमको सारा ॥
इच्छा रहती है नित्य य शोभा देखें ।
लावण्यमयी यह दिव्य मधुरता देखें ॥

१. स० नारायण प्रसाद अरोड़ा 'प्रताप लहरी' (१९४९ ई०) पृष्ठ १००-१०१ ('मन की लहर')

यह भाव अलौकिक भोलेपन का पेखें।
इस छवि के आगे और भला क्या देखें॥
आहा ! यह अनुपम रूप जगत से न्यारा।
संसार तुच्छ जचता है हमको सारा॥"[१]

मिश्र जी ने सैकड़ों लावनिया लिखी है जो भाषा और राग की दृष्टि से अच्छी तथा देश-प्रेम और ईश्वर-भक्ति की भावना से परिपूर्ण है।

आल्हा

भारतेन्दु-युग मे मिश्र जी ने ही सर्वप्रथम आल्हा लिखना प्रारभ किया और अन्य कवियो से भी लिखने के लिए—अनुरोध किया साथ ही इसके लिखने के नियम भी उन्होंने कवियो को बतलाये। वे लिखते है—'जिस छन्द मे आल्हा गाया जाता है वह यद्यपि किसी प्रसिद्ध पिगल मे हमने नही देखा पर अनेक विद्वानो का मत है कि वह कडखा छन्द है जिसका प्रस्तार यों है कि पहिली यति १६ मात्रा पर होती है दूसरी १५ पर और अन्त का अक्षर अवश्य लघु एव उसके पहिले का एक अवश्य गुरु होगा। मात्रा छन्द होने से कुछ अधिक बन्धन नही युद्ध मे वीरो को उत्साह दिलाने वाले गीतो को कडखा कहते है और आल्हा मे विशेषत वीरो का ही वर्णन होता है। इसी मूल पर इस छन्द का नाम भी कडखा पड गया है, नही कडखा छन्द का रूप और है और आल्हा (कदाचित् यह नाम अल्हन सिह हो) का चरित्र ही इस छन्द मे बहुधा गाया जाता है अत इस गीत को भी आल्हा कहते है।'[२] इसी निबन्ध मे आगे मिश्र जी ने आल्हा के ६० मिसरे भी दिये है जिनकी सहायता से लिखा जा सकता है। मिश्र जी ने आल्हा की भी दो पुस्तके—'कानपुर माहात्म्य' और 'दगल खण्ड'—लिखी है। ये दोनों ही पुस्तके बडी गरम एवं मनोहर है। मिश्र जी के आल्हे की कुछ पक्तिया यहा द्रष्टव्य है—

"गड़ गड़ गड़ गड़ बादर गरजै, कौंधा लपकि लपकि रहिजाय।
दादुर मोर पपीहा बोलैं, ओ बन मां कोयल कुकहाय॥
भगत मनावैं शिवशकर का, रसिया बागन करैं बिहार।
परे हिंडोरा हैं घर-घर मा, गोरिया गावैं राग मलार॥
जिनके कन्ता है घर भीतर, तिनके सदा तीज त्यौहार।
रचि-रचि मेहदी दइ हाथन मा, चोटी गूंथि करैं सिंगार॥

---

१. सं० नारायणप्रसाद अरोड़ा : 'प्रताप लहरी' (१९४९ ई०) पृष्ठ १००-१०१ ('मन की लहर')

२. 'ब्राह्मण' खण्ड ५, संख्या ५, ('आल्हा आल्हाद')

मब सुख बिसरि जाय उड़ जिनके, बलमा चलत चहैं परदेश।
मन मां सोचै मनै बिसूरें, कैसे कटिहैं कठिन कलेश॥"[1]

आल्हा की ये पंक्तिया मिश्र जी के उपर्युक्त विवेचन पर ही आधारित हैं। इनमे १६ और १५ पर यति तथा अन्त का पहला अक्षर गुरु और दूसरा लघु है। मिश्र जी की-ही परम्परा मे आगे चलकर आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने अपना 'मरगौ नरक ठिकाना नाहि' आल्हा लिखा।

होली

होलिया मिश्र जी ने बहुत सी—अनेक राग-रागिनियो मे लिखी है और अधिकांश के रागो का नाम भी उन्होंने, उससे सम्बन्धित होली के प्रारम्भ मे दे दिया है। 'काफी' राग मे लिखी एक होली देखिए—

"हिलि - मिलि भारत सन्तान होरी खेलिए।
बरस दिना पर आज सुदिन यह दिखरायो भगवान।
ऐसहू मे न अनन्द मनायो तौ परिहै पछितान॥
प्रेम रग बरसाय परस्पर गाय सुमगल गान।
लाज छोड़ि वह रूप सजौ जिहि होय देश कल्याण॥"[2]

कुछ होलियो के प्रारम्भ मे मिश्र जी ने प्राचीन गीतों के प्रथम चरण देकर (जिनके आधार पर उन्होंने अपनी होली लिखी है) उनकी ध्वनियों का सकेत भी कर दिया है जिससे गाने वालो को बड़ी सहायता मिलती है। यथा—

('कान्हा खेलत फागु जागु उठु देखु ननदिया' की चाल पर)

"खेलै सब फागु भागहुल भारतवासी।
धन बल की नित धूरि उड़ावत गौरव पर धरि आग।
फूट बैर स्वारथ रगराते, बोरी देश अनुराग॥ खेलै॥
गारी सुनत बिधरमिन के मुख, लाज दई सब त्याग।
छाके रहैं अविद्या आसव, मृदु सुख विष सम लाग॥"[3] खेलै०॥

कजली

मिश्र जी की कई कजलिया भी प्रसिद्ध है। उदाहरणार्थ एक कजली देखिए—

"कसकै मोरे रे करेजवा तोरे नैना बाके बान।
नहि भूलति जस वह दिन तानी बांकी भौह कमान॥
जादू भरी रसीली चितवन प्रेम भरी मुसकान।
छिन-छिन पल-पल पर सुधि आवत बिसरावत सब ज्ञान॥

---

१. सं० नारायणा प्रसाद अरोड़ा: 'प्रताप लहरी' (१९४९ ई०) पृष्ठ २२२-२२३ ('दंगल खण्ड')
२. 'ब्राह्मण' खण्ड ५, संख्या ८, ('काफी')
३. सं० नारायणप्रसाद अरोड़ा : 'प्रताप लहरी' (१९४९ ई०) पृष्ठ १३७ ('होली')

अब 'परताप' न जीवत रहिहै बिना अधर रसदान ।
धाय आय गर लागु पियरवा नाहितु निकसै प्रान ।।"[1]

दादरा

मिश्र जी का एक दादरा भी देखिए—

"तोहिं छैला मै छाती लगाये रहिहौं ।
आखिन ते कछु दूरि न करिहौं, पुतरी प्यारे बनाये रहिहौं ।।
पलकन ते नित पाय दाबि कै, उर पर सदा सोआये रहिहौं ।
जो कछु भौंह चढी देखिहौं तौ, परि-परि पैयां मनाये रहिहौं ।।
डारि गरे तोरे अपनी बहियां, प्रेम के जाल फसाये रहिहौं ।
प्रिय 'प्रताप' तोरी इक-इक छबि पर, दूनो लोक लुटाये रहिहौं ।।"[2]

इसके अतिरिक्त 'सगीत शाकुन्तल' मे मिश्र जी ने अनेक छन्दो और राग-रागिनियो मे लोक-गीत लिखे है । लोक-गीतो के लिए 'सगीत शाकुन्तल' दृष्टव्य है । छन्दो के ज्ञाता होने के साथ-साथ मिश्र जी सगीत के भी आचार्य थे इससे उनके छन्द रागो पर भी बडे अच्छे उतरते है । 'सगीत शाकुन्तल' मे मिश्र जी ने लगभग ७२ राग-रागिनियो मे गीत लिखे है और सभी गीत अपनी गेयता मे सफल है । उदाहरण के लिए 'दरबारी कान्हरा' राग मे लिखा एक गीत देखिए—

"कहौं कहा भूज भई बड़ी आय ।
निरदोसी को दोष लगायो, रह्यो तासु फल पाय ।।
वा सुखदायिनि के सनेह की, दीन्ही सुधि बिसराय ।
सोई अब छिन-छिन सुधि करि-करि, रह्यो हियो अकुलाय ।।
बिदित बियोगी जानि मोहिं अति, रतिपति रह्यो सताय ।
आम बौर मिस बान तानि के, उर भेदत नित आय ।।"[3]

मिश्र जी का छन्द-विधान बडा विस्तृत है । उसमे यदि एक ओर प्राचीन छन्दो की-सी सीमाबद्धता है तो दूसरी ओर नवीन गीतो की-सी स्वच्छन्दता भी है । उनके प्राचीन-छन्द शास्त्रीय परम्परा से युक्त है तथा उर्दू छन्द और लोक-गीतो मे उनकी वैयक्तिकता की प्रधानता है इससे बहुत से नये गीतो का भी सृजन हो गया है । मिश्र जी ने अपनी प्रतिभा से गीतो मे जान डाल दी है । इनके सभी गीत सरल, प्रवाहपूर्ण, हृदयस्पर्शी और गेयता से युक्त है ।

अलंकार योजना

मिश्र जी मनमौजी कवि थे । वे अलकारो के पीछे नही पडे । जो भी अलकार

---

१. 'ब्राह्मण' खण्ड ३, संख्या ११, ('कजरी')
२. 'ब्राह्मण' खण्ड ३, संख्या ११, ('दादरा')
३. प्रतापनारायण मिश्र : 'सगीत शाकुन्तल' (१९०८ ई०) छठवां अक, पहला दृश्य

उनकी कविताओ मे दिखाई पडते है वे स्वत ही आ गये है। मिश्र जी की कविताओ मे प्राय. प्रमुख अलकार ही मिलते है जो प्रयासजन्य न होने के कारण बडे स्वाभाविक है। शब्दालकारो मे अनुप्रास, यमक, श्लेष आदि तथा अर्थालकारो मे उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक आदि का प्रयोग किया गया है। अनुप्रास मिश्र जी की कविताओं मे अधिक आये है। यथा—

जाकी महिमा अपार गावत नित मति उदार,
निराकार निर्विकार निर्गुण गुणराशी।
अद्वितीय अज अनूप विपुल विविध भूति भूप,
सत् चित् आनन्द रूप कठिन क्लेश नाशी।।"[1]

यमक के भी कुछ उदाहरण यहा हर द्रष्टव्य हैं—

"जग के सुख जाचहि कहा, सांचे सेवक तोर।
लाय सकत तिन हेतु तू, नभ के तारे तोर।।"[2]

"कल पावै न प्रान तुम्हें बिन देखे, इन्हे अधिकौ कलपाइये ना।
'परतापनरायणजू' के निहोरे, पिरीति प्रथा बिसराइये ना।।"[3]

इन उद्धरणो मे 'तोर' और 'कलपाना' शब्द दो-दो बार आये हैं और इनके अर्थ भिन्न-भिन्न है अत इनमे यमक छटा सहज ही देखी जा सकती है।

श्लेष अलकार का प्रयोग भी निम्नलिखित सवैया के 'बात' और 'निशिनाथ' शब्दो मे देखिए—

"भावै अवासहि में दुरि बैठिबो, बास में आनन ढांकि रहे है।
बात चले 'प्रतापनरायण', गात सबै थहरात महै हैं।।
शोर करै सिसकी के घने, निशि नाथ ते दूरि रह्योई चहे हैं।
लोग सबै रितु शीत की भीत ते, नारि नओढ़ा की रीति गहै है।।"[4]

उपमालकार प्राय प्रत्येक कवि को प्रिय होता है। मिश्र जी ने भी इसका प्रयोग बहुतायत से किया है। कुछ उदाहरण अवलोकनीय है—

"विष लागत व्यवहार जगत के,
सुमिरि सुधा सम बचन तिहारे।"[5]

"वह कोमल तन कमल वदन—
जेहि लखि जग होत निहाल।"[6]

---

१. सं० नारायण प्रसाद अरोडा · 'प्रताप लहरी' (१९४९ ई०) पृष्ठ १४६ ('प्रेम पुष्पावली')
२. 'ब्राह्मण' खण्ड १, सख्या ९-१०, ('तारापात पचीसी')
३. सं० नारायण प्रसाद अरोड़ा: 'प्रताप लहरी' (१९४९ ई०) पृष्ठ १९८
४. सं० नारायण प्रसाद अरोड़ा. 'प्रताप लहरी' (१९४९ ई०) पृष्ठ १९८
५. ब्राह्मण' खण्ड २, संख्या १२, ('शोकाश्रु')
६. ,, '—वही—'

उत्प्रेक्षालकार का प्रयोग भी जहा-तहा उत्कृष्ट है । यथा—

"देव सुन्दरिन के मनौ, टूटे हार समुदाय ।
सो नखतन की भाति सब, गिरन चहत इत आय ।।
दीन दशा हिन्दून की, देखि दया उर लाय ।
सुअन समुझि देवन दिये, भूषण मनहुं चलाय ।।"[१]

इसके अतिरिक्त मिश्र जी ने रूपकों की भी—अपनी कविताओ मे अच्छी योजना की है । देखिए—

"अति गाढ़ मोह तम नाशौ, उर विद्या सूर्य प्रकाशौ ।
सुखदायक मार्ग दिखाओ, दुष्कृत से सदा बचाओ ।।"[२]

ऐसे ही साग-रूपको की रचना मे मिश्र जी को अत्यन्त सफलता मिली है—

"कविता तरु कुंभिलात लखि, दुरदिन ग्रीषम हेत ।
सींचन को ताके भये, श्री हरिचन्द सचेत ।।
श्री हरिचन्द सचेत, सदा रहि प्रफुलित कीन्ह्यो ।
थोरहि दिन मे सरस, मधुर जस को फल लीन्ह्यो ।।
हाय ! अचानक उयो आज दुख दाहन सविता ।
भारतेन्दु भो अस्त विलांनी उडगन कविता ।।"[३]

सामान्य अलकारो मे 'पुनरुक्ति प्रकाश' शब्दालकार भी मिश्र जी की कविताओ मे यत्र-तत्र मिलता है । जैसे—

"स्वागत ! स्वागत ! स्वागत ! श्री भारत हितकारी ।
आवहु निश्रम न्याय निरत नित पथधारी ।।
आवहु-आवहु भली करी इहि ओर पधारे ।
बहुत दिनन के भये मनोरथ सफल हमारे ।।"[४]

मिश्र जी के अलकार कविता मे भूषण बनकर ही आये है । उनसे भावो पर किसी प्रकार का दबाव नही पड़ता बल्कि उनसे भाव अधिक तीव्रतर और कविताएं अधिक आकर्षक बन गयी हे । मिश्र जी कविता के स्वाभाविक विकास के ही पक्षपाती थे, उन्हे चमत्कारिकता प्रिय नही थी । वैसे एक-दो कविताओ मे उनकी कलात्मकता मिलती है फिर भी वह खिलवाड या हास्यास्पद नही प्रतीत होती,

---

१. 'ब्राह्मण' खण्ड ३, संख्या ९-१० ('तारापात पचीसी')
२. सं० नारायण प्रसाद अरोड़ा: 'प्रताप लहरी' (१९४९ ई०) पृष्ठ १५९ ('प्रेम पुष्पावली')
३. 'ब्राह्मण' खण्ड ८, संख्या ९, ('भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र का मर्सिया')
४. 'ब्राह्मण' खण्ड ६, संख्या ५, ('स्वागतन्ते महात्मन्')

उसमें भी बहुत-कुछ स्वाभाविकता ही है। उदाहरण के लिए 'ककाराष्टक' की निम्नलिखित पंक्तियां देखिए—

> "कलह करावन हार परम पंडित कलुषाकर।
> कोविन कलित पथ प्रचारि सद्धर्म नीति हर॥
> काम कला सिसुताहि मांहि सिखवत बल नासत,।
> कहुं महंगी कहुं कुरुज भांति-भांतिन परकासत॥
> कार के मिस दीन प्रजान कर, सब प्रकार सर्वस हरन।
> कलिराज कपटमय जयति जय, भारत कहं गारत करन॥"[1]

इस कविता की प्रत्येक पंक्ति 'क' से ही प्रारम्भ होती है और कविता के भीतर भी 'क' की-ही आनुप्रासिकता दिखाई पड़ती है पर इसमें—भावों के स्पष्टीकरण में किसी प्रकार का अवरोध नहीं पड़ता। मिश्र जी की कविता के भाव पक्ष और कलापक्ष में पूर्ण सामजस्य है। भावपक्ष समुचित कला को पाकर आकर्षण और कलापक्ष भी उत्कृष्ट भावों को पाकर सरस हो गया है। यहां तक कि मिश्र जी की उपदेशात्मक कविताओं का भी बाह्यरग अत्यन्त प्रभावशाली है।

मिश्र जी की कविता में उनकी विलक्षण प्रतिभा सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है; क्या भाव, क्या भाषा, क्या छन्द—सभी में उनकी अपनी स्वच्छन्दता है। इसी स्वच्छन्दता के ही कारण उनकी कविता-चतुर्मुखी होकर विकसित हुई है। उनकी कविता में—भावी स्वच्छन्दतावादी कविता का रूप स्पष्ट दिखाई पड़ता है। कुछ साहित्यकार उनकी कविता की उपदेशात्मकता देखकर उन्हें उपदेशक या समाज-सुधारक की कोटि में ले जाते हैं पर मिश्र जी में एक कवि के सम्पूर्ण गुण विद्यमान थे उनकी कल्पना की सजीवता और भाव प्रबलता, उनकी प्रत्येक कविता में देखी जा सकती है। डा० मुंशीराम शर्मा के शब्दों में—"पद्य रचना में तो वे जन्मजात कवि ही प्रतीत होते थे। जिस प्रकार का मस्तानापन, कल्पना-प्रवीणता, सजीवता तथा भावुकता एक कवि में होनी चाहिए—वैसा सबका सब प्रभूत मात्रा में स्वर्गीय मिश्र जी के अन्दर विद्यमान था।"[2] वैसे उपदेशात्मकता उनमें है अवश्य पर वह उनकी लोक-मगल की भावना का प्रतीक है। कविता के लिए कोरा मनोरंजन ही आवश्यक नहीं होता; लोक हित भी उसके लिए उतना ही अभीष्ट है जितना कि मनोरंजन। गोस्वामी तुलसीदास जी तो उसी कविता को श्रेष्ठ समझते थे जिसमें कि लोक-हित की भावना हो—

> "कीरति भनिति भूति भलि सोई।
> सुरसरि सम सब कहं हित होई॥"[3]

---

१. 'ब्राह्मण' खण्ड ४, संख्या १०, ('ककाराष्टक')
२. डा० मुंशीराम शर्मा : 'सारस्वत' (स० २०१७ वि०) पृष्ठ २००
३. गोस्वामी तुलसीदास : 'रामचरितमानस' (मझला साइज,) पृष्ठ ४६, गीता प्रेस, गोरखपुर।

इसी से डा० रामविलास शर्मा भी मिश्र जी की कविता पर विचार करते हुए लिखते हैं—जो लोग आशिक, माशूको की अदाओं के बाकपन मे बाके हो गये है, या जो कच-कुच-कटाक्ष की कविता मे कट मरे हैं, उन्हे ये रचनाए शायद कविता कहलाने की अधिकारी भी न जान पडेंगी। परन्तु यदि सहृदयता का अर्थ पीडित जन-समुदाय के प्रति निर्दयता नही है, यदि रस की सृष्टि केवल मानवता के पतन के लिए नही वरन् उसके विकास के लिए है, यदि रस कच कुच-कटाक्षो के वर्णन मे उत्पन्न होकर भी ब्रह्मानद सहोदर नही हो जाता वरन् उसकी परिणति त्याग और सेवा की प्रेरणा मे भी हो सकती है तो ये कृतिया भी कविता है और उस कोटि की कविता है जिसकी टक्कर की कम रचनाए उस युग के हिंदी साहित्य मे है।"[1] फिर मिश्र जी ने तो उपदेशात्मक—और रसात्मक दोनों प्रकार की कविताए लिखी है इससे उनपर तो ऐसा आक्षेप किया ही नही जा सकता। मिश्र जी तो हर दृष्टि मे एक सफल और सच्चे कवि के रूप मे हमारे सामने आते है। अत हम नि.सदेह कह सकते है कि मिश्र जी की कविता—समाजसुधारक की भावनाओ से युक्त होते हुए भी काव्यात्मकता से परिपुष्ट है और हम इसे उस युग की या अपने ढग की सर्वश्रेष्ठ कविता कहने मे किंचित सकोच नही कर सकते।

---

१. डा० रामविलास शर्मा : 'भारतेन्दु-युग' (तृतीय सस्करण) पृष्ठ १४७।

दूसरा अध्याय

मिश्र जी के नाटक

भारतेन्दु-युगीन साहित्यकारो का अपना ऐतिहासिक महत्व है, क्योकि इसी युग से साहित्य का—एक नये सिरे से, विभिन्न रूपो मे विकास प्रारम्भ होता है। अत इस युग के किसी भी साहित्यकार की, किसी भी साहित्यिक-विधा का अध्ययन करने से पहले, उसकी पूर्व-परम्परा को देखना आवश्यक हो जाता है। मिश्र जी के नाटको का वास्तविक मूल्याकन तभी किया जा सकता है जब उनसे पूर्व के नाटको के उद्-भव और विकास के परिवेश मे उनके नाटको को देखा जाय। अतएव यहा पर मिश्र जी के नाटको को देखा जाय। अतएव यहा पर मिश्र जी के नाटको की समीक्षा करने से पहले उनके पूर्व की हिन्दी नाट्य-परम्परा का सक्षिप्त परिचय देना समीचीन होगा।

हिन्दी नाटक-साहित्य

भारतवर्ष मे सस्कृत भाषा मे लिखे नाटको की प्राचीन परम्परा मिलती है लेकिन हिन्दी नाटक-साहित्य का उद्भव बहुत बाद मे हुआ। इसका उद्भव-काल ईसा की उन्नीसवी शताब्दी का उत्तरार्द्ध माना जाता है वैसे कुछ विद्वानो ने इसकी क्षीण-परम्परा को तेरहवी शताब्दी से जोड़ने का प्रयत्न किया है और 'गय सुकुमार-रास' (१२३२ ई०) को हिन्दी का प्रथम उपलब्ध नाटक माना है पर नाटकीय तत्वो का इसमे पूर्ण अभाव है। इसकी भाषा पर भी राजस्थानी हिन्दी का प्रभुत्व है अत इसे हिन्दी का प्रथम नाटक कहना उपयुक्त नही जान पड़ता। इसके बाद ब्रज, अवधी और मैथिली भाषाओ मे लिखे नाटक मिलते है जिन्हे हिन्दी-नाटक की विकास परम्परा से जोडा जाता है। ब्रज और अवधी के नाटक 'रास-लीला' की गीति-नाट्य परम्परा मे लिखे गये है। इनका विकास सोलहवी शताब्दी से प्रारभ होता है। लोगो का अनुमान है कि स्वामी वल्लभाचार्य (सन् १४८८-१५३०) द्वारा ब्रजभाषा क्षेत्र मे 'कृष्णलीला' की गीति-नाट्य परम्परा का और गोस्वामी तुलसीदास (सन् १५३२-१६२३ ई०) द्वारा अवधी-भाषा के क्षेत्र मे 'रामलीला' का सूत्रपात हुआ। इस परम्परा मे लिखे गये नाटको मे नददास, ध्रुवदास, वृन्दाबनदास, ब्रजवासीदास आदि के लिखे लीला-नाटक उल्लेखनीय है। इन नाटको मे गीति और नृत्य की प्रधानता है क्योकि ये रास-मण्डलियो के अभिनयार्थ लिखे गये है।। मैथिली भाषा मे लिखे नाटक, नाटकीय तत्वो से परिपूर्ण है। इनका प्रणयन विद्यापति से प्रारम्भ

होता है। विद्यापति का 'गोरक्षा-विजय नाटक' (१५वी शताब्दी) इस दिशा में सर्वप्रथम नाटक माना जाता है। इस नाटक का गद्य भाग संस्कृत और पद्यभाग मैथिली मे है। विद्यापति के बाद इस परम्परा मे अनेक नाटककार हुए जिनमे गोविन्द, रामनाथ झा, देवानन्द, रमापति उपाध्याय, उमापति उपाध्याय आदि के नाटक विशेष प्रसिद्ध हैं। मैथिली भाषा के नाटको का शिल्प-विधान पूर्ण विकसित है। अभिनेयता के गुणो मे भी ये परिपूर्ण है। इनकी भाषा प्राय सरल मैथिली है।

सत्रहवी और अठारहवी शताब्दी मे कुछ पद्यबद्ध नाटक भी लिखे गये जो अपनी सम्वाद-शैली के लिए उत्कृष्ट हैं। इन नाटकों मे रामायण महानाटक (१६१० ई०), हनुमन्नाटक (१६२३ ई०), समयसार नाटक (१६३६ ई०) नेवाज कृत शकुन्तला नाटक (१६७० ई०) सभासार नाटक (१७०० ई०), करुणाभरण (१७१५ ई०) आदि उल्लेखनीय है। इन नाटको मे नाटकीय तत्व नही मिलते। केवल 'नाटक' का नाम मात्र ही इनमे मिलता है। हा, सम्वाद-शैली इनकी दृष्टव्य है।

सत्रहवी शताब्दी मे लिखे दो नाटक यहाँ पर और उल्लेखनीय है—एक 'प्रबोध-चन्द्रोदय नाटक' दूसरा 'आनन्द-रघुनन्दन नाटक'। 'प्रबोध-चन्द्रोदय' सस्कृत के 'प्रबोध-चन्द्रोदय नाटक' का अनुवाद है। इसके अनुवादक जोधपुर नरेश महाराज जसवतसिंह है। यह नाटक काव्यात्मक दृष्टि से उत्कृष्ट है। इस अनुवाद के गद्य और पद्य दोनो ब्रजभाषा मे है। 'आनन्द-रघुनन्दन' मौलिक नाटक है। इसके लेख रींवाँ नरेश महाराज विश्वनाथ सिंह जू है। इस नाटक की भी भाषा ब्रजभाषा ही है। इन नाटको के उपरान्त भारतेन्दु के पिता गोपालचन्द्र कृत 'नहुष' (१८४१ ई०), सैयद आगाहसन 'अमानत' रचित इन्दर-सभा' (१८५३ ई०) राजा लक्ष्मण सिंह कृत 'शकुन्तला' (१८६१ ई०) और भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र कृत 'विद्यासुन्दर' (१८६८ ई०) नाटक लिखे गये। 'नहुष' पौराणिक नाटक है यह ब्रज-भाषा मे लिखा गया है। 'इन्दर-सभा' उर्दू मे लिखा गया गीत-नाट्य है। 'शकुन्तला' और 'विद्या-सुन्दर' क्रमश सस्कृत और बगला के अनुवाद है।

उपर्युक्त नाटको मे राजा लक्ष्मणसिंह कृत 'शकुन्तला' और भारतेन्दु कृत 'विद्यासुन्दर' हिन्दी के प्रारम्भिक अनूदित नाटक माने जा सकते है। शेष नाटक ब्रज अवधी, मैथिली और उर्दू मे लिखे गये हैं इसलिये उन्हे हिन्दी (खडी बोली) नाटको के अन्तर्गत रखना उपयुक्त नही जान पडता। वैसे इन नाटकों का प्रभाव अवश्य ही हिन्दी पर पडा है और इन्ही नाटकों के विकास-क्रम मे हिन्दी नाटको का उद्भव हुआ है। सस्कृत नाटको का भी हिन्दी-नाटको पर पूर्ण प्रभाव है। यहा तक कि हिन्दी के प्रारंभिक नाटक सस्कृत नाटको के ही अनुवाद है। हिन्दी नाटको का विकास इन्ही अनूदित नाटको से ही प्रारम्भ होता है।

हिन्दी के मौलिक नाटको का प्रारम्भ भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के प्रथम

मौलिक प्रहसन 'वैदिकी हिंसा-हिंसा न भवति' (१८७३ ई०) मे माना जाता है। भारतेन्दु जी ही आधुनिक नाटक-साहित्य के जनक है। आपने अनूदित और मौलिक दोनो प्रकार के नाटक लिखे हैं। आपके अनूदित नाटकों मे पाखण्ड-विडम्बन (१८७० ई०), धनजय-विजय, मुद्राराक्षस (१८७५ ई०) कर्पूर-मजरी (१८७६ ई०), दुर्लभ-बन्धु, (१८८० ई०) आदि तथा मौलिक नाटको मे वैदिकी हिंसा-हिंसा न भवति (१८७३ ई०), प्रेम-योगिनी (१८७५ ई०), चन्द्रावली (१८७६ ई०), भारत-जननी (१८७७ ई०), विषस्य विषमौषधम् (१८७७ ई०) भारत-दुर्दशा (१८८० ई०), नीलदवी (१८८१ ई०), सती-प्रताप (१८८३ ई०) आदि उल्लेखनीय है। भारतेन्दु जी के नाटक मुख्यत पौराणिक सामाजिक एव राष्ट्रीय विषयों पर आधारित हैं। इनके मौलिक नाटकों मे सामाजिक एव राष्ट्रीय विचारो की प्रधानता है। सामाजिक नाटको मे सामाजिक कुरीतियों पर गहरा व्यग्य किया गया है। वैदिकी हिंसा-हिंसा न भवति' इसी प्रकार का नाटक है। भारत-जननी और भारत-दुर्दशा राष्ट्रीय नाटक है। इनमे राष्ट्र-प्रेम प्रमुख है। इन नाटको द्वारा उन्होंने भारतीयो मे राष्ट्रीय चेतना फैलाने का प्रयत्न किया है तथा अग्रेजो की कटु-भर्त्सना की है। इनके नाटको की भाषा सरल है तथा अधिकाश नाटक अभिनेय है। इन्होंने सस्कृत, अग्रेजी और बगला नाटकों की प्रमुख विशेषताओ को अपने नाटको मे समन्वित किया है इससे इनके नाटको का क्षेत्र बड़ा व्यापक हो गया है। उदार दृष्टिकोण होने के कारण ये प्राचीन और नवीन को एक साथ लेकर चले है। डा० सामनाथ गुप्त के शब्दो मे—"भारतेन्दु आरम्भ मे अवश्य सस्कृत से प्रभावित हुए परन्तु धीरे-धीरे उनके ऊपर तत्कालीन रुचि का ही प्रभाव अधिक होता गया। वह वास्तव मे खुली दृष्टि के व्यक्ति थे और केवल वर्तमान को ही न देखकर भविष्य के विषय मे भी पहले से ही सोच लेने की प्रवृत्ति उनमे विद्यमान थी। वह समझते थे कि सब कुछ करने पर भी हम तत्कालीन प्रवृत्तियो के प्रभाव से अपने साहित्य को बचाने मे समर्थ नही हो सकेंगे और इसका प्रत्यक्ष प्रमाण उन्हे बगला साहित्य मे मिल रहा था। ऐसी परिस्थितियो मे उन्होंने यही उचित समझा कि वह अपनी रचनाओ को समीचीन बनावे। उनका मार्ग सीधा-साधा था। प्राचीन सस्कृत नाट्य शास्त्र को उन्होंने अपना आधार बनाया और यथासभव आधुनिक पुट भी उसमे मिला दिया। ऐसा करने से ब्राह्म-धर्म विशिष्ट काशी जैसी नगरी मे भी वे पढे लिखो के कोप-भाजन बनने से वचित हो गये और आगे का मार्ग भी प्रशस्त करने मे समर्थ हुए।। पूर्व और पश्चिम का यह समन्वय भावी पीढी के लिए बडा शुभ हुआ।"[1] भारतेन्दु जी ने अभिनय की दिशा मे भी पर्याप्त कार्य किया। कई

---

१. डा० सोमनाथ गुप्त . 'हिन्दी नाटक साहित्य का इतिहास' (१९५७ ई०) पृष्ठ ५२।

नाटको के अभिनय मे स्वत अभिनेता भी बने तथा अपने सहयोगियो को अभिनय के लिए प्रोत्साहित भी किया। इसके अतिरिक्त नाटक पर इन्होने 'नाटक' (१८८३ ई०) नाम से एक लक्षण ग्रन्थ भी लिखा जो इनके शास्त्रीय ज्ञान का परिचायक है। कहना न होगा कि भारतेन्दु द्वारा हिन्दी नाटक-साहित्य उत्पन्न तो हुआ ही साथ ही उसका सम्यक् विकास भी इन्ही के द्वारा हुआ।

भारतेन्दु के ही समय मे—भारतेन्दु के अतिरिक्त और भी बहुत से लेखको ने नाटक लिखे है जिनमे बालकृष्ण भट्ट लिखित शिक्षादान (१८७७ ई०), राधाकृष्ण दास के दु खिनीबाला (१८८० ई०) और पद्मावती (१८८२ ई०), देवकी नन्दन त्रिपाठी के बाल-विवाह (१८८१ ई०) तथा गोबध-निषेध (१८८१ ई०), अम्बिका दत्त व्यास के गोसकट (१८८२ ई०) और ललिता नाटिका (१८८४ ई०) आदि नाटक उल्लेखनीय है। इन नाटकों के गद्य की भाषा खड़ी बोली तथा तथा पद्य की भाषा ब्रजभाषा है। इनमे देश और समाज का चित्रण ही प्रमुख रूप से किया गया है। ये नाटक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के ही नाटको के अनुकरण पर लिखे गये है। इनकी भाषा सरल और पात्रानुकूल है। इस युग के लेखक भाषा को प्रौड बनाने मे नही लगे। उनका उद्देश्य तो केवल समाज सुधार था। इसीलिए इस युग के अधिकाश नाटक उपदेश प्रधान हैं। भारतेन्दु जी स्वय ही विचारो को महत्व देते हुए भाषा के विषय मे लिखते हे—

"जामे रस कछु होत है, पढ़त ताहि सब कोय।
बात अनूठी चाहिए, भाषा कोऊ होय॥[१]

इस युग के नाटको की शैली भी बडी स्वाभाविक, सरल और रोचक है। साथ ही सभी नाटक प्राय अभिनेय है। इन नाटकों के उपरान्त प्रतापनारायण मिश्र जी के नाटको का विकास प्रारम्भ हो जाता हे इसलिए आगे नाटको की विकास-परम्परा दिखाने की यहाँ कोई आवश्यकता नही रह जाती।

नाटक का प्रथम उत्थान-काल होते हुए भी इस युग मे नाटको का विकास बडी शीघ्रता से हुआ क्योकि नाटककारो को सस्कृत, बगला और अग्रेजी के प्रौढ नाटक धरोहर के रूप मे प्राप्त थे। इससे इन्हें आगे बढने मे बडी सहायता मिली। नाटक के सभी तत्व इस युग मे विकसित हुए, साथ ही सामाजिक, राजनीतिक, पौराणिक, ऐतिहासिक और प्रेम-प्रधान सभी प्रकार के नाटक इस युग मे लिखे गये। मौलिक नाटकों के साथ ही अनूदित नाटको की भी परम्परा इस युग मे बराबर चलती रही। इसके अतिरिक्त प्रथम उत्थान-काल के नाटकों मे गीति-तत्व की प्रधानता रही पर गीत सरसता मे सहायक होकर ही आये है उनसे रोचकता और

---

१ 'भारतेन्दु-ग्रन्थावली' पहला खण्ड (२००७ वि०) पृ० ३७२ (कर्पूर-मंजरी)

अभिनय मे किसी प्रकार का अवरोध नही पडता। इस युग के नाटक प्रारंभिक होते हुए भी सफल है।

हिन्दी रंग-मंच

नाटक दृश्य-काव्य है। इसमे अभिनय की प्रधानता रहती है और अभिनय के लिए रगमच नितान्त आवश्यक है। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के शब्दो मे—"नाटकीय अनुकृति की स्वाभाविकता और वास्तविकता के विकास मे सबसे महत्वपूर्ण स्थान रगमच की रचना का है। रगमच का निर्माण नाटकीय विकास का कदाचित् सबसे अधिक महत्वपूर्ण अग है।"[१] हिन्दी-रगमच का विकास पारसी थियेट्रिकल कम्पनियो की प्रतिस्पर्द्धा मे हुआ। पारसी कम्पनियाँ व्यावसायिक रूप मे नाटकों का अभिनय करती थी। इनके अभिनय भाषा, वेश और देश काल आदि की दृष्टि से बडे हास्यास्पद होते थे। इनमे अधिकतर उर्दू के—'इन्दर-सभा', 'गुलबकावली' आदि नाटक ही खेले जाते थे। यदि कभी हिन्दी के नाटक खेलने का प्रयास भी किया जाता था तो वे लोग न तो शब्दों का शुद्ध उच्चारण ही कर पाते थे और न पात्रों के अनुकूल वातावरण ही जुटा पाते थे। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र पारसी थियेट्रिकल कम्पनी द्वारा खेले गये शकुन्तला नाटक का वर्णन इस प्रकार करते है—"काशी मे पारसी नाटक वालो ने नाचघर मे शकुन्तला नाटक खेला और उसमे धीरोदात्त (धीरललित) नायक दुष्यन्त खेमटेवालियो की तरह कमर पर हाथ रखकर मटक-मटककर नाचने और 'पतरी कमर बल खाये' यह गाने लगा तो डाक्टर थिबो, बाबू प्रमदादास मित्र प्रभृति विद्वान यह कहकर उठ आए कि अब देखा नही जाता, वे लोग कालिदास के गले पर छुरी फेर रहे है।"[२] पारसी नाटक कम्पनियो के हृदय मे अभद्रता एव अश्लीलता की मात्रा अधिक रहती थी। भारतेन्दु-युग मे हिन्दी रगमच को विकसित करने के अनेक प्रयत्न हुए। बनारस, कानपुर, प्रयाग और कलकत्ता मे नाटक मण्डलियो की स्थापना हुई और इन मण्डलियो के प्रबन्ध मे कई हिन्दी नाटक खेले गये। बनारस मे सर्वप्रथम सन् १८६२ ई० मे 'जानकी-मगल' नाटक खेला गया। इसके विषय मे भारतेन्दु जी लिखते है—"हिन्दी भाषा मे जो सबसे पहले नाटक खेला गया वह जानकी-मगल था। स्वर्गवासी मित्रवर बाबू ऐश्वर्य नारायण सिंह के प्रयत्न से चैत्र शुक्ल ११, सवत् १९२५ (सन् १८६२ ई०) मे बनारस थियेटर बडी धूमधाम से यह खेला गया।"[३] कानपुर मे भी सन् १८७६ ई० मे प० रामनारायण त्रिपाठी 'प्रभाकर' के प्रयत्न से भारतेन्दु हरिश्चन्द्र कृत 'सत्य हरिश्चन्द्र' और वैदिकी हिंसा-

---

१. आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी : 'आधुनिक साहित्य' (२०१३ वि०) पृ० २५८

२. 'भारतेन्दु-ग्रन्थावली' पहला खण्ड (२००७ वि०) पृष्ठ ७५३ (परिशिष्ट)

३. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र : 'नाटक' (१८८३ ई०) पृष्ठ ६६

हिमा न भवति' नाटक खेले गये और आगे चलकर 'भारत एनटरटेनमेंट क्लब' (१८८५ ई०) की स्थापना हुई[1]। हिन्दी रंगमंच पर अंग्रेजी-रंगमंच का पर्याप्त प्रभाव पड़ा क्योंकि अंग्रेजी-रंगमंच का भारत में—भारतेन्दु-युग तक काफी प्रचार हो चुका था। भारतेन्दु-युग के लेखकों ने नाटक तो लिखे ही साथ ही उनके अभिनय भी किये और हिन्दी रंगमंच को समृद्धिशाली बनाने का पूर्ण उद्योग किया पर यह विकास परम्परा क्रम-बद्ध रूप से आगे न बढ़ सकी। इसका अस्थायी विकास ही जहाँ-तहाँ होता रहा और आगे चलकर यह धीरे-धीरे क्षीण पड़ गयी। आधुनिक समय में—सिनेमा के प्रादुर्भाव से तो हिन्दी-रंगमंच का अस्तित्व ही खतरे में पड़ गया है। कहना न होगा कि हिन्दी का रंगमंच अभी पूर्ण अविकसित है।

मिश्र जी के नाटकों का क्रम-विकास

मिश्र जी के कुल ६ नाटक प्राप्त है जिनके नाम विकास-क्रम के अनुसार इस प्रकार है—दूध का दूध पानी का पानी (१८८३ ई०), जुआरी-खुआरी (१८८३ ई०), कलि कौतुक रूपक (१८८५ ई०), हठी हम्मीर नाटक (१८८७ ई० के पूर्व), संगीत शाकुन्तल (१८९१ ई०) और भारत-दुर्दशा रूपक (१८९३ ई० के लगभग)। इनमें 'संगीत शाकुन्तल' महाकवि कालिदास के 'अभिज्ञान-शाकुन्तलम्' का छायानुवाद है, शेष मौलिक है। 'दूध का दूध पानी का पानी' भाण है। इसमें अकबरपुर निवासी टेकचन्द की स्वार्थ-वृत्ति का वर्णन है। यह एक सत्य घटना पर आधारित है। 'जुआरी-खुआरी' प्रहसन है। इसमें जुआ की भर्त्सना की गयी है। यह दर्शकों के मनोरंजनार्थ लिखा गया है। 'कलि कौतुक रूपक' और हठी हम्मीर'—रूपक के भेदों के अनुसार' नाटक की कोटि में आयेंगे पर इनकी कथावस्तु में नाटक का-सा विस्तार नहीं है। 'कलि कौतुक रूपक' में तो कुल चार ही दृश्य है। हाँ, 'हठी हम्मीर नाटक' अवश्यही कुछ बड़ा है। यह छः अंकों में लिखा गया है। 'संगीत शाकुन्तल' और 'भारत-दुर्दशा रूपक' में गीतों की अधिकता है, अतः ये गीति-नाट्य की कोटि में लिए जा सकते है। इस प्रकार मिश्र जी के प्रथम चार नाटक चरित्र प्रधान हैं और अन्तिम दो नाटक गीति प्रधान हैं। मिश्र जी चरित्र प्रधान नाटक लिखने में ही अधिक रमे हैं क्योंकि इनके द्वारा समाज का सुधार अधिक शीघ्रता से हो सकता था। मिश्र जी के भाण और प्रहसन उनके-नाट्य-शास्त्र विषयक, शास्त्रीय ज्ञान के प्रतीक है। वैसे मिश्र जी ने अपनी स्वच्छन्दता का भी नाटकों में पूर्ण उपयोग किया है जिससे इनके नाटक अधिक सरस तथा प्रगतिशील बन गये है।

वर्ण्य-विषय

मिश्र जी की रुचि मौलिक नाटकों के लिखने में अधिक थी। छायानुवाद के रूप में उन्होंने केवल एक—'संगीत शाकुन्तल' ही लिखा है जो लोक प्रसिद्ध

---

१. 'ब्राह्मण' खण्ड ५, संख्या १, 'कानपुर और नाटक' : प्रतापनारायण मिश्र

'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' की कथावस्तु पर आधारित है। इसके विषय का विवेचन यहाँ अनावश्यक है। मिश्र जी के मौलिक नाटकों को विषय की दृष्टि से तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है—सामाजिक नाटक, राष्ट्रीय नाटक और ऐतिहासिक नाटक।

सामाजिक नाटक

इन नाटकों के अन्तर्गत मिश्र जी के 'दूध का दूध पानी का पानी', 'जुआरी-खुआरी प्रहसन' और 'कलि कौतुक रूपक' की गणना की जायगी। इनमें तत्कालीन सामाजिक दशा का चित्रण है। समाज में फैले हुए स्वार्थ नशा-खोरी, व्यभिचार, पाखण्ड, फूट, अपव्यय आदि की इनमें तीक्ष्ण आलोचना की गयी है। 'कलि कौतुक रूपक' में पुरुष और नारी समाज के पतित चरित्र स्पष्ट दिखाये गये हैं। यह नाटक पूर्ण यथार्थ या नग्न यथार्थवादी पीठिका पर लिखा गया है। मिश्र जी समाज के सच्चे चित्र दिखाकर, उसे सुधार की ओर मोड़ना चाहते थे। सबल व्यक्तित्व के होने के कारण सही बात कहने में वे हिचकते न थे। 'कलि कौतुक रूपक' के यथार्थ की कल्पना करके उसके समर्पण में वे लिखते हैं—'हाँ, हाँ, साँच को आँच क्या ?'[१] इस नाटक के लिखने में यथार्थ का अनुरोध इतना अधिक रहा है कि कहीं-कहीं अभद्र कार्यों का वर्णन भी खुलकर किया गया है। इसमें तत्कालीन बगुला भक्तों, लम्पट साधुओं, दुश्चरित्र विद्यार्थियों और धनवानों की खूब खबर ली गयी है और अन्त में उनका परिणाम भी बुरा दिखाया गया है जिससे दर्शकों के मन में ऐसे कार्यों के प्रति घृणा उत्पन्न होती है। स्वाभाविक चित्रण होने के कारण यह नाटक बड़ा सरस है। इस नाटक के विषय में डा० रामविलास शर्मा लिखते हैं—'उच्च कोटि के नाटकीय संघर्ष का इसमें अभाव है; परन्तु उसकी कमी सजीव चरित्र-चित्रण और स्वाभाविक संवादों से हो जाती है। प्रतापनारायण मिश्र ने बड़े साहस से समाज में फैले अनाचार पर लेखनी उठाई है; यह अनाचार कितना व्यापक है और कब से चला आ रहा है यह इस नाटक तथा उग्र जी की रचनाओं का मिलान करने पर स्पष्ट हो जाता है। साथ ही उन्होंने इस अनाचार का सम्बन्ध एक विशेष वर्ग-संस्कृति से जोड़ा है जिसमें पैसे की आराधना मुख्य है।'[२] मिश्र जी के 'कलि कौतुक रूपक' की सजीवता की प्रशंसा ब्रजरत्नदास,[३] डा० बरसानेलाल चतुर्वेदी,[४] डा० गोपीनाथ

---

१. प्रतापनारायण मिश्र 'कलि कौतुक रूपक' (१८९० ई०) 'समर्पण' से

२. डा० रामविलास शर्मा : 'भारतेन्दु-युग' (१९५६ ई०) पृष्ठ ७७

३. ब्रजरत्नदास : 'हिन्दी-नाट्य-साहित्य' (२००१ वि०) पृष्ठ ९७

४. डा० बरसानेलाल चतुर्वेदी : 'हिन्दी साहित्य में हास्य रस' (१९५७ ई०) पृ० ८९

तिवारी[1] आदि अनेक विद्वानों ने की है। डा० गोपीनाथ तिवारी ने तो इसे त्रिया-चरित्र का सुन्दर प्रतीक बताया है[2] पर इसमें त्रिया-चरित्र न दिखाकर पति की धूर्तता का पत्नी पर प्रभाव दिखलाया गया है और नारी-समाज का चित्रण किया गया है। यह नाटक अपने यथार्थ चित्रण में सफल है।

राष्ट्रीय नाटक

मिश्र जी का 'भारत-दुर्दशा' रूपक' राष्ट्रीय नाटक है। इसमें परतन्त्र भारत की दशा का चित्रण है। इसके पात्र भारत, विद्या, लाज, कलियुग, कुमत, आलस्य, कुपथ्य, रोगराज, मदिरा, चौपटसिंह आदि हैं। इसमें पात्रों का मानवीकरण (परसोनिफिकेशन) किया गया है। यह 'प्रबोध-चन्द्रोदय' वाली प्रतीक-परम्परा का द्योतक है। भारत की दशा मदिरा सेवन, आलस्य, कुमत, कुपथ्य और रोगो आदि से कितनी चौपट होती जा रही थी यह प्रतीक पात्रों के माध्यम से चित्रित किया गया है। विद्यार्थी विद्या की अवहेलना करते दिखाये गये है उनका उद्देश्य 'खाओ, पीयो और मौज उडाओ' तक सीमित हो गया है। भारत निर्धनता के कारण दूसरे देशों पर अवलम्बित होता जा रहा है, व्यापार आदि नष्ट हो गये हैं, दवाओ और मशीनों के लिए दूसरों का मुख ताकना पड रहा है। यह सब कलियुग के प्रभाव के रूप मे दिखाया गया है। कुमत, मदिरा, आलस्य, कुपथ्य आदि कलियुग के मंत्री तथा सिपाही हैं जो भारत पर छाये हुए हैं और इनकी सेना भारत को जर्जरित कर रही है। इस नाटक मे लेखक ने भारत की तत्कालीन स्थिति पर बडा दुख प्रकट किया है—'आज परमेश्वर ने वह दुर्दिन दिखलाया है कि जिन महामान्य परमपिता भारत की गोद में हम और हमारे पूर्वज लालित-पालित हुए हैं उनको हम इस दीन-हीन क्षीण मन मलीन अवस्था मे देखते हे। यद्यपि हृदय विदीर्ण हुआ जाता है पर क्या कीजिए ?'[3] इस नाटक मे देश-व्यापी फूट का भी अच्छा चित्रण है। पंडित, ब्रह्मसमाजी, आर्यसमाजी, बंगाली, महाराष्ट्री, पंजाबी, मुसलमान और ईसाइयों के मतभेद बडे मार्मिक शब्दो मे व्यक्त किये गये है और इन्ही को देश के पतन का कारण माना गया है। 'भारत-दुर्दशा' मे मिश्र जी का देश-प्रेम बड़ा उत्कृष्ट है।

ऐतिहासिक नाटक

मिश्र जी ने 'हठी हम्मीर' नामक-एक ही ऐतिहासिक नाटक लिखा है पर वह अपनी ऐतिहासिकता मे इतना पूर्ण है कि वह अकेला ही अपने क्षेत्र मे पर्याप्त है (इसकी ऐतिहासिकता का उल्लेख पीछे हो चुका है)। इस नाटक मे रणथम्भौर

---

१. डा० गोपीनाथ तिवरी : 'भारतेन्दु कालीन नाट्य-साहित्य' (प्रथम संस्करण) पृष्ठ १९४

२. ,, '—वही—' ,, ,, ,, १९४

३. प्रतापनारायण मिश्र : 'भारत दुर्दशा 'रूपक' (१९०२ ई०) अंक तीन, दृश्य पहला

के राजा हम्मीर देव की शरणागत-वत्सलता, वचन-बद्धता और वीरता का वर्णन है। इसकी कथावस्तु इतिहास प्रसिद्ध 'अलाउद्दीन की रणथम्भौर पर चढ़ाई पर आधारित है। हम्मीर ने अपने यहाँ मीर मुहम्मद को शरण दी थी जिसके परिणाम-स्वरूप अलाउद्दीन ने हम्मीर पर चढ़ाई की और भीषण युद्ध हुआ। हम्मीर की वचन-बद्धता के विषय में यह लोकोक्ति प्रसिद्ध है—'तिरिया तेल, हमीर हठ चढ़ै न दूजी बार'। इस नाटक में मिश्र जी ने भारत के अतीत गौरव का सजीव चित्र खींचा है। युद्ध के अन्तिम परिणाम में—बड़ी कुशलता के साथ-हम्मीर की मर्यादा की रक्षा की है। 'हठी हम्मीर नाटक' के अन्त में मिश्र जी ने (उपसंहार शीर्षक के अन्तर्गत) इस नाटक के ऐतिहासिक आधार भी दिये हैं जो इनके ऐतिहासिक अनुसंधान का प्रतीक है। यह नाटक पूर्ण रूपेण सफल है। आगे चलकर, इसी के वृत्त को लेकर हरिकृष्ण प्रेमी ने अपना 'आहुति' नामक नाटक लिखा।

मिश्र जी के नाटकों में कथावस्तु का संगठन बड़ी सतर्कता से किया गया है। कथावस्तु में जितने मोड़ हैं उन्हीं के अनुसार अंकों और दृश्यों की योजना की गयी है। संगीत शाकुन्तल' के अंकों को भी उन्होंने-मूल के विपरीत-दृश्यों में विभक्त कर दिया है जिससे कथावस्तु अधिक प्रवाह पूर्ण और अभिनय के लिए उपयुक्त हो गयी है। कथावस्तु के बीच-बीच में हास्य की योजना कथावस्तु को और भी हृदयस्पर्शी बना देती है। उन्हें सदैव यह ध्यान रहता है कि यह कथावस्तु दृश्य-काव्य की है, इसलिए वह इसे दुरूह तो होने ही नहीं देते साथ ही सरस बनाने के लिए वह बार-बार प्रयत्न करते हैं। मिश्र जी की दृष्टि निरन्तर मुख्य-कथा तथा उसके उद्देश्य पर ही रहती है, इससे उनके नाटक सीधे बाण की तरह चलते हैं और आकार में स्थूल नहीं होने पाते। प्रासंगिक कथाओं का तो पूर्ण अभाव ही रहता है। कथावस्तु बड़े सीधे-सादे ढंग से आगे बढ़ती है पर कौतूहल का उसमें अभाव नहीं रहता। नाटकों का प्रारम्भ और अन्त बड़े प्रभाव पूर्ण ढंग में होता है। 'हठी हम्मीर नाटक' को वे मरहट्टी बेगम के प्रेमालाप से प्रारम्भ करते हैं, जिससे दर्शक रससिक्त हो जाते हैं। मध्य, वीरता और कर्त्तव्य-परायणता से परिपूर्ण रहता है और अन्त विजय के शान्त वातावरण में होता है। दर्शकों में बराबर आगामी घटना के जानने की उत्सुकता बनी रहती है। ऐसे ही 'भारत-दुर्दशा रूपक' का प्रारम्भ भारत के स्वप्न और उसकी व्याकुलता से होता है, मध्य में कलियुग की सेना का प्रभाव दिखाया जाता है और अन्त में भारत की दुर्दशा का चित्रण है। प्रारम्भ में मिश्र जी कथा का हल्का सा सूत्र देकर दर्शकों में उत्सुकता पैदा करते हैं फिर मध्य में कथा का विस्तार दिखाते हैं और अन्त में उसका परिणाम देकर नाटक को समाप्त कर देते हैं। उनके नाटकों की कथावस्तु में अधिक ऊहापोह नहीं है। वह बड़ी गठी हुई,

स्वाभाविक, सरस और यथार्थ है। कहने की आवश्यकता नही कि उनके नाटक सक्षिप्त कथावस्तु मे युक्त होते हुए भी पूर्ण और सजीव है।

चरित्र-निर्माण

मिश्र जी ने ऊँच और नीच-दोनों घराने के पात्रो को अपने नाटको मे स्थान दिया है। यहाँ तक कि, भारतीय परम्परा के विरुद्ध दुश्चरित्र पात्रो को भी नायक के रूप मे स्वीकार किया है पर इतना अवश्य है कि दुश्चरित्र पात्रो के अन्तिम परिणाम बुरे और सुचरित्र पात्रो के अन्तिम परिणाम अच्छे दिखाये गये है। इससे भारतीय परम्परा की मर्यादा मे किसी प्रकार का आघात नही पहुँचता। मिश्र जी ने प्रमुख रूप से पात्रो के कार्य-कलाप द्वारा चरित्र का निर्माण किया है। उनके नाटकों मे पात्रो के चरित्र पूरी तरह विकसित हुए है। 'कलि कौतुक रूपक' मे लाला किशोरीदास और श्यामा का, 'हठी हम्मीर नाटक' मे हम्मीर देव, मीरमहम्मद, और मरहट्टी बेगम का, 'सगीत शाकुन्तल' मे दुष्यन्त और शकुन्तला का, 'भारत दुर्दशा रूपक' मे एडीटर का चरित्र विशेष उल्लेखनीय है। वैसे इन नाटको मे पात्रो की सख्या बहुत अधिक है पर उक्त चरित्र ही प्रमुख है अत इन्ही का विवेचन यहाँ उपयुक्त होगा।

लाला किशोरीदास

यह 'कलि कौतुक रूपक' का नायक है। समाज मे यह एक सुचरित्र और प्रतिष्ठित धनाढ्य के रूप मे आदृत है। इसे अपने सम्मान का बडा ध्यान रहता है। जब यह अपने घर से बाहर निकलता है तब इसके मुह से तुलसीकृत 'रामचरित-मानस' की चौपाइयाँ ही सुनायी पडती है। बजार के पान तक लोगो के सामने नही खाता। विदेशी दवाइयो को भी हेय-दृष्टि से देखता है। ब्रह्मानद पडित से वह विदेशी दवाइयो के प्रयोग के विषय मे कहता है-"आप ठीक कहते है पर मेरी समझ में तो जब मरना हुई है तो क्या आज क्या चार दिन पीछे। फिर क्यो ऐसी चीजे ग्रहण करें जो अपने यहां मना हैं।"[१] पर यह इसका बाहरी या सामाजिक रूप है, अपने व्यक्तिगत जीवन मे किशोरी बडा दुश्चरित्र, वेश्यागामी और शराबी है। समाज के सामने वह बाजारू पान तो नही खाता, लेकिन लश्करी जान वेश्या के जूठे पान वह बडे शौक से खा जाता है। यही नही, लश्करीजान की जूतियो के प्रहार से इसके पुरखे तक तर जाते है। लश्करीजान से वह जूठे पात्र मे शराब पिलाने के लिए कहता है। देखिए—

"किशोरी—क्यो जान साहब! हमको नही?

किशोरी जान—तुझको? (उपानह प्रहार) यह है (सब हसते है)

---

१ प्रतापनारायण मिश्र, 'कलि कौतुक रूपक' (१८९० ई०) द्वितीय दृश्य।

किशोरी—खोपड़ी तर हो गई। पुरसे तर गये। (लिपट के)

अजब लुत्फ है यार की जूतियों का।[1]

आगे किशोरी द्वारा की शराब की प्रशंसा की भी कुछ पंक्तियां देखिए—
"भई बड़े अहमक हैं जो इसकी निन्दा करते हैं, नहीं नहीं तो जिसे बड़े-बड़े देवता, रिषि, मुनि, पीर, पैगम्बर सदा से पीते आये हैं वह निन्दा के लायक है? और कुछ हो। पाप-पुण्य, नुकसान-फायदा चाहे इसमें लाख हों पर मजा ऐसा है कि सब भला देता है। हमको लोग भगत जी कहते हैं पर इस वक्त तो—

"जात-पांत, कंठी, तिलक, धर्म, तन, प्रान।
लोक और परलोक सब, बोतल पर कुरबान॥"[2]

किशोरी ये उपर्युक्त कार्य, समाज से छिपाकर ही करता है। उसकी शराब और वेश्या-मण्डली अपनी पृथक ही है। इस मण्डली में मुंशी शकारलाल उर्दू भक्त पंडित चण्डीदत्त विगड़ैल देहाती, बाबू मायादास अंग्रेजी बाज और लश्करीजान वेश्या तथा उसका भड़ुवा नब्बू सम्मिलित हैं। वह अपना राज समाज में नहीं खोलना चाहता। एक बार शकारलाल, चण्डीदत्त और मायादास इससे बाजार में शराब पीने के लिए कहते हैं तब वह कहता है-"राह में न बोलना। कोई मिले तो बात न करना। और दूर निकल चलो, जहां कोई न देखे।"[3] अपनी स्त्री से भी वह, यह राज सदैव छिपाता रहता है। प्रियाचरण के यहां रास का बहाना बनाकर वह रात्रि में अपनी वेश्या-मण्डली में सम्मिलित होता है। वैसे इसकी पत्नी इसका सब रहस्य जानती है पर वह भी इसे बनाती रहती है। आगे चलकर किशोरी परवेश्या, शराब और कबाब में-हजारों का कर्ज हो जाता है। सब सामान कुर्क हो जाता है और मुकद्दमा चलता है तथा इसे तीन साल की सजा हो जाती है। इस प्रकार इसका सब राज समाज के सामने खुल जाता है और उसके दुष्कृत्यों का फल उसे मिल जाता है। इसके चरित्र का निर्माण एक बनावटी और दुराचारी नायक के रूप में किया गया है।

स्यामा

यह 'कलि कौतुक रूपक' की नायिका है। इसका चित्रण परकीया नायिका के रूप में किया गया है। यह अपने पति किशोरीदास से दुश्चरित्रता में होड़ करती दिखाई पड़ती है। इसका प्रेम रसिकबिहारी से है। रसिकबिहारी किशोरीदास की अनुपस्थिति में स्यामा के पास आता है जिससे स्यामा को किशोरीदास का अभाव

---

१. प्रतापनारायण मिश्र, 'कलि कौतुक रूपक' (१८९० ई०) द्वितीय दृश्य।
२. प्रतापनारायण मिश्रः कलि कौतुक रूपक (१८९० ई०) द्वितीय दृश्य।
३. —वही— वही

नही खटकने पाता। किशोरीदास उधर लश्करी जान मे लिप्त रहता है, स्यामा इधर रसिकबिहारी के साथ गुलछर्रे उडाती है। लाला किशोरीदास की तरह स्यामा भी बाते बनाने मे बडी चतुर है। एक बार स्यामा रसिकबिहारी से बाते कर रही है इतने मे किशोरीदास आ जाता है। स्यामा रसिकबिहारी को छिपा देती है और किशोरीदास मे खूब बनावटी प्रेम दिखाती है। किशोरीदास उससे कहता मैं रास देखने जा रहा हूँ, तुम खाना खा लेना। इसका उत्तर वह बडे प्रेम-पूर्ण शब्दो मे देती है। देखिए—

"स्यामा—भला तुम्हारे बिना मै कैसे खा लू ? धरम छोडू।

किशोरी—नही, नही। हम कहते जो हैं। जाना है, नही तो कुछ खा लेते।

स्यामा—दुपहर के गये तो अब आये हो, रात भर को फिर जाओ हो, ले इकल्ली मैं कैसे रहूगी ?

किशोरी—पछो को मैं भेज दूगा और मै भी जल्दी आऊंगा। पर गये बिना नही बनती, आपस का वास्ता ठहरा, ठाकुर जी का काम है। कोई डर थोड़े ही है ? (जाना चाहता है)

स्यामा—(प्यारसे) तो भई जल्दी आइयो।"[1]

किशोरीदास के जाते ही स्यामा कहती है 'तुम डाल-डाल हम पात-पात'। और पुन रसिकबिहारी मे प्रेमालाप प्रारम्भ कर देती है। स्यामा का जीवन बडा वासनामय है। वह अपनी सखी चम्पा से भी सदैव अश्लील बाते ही किया करती है। स्यामा के वार्त्तालाप की निम्नलिखित पक्तिया-उसके भ्रष्ट-जीवन को अच्छी तरह स्पष्ट करती हैं—

"स्यामा—सुने है गगा जी पर कोई बाबा जी आये हे सो हात की रेखा देखे है उनही की दिखाई होती।

चम्पा—तू भी बाबा जी को जाने है ? भाई बडे पहुचे है। एक दिन मै गई सो कहे क्या है कि सन्तान तो लिखी है पर गिरस्त से नही— मैं तो सुन के रही गयी।

स्यामा—हि हि हि हि तो तो ले रोज सेवा किया कर तेरे सतान होगी, मै कहू हू।

स्यामा—बहन यह तो हुआ पर यह तो कहो, गगा पर वाले कौन है ?

चम्पा—(मुसकराकर) क्यो क्या तेरा भी मन ?

स्यामा—भला अच्छी सूरत किसे नही भावै ?

---

१. प्रतापनारायण मिश्र : 'कालि कौतुक रूपक' (१८९०ई०) प्रथम दृश्य।

चम्पा—हा, रानी सूरत मे वो मोहनी है और इधर रूप भी बहुत करे हैं। घर की तरफ से आवे भी है रोज। पर अभी तो गली घाट ही की मुहब्बत है, देखू हुलसिया कब तक—अगड़ाई लेके स्यामा पर देहाक्षेप)।'[1]

इस प्रकार स्यामा और चम्पा दोनो ही चरित्र मे पतित है। मिश्र जी ने तत्कालीन पतित नारी-समाज का यथार्थ चित्र इस नाटक मे खींचा है। स्यामा को अपने कुकृत्यो का परिणाम भी बडा दुखद मिलता है। किशोरीदास को तीन साल की सजा हो जाने पर वह नाना प्रकार के कष्ट—अपने भाई के यहा उठाती है।

हम्मीर देव

हम्मीरदेव रणथम्भोर के राजा और 'हठी हम्मीर नाटक' के नायक है। इनका चरित्र धीरोदात्त नायक के गुणो से युक्त है। इनके राज्य मे सम्पूर्ण प्रजा सतुष्ट है। ये प्रजा को पुत्रवत् मानते है। अपने प्रधान वीरसिंह से प्रजा की कुशलता सदैव पूछते रहते है और स्वत भी प्रजा की बाते सुनने को उत्सुक रहते है। वीरसिंह के यह कहने पर कि प्रजा पूर्णतया सतुष्ट है, हम्मीर कहते है—'निश्चै मैं तुम्हारी सम्पत्ति से अति सतुष्ट हू, यद्यपि मुझे विश्वास है कि रणथभौरवासी मेरे शासन मे अप्रसन्न कभी न होगे पर तो भी बहुत सी बाते ऐसी है जो कर्मचारियो के द्वारा ठीक-ठीक नही जानी जा सकती और बहुत से राजा भी तो नगर मे भेस बदल के फिरते रहे है। इसमे मेरी कोई हानि नही वरच यह एक बडा लाभ है कि प्रजागण का ठीक-ठीक हाल मिलता रहेगा। कौन दुखी है, कौन सुखी है, कौन प्रत्यक्ष मे मित्र और छिपा हुआ शत्रु है।'[2] हम्मीर पूर्ण धर्मनिष्ठ भी है। शिवालय का जीर्णोद्धार कराना, दस हजार ब्राह्मणो को प्रदोष पर खिलाना, उनकी धर्म-परायणता का द्योतक है। राज्य-कार्य भी वे बडी तत्परता से देखते हैं। सेना, तोपो आदि की भी वे पूर्ण निगरानी रखते है। अनैतिक कार्य वे कभी नही करना चाहते। उनके भाई उनसे शत्रुता रखते है, फिर भी वीरसिंह के यह कहने पर कि कहिए तो मैं उन्हे ठिकाने लगा दू—हम्मीर कहते है—'नही, नही, जब तक कोई प्रगट होकर शत्रुता नही करता तब तक उसको दण्ड देना-धर्म के विरुद्ध है क्योकि वह किसी बात के डर ही से अपने विचार को पूरा नही कर सकता और डरना कायरता का चिन्ह है फिर कहाँ कायर पर हाथ चलाना वीरो को शोभा देता है?'[3] हम्मीर अपनी बात का पक्का है।

---

१ प्रतापनारायण मिश्र : कलि कौतुक रूपक' (१८९० ई०) प्रथम दृश्य

२. प्रतापनारायण मिश्र : 'हठो हम्मी नाटक' (पृथ्म सस्करण) एकट २, सीन पहला।

३. —वही—

वह अपनी शरण मे आये हुए की रक्षा करना अपना कर्त्तव्य समझता है। मीर-महम्मद को अलाउद्दीन का शत्रु समझकर भी वह अपने यहा शरण देता है और उससे कहता है—'मैं जीते जी तुम्हारा साथ न छोड़ूगा। तुम निश्चित होकर मेरी सेना मे रहो।'[1] इसपर वीरसिंह कहता है कि अलाउद्दीन बडा प्रबल शत्रु है/तब हम्मीर उसको यह उत्तर देता है—'युद्ध का आनद भी प्रबल ही शत्रु के साथ लडने मे आता है। छोटो को दबा लेना तो अन्याय और निर्दयता है। बराबर वालों को छेड बैठना क्रीडा मात्र हे। पर वीर पुरुषों को तभी सतोष होता है जब किसी अच्छे के सामने पडे। अपना पूर्ण पुरुषार्थ दिखाना, जीत के जै लक्ष्मी पाना, मर कर सीधे परम धाम को जाना, मरने जीते दोनो प्रकार ससार मे जस पाना तो तभी होता है।'[2] हम्मीर मे दृढता नस-नस मे समायी हुई है। अलाउद्दीन का पत्र पाकर उसका स्वाभिमान अपनी चरम गति को पहुंच जाता हे और उसका चरित्र इस स्थल पर निखर उठता है। वह कहता है—'मैं ऐसो के साथ झगडा करने को नही डरता। क्या उसकी धमकी मे आकर अपने शरणागत को उसके हाथ मे सौंप दूगा? कभी नहीं। बात और बाप एक होते हैं। . .

सिंघ सुवन, सुपुरुष बचन, कदली फरै एक बार।
तिरिया तेल, हमीर हठ, चढ़ै न दूजी बार॥'[3]

इसी दृढता के साथ वह अलाउद्दीन के पत्र का उत्तर भी देता है—

'जो रन हमे प्रचार कोई।
लरै सुखेन काल किन कोई॥

यदि आपकी मरहट्टी बेगम पर ऐसी करुणा हे तो यहीं क्यो न भेज दीजिए जिसमे मीर साहब की भी विरह बेदनादूर हो और उनका भी हृदय शीतल हो। अन्यथा सूर्य का पश्चिम मे उदय होना सम्भव है, सुमेर का टल जाना सहज है, अग्नि का शीतल हो जाना साध्य है पर हमीर का वचन टलना असम्भव है। मीर महम्मद तुम्हारे यहां कभी न भेजे जाएगे। तुम्हारी सेना कल आती हो तो आज ही आजाय।'[4]

हम्मीर बडा वीर योद्धा था। अलाउद्दीन की विकराल सेना को भी देखकर वह नही घबड़ाता और वह अपने वीरों को प्रोत्साहित करता हुआ कहता है—

'कर धीर कठिन कृपान, अस्त्र औ शस्त्र चलावहु।
क्षत्रिय कुल को बल प्रताप बैरिन दिखरावहु॥
जिमि मृगगण महं सिंह यथा इंधन महं आगी।
धुसहु शत्रुदल माहिं सबहिं नाशहु भय त्यागी॥'[5]

---

१. प्रतापनारायण मिश्र: 'हठी हम्मीर नाटक' (प्रथम संस्करण) एक्ट २, सीन पहला
२. '—वही—'
३. '—वही—' सीन दूसरा।
४. '—वही—' एक्ट ३ सीन पहला
५. '—वही—' एक्ट ४ सीन दूसरा

हम्मीर के एक-एक शब्द से वीरता, स्वाभिमान और उत्साह टपका पड़ता है। गढ़ी का एक कोना शत्रुओं द्वारा गिरा दिया जाने पर भी उसका धैर्य नही टूटता और वह कहता है—'कदाचित महिपाल ने कोई भेद बता दिया हो तो आश्चर्य नही क्योंकि वह मुझसे बैर तो रखता ही है। औसर पाकर मेल मेला हो। ओह। क्या होना है ? कुछ हमने महिपाल या कृपाल के भरोसे पर थोड़ी अलाउद्दीन से बैर किया है ? यदि सम्पूर्ण जगत उसकी ओर हो जाय तो भी अकेला हमीर उसके दमन करने को प्रस्तुत है।'[1] हम्मीर युद्ध-स्थल मे बड़ी वीरता के साथ लड़ता है। शत्रुओं के दात खट्टे हो जाते है। शत्रु तक उसकी प्रशसा करने लगते है। अलाउद्दीन का सैनिक शमशेर उसकी वीरता को देखकर कहता है—'क़िबला बहादुरो का क्या कहना ? रणथभौर गोया बहादुरो की खान है—राजा को देखिये अगर रुस्तम कहे तो भी मुबालगा न होगा। ऐहे ! वाह रे जवान

जो पड़ा सामने उसके, ये हुआ हाल उसका।
कि गोया बाज के चगुल मे कबूतर आया॥
दावए सफ शिकनी हेच या जरीरो का।
काम उस वक्त न तेग आयी न खंजर आया॥
भागते राह न सूझी उन्हे पेशे हम्मीर।
था शहादत का जिन्हे शौक जिबस चर्राया॥
जिस तरफ टूट गिरा वुह असदे रंथम्भौर।
सबका दिल कापा जिगर धड़का बदन थर्राया॥
दमहि लेने न कोई था लड़ना कैसा ?
या मिसाले मलकुल मौत वुह सर पर आया[2]॥"

दूसरे पात्रो के कथन से हम्मीर का चरित्र और निखर उठता है। युद्ध के अन्त मे हम्मीर का पता नही चलता, इस पर जुल्फकार खा कहता है—'मगर यह नही ख्याल मे आता कि सौ पचास लोगो ने उसे घेर के मार डाला हो। हा, शायद दो-चार हज़ार जवामरदो ने उसे घेरा हो और पीछे से किसी ने मार दिया हो तो कोई अजब नही।'[3] हम्मीर की बहादुरी, कर्त्तव्य-परायणता और स्वाभिमान की की प्रशसा देवतागण तक करते है। हम्मीर प्रजापालक, धर्मपरायण, कुशल-राजनीतिज्ञ, शरणागत्-रक्षक दृढ-प्रतिज्ञ, सही और वीर राजा है। इसका चरित्र इस नाटक मे बड़ी उत्कृष्टता को पहुचा हुआ है। हम्मीर के चरित्र निर्माण मे मिश्र जी निश्चित ही सफल है।

---

१. प्रतापनारायण मिश्रः 'हठी हम्मीर नाटक' (प्रथम संस्करण एक्ट ४, सीन पहला।
२ —वही— एक्ट ५, सीन पहला
३. —वही—

मीर महम्मद

यह अलाउद्दीन की सेना का एक वीर सैनिक है। मरहट्टी बेगम के दबाव मे पडकर, इसे चरित्र-भ्रष्ट होना पड़ा। वैसे यह अपने आचरण मे शुद्ध है। साथ ही अपने वचन का भी पक्का है। हम्मीर देव को वचन देता हुआ कहता है—'बेशक हुजूर, मैं भी इसी उम्मीद पर आपका पनाहगीर होता हू। इन्शा-अल्लाह-ताला जब तक जिन्दगी है हुजूर की खिदमत मे कोताही कभी न करूगा। जान बचाने वाले का और बाप का रुतबा एक हुआ करता है। अगर हुजूर ने मुझे नाचीज का बार अपने सिरे मुबारक पर लिया है तो यहा भी नमक हराम और दगाबाज पर चार हर्फ भेजता हू।' मीर महम्मद अपने इस प्रण को जीते-जी निभाता है।[1] मीरमहम्मद बडा निष्कपट सैनिक है वह अपने शरणागत-प्रस्ताव के समय ही सब बाते स्पष्ट हम्मीर देव से बता देता है तथा यह कहकर हम्मीर देव को आगाह भी करता है कि अलाउद्दीन बडा जालिम है इसे आपको, अपना शत्रु नही बनाना चाहिए। इसके अतिरिक्त मीर महम्मद बडा साहसी और शूरवीर है। इसकी वीरता की प्रशसा स्वय अलाउद्दीन भी अमगोर से करता है—'अरे गया! लडने का तो उसके जिक्र ही क्या था मैने तो उसे जाकदनी की हालत मे देखा था। जख्मो के सबब सारा बदन गिरवाह हो रहा था। मैदान मे पडा सिसकता था उस वक्त मैने पूछा कि क्यो मिया अगर तुमको देहली उठा ले चले और मआलजा कराके तुम्हे चगा कर दें तो हमारे साथ क्या सलूक करोगे? इसके जबाब मे नालायक कहता क्या है मीर महम्मद तुम्हे मार कर महाराज हमीरदेव के कुवर साहब को देहली के तख्त पर बिठावेगा।'[2] आगे अलाउद्दीन उसे हाथी से कुचलाकर मार डालता है पर वह अपनी बात से मुह नही मोड़ता। मीर मुहम्मद खरा, साहसी, स्वामिभक्त, वचनपालक और वीर सैनिक के रूप मे चित्रित किया गया है।

मरहट्टी बेगम

यह अलाउद्दीन की रानी है। इसका सम्पूर्ण जीवन वासना की ही गोद मे बीता है। यह बडी ऐयाश प्रकृति की है। इसकी वासना की तृप्ति अलाउद्दीन से नही होती। एकबार यह शिकार खेलने के लिए जगल मे आती है। प्रकृति का सुरम्य वातावरण पाकर उसमे कामोद्दीपन होता है और एक पेड के नीचे बैठकर कहती है—"क्या ठढी हवा है, जी चाहता है दिन-रात यही पडे रहे। भला महलो मे यह लुत्फ कहा? सब्ज रग के झाड इस कुदरती सब्जे की बराबरी थोडे ही कर सकते है? फिर वहा एक तरह की कैद भी है, खास कर हम लोगो को। गो खाना, पीना, सोना, बैठना,

---

१. प्रतापनारायण मिश्र: हठी हम्मीर नाटक (प्रथम संस्करण) एक्ट २ सीन पहिला।
२. —वही— एक्ट ५ सीन पहला।

सब है पर असली लज्जत कहा ? क्योंकि हजरत सलामत के सैकडो बेगमात ठहरी। हजारो काम-काज, धन्धे ठहरे। फिर हम, क्यो कर मुमकिन हा सकता है कि हर वक्त मेरी ही दिलजोई किया करे। (गाती है गजल)—

जब बेरुखी से यार हमेशा कुढाए दिल।
फिर क्यों न कोई और से अपना लगाए दिल॥"[१]

निर्लज्जता की भी इसमे कमी नहीं है। यह अपनी वासना की तृप्ति का प्रस्ताव स्वत: मीरमहम्मद के सामने रखती है। अपनी मर्यादा का तो इसको बिल्कुल ही ध्यान नहीं है—

"**मरहट्टी**—(मुसकराकर) तो मालूम होता है कि आप शिकारी भी हैं (दिल मे)— देखू इस रम्ज को समझता है या नहीं।

मीर०— शिकारी क्या तबीयत बहला देता हू।

मरहट्ट— खैर जो तबीयत ही बहलाना है तो जरा इस दरख्त के ठडे साये मे बैठिये।

मीर०— (दिल मे) यह तो कुछ और ही रग मालूम होता है (जाहिर) हुजूर का हुक्म बसरो चश्म कबूल है (बैठकर) इरशाद।

मरहट्टी—जरा इधर आकर आराम से बैठिए।

मीर०— हुजूर बडे आराम मे बैठा हू।"[२]

आगे तो वह मीरमहम्मद को—प्रस्ताव की अवहेलना करने पर धमकाती हुई कहती है कि मै बादशाह से शिकायत कर दूगी कि मीर हमसे गुस्ताखी कर रहे थे। तदुपरान्त तो उसकी निर्लज्जता चरमसीमा पर पहुच जाती है। वह कहती है— "नहीं मीर साहब आप हमारे जानोमाल के हमेशा के लिए मुख्तार है (कुछ ठहर कर) चलिए उन झाड़ियों की सैर करे, यहा बैठे क्या करेगे ? (जाते है)"[३] इस प्रकार मरहट्टी को एक विलासी और दुश्चरित्र नारी के रूप मे चित्रित किया गया है।

दुष्यन्त

यह 'सगीत शाकुन्तल' का नायक है। इसका चरित्र धीरललित नायक के गुणो से युक्त है। इसके चरित्र का निर्माण बहुत-कुछ 'अभिज्ञान-शाकुन्तलम्' के आधार पर हुआ है क्योंकि 'सगीत शाकुन्तल' इसी का छायानुवाद है। दुष्यन्त

---

१ प्रतापनारायण मिश्र : 'हठी हम्मीर नाटक' (प्रथम संस्करण) एक्ट १, सीन पहला।

२. प्रतापनारायण मिश्र : 'हठी हम्मीर नाटक' (प्रथम संस्करण) एक्ट १, सीन पहला।

३. —वही—

कोमल स्वभाव का सुखान्वेषी राजा है। यह शकुन्तला के रूप को देखकर मोहित हो जाता है और अपनी मर्यादा का ध्यान न रखकर शकुन्तला के साथ पौधों को सीचने लगता है। हा, आकृष्ट होने से पहले इसका ध्यान इस ओर अवश्य जाता है कि हो न हो शकुन्तला क्षत्रिय-कन्या ही होगी। क्योंकि—

"ऐसौ ह्वै सकति कबहूं कैसेहु नाहि।
मन छत्रिन के जात हैं कबहु कुमारग माहि॥
निहचै छत्रिय बश की जनमी है यह बाम।
नाहित यहि लखि मम हिए कबहुं न उपजत काम॥"[1]

दुष्यन्त बड़े सरस हृदय का है। वह शकुन्तला से बड़े प्रेम से बातें करता है। एक बार दोपहर को शकुन्तला उसके पास से जाने लगती हे इसपर वह उसे रोकता हुआ कहता है—

"अबहि न जाहु पियारी तजि यह छाह।
धूरि धूप अति भारी मारग माह॥
जायहु बितै दुपहरी मै बलि जाउ।
भुइ भूभरि कस धरिहौ कोमल पाउ॥"[2]

दुष्यन्त का प्रेम केवल वासना की तृप्ति के लिए ही नही हे। वियुक्त होने पर जब उसे शकुन्तला का स्मरण आता है तब वह विरह से व्याकुल हो उठता है। सयोगकालीन चित्र उसकी आखो के सामने नाचने लगते है। वह कहता है—

"कहौं कहा भूल भई बड़ी हाय।
निरदोषी को दोष लगायो रह्यो तासु फल पाय॥
वा सुखदाइनि के सनेह को दीन्ही सुधि बिसराय।
सोई अब छिन-छिन सुधि करि-करि रह्यो हियो अकुलाय॥
विथित वियोगी जानि मोहि अति, रतिपति रह्यो सताय।
आम बौर मिस बान तानि के, उर बेधत नित आय॥"[3]

पर इसके साथ ही दुष्यन्त एक वीर क्षत्रिय भी है। उसे वीर और प्रेमी हृदय साथ-साथ प्राप्त है। विरह मे विदग्ध होते हुए भी—मातलि द्वारा इन्द्र का निमन्त्रण मिलने पर वह तत्क्षण उसकी रक्षा के लिए चल देता है—"(माढव्य से) अच्छा मित्र ! यह तो हुआ पर देवराज की आज्ञा अवश्य माननी है। इससे तुम जाकर मन्त्री जी से कहो कि—

---

१. प्रतापनारायण मिश्र : 'संगीत शाकुन्तल' (१९०८ ई०) पहिला अंक, दूसरा दृश्य।
२. '—वही—' तीसरा अंक' दूसरा दृश्य
३. '—वही—' छठवां अक, पहिला दृश्य

जब लग मेरो धनुष यह, करै असुर संहार।
तब लौं वे निज बुद्धि सो, करैं प्रजा निरधार ।।"[१]

इस प्रकार दुष्यन्त एक प्रेमी और वीर— दो रूपो मे दर्शको के समाने आता है ।

शकुन्तला

शकुन्तला 'सगीत शाकुन्तल' नाटक की नायिका है। यह बडी सहृदय, लज्जाशील और आदर्श-प्रेमिका है। दुष्यन्त से यह प्रेम करती है पर इसका प्रेम कही भी मर्यादा का उल्लघन करता नही दिखाई पडता। भारतीय परम्परा के अनुसार वह दुष्यन्त को सदैव पूज्य भाव से देखती है। दुष्यन्त के यह कहने पर कि कहो तो पंखा करू, पैर दबाऊं, वह कहती है—

"नहि-नहि कबहुं न कहिहौं मैं असि बात।
छांडे कानि बडे न की धरम नसात ।।"[२]

ऐसे ही सखियाँ शकुन्तला को दुष्यन्त के पास अकेली छोडकर जाने लगती हैं तो शकुन्तला भी उनके पीछे चल देती है पर दुष्यन्त उसका हाथ पकड लेता है। इस पर वह कहती है—

छांड़हु-छांड़हु जैहैं सखियन साथ।
नाहिन मोर जियरवा मोरे हाथ ।।"[३]

शकुन्तला दुष्यन्त से सच्चा प्रेम करती है। उससे वियुक्त होने पर उसे कुछ अच्छा नही लगता। फिर भी दुष्यन्त जब उसे नही पहचानता तो शकुन्तला को बडा दुख होता है। उसे अपना जीवन ही अब भार-स्वरूप प्रतीत होने लगता है। वह कहती है—"हाय मैं तो कही की न हुई। हे धरती माता ! तुम क्यो नही फट जाती कि मै समा जाऊँ। मेरे पापी प्राण अब इस देह को किस आसरे से नही छोड़ते । हाय !"[४]

शकुन्तला की सहृदयता भी महान है। वह अपने स्नेह से तपोवन के सभी प्राणियो को वशीभूत कर लेती है। सखियो को तो कहना ही क्या पशु, पक्षी और लताए तक शकुन्तला से स्नेह करती है। जब वह तपोवन से—दुष्यन्त के यहाँ आने को—विदा होने लगती है तब सभी स्नेह से विह्वल हो उठते है। सखिया दुख प्रकट करती है। कण्व का धीर मन भी विथकित हो हो जाता है। वे कहते हैं—

---

१. प्रतापनारायण मिश्र : 'सगीत शाकुन्तल' (१९०८ ई०) छठवा अंक, तीसरा दृश्य
२. प्रतापनारायण मिश्र : 'संगीत शाकुतल' (१९०८ ई०) तीसरा अक, दूसरा दृश्य
३. —वही— ,,
४. —वही— पाँचवाँ अंक, तीसरा दृश्य

"नेह बस मोर मन उठत अकुलाय,
मन धीर धारन बिखै परत करिबो जतन।
कौन बिधि सो गृही करहिं बेटी बिदा,
लहत जब यों दशा हमहु ले जोगि जन ।।"[1]

शकुन्तला भी कण्व के गले से लिपटकर कहती है—

"गोद मे जिनकी पली, जिन साथ खेली आज लौं।
का दशा उनके बिना, ह्वैहै हमारी हाय-हाय ।।
बाप को घर, खेल की कुंजै, सदा की साथिनी।
आज एकहिं साथ छूटी जाहि सारी हाय-हाय[2] ।।"

वृक्ष, बेलियो आदि को देखकर वह और दुखित होती है—

"बिरिछ, बेलि, खग, मृग, सग साथिनि सबहिं छांड़ि इहि ठाव।
हाय आज मै परबस परि कै, जाति पराए गाव[3] ।।

शकुन्तला का अन्त.करण बड़ा विशाल है, उसमे कण्व की ममता, तपोवन वासियो का स्नेह और दुष्यन्त का प्रेम पूरी तरह समाया हुआ है। उसका सौन्दर्य जैसा बाहर से आकर्षक और अद्वितीय है वैसा ही उसका हृदय भी सुन्दर और निष्कपट है। शकुन्तला एक आदर्श नायिका के गुणो से युक्त है।

एडीटर

एडीटर 'भारत-दुर्दशा रूपक का एक सहायक पात्र है। फिर भी इसका चरित्र पूर्ण उत्कृष्टता पर पहुँचा हुआ है। वह भारत की तत्कालीन दशा से बड़ा क्षुब्ध है। अतीत का स्मरण करता हुआ वह कहता है—

"जहं नित्य वेद पुरान ध्वनि को, घोष नभ पहुंचत रह्यो।
तहं निलज गीत अपार गाये जात, सुन धधकत हियो ।।
जहं नारि नर निज धर्म कर्म, अनेक ब्रत चित धारते।
तहं आज लम्पट दुष्ट बाढे, झुकत महितिन मारते ।।
जहं शिव, दधीचि, बली-बली, क्षितिनाथ लीला कर गये।
तहं दुष्ट नादिरशाह अरु अवरंग अति पापी भये ।।"[4]

भारत के घायल हो जाने पर, ब्रह्मसमाजी, आर्यसमाजी, ईसाई सेठ जी, मुसलमान, महाराष्ट्री, पंजाबी, बंगाली आदि बड़ा दुख प्रकट करते है और उसके

---

१. प्रतापनारायण मिश्र : 'संगीत शाकुन्तल' (१९०८ ई०) चौथा अंक, तीसरा दृश्य
२. —वही— ,, चौथा दृश्य
३ —वही— ,, तीसरा दृश्य
४. प्रतापनारायण मिश्र : 'भारत-दुर्दशा रूपक' (१९०२ ई०) तीसरा अंक, पहिला दृश्य

उपचार के लिए अनेक उपाय बताते है पर उपायो की सख्या यहाँ तक पाई जाती है कि आपस मे तर्क-वितर्क और झगडा होने लगता है, उपचार पीछे छूट जाता है इस पर एडीटर कहता है—"हमारा परम कर्तव्य यही है कि हम सब कटिबद्ध होकर एक चित्तता से इनके दुख दूर करने का उपाय करे, होगा तो वही जो परमेश्वर की इच्छा है, परन्तु यत्न मे त्रुटि होना ठीक नही है।"[1] एडीटर आपसी मतभेद को अच्छा नही समझता। भारत की अवनति का कारण वह अनैक्य को ही मानता है। उसका कहना है—"यदि सच पूछो तो अभी भारत मे किसी वस्तु का सर्वथा अभाव नही है। विद्वान्, बलवान, धनवान् सैकड़ो है पर कोई किसी के काम का नही। अपने रगमाते सब है। हाय! दुष्टे अनैक्यने पिशाचिनि! तैने ही हमारा सर्वनाश किया। हाय! हम किस प्रकार से धैर्य धारण करे? तीरो से छिदे हुए हृदय पर कही पत्थर रखा जाता है?"[2] एडीटर सच्चा देश-भक्त है। भारत की निर्धनता को देखकर उसे दुख होता है। व्यापार की उन्नति के लिए विदेश से मशीने मगाने का प्रस्ताव भी उसे अच्छा नही प्रतीत होता। वह भारत को स्वाव-लम्बी बनाने के पक्ष मे है। एडीटर का चरित्र एक देश-सुधारक की भावना से परिपूर्ण है।

मिश्र जी पात्रो के चरित्र-निर्माण मे पूर्ण सफल है। चरित्रो की सजीवता और यथार्थता ही उनके नाटको मे सरसता और सजीवनी-शक्ति का सचार करती है। उनके पात्र बडे स्वाभाविक और अपने कार्य मे तत्पर दिखाई पडते है। उन्हे यह ध्यान रहता है कि हमे कहा पर, कितना और किस प्रकार बोलना चाहिए। उनमे अनर्गल प्रलाप कही तो होता ही नही। उनके चरित्र बडे ठास और मौलिक है।

देश काल

मिश्र जी के अधिकाश नाटको के वर्ण्य-विषय उनके अपने काल मे ही सम्ब-न्धित है। केवल "सगीत शाकुन्तल" और हठी हम्मीर नाटक' ही क्रमश पुराण-काल और मुस्लिम-काल (१३०० ई०) के है। लेकिन इन नाटको की कथावस्तु ही उस काल विशेष मे सम्बन्धित है, बाकी रूप-रग आदि आधुनिक है। यहा तक कि कही-कही मिश्र-काल की समस्याए भी इनमे स्थान पा गयी है। "सगीत शाकु-न्तल" मे दिया हुआ एक घूस का प्रसग देखिए—

> धीमर-हाय रे दैया पीटत-पीटत अब हू नही अघान्यो, अच्छा बाबा रुपया देहो छाडौस्बार परान।

---

१. प्रतापनारायण मिश्र : 'भारत-दुर्दशा रूपक' (१९०२ ई०) तीसरा अक, पहिला दृश्य।

२. —वही—

दूसरा दूत-अरे नही, हम घूस न लेगे, इसमे पाप बडा है ; मन का धन, अधरम की कौडी, करेगी क्या कल्यान ॥"[१]

ऐसी ही देश-भक्ति का स्वर भी निम्नलिखित पक्तियो मे दृष्टव्य है—

"देश-भक्ति, हरि-भक्ति हेत, तन, मन धन वारी।
सत कविता को स्वादु पाय नित रहहिं सुखारी॥
भारत में चहुं दिसि प्रेममय धवल धुजा फहरत रहे।
बानी "प्रताप हरि मिश्र की सुहृदय हृदय आदर लहै॥"[२]

"हठी हम्मीर नाटक' मे भी मतवादियो पर गहरा आक्षेप किया गया है जो मिश्र-काल की देश-दशा का प्रतीक है—"किसी लोक मे गये ? यह प्रश्न तो मतवादियो के विषय मे हो सकता है क्योकि उनका जन्म केवल व्यर्थ के प्रश्नोत्तरो ही मे बीतता है। जिस बात को वे सद्‌गति मादते है उसके विषय मे भी 'अवदित सुख दुःख निर्विशेष स्वरूप के अतिरिक्त कुछ नही कह सकते। उन्ही को आप भी पूछा करे, मर कर कहा गये ? मैं भी कह दू गा, अपने व्यर्थ बकवाद मे गये।"[३] इसके साथ ही गोरक्षा की समस्या भी 'हठी हम्मीर नाटक' मे इस प्रकार व्यक्त हुई है—

मद पियहिं मलिच्छन साथ मास नित खाहीं।
ताहू पर नहिं द्विजवंशी बनत लजाही॥
गनिका गृह जातहिं कल्प वृक्ष बन जाही।
गोरक्षा हितु जनु घर महं अन्नहु नाहीं॥
ऐसेन को मति गति बेगहि नाथ सुधारो।
प्रभु भारत की सुध ऐसी तो न बिसारो॥"[४]

इन नाटको के अतिरिक्त 'कलि कौतुक रूपक' तो शुद्ध सामाजिक नाटक ही है। इसमे तत्कालीन समाज का पूरा चित्र खीचा गया है। इस नाटक मे पदमचन्द तत्कालीन विद्यार्थी-समाज का प्रतीक बन कर आया है। वह अपने जीवन के सुमधुर वसत का वर्णन इस प्रकार करता है-"अभी सिर्फ आठ बजा होगा पर हम नकशा देखने के बहाने खा पी के दुरुस्त होगये। अब तीन बजे तक हम चाहे जहा जायं, चाचा साहब के हिसाब पढी रहे है, बल्कि चार बजे जाय तो भी कह सकते है कि नया हिसाब सीखते रहे। खर्च की कमी ही नही, जहा किसी दोस्त से कोई चमकती

१ प्रतापनारायण मिश्र : संगीत 'शाकुन्तल' (१९०८ ई०) छठवें अक का अंकवितर
२. —वही— सातवाँ अंक, तीसरा दृश्य
३. प्रतापनाराण मिश्र : 'हठी 'हम्मीर नाटक' (प्रथम संस्करण) एक्ट ६,
४. —वही— सीन पहिला।

हुई किताब माग के घर मे दिखा दी, जो चाहा सो ले लिया। कबूतर, बुलबुल और पतग वगैरह का खर्च उन दोस्तो से निकशी आता है जो हमे प्यार की नजर से देखते है। हम जिससे जिस चीज की फरमाइश करे भला वह इकार कर सकता है ? क्या स्कूल मे क्या घर मे, क्या मुहल्ले मे, क्या शहर मे-जिधर देखो हमी हम तो है।'[1]

"भारत-रूपक' भी तत्कालीन देश-दशा का स्पष्ट चित्र 'दर्शकों के सामने प्रस्तुत करता है। देखिए भारतीयो के उद्देश्य—निम्नाकित पंक्तियो मे कितने अच्छे ढग से व्यक्त किये गये है—

"बनेगे लोग इंगलिश पढ़ के मिस्टर।
हसे हर ढंग पर चाहे जमाना ॥
गुलामी गैर की मखतूरे खातिर।
बले दुश्मन से बदतर है य गाना ॥
जहाँ हो पेट भरने से फकत काम।
कहाँ बी बी तरक्की का ठिकाना ॥"[2]

"भारत-दुर्दशा रूपक" के एडीटर का कथन भी तत्कालीन भारत की दशा पर अच्छा प्रकाश डालता है। देखिए—"अहो ! कहा तो भारत को चैतन्य करने के लिए आये थे, कहा परस्पर यह विरोध फैला और कलियुग की सेना अपने मित्रो को पकड़ ले गयी और फिर सत्य भी तो है कि जहा तनक-तनक बात पर बान-भौहे चढ़ जाती है वहाँ आगे किस बात की आशा की जाय ? हा विधाता ! देश भर को हम अकेले कहाँ तक रोवे। यदि कुछ दिनो यही अवस्था रही तो यह पृथ्वी रसातल को चली जायगी ———सारा देश तो कलिराज का गुलाम हो रहा है। हिन्दूपन की तो कही गध भी नही आती। केवल स्वार्थपरता का बल है। हठधर्मी, पराधीनता का चारो ओर विस्तार है। हाय ! हम कहा जाय ? क्या करे ? अपना दुख किससे कहे ? कोई श्रवण करने वाला नही।"[3]

मिश्र जी समाज सेवी और देश हितैषी साहित्कार थे इसलिए उनके नाटको म तत्कालीन देश-दशा का चित्रण स्वतः ही हो गया है। साथ ही मिश्र जी का काल भी देश-व्यापी राष्ट्रीय-आन्दोलनो का काल था जिससे पृथक रहना, एक युग द्रष्टा साहित्कार के लिये असम्भव था। मिश्र जी के नाटको मे उनका युग पूरी तरह साकार हो

---

१ प्रतापनारायण मिश्र 'कलि कौतुक रूपक' (१८९० ई०) तृतीय दृश्य।
२. प्रतापनारायण मिश्र : 'भारत-दुर्दशा रूपक' (१९०२ ई०), दूसरा अंक पहिला दृश्य।
३. '—वही—' तीसरा अंक, पहिला दृश्य

गया है । दूसरे शब्दो मे यदि यह कहा जाय कि मिश्र जी के नाटक अपने युग की अभिव्यक्ति है, तो भी अनुचित न होगा ।

उद्देश्य

मिश्र जी के नाटकों का मूल उद्देश्य लोक-हित और हिन्दी प्रचार है । लोक-हित की भावना से ही अनुप्राणित होकर मिश्र जी समाज की कटु-से-कटु आलोचना करते और समाज मे फैली हुई कुरीतियो के दुखद परिणाम दिखाकर, जनता को उनके उन्मूलन के लिए प्रेरित करते है । उनके पात्र प्रेमचन्द्र का कथन इस प्रसग मे द्रष्टव्य है—'हाँ, निन्दा और खुशामद तो सभी की बुरी है पर भाई अपने लोगो का मुख्य कर्त्तव्य यह है कि देश भ्राताओ के दुराचार से घृणा न करके उन्हे छुटाने का उद्योग करे। पर क्या करू, मैं न ऐसा धनी हूं, न बली जो किसी की पूर्ण रूप से सहायता कर सकूं। मेरी सुनता ही कौन है ? केवल आप ही से मेरा वश है सो अनुरोध पूर्वक कहता हूँ कि मेरे विचारो मे सब प्रकार साथ दीजिए, लोगो को उनके सच्चे सुख का मार्ग दिखाने और दुष्कर्म एव तज्जनित क्लेश का ठीक-ठीक अनुभव कराने का प्रयत्न करते रहिए जिसमे किसी भाई की ऐसी दुर्दशा सुनने का अवसर न आवे ।'[1] मिश्र जी अपने नाटको की भाषा भी बडी सरल और स्पष्ट रखते है जिससे सामान्य बुद्धि वाले भी उन्हे देखे, समझे और अपने आचरण को सुधारते हुए देशोद्धार मे तत्पर हो । उनके सामाजिक और राष्ट्रीय नाटको मे समाज या राष्ट्र की किसी न किसी समस्या पर ही, सीधा विचार किया गया है और समाज या राष्ट्र की अवनत अवस्था पर दुख प्रकट किया गया है । वे अपने उद्देश्य को—'कलि कौतुक रूपक के शिवनाथ पात्र द्वारा इस प्रकार कहलाते है—

> "तजि दुख प्रद दुरव्यसन पुरुष, बनिता अरु बालक ।
> मन, क्रम, बच सौं होहिं सुखद आज्ञा प्रति पालक ॥
> निज गौरव पहिचान सजग रहि कपटी जग सो ।
> करहिं सबै सब काल देश हित तन, मन, धन सों ॥'[2]

अतीत घटनाओ पर आधारित नाटक भी अपने प्राचीन गौरव का स्मरण दिलाते हुए, जनता मे स्वाभिमान तथा आत्म-शक्ति का सचार करते है । अत. मिश्र जी के सभी नाटको मे लोक-हित की भावना ही निहित है ।

इसके अतिरिक्त मिश्र जी हिन्दी को साहित्य की सभी विधाओ मे प्रतिष्ठित कर उसे समृद्धिशाली बनाना चाहते थे । 'सगीत शाकुन्तल' के उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए वे लिखते है—'कुछ भी हो यदि इसके द्वारा कहने सुनने को यह उपालम्भ

---

१. प्रतापनारायण मिश्र : 'कलि-कौतुक रूपक' (१८९० ई०) चतुर्थ दृश्य
२. '—वही—'

भी दूर हो जाय कि हिन्दी मे कोई ऐसा नाटक नही है जिसे सचमुच गीति-रूपक कह सकें—तो भी हम अपना परिश्रम सफल समझेंगे।'[1] गरज भाषा मे नाटक लिखने का एक उद्देश्य यह भी था कि वे हिन्दी का प्रचार जन-सामान्य मे करना चाहते थे। मिश्र जी के नाटको मे उनके दोनो उद्देश्य-लोक-रंजन और हिन्दी-प्रचार-एक मे समन्वित होकर आये है और मिश्र जी अपने दोनो उद्देश्यो की पूर्ति मे पूर्ण सफल है।

भाषा

मिश्र जी पात्रानुकूल भाषा लिखने के पक्षपाती थे। लाला श्रीनिवासदास कृत 'सयोगिता स्वयवर' नाटक की आलोचना करते हुए वह लिखते है—'स्त्रियाँ कैसी ही चतुर और पढी-लिखी हो पर नाटककार को चाहिए कि उनकी भाषा पुरुषो से हल्की रक्खे, नौकर-चाकरो की बोली मे सस्कृत के शब्द न भरे। युद्ध-क्षेत्र मे पात्रो का बाजे की ताल पर पॉव उठाना दक्खिनियो के नाटक की नकल है पर वीर रस से दूर है, नाचना और युद्ध दिखाना भेद रखता है। पृथिवीराज और सयोगिता की बातें कवियो की-सी है—तुम्हारा मुख चन्द्र सा है, मेरा मन समुद्र है—ऐसी बाते और बहुत सी बिजना भरी बाते केवल कवि लिखते है पर प्रेमिक और प्रेम पात्र कभी बोलते नही, उस अक मे बात कम और लज्जापूर्ण सात्विक भाव अधिक होना चाहिए।'[2] मिश्र जी ने अपने नाटको मे सर्वत्र पात्रानुकूल भाषा का ही प्रयोग किया है। उनके नाटको मे मुसलमान पात्र उर्दू, देहाती पात्र बैसवाडी और ब्रजभाषा, शिक्षित हिन्दू पात्र खडी बोली, ईसाई पात्र अग्रेजी शब्दो से युक्त खड़ी बोली, बगाली पात्र बगाली, महाराष्ट्री पात्र मराठी, पजाबी पात्र पजाबी बोलते दिखाई पडते है पर अभिनय की सुविधा के लिए बगाली, मराठी और पजाबी कथनो के हिन्दी अनुवाद भी दे दिय गये है जिनका उपयोग उन कथनो के स्थान पर किया जा सकता है। इन विभिन्न भाषाओ के कथोपकथनो से उनकी बहुज्ञता और विविध भाषा-ज्ञान का परिचय मिलता है। भारत-दुर्दशा रूपक' मे कलियुग और उनके सिपाहियो के तथा 'हठी हम्मीर नाटक' मे मुसलमानो के सम्पूर्ण कथन उर्दू मे ही है। अलाउद्दीन के दूत एलची का निम्नलिखित कथन उदाहरणार्थ दृष्टव्य है—

> "हुजूर! उस मरदूद बुतपरस्त ने कहा कि एक बादशाह क्या अगर हजार बादशाह चढ आवे तो भी अपने पनाहगीर को उसके हवाले न करूगा। असलियान रनथभौर जलालुद्दीन के शाहजादे नही है जिनको मुरगी के चूजो

---

१. प्रतापनारायण मिश्र : 'संगीत शाकुन्तल' (१९०८ ई०) भूमिका-पृष्ठ १

२. 'ब्राह्मण' खण्ड ३, संख्या १२, ('आलोचना')

की तरह कटवा डागा। यहाँ के एक-एक बच्चे मे यह ताकत है कि खेलते-खेलते देहली का तख्त उलटा दें।"[1]

बैंसवाडी के कथन 'कलि कौतुक रूपक' और 'सगीत शाकुन्तल' मे बहुतायत मे मिलते है। चण्डीदत्त देहाती का एक कथन देखिए—

"भाई सुनौ। जैसे हम बाह्मन आहिन। जब हम ही पीइथै तौ दुसरेन के निद्या कौन्हे का होथै-क भाई! हम बेहोश त नाही हन भला। हमका सब जने चण्डीदत्त नाही रडीदत्त कहा करौ (सब हसते है) हस थौ। ले हम झूठ कहिथैं? 'जल्हे जिउ तल्हे पिउ, जब न रही जिउ तब को ससोरवा कही कि ले पिउ।"[2]

नारी-पात्रो की भाषा मिश्र जी ने बडी सामान्य रक्खी हे। 'कलि कौतुक रूपक' मे स्यामा और चम्पा के कथन बडी सरल भाषा मे हैं। इनमे व्रज भाषापन अधिक हे। उदाहरणार्थ स्यामा के कथन देखिए—

"स्यामा—सो तो बीबी दुनिया की रीति ही है। जो जैसी करै सो तैसी पावै। वे मेरे आगे भगत बने हे, तो मैं भी उन्हे छकाऊ हू। इसमे क्या? पर तू तौ मुझी को ठगे है फिर भला चोर मै कि तू?

* * *

"स्यामा—बीबी की बात। इस जमाने मे कोई भोला भी होय है। सब जानै है कि जवानी दिवानी कहावै है, जब हमी को चैन नही है तो बेपर वानी की कौन? पर जब तक एक बात परदे मे रहै अच्छा ही है न।"[3]

मिश्र जी के नाटकों मे शिक्षित और नागरिक पात्रो के कथन सरल खडी बोली मे है। हम्मीर और उनकी माता मे हुई बातचीत की भाषा देखिए—

"हम्मीर—हां, फिर दीपक पर पतग झुड बाधकर भस्म होने को आया ही करते है, वरच हमारे दुर्ग का एक भाग गिरा भी दिया है।"

माता—तो फिर तू किस नीद मे सो रहा हे?

"हम्मीर—नही, नही सिहनी-सावक को निद्रा कैसी? विशेषता मृग समूह के उपस्थित होने पर मै तो तेरे चरण कमल की आज्ञा लेने आता ही था, इतने मे तू आ गयी। इससे और भी निश्चय हुआ कि युद्ध मे जय लाभ होगा।"[4]

---

१. प्रतापनारायण मिश्र : 'हठी हम्मीर नाटक' (प्रथम संस्करण), एक्ट ३, सीन पहिला।

२. ,, : 'कलि कौतुक रूपक' (१८९० ई०) द्वितीय दृश्य

३. प्रतापनारायण मिश्र : 'कलि कौतुक रूपक' (१८९० ई०) प्रथम दृश्य।

४. ,, : 'हठी हम्मीर नाटक' (प्रथम संस्करण) एक्ट ४, सीन पहिला।

मिश्र जी स्वाभाविक भाषा के पक्षपाती थे। इसीलिए उन्होने प्रत्येक पात्र की मातृ-भाषा की ओर ध्यान रक्खा है और उसी प्रभाव को उसके कथनों मे दिखाया है। ईसाई पात्र अंग्रेजी शब्दो से मिश्रित भाषा बोलते है। 'भारत-दुर्दशा रूपक' के ईसाई का कथन उदाहरणार्थ द्रष्टव्य है—

> "हमारा ओपीनियन (opinion सम्मति) मे कर्ल मगाने के वास्ते लेटर (letter चिट्ठी) भेजा जाय तो साथ ही निसस फायल मे इनका थोडा सा ब्लड (blood रुधिर) भी भेजना चाहिए। शायद वहा कोई डाक्टर और भी कोई तजवीज करे क्योकि अभी इण्डिया का लोग इन बातो मे पूरा नही है।"[1]

बंगाली, महाराष्ट्री और पजाबी से भी मिश्र जी क्रमश: बगाली, मराठी और पंजाबी ही बोलते है जो अभिनय के लिए कुछ अनुपयुक्त सी जान पडती है। उदाहरण के लिए एक बगाली पात्र का कथन देखिए—

> "आमार प्रिय मित्र जे कहिलेन ताहाते आमार किछु वक्तव्य आछे। आमी आशा कोरि यदि वक्तव्य वेपय मध्ये किछु अनुचित हय, ताहोले मित्रगण क्षमा करिवेन। भ्रातृगण आपनेजे पोपादि शब्द आपनार व्याख्यान मध्ये बलिया थाकेन, इहा उचित नय। जखन पर्यन्त समस्त राग द्वेष छाडिया समस्त भ्रातृगण एव भगिनीगण एक सगे खाउ आ दाउ आ न करिवेन, तथा जखन पर्यन्त समस्त जाति एक हइया विवाह इत्यादि सम्बन्ध परस्पर न, करिवेन तखन पर्यन्त कोउन प्रकारे भारतेर उद्धार हइते पारेना।"[2]

पर इस कथन का हिन्दी मे अनुवाद होने से, अभिनय का दोष बहुत-कुछ दूर हो जाता है। वैसे इतनी अधिक पात्रानुकूल भाषा अभिनय के लिए अच्छी नही कही जा सकती। ऐसी भाषा का प्रयोग, केवल 'भारत-दुर्दशा रूपक' के दो-चार कथनो मे किया गया है। अन्यत्र मिश्र जी की भाषा पात्रानुकूल होते हुए भी अभिनय के लिए दुरूह नही है; बल्कि उपयुक्त है। पात्रानुकूल भाषा होने से नाटको के सम्वाद बडे बलिष्ठ और सरस हो गये है।

---

१. प्रतापनारायण मिश्र : 'भारत-दुर्दशा' (१९०२ ई०) तीसरा अंक, पहिला दृश्य।

२. "मेरे प्रिय मित्र ने जो कहा, उसमें मुझे कुछ कहना है। मै आशा करता हूं कि यदि इस कहने मे कुछ अनुचित हो तो मित्रगण क्षमा करेंगे। भाई आप जो पोपादि शब्द अपने व्याख्यान में कहा करते है सो ठीक नही। जब तक कि समस्त झगड़ा झझट छोड़कर सारे भाई और समस्त बहेन एक सग न खांय पियेंगे तथा जब तक समस्त जाति एकाकार होकर परस्पर विवाह इत्यादि सम्बन्ध न करेगी तब तक किसी भांति भारत का उद्धार नहीं हो सकता।"
भारत-दुर्दशा रूपक' तीसरा अंक, पहिला दृश्य।

मिश्र जी ने अपने नाटकों मे सर्वत्र सरस भाषा का ही प्रयोग किया है। उन्हे सदैव यह ध्यान रहा है कि ये नाटक अभिनय और सामान्य लोगो के लिए लिखे जा रहे है। उनके नाटको का गद्य-प्रमुख रूप से-सरल खडी बोली मे और पद्य ब्रजभाषा, अवधी, खडी बोली और उर्दू मे है। भाषा की दृष्टि से मिश्र जी के नाटक बडे धनी है।

शैली

मिश्र जी की शैली मे प्राचीनता और नवीनता का समुचित संयोग दिखाई पड़ता है। प्राचीन-नाट्य-परम्परा के ही आधार पर उनके नाटको मे नान्दी पाठ और अंकों की अवतारणा हुई है। उनका प्रत्येक नाटक नान्दी पाठ से प्रारम्भ होता है। नान्दी पाठ बडे संक्षेप मे-एक या दो दोहे मे किया गया है। इसके अतिरिक्त कई नाटको मे-लोक-हित से प्रेरित भरतवाक्य भी दिये गये है। दूसरी ओर-नवीनता के क्षेत्र में-प्रस्तावना और वर्जित विषय दिखाने वाले गर्भाको, प्रवेशको और विष्कम्भको को उन्होने अपने नाटको मे कोई स्थान नही दिया। उनके नाटक नान्दी पाठ से ही प्रारम्भ हो जाते है, केवल 'सगीत शाकुन्तल' मे प्रस्तावना और अकावतार की योजना है जो 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' के अनुवाद के रूप मे की गयी है। अपने मौलिक नाटको मे उन्होने इन सबको तिलाजलि दे दी है। अको और दृश्यो की योजना मे भी मिश्र जी ने अपनी स्वच्छन्दता का पूरा उपयोग किया है। अको से विभाजन का कोई क्रम नही है; किसी अक में दो तीन दृश्य है तो किसी मे एक ही है या है भी नही। 'कलि कौतुक रूपक' मे तो केवल चार दृश्य ही है। अको और दृश्यो का विभाजन, कथावस्तु और अभिनेयता को दृष्टि मे रखकर किया गया है। नाटक भी आधुनिक माग के अनुसार छोटे-छोटे है। तीन अको से लेकर ६ अंकों तक के नाटक उन्होने लिखे हैं। उनका कोई भी मौलिक नाटक ७५ पृष्ठ से अधिक नही है। 'भारत-दुर्दशा रूपक' मे तो कुल ३२ ही पृष्ठ है। मिश्र जी के नाटक आधुनिकता की ओर अधिक मुडे हुए हैं, प्राचीनता का मोह उनमें नही है।

कथोपकथन

मिश्र जी के कथोपकथन बड़े स्वाभाविक और सरस है। इन्होने छोटे और लम्बे-दोनो प्रकार के कथोपकथन अपने नाटकों मे रक्खे है। लम्बे कथोपकथन अधिकाश स्वगत कथन के रूप मे है जैसे 'कलि कौतुक रूपक' के तृतीय दृश्य मे पद्मचन्द और भुशडीदास के कथन। लम्बे कथन भी सामान्य विषयो पर लिखे होने के कारण नीरस या अस्वाभाविक नही होने पाये है। इनमें जयशकर प्रसाद के स्वागत-कथनो की सी जटिलता एव गम्भीर नही है। ये बडे सरस और अभिनेय हैं। वैसे मिश्र जी ने छोटे-छोटे कथोपकथनों का प्रयोग ही अपने नाटकों में अधिक किया है और ये कथन—लम्बे कथनों की अपेक्षा, नाटक के लिए अधिक उपयुक्त भी हैं। इनमें

मिश्र जी के सम्वादों की सजीवता सहज ही देखी जा सकती है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित सम्वाद द्रष्टव्य है—

"चण्डी—तो फिर 'अब बिलम्ब केहि काज ?'
लश्करी—इस भड़ुए की गवारी बोली न गई।
चण्डी—तो का हम तुरुक आहिन ;
शकर—क्या साहब ! हम लोग तुरुक है जो उर्दू बोलते है।
चन्डी—उर्दू छिनारि कै, बोलइया सब सार तुरके आही।
(सब हसते है—शकर लज्जित होता है)
किशोरी—तो भाई किवाडे बद करो जोर अब देर नाहक है।
नब्बू—मै हजूर लगाता आया हू।
सब—ह ह ह सदा मे ...(सब कई बार खाते पीते और कहते है)
लश्करी—(अपने पात्र मे चण्डी को पिला के) अब तो बजा तुरुक हुए।
चण्डी—ई बिटिया। हम तुरुक, हमार पुरखा तुरुक ! कौन्यो सार को मिलै कहा।"[1]

गद्यात्मक सम्वादों की भाति पद्यात्मक-सवाद भी मिश्र जी ने अपने नाटकों मे रक्खे है। ये भी छोटे तथा बड़े दो रूपो मे विभक्त किये जा सकते है। बड़े कथन 'भारत-दुर्दशा रूपक' के प्रथम तथा द्वितीय अक मे विशेष रूप से प्रयुक्त हुए है। ये भी बड़े स्वाभाविक तथा सरस है। छोटे-सम्वाद 'सगीत शाकुन्तल' मे अधिक मिलते है जिनसे 'सगीत शाकुन्तल' बड़ा प्रवाहपूर्ण बन गया है और मूल से अधिक इसमे रसात्मकता आ गयी है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित सम्वाद देखिए—

राजा— अबहि न जाहु पियारी तजि यह छाह।
धूरि धूप अति भारी, मारग माह॥
जायहु बितै दुपहरी, मै बलि जाउं।
भुइ भूभरि कस धरिहौ जैहौ स्वैयन साथ॥
(हाथ पकड लिया)

शकुन्तला— छाड़हु-छाड़हु जैहौं कोमल पाउं।
नाहिन मोर जियरवा मोरे हाथ॥
राजा—(स्वगत) कस-कस कोमल बांहिया छाड़ौं हाथ।
पै जिय डरत पियारी रूसि न जाय॥
(छोडदिया)

---

१. प्रतापनारायण मिश्र : 'कलि कौतुक रूपक' (१८९० ई०) द्वितीय दृष्ट

शकुन्तला— नाहिन दोष पियरवा तनिक तुम्हार।
ई सब नाच नचावत भाग हमार॥"[1]

मिश्र जी के सम्वादो के निर्माण मे पूर्ण सफल है। डा० राम विलास शर्मा मिश्र जी के सम्वादो के विषय मे लिखते हैं—"हिन्दी मे आजकल जो नाटक निकलते है, उनमे बहुत कम ऐसे होते है जिनमे सम्वाद इतना स्वाभाविक और पात्रों के अनुकूल हो।"[2] मिश्र जी के सम्वाद अपनी सरलता, सरसता, स्वाभाविकता और अभिनेयता मे अद्वितीय हैं। सम्वादो के क्षेत्र मे इतनी सफलता कम ही नाटककारो को मिली हे।

हास्य और व्यंग्य

मिश्र जी ने सम्वादों को प्रभावपूर्ण बनाने के लिए, अपने नाटको मे यत्र-तत्र हास्य और व्यग्य की भी योजना की है। इनके हास्य और व्यग्य नाटक की मूल कथा के साथ ही आये है, उनका पृथक् से आयोजन नही किया गया। इसलिए वे नाटक के अभिन्न अग से बने दिखाई पड़ते है। तमसखुर अली द्वारा गाया गया निम्नलिखित गीत इसके लिए दृष्टव्य है—

"आकर क्या जौहर दिखलाये, टांय टांय फिस।
डेरे डंगर आज उठाये, टांय टांय फिस॥
चले थे जिस दम रनथंभौर।
सोचा नही सेव का ठौर॥
चढ़ आये जिस दम रजपूत।
करते बनी न कुछ करतूत॥
दुम दबाय कै घर को भागे, टांय टांय फिस।
डेरे डंगर आज उठाये, टांय टांय फिस॥"[3]

इसी प्रकार दुष्यन्त को अपनी मुद्रिका पर दुख प्रकट करता देखकर वृद्ध माढव्य अपनी लाठी पर दुख प्रकट करता हुआ कहता है—

"महाराज! लाठी पर अपनी मुझको भी दुख होय।
साथ न दिया तनिक भी मेरा, लज्जा दी सब खोय॥
हाय बुढ़ापे ने मेरी तो टेढ़ी कर दी पीठ।
है यह रांड़ आज तक सीधी, बांस की जायी ढीठ॥[4]

---

१. प्रतापनारायण मिश्र : 'संगीत शाकुन्तला' (१९०६ ई०) तीसरा अंक दूसरा दृश्य
२. डा० रामविलास शर्मा : 'भारतेन्दु-युग' (१९५६ ई०), पृष्ठ ७४।
३. प्रतापनारायण मिश्र : 'हठी हम्मीर नाटक' (प्रथम संस्करण) एक्ट ५, सीन पहला।
४. ,, 'संगीत शाकुन्तल' (१९०८ ई०) छठवां अंक, दूसारा दृश्य

'कलि कौतुक रूपक' के द्वितीय और तृतीय दृश्य में भी हास्य की अच्छी सामग्री मिलती है। चण्डीदत्त देहाती द्वारा गाया गया धोबी-गीत "बाजै-बाजै रे गुपनिया समधिन तोरे अगना" बड़ा ही उत्कृष्ट है। कैंचासिंह और पदमचन्द के वचन भी हास्य के लिए द्रष्टव्य हैं—

कैंचा—(खूब घूर के) बाबू डरते क्यों हो? क्या कोई खाये लेता है? कोई साला तुमसे बोले तो आंखें निकाल लें। तुम जानते हो कैंचासिंह किसी से डरते नहीं पर राजा तुम्हारे तो ताबेदार हैं। और तो क्या है हुकुम हो तो सिर काट के रख दें (गले में हाथ डाल के) हमसे तो न फट-फटे फिरा करो—देखो हां।

पदम—नहीं बाबू तुमसे तो हमें किसी तरह इनकार नहीं पर (हाथ जोड़ के) मिह-रबानी करके राह में न छेड़ा करो।

कैंचा—फिर क्या करें बाबू। बीस-बीस चक्कर लगाते हैं, मुहल्ले में तुम्हारे दर्शन ही नहीं होते। हमारे घर तुम आते ही नहीं, फिर भला रास्ते में न बोलें तो दिल मानता है। आया करो राजा। हम तुम्हारी सब तरह खिजमत करेंगे।"[1]

व्यंग्य भी मिश्र जी के नाटकों में बड़े तीखे मिलते हैं। 'भारत—दुर्दशा रूपक' के महाराष्ट्री सज्जन के इस कथन में कि विदेश से कल मंगाकर स्वदेशी कपड़ा पहनेंगे, भारतीयों की अकर्मण्यता पर सुन्दर व्यंग्य किया गया है।[2] ऐसे ही 'हठी हम्मीर नाटक' में मुसलमानों पर कई व्यंग्य किये गये हैं। एक स्थान पर दिग्विजय-सिंह मुसलमानों का उपहास करता हुआ हम्मीर से कहता है—"काम धंधों से छुट्टी पायी और मद्यपान तथा वेश्यासेवन में जा लगे। महाराज! युद्ध-क्षेत्र में बहुधा आपने इसके मुंह से बिजन-बिजन ऐसा शब्द सुना होगा इसका अर्थ ही स्त्रियों का संग। फारसी में 'ब' कहते हैं साथ को और 'जन' कहते हैं स्त्री को। फिर आपही बतलाइए जो लड़ाई के समय भी स्त्री-स्त्री चिल्लाते हैं उनमें वीरता कैसी?"[3]

मिश्र जी का हास्य और व्यंग्य बड़ा सबल है, इसके सामने—उनके नाटकों में—नीरसता एक क्षण के लिए भी नहीं ठहरने पाती। हास्य और व्यंग्य कथानक से मिला होने के कारण नाटकों पर ऊपर से लादा गया नहीं प्रतीत होता। इनकी योजना सोद्देश्य होती है और कथा प्रवाह, इसके साथ बराबर, अपनी स्वाभाविक गति से आगे बढ़ता रहता है। यहां यह कह देना अनावश्यक न होगा कि हास्य और

---

१ 'प्रतापनारायण मिश्र : 'कलि कौतुक रूपक' (१८९० ई०) तृतीय दृश्य।

२. ,, भारत-दुर्दशा रूपक (१९०२ ई०) तीसरा अंक, पहिला दृश्य

३. ,, 'हठी हम्मीर नाटक' (प्रथम संस्करण) एक्ट ४, सीन दूसरा।

व्यग्य मिश्र जी की अपनी एक शैली ही बन गयी है जिसका प्रयोग वे बराबर अपनी कृतियो मे करते रहते है ।

गीतात्मकता

मिश्र जी ने गीतो का प्रयोग अपने नाटको मे बहुतायत मे किया है । 'सगीत शाकुन्तल' और भारत दुर्दशा रूपक 'तो गीति-नाट्य के रूप मे लिखे ही गये है । इनके अतिरिक्त अन्य नाटको मे भी गीत पर्याप्त मात्रा मे मिलते है । मिश्र जी के अधिकाश गीत छोटे-छोटे सम्वादो के रूप मे लिखे गये है जिन्हे नाटक से पृथक् नही किया जा सकता । ये गीत नाटक मे सरसता तो उत्पन्न ही करते हैं साथ ही इनस कथानक भी रोचक बन जाता है । बडे गीत भी सख्या मे कम नही है इनकी उपयोगिता नाटक मे तो है ही, स्वतन्त्र भी इनका अस्तित्व है । 'संगीत शाकुन्तल' का कचुकी द्वारा गाया गीत—'माय बुढापा तोरे मारे अब तो हम नकन्याय गयन'[1] और हठी हम्मीर नाटक का इन्द्र द्वारा गाया गीत—'प्रभु भारत की सुध ऐसी तो न बिसारो,[2] अलग से भी प्रसिद्ध है । मिश्र जी के गीत नाटको के उपयुक्त है । उनमे गम्भीरता नही है । दर्शक तत्क्षण ही उन्हे समझ लेते है । इनसे गद्य की एकरसता तो भंग होती ही है साथ ही पाठको का मनोरजन भी होता है । मिश्र जी के गीत बुद्धि की अपेक्षा हृदय को अधिक स्पर्श करते है । इससे सामान्य दर्शक भी उनसे पूरा आनन्द उठा लेते हे । प्रमुख रूप से मिश्र जी के नाटकीय गीत तीन भागो मे बाटे जा सकते हैं—देश-प्रेम विषयक, शृगारिक, तथा हास्य और व्यग्यपरक । देश-प्रेम विषयक गीत 'भारत-दुर्दशा रूपक' मे, शृगारिक गीत 'सगीत शाकुन्तल' मे तथा हास्य और व्यग्य-परक गीत 'हठी हम्मीर नाटक' और 'भारत-दुर्दशा रूपक' मे विशेष रूप से देखे जा सकते है ।

देश-प्रेम विषयक गीतो मे भारत की दयनीय स्थिति पर दुख प्रकट किया गया है, देश-द्रोहियो की भर्त्सना की गयी है और भारतीयो की अकर्मण्यता को कोसा गया है । मिश्र जी के समय मे मुसलमान अग्रेजो का पक्ष ले रहे थे और उनके गोवध आदि हिंसात्मक कार्य बढते जा रहे थे । इसलिए मिश्र जी मुसलमानो को बडी उपेक्षा की दृष्टि से देखते थे और अवसर मिलने पर उनकी कटुआलोचना करते थे । 'हठी हम्मीर नाटक' मे मिश्र जी ने अपने इस क्षोभ को बड़े अच्छे शब्दों मे—हम्मीर द्वारा व्यक्त कराया है—

---

१. प्रतापनारायण मिश्र : 'संगीत शाकुन्तल' (१९०८ ई०) पांचवा अंक, पहिला दृश्य

२. ,, . 'हठी हम्मीर नाटक' (प्रथम संस्करण) एक्ट ६, सीन पहिला ।

"जिन दुष्टन इत आय देव मंदिरन ढहायो।
कल बल छल करि बहुतन को सद्धर्म छड़ायो॥
* * *
जिनके विषय मुनीश लिखहि निज ग्रथन माहीं।
नीच यवन ते और जगत मे कोऊ नाहीं॥
जिनके हाथन दुखित रहहि सज्जन जग माहीं।
तिन दुष्टन सो पाप किए हू पुन्य सदाहीं॥
छाड़ि देहु सब शक बक भृकुटी करि धावहु।
मातृ-भूमि हित हेतु इनहि मारहु जह छावहु॥"[1]

शृंगारिक गीत मिश्र जी के बडे चटीले है। इनमे नायिका के हाव-भाव और सौन्दर्य का बडा सुन्दर वर्णन किया गया है। नायक-नायिका के वार्तालाप भी इन गीतो मे बडे स्वाभाविक है। नायक-नायिका का बिछोह हो जाने पर, विरह-गीत भी बडे सजीव लिखे गये है। दुष्यन्त, शकुन्तला का चित्र देखकर विरह विह्वल हो जाता है। मिश्र जी ने दुष्यन्त के चित्रात्मक विरह को बडे अच्छे शब्दो मे चित्रित किया है। दुष्यन्त, शकुन्तला के चित्र का इस प्रकार वर्णन करता है—

"थकि बैठी है इहि काल बिटप सीचन ते।
ह्वै रही शिथिल भुज चुवत स्वेद कन तन ते॥
खसि रहे फूल बिथरी सुथरी अलकन ते।
सिर सो सारी खसि लसि छतियन ते॥"[2]

दुष्यन्त का विरह गीतो मे बडी तीव्रता को पहुचा हुआ है। एक स्थान पर वह मुद्रिका को निन्दा करता हुआ कहता है—

"कैसी आभगिन या मुंदरी है।
प्यारी के कर कमल पहुंचि कै,
धिक हतभागिनि छूटि परी।
अब तू कहां, कहा वह अंगुरी,
जासु नखन नग दुति निदरी है।"[3]

हास्य और व्यग्य परक गीत मिश्र जी के नाटको मे बहुत अधिक है और ये गीत इतने सफल है कि इनको सुनकर दर्शको के पेट मे हसते-हसते बल पड़ जाते है। उदाहरण के लिए रोगराज और चौपटसिंह के कथन देखिए—

---

१. प्रतापनारायण मिश्र :'हठी हम्मीर नाटक' (प्रथम संस्करण) एक्ट ४, सीन दूसरा।
२. " : संगीत शाकुन्तल' (१९०८ ई०) छठवां अक, दूसरा दृश्य।
३. " —वही—

रोगराज—

"हे कुपथ्य तुम मित्र हमारे, शाह का येही है फरमान।
बातों का अब काम नहीं है, जल्दी करिए भाई जान॥
पूरब, पश्चिम, उत्तर, दक्खिन घेरो जाकर हिन्दुस्तान।
बेशक अपने भी दिल में यह, बहुत दिनों से है अरमान॥
घुइयां, बड़ा, ककड़ी, खीरा, इनकी जब करना पहिचान।
बेहतर है हैजा बदहजमी, खूब मचावेंगे घमसान॥"[1]

चौपटसिंह अपनी सेना को आज्ञा देता है—

"मूछों पै देव ताव,
और आस्तीं चढ़ाव।
डाढ़ी दबा के जे़र लब॥
हिन्दू है कंछढिले,
आपस नहीं मिले।
जीतेगा तुमसे कोई कब॥
साथ चलो मेरे सब॥"[2]

मिश्र जी ने अपने नाटको मे अनेक राग-रागिनियों मे गीत लिखे है। अकेले 'सगीत शाकुन्तल' मे ही लगभग ७२ राग-रागिनियो मे गीत है। कई गीत तो ग्राम गीतो की धुन पर लिखे गये है जो बडे उत्कृष्ट है। 'सगीत शाकुन्तल' के चौथे अक मे धीमर का 'चलौ दारुपियन' गाना तो बहुत ही सुन्दर बन पडा है। मिश्र जी अपने नाटकीय गीतो मे पूर्ण सफल है।

अभिनेयता

मिश्र जी के नाटक साहित्यिक और रगमचीय नाटकों का समन्वित रूप है। इनमे साहित्यिकता तो अक्षुण्ण है ही, साथ ही ये रगमच के भी पूर्ण अनुकूल है। अपने साहित्यिक और रगमचीय—दोनो गुणो से युक्त होने के कारण मिश्र जी के नाटक कही भी सीमा का अतिक्रमण करते नही दिखाई देते। इनमे न तो जयशकर प्रसाद के नाटको की सी गम्भीरता और रूक्षता ही है और न पारसी नाटको की सी उच्छृखलता ही है। ये बड़ी स्वाभविक गति से—अपनी सीमा मे बँधे हुए चलते है। नाटको के लिखने मे मिश्र जी की दृष्टि-साहित्यिकता के साथ-साथ-अभिनेयता की ओर बराबर रही है। 'सगीत शाकुन्तल' की भूमिका मे वे उसके अभिनय का सुझाव इस प्रकार देते है—खेलने मे इतना ध्यान अवश्य रक्खे कि खेल बडा है अत. प्रबन्ध

---

१. प्रतापनारायण मिश्र : 'भारत-दुर्दशा रूपक' (१९०२ ई०) दूसरा अक, पहिला दृश्य
२. —वही— दूसरा अंक, दूसरा दृश्य।

मे त्रुटि न होने पाये, आठ नौ बजे रात तक अवश्य ही आरम्भ हो जाना चाहिए, तब कही सूर्योदय के लगभग पूरा हो सकेगा। सो भी कब ? जब अभिनय काल मे गन्धर्वत्व प्रदर्शन बहुत चाव न रख के—जहाँ खड़ी बोली के छन्द है वा एक ही छन्द दूर तक चला गया है वहाँ के वाक्य लिखित स्वरो मे अथवा गद्य ही की भाँति एक बार मात्र उच्चरित करके, केवल दो ही चार पद वाले गीत पूर्ण रूप मे गाये जाय तब। सुभीते के लिए यह चिन्ह (+ + +) भी कर दिये है इनके बीच वाले वचन यदि छोड दिये जाय तो भी खेल का रूप न बिगडेगा[1]।" मिश्र जी के सभी नाटक अभिनेयता को दृष्टि मे रखकर लिखे गये है।

अभिनय के उपक्रम

अपने नाटको को अभिनेय बनाने के लिए मिश्र जी ने अनेक साधन जुटाये है। सर्वप्रथम तो उन्होने नाटको की कथावस्तु ही ऐसी चुनी है जो देशकाल और दर्शको के अनुकूल है। उसमे दर्शको का मनोरजन तो होता ही है साथ ही उनका नैतिक सुधार भी होता है। फिर कथावस्तु को उन्होने अको और दृश्यो मे ऐसी कुशलता से विभक्त किया है कि उसमे अभिनेय-तत्व आप से आप आ गये है। छोटे-छोटे दृश्य होने के कारण प्रबन्ध और उनके अभिनय निर्वाह मे किसी प्रकार की असुविधा नही होती। वर्जित कथावस्तु और दृश्यो को उन्होने अपने नाटको मे बिलकुल स्थान नही दिया। हत्याए और युद्ध आदि के दृश्य रगमच पर न दिखाकर पात्रो द्वारा सूचित कराये गये है। पात्रो की सख्या भी बहुत-कुछ अभिनय के अनुकूल ही रक्खी गयी है। किसी भी दृश्य मे—रगमच पर पात्रो की भीड नही लगने पाती। उनका आवागमन क्रमिक रूप से होता रहता है। सम्वाद भी अभिनय के अनुकूल छोटे, सरल और स्वाभाविक है। भाषा भी पात्रानुकूल रक्खी गयी है। इसके अतिरिक्त हास्य और व्यग्य तथा गीतात्मकता द्वारा उन्होने अपने नाटको मे ऐसी सजीवनी-शक्ति पैदा कर दी है कि दर्शको के भव-जाल मे पीडित मुर्झाये मन प्रफुल्लित होकर नाचने लगते है और बार-बार देखने पर भी उनके मन तृप्त नही होते।

अभिनय की उपर्युक्त अनुकूलताओ के साथ ही कुछ प्रतिकूलताये भी मिश्र जी के नाटको मे मिलती है, उनका भी उल्लेख कर देना यहाँ आवश्यक है। 'सगीत शाकुन्तल' के पहले अक मे दुष्यन्त रथ पर बैठे हुए, हिरन का पीछा करते दिखाये गये है। यह दृश्य अभिनय के लिए उपयुक्त नही जान पडता। ऐसे ही, इसी नाटक के सातवे अक मे दुष्यन्त का मातलि के साथ रथ पर बैठकर—आकाश मार्ग से—इन्द्र लोक मे जाना दिखाया गया है और रास्ते मे दुष्यन्त से आकाश मार्ग की छटा का वर्णन भी कराया गया है जो नितान्त अस्वाभाविक और अभिनय के लिए अनुपयुक्त

---

१. प्रतापनारायण मिश्र : 'सगीत शाकुन्तल' (१९०८ ई०) भूमिका, पृष्ठ १-२

है । इसके अतिरिक्त 'भारत-दुर्दशा रूपक' के प्रथम दो अको के गीत और 'कलि कौतुक रूपक' के तृतीय दृश्य के गद्य-कथन बडे लम्बे है । 'भारत-दुर्दशा रूपक' के तृतीय अक के बगला, मराठी और पजाबी भाषाओ के कथन भी अभिनय के लिए दुरूह है । तथा 'हठी हम्मीर नाटक' के छठवे अक मे शिवलोक का दृश्य और देवताओ का जमघट भी आधुनिक युग की वैज्ञानिकता की दृष्टि से अस्वाभाविक प्रतीत होता है । फिर भी ये प्रतिकूलताए, अभिनय की अनुकूलताओ को देखते हुए नगण्य है । 'संगीत शाकुतल' के दृश्यो की योजना महाकवि कालिदास कृत 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' के अनुकरण पर की गयी है इसलिए उनके दोषी मिश्र जी नही है । 'भारत दुर्दशा रूपक' के लम्बे गीत भी हास्य और व्यग्य से युक्त होने के कारण सरस है और उनका अभिनय दर्शको को खलने वाला नही है । 'कलि कौतुक रूपक' के भी लम्बे गद्य-कथन रोचक है । 'भारत-दुर्दशा रूपक' के बगला, मराठी और पजाबी भाषाओ के सम्वाद भी, हिन्दी अनुवाद के स्थानापन्न किये जा सकते है और 'हठी हम्मीर नाटक' का भी शिवलोक अभिनय की दृष्टि से अस्वाभाविक नही जान पडता—वैज्ञानिक दृष्टि से भले ही हो । फिर मिश्र जी के नाटको के अनेक सफल अभिनय भी हो चुके है जो उनकी अभिनेयता के पुष्ट-प्रमाण है । इसके साथ ही मिश्र जी स्वय एक अभिनेता थे इसलिए भी उनके नाटको का अभिनेय होना अवश्यभावी है । अत· यह निर्विवाद कहा जा सकता है कि मिश्र जी के नाटक अभिनेयता के गुणो से पूरी तरह युक्त है ।

नाट्याभिनय की दिशा में मिश्र जी का योगदान

मिश्र जी ने हिन्दी-जगत् का अभिनेय नाटक तो प्रदान ही किये साथ ही अभिनय की दिशा मे भी सक्रिय योग दिया । वे स्वत ही एक कुशल अभिनेता थे स्त्री और पुरुष—दोनो पात्रो के अभिनय वे करते थे । कानपुर मे सुचारु रूप से नाटको का अभिनय मिश्र जी द्वारा ही प्रारभ हुआ । मिश्र जी के ही प्रयत्न से सन् १८८२ ई० मे भारतेन्दु हरिश्चन्द्र कृत 'नीलदेवी' और 'अधेर नगरी' नाटक सफलता के साथ खेले गये ।[1] इसके बाद सर्वप्रथम सन् १८८५ ई० कानपुर मे 'भारत एनटरटेनमेट क्लब' के नाम से एक नाट्य समिति—मिश्र जी और उनके मित्रो के सहयोग से—स्थापित हुई ।[2] इस समिति द्वारा अनेक नाटक खेले गये और इसके द्वारा अभिनय की एक परम्परा सी चल पडी । थोडे ही दिनो मे—'भारत एनटरटेनमेट क्लब' के अनुकरण पर एम० ए० क्लब, ए० बी० क्लब आदि, कई क्लब आदि स्थापित हो गये और इनके द्वारा अनेक सुन्दर नाटक अभिनीत हुए ।[3]

१. 'ब्राह्मण' खण्ड ५, संख्या १, 'कानपुर और नाटक' : प्रतापनारायण मिश्र
२. '—वही—'
३. '—वही—'

आगे चलकर 'भारत एनटरटेनमेंट क्लब' का नाम 'भारत मनोरंजनी सभा' हो गया[1] और इस सभा के प्रबन्ध से सन् १८८७ ई० में हठी हम्मीर नाटक, कलि प्रवेश नीति रूपक, गोसकट नाटक और जयनारसिंह प्रहसन खेला गया। इनमें प्रथम दो नाटक मिश्र जी के लिखे हैं। इनमें मिश्र जी ने अभिनय भी किया था। इन नाटकों के अभिनय में सभा को बड़ी सफलता मिली। दर्शकों की भी संख्या आठ सौ के थी और सभी ने नाटकों के कुशल अभिनय की प्रशंसा की।[2] मिश्र जी उक्त अभिनय के विषय में लिखते हैं—"जिसकी प्रशंसा तो अपने मुंह मियां मिट्ठू बनना है क्योंकि इस पत्र का सम्पादक भी एक अभिनय कर्ता था और दोनों नाटक भी उसी के लिखे हैं एवं कानपुर में उसे दावा भी है कि श्री हरिश्चन्द्र की बराबरी करना तो पाप है पर उसी कविवर के महराज मन्त्री हम भी हैं।"[3] इस प्रकार कानपुर मिश्र जी में नाटककार और अभिनेता को पाकर थोड़े ही दिन में जगमगा उठा।

मिश्र जी ने स्वतः अपने नाटकों का अभिनय तो दिया ही, साथ ही अन्य नाटककारों के नाटकों का भी अभिनय कर, उन्हें प्रोत्साहित किया। यद्यपि मिश्र जी को अभिनय के क्षेत्र में अनेक परेशानियां उठानी पड़ी पर वह अपने उद्देश्य में अटल रहे। कानपुर के लोग उन्हें अधिक सहायता नहीं दे सके। वे कहते हैं—"बड़ी भारी छून इस शहर के लोगों में यह है कि यदि कोई पुरुष अच्छा काम करना बिचारे, और अन्य लोग उसे समझ भी लें कि अच्छा है, तो भी उनके सहायक हो के उन्नति न देंगे। अपनी नामवरी के लालच में कुछ सामर्थ न होने पर भी ढाई चावल की खिचड़ी अलग पकावेंगे। इनमें दोनों की हानि होती है। यदि यह सभायें एक हो के या परस्पर सहायता करके सुयोग्य कवियों के बनाये हुए वा बनवा के नाटक खेला करें तो क्या कहना है। पर कहे कौन ?"[4] मिश्र जी कानपुर की तत्कालीन सभी नाट्य-समितियों की प्रशंसा किया करते थे और उन्हें अच्छे नागरी नाटक खेलने के लिए प्रोत्साहित करते थे। सन् १८८८ ई० में ए० वी क्लब ने पहले-पहल 'सदमाए इश्क' और 'गौरक्षा' नाटक खेला। अभिनय उतना अच्छा नहीं हुआ। एम० ए० क्लब ने तो उसे उपेक्षा की दृष्टि से देखा पर मिश्र जी ने प्रथम प्रयास समझकर उसकी सराहना की—"९ अगस्त को इस क्लब ने अभिनय किया पर हम यह मुक्त कण्ठ से कहेंगे कि यदि हमारे प्रिय मित्र श्री भैरव प्रसाद वर्मा तन, मन, धन से बद्धपरिकर न होते तो यह दिन कठिन था। नाटक पहिले-पहल था और भाषा भी उर्दू थी, पर पात्रगण

---

१. 'ब्राह्मण' खण्ड ५ संख्या एक 'कानपुर और नाटक'—प्रतापनारायण मिश्र
२. '—वही—' ४ ,, ५ 'कानपुर कुछ कुनमुनाया है'—प्रतापनारायण मिश्र
३. '—वही—'
४. '—वही—' ५ ,, १ कानपुर और नाटक'—प्रतापनारायण मिश्र

चतुर थे, इसमे अभिनय सराहने योग्य था इसमे शक नही । एम० ए० क्लब के कई सभासद नाराज हो के उठ गये । यह अयोग्य किया और बहुत से अशिक्षित जन कोलाहल की लत भी दिखाते रहे, पर हमारे कोटपाल अलीहुसेन साहब के परिश्रम और प्रबन्ध मे शाति रही । 'सदमए इश्क' और 'गौरक्षा' निर्विघ्न खेला गया । सुनते है कि इस क्लब मे उत्तमोत्तम नागरी के नाटक भी खेले जाया करेगे । परमेश्वर इस किवदन्ती को सत्य करे । हम अपने सुहृद्वर भैरवप्रसाद (मोलो बाबू) से आशा रखते है कि नाटक का असली अमृतरस चरितार्थ करने मे सदैव प्रोत्साहित रहेगे ।"[१] मिश्र जी का किसी समिति से द्वेष नही था, वे तो केवल नाट्याभिनय को प्रगतिशील देखना चाहते थे ।

मिश्र जी कानपुर से बाहर भी नाटक खेलने जाते थे और अभिनय कला का प्रचार किया करते थे । बाकीपुर (पटना) मे इनके नाटक खेलने का वृत्तात तो प्रसिद्ध ही है । बाबू रामदीन सिंह के प्रयत्न से वहा भारतेन्दु कृत 'हरिश्चन्द्र नाटक' खेला गया था जिसमे स्वय भारतेन्दु जी ने राजा हरिश्चन्द्र का और प्रतापनारायण जी ने रोहिताश्व का अभिनय किया था । (विशेष विवरण के लिए इसी शोध-प्रबन्ध का जीवनी वाला अध्याय देखिये) इस प्रकार मिश्र जी आजीवन नाट्याभिनय को आगे बढाने मे लगे रहे और पर्याप्त सफलता भी प्राप्त की । पर खेद का विषय है की नयी अभिनय-परम्परा उनके जीवन के साथ ही समाप्त हो गयी । कहने की आवश्यकता नही कि यदि यह परम्परा आगे चलती रहती तो आज हिन्दी-रगमच की इतनी दयनीय दशा न होती ।

नाटको के लिखने मे मिश्र जी का दृष्टिकोण बडा व्यापक रहा है । भारतेन्दु-युग की सभी विशेषताए उनके नाटको मे एकीकृत हो गयी हे । पुरातनवादी सकीर्णता एव धार्मिकता उनके नाटको में नही है । वे शुद्ध वैज्ञानिक पीठिका पर लिखे गये है । सभी नाटक राष्ट्रीयता और लोक-हित की भावना से आप्लावित है । मिश्र जी ने सुखान्त और दु खान्त दोनो प्रकार के नाटक लिखे है । इनके लिखने मे उन्होने किसी परम्परा का पिष्टपेषण नही किया । इनमे उनकी अपनी स्वच्छदता ही सर्वत्र दिखाई पडती है । इसी से ब्रजरत्नदास जी मिश्र जी के नाटको की विशषताएं बताने लगते है—"मिश्र जी की प्रतिभा, कवित्व-शक्ति तथा शिष्ट परिहास प्रियता अच्छी मात्रा में थी और कई भाषाओ पर अच्छा अधिकार था । मुहाविरो, ग्रामीण कहावतों का वह ऐसा अच्छा प्रयोग करते थे कि भाषा मे जान आ जाती थी । उर्दू की जिंदादिली इनके नस-नस मे भरी थी ।"[२] निश्चित ही मिश्र जी के नाटकों मे उनकी प्रतिभा

---

१ 'ब्राह्मण' खण्ड ५ संख्या १ 'कानपुर और नाटक'—प्रतापनारायण मिश्र

२. ब्रजरत्नदास—'हिन्दी-नाट्य-साहित्य' (२००१ वि०)-पृष्ठ ९७

प्रधान है और उसी के बल पर उनके नाटक इतने प्रभावोत्पादक हो गये हैं। मिश्र जी से पूर्व नाटकों का केवल श्रीगणेश ही हो पाया था। मिश्र जी ने उनमें सरसता, अभिनेयता और वैज्ञानिकता का संयोग कर उन्हें विकास की ओर बढ़ाया और आगामी नाटककारों का मार्ग-निर्देशन किया। इस प्रकार मिश्र जी के नाटक ऐतिहासिक प्रगति के प्रतीक हैं। जब तक साहित्यकारों में इतिहास, अभिनय और यथार्थता के प्रति ममता रहेगी तब तक मिश्र जी के नाटक अजर और अमर रहेंगे।

तीसरा अध्याय

मिश्र जी के निबन्ध

भारतेन्दु-युग में हिन्दी-निबन्ध का विकास

निबन्ध गद्य की एक ठोस और परिमार्जित विधा है। इसका विकास गद्य के प्रौढ काल मे होता है। जब-तक गद्य का रूप स्थिर और परिष्कृत नही हो जाता तब-तक उत्कृष्ट निबन्ध नही लिखे जा सकते। जयनाथ 'नलिन' लिखते है—"निबन्ध मे गद्य के सम्पूर्ण बल, तीव्रतम प्रवाह, अमिट प्रभाव, शरीर-सकोच और अर्थ-विस्तार की परख होती है। निबन्ध गद्य को अधिक-से-अधिक प्राणवान बनाता है। निबन्ध किसी भी साहित्य के गद्य-विकास का मापदण्ड है।"[1] इसीलिए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी निबन्ध को गद्य की कसौटी कहा है।[2] भारतेन्दु-युग तक हिन्दी-गद्य पूरी तरह विकसित हो चुका था उसमे निबन्ध लिखने की पूरी शक्ति आ गयी थी। अत भारतेन्दु-युग के उत्तरार्द्ध मे ही हिन्दी-निबन्ध का जन्म हुआ। वैसे भारतवर्ष मे विचार-प्रधान और निर्णयात्मक शास्त्रीय वक्तव्यो की एक परम्परा मिलती है, जिसमे अनेक प्रकार के धार्मिक और दार्शनिक विषयो पर विभिन्न आचार्यों ने अपने मत प्रकट किये हैं। इनमे खण्डन-मण्डन की प्रवृत्ति प्रमुख रही है। उदाहरणार्थ वल्लभाचार्य आदि के वक्तव्यो मे विचारात्मक निबन्ध का रूप देखा जा सकता है। पर खडी बोली गद्य मे निबन्ध का स्वरूप भारतेन्दु-युग से पूर्व नही मिलता।

पाश्चात्य निबन्ध-साहित्य हिन्दी निबन्ध-साहित्य से प्राचीन है। पाश्चात्य-साहित्य मे निबन्धो का प्रणयन सोलहवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध से ही प्रारम्भ हो गया था जबकि हिन्दी मे उस समय गद्य का भी विकास नही हुआ था। प्रारम्भ मे अग्रेजी-निबन्ध बड़े सामान्य स्तर के होते थे। उनमे लेखक अपने विचारो, रुचियो और अनुभवो को छोटे-छोटे रूपो मे व्यक्त करते थे। आगे चलकर लेखको मे जब अधिक मुखरता आयी तब वैयक्तिक निबन्धो की सृष्टि हुई। निबन्ध-साहित्य के विकसित हो जाने पर पाश्चात्य-निबन्धो की दो कोटिया हो गयी—एक विषयी प्रधान (Subjective Essays), दूसरी विषय प्रधान (Objective Essays)। विषयी प्रधान निबन्धो की पाश्चात्य-साहित्य मे प्रमुखता रही, क्योंकि विषयी प्रधान निबन्ध अधिक

---

१. प्रो० जयनाथ 'नलिन' : 'हिन्दी-निबन्धकार' (१९५४ ई०), पृष्ठ २

२. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' (२००६ वि०) पृ० ५०५

सरस तथा स्वाभाविक होते है और विषय प्रधान निबन्ध नीरस, चिन्तनपरक और स्थूल होते है। विषयीप्रधान निबन्धो मे लेखक का व्यक्तित्व ही प्रधान रहता है। लेखक विषय को अपने अनुकूल बना लेता है। विषय प्रधान निबन्धो मे लेखक विषय को प्रमुख मानकर चलता है और उसके पक्ष-विपक्ष मे अनेक तर्क-वितर्क उपस्थित करता है तथा अपने मत के समर्थन मे अनेक प्रमाण भी देता है। पाश्चात्य-साहित्य मे विषयी प्रधान निबन्ध को ही वास्तविक निबन्ध समझा जाता है।

भारतेन्दु-युग तक बगला भाषा मे भी निबन्ध का पूर्ण विकास हो चुका था। कई निबन्धकारो की उत्कृष्ट कृतिया साहित्य-जगत् के सामने आ चुकी थी। इस प्रकार भारतेन्दु-युग के साहित्यकारो के समक्ष सस्कृत, अग्रेजी और बगला की परम्पराए विद्यमान थी। इनमे लेखको को बहुत-कुछ प्रेरणाए मिली। भारतेन्दु युगीन प्राय: सभी लेखक सस्कृत, अग्रेजी और बगला भाषा का ज्ञान रखते थे इससे तत्कालीन निबन्ध की प्रवृत्तियो को समझने मे बडी सहायता मिली। लेकिन अपनी पूर्व परम्पराओ से प्रेरित होकर भी हिन्दी-निबन्ध साहित्य पूर्ण मौलिक है। इसपर लेखको के व्यक्तित्व और तत्कालीन परिस्थितियो का सम्यक् प्रभाव पडा है। कुछ साहित्यकार हिन्दी-निबन्ध को अग्रेजी-साहित्य की देन मानते है[1] पर यह धारणा निर्मूल है। अकेला अग्रेजी-साहित्य ही हिन्दी-निबन्ध का मूल प्रेरक नही है। इसके मूल मे अनेक पूर्वी तथा पश्चिमी परम्पराए, जातीय विशेषताए और लेखको के मौलिक विचार समन्वित है। डा० रामविलास शर्मा लिखते है—"भारतेन्दु-युग का साहित्य हिन्दी-भाषा जनता का जातीय साहित्य है, वह हमारे जातीय नवजागरण का साहित्य है। भारतेन्दु-युग की जिन्दादिली, उसके व्यग्य और हास्य, उसके सरल, सरस गद्य और लोक सस्कृति से उसकी निकटता से सभी परिचित है, ये उसकी जातीय विशेषताए है। भारतेन्दु-युग के साहित्य ने न केवल अग्रेजी साहित्य से वरन् बगला साहित्य से भी प्रेरणा पायी है। लेकिन उसके साहित्य की जडे इसी धरती मे है और ऊपर बताई हुई उसकी जातीय विशेषताए उसकी अपनी है, मौलिक है। उनके लिए हम किसी के ऋणी नही है।"[2] डा० गुलाबराय तो बाहरी प्रेरणाओ को बिलकुल ही महत्व नही देते। वे लिखते है—"भारतेन्दु-युग मे निबन्ध-साहित्य का उदय किसी बाहरी प्रेरणाओ से नही हुआ वरन् उसका जन्म परिस्थिति की आवश्यकताओ मे हृदय की उमग से हुआ। उस युग का निबन्ध-साहित्य वाणी का विलास था अवश्य किन्तु उसका सम्बन्ध तत्कालीन राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियो से था। उसमे निर्वैयक्तिकता न

---

१. शितिकण्ठ मिश्र : 'खड़ी बोली का आन्दोलन' (२०१३ वि०) पृष्ठ ११३

२. डा० रामविलास शर्मा : 'भारतेन्दु-युग' (१९५६ ई०) पृष्ठ ५, (तीसरे सस्करण की भूमिका)

थी।"[1] पर अग्रेजी साहित्य का आशिक प्रभाव तो हिन्दी-निवन्ध पर पडा ही है। नही कुछ तो निवन्ध का ढाचा ही पाश्चात्य-निबन्ध से प्रभावित है। भारतेन्दु-युग तक अग्रेजी-भाषा का पूर्ण प्रचार भी भारत मे हो चुका था, अत. अग्रेजी-साहित्य का कुछ-न-कुछ प्रभाव तो अवश्य ही निवन्ध पर पडा है। लेकिन अग्रेजी-साहित्य के प्रभाव को प्रमुख मानना या उसकी देन कहना, हिन्दी निवन्ध का उपहास करना है।

हिन्दी-निबन्ध के विकास मे खडी बोली गद्य, सस्कृत, अग्रेजी और बगला साहित्य तथा लेखको के स्वतत्र और सबल व्यक्तित्व का तो महत्वपूर्ण स्थान है ही, साथ ही और भी ऐसे अनेक शक्ति-स्रोत है जिन्होंने निबन्ध के विकास मे पर्याप्त सहयोग दिया। यदि खडी बोली—गद्य ने अभिव्यक्ति को प्रवाहपूर्ण बनाया, सस्कृत, अंग्रेजी और बगला साहित्य ने रूप विधान को पुष्ट किया तथा व्यक्तित्व ने उसे सरसता प्रदान की तो अन्य सहयोगी शक्ति-स्रोतो ने उसके आत्म तत्व को बल दिया और जन-जन तक पहुचाकर उसे विकास क्रम मे आगे बढाया। इन शक्ति-स्रोतो मे राष्ट्रीय-जागृति का विशेष स्थान है। अग्रेजो की शोषण-नीति भारतेन्दु-युग के लेखको मे छिपी न रही। उनके हृदय मे—प्रतिक्रिया स्वरूप-राष्ट्रीय चेतना के भाव जागृत होने लगे। उन भावो को उन्होने प्रत्येक भारतवासी तक पहुचाना चाहा। इसके लिए उन्हे भावाभिव्यक्ति के स्पष्ट, प्रभावपूर्ण और सरल माध्यम की आवश्यकता हुई। कहना न होगा कि निबन्ध ही उनकी अभिव्यक्ति का उपयुक्त माध्यम बना और यही कारण है कि उस समय के प्रत्येक निबन्ध मे प्राय. राष्ट्रीय भावना के ही दर्शन होते हैं। इसके अतिरिक्त इस युग तक आते-आते हिन्दी को एक स्वतन्त्र विषय के रूप मे शिक्षा-सस्थाओ मे भी स्थान मिल गया था इसलिए हिन्दी के अध्ययन तथा अध्यापन के लिए पुस्तको की आवश्यकता पडी, और इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए बरबस पुस्तको का सृजन प्रारम्भ हुआ। पाठ्यक्रम के स्तर को ध्यान मे रखते हुए कृतियो का प्रणयन होने के कारण निबन्ध के तत्व उनमे स्वत. आने लगे। इस प्रकार निबन्ध-साहित्य को शिक्षा सस्थाओ द्वारा बड़ा प्रोत्साहन मिला। इसके साथ ही भारतेन्दु-युग तक भारतवर्ष मे मुद्रणयन्त्रो की भी पर्याप्त उन्नति हो चुकी थी जिसके कारण दैनिक और मासिक पत्र-पत्रिकाए इतनी अधिक सख्या मे निकलने लगी थी कि इस युग का प्राय प्रत्येक लेखक किसी-न-किसी पत्र का सम्पादक था और अपने पत्र मे अधिकतर अपने लिखे निबन्ध या लेख ही निकलता था। पत्रकला के विकास के कारण लेखक और पाठक के बीच सहज ही गहरा सम्बन्ध स्थापित हो गया और इससे निबन्ध-साहित्य के प्रचार मे बडी सहायता मिली। डा० शितिकठ मिश्र पत्र-पत्रिकाओ को ही निबन्ध के विकास का मुख्य आधार मानते है—"पत्र-पत्रिकाओ के प्रचलन से ही

---

१. डा० गुलाबराय : 'काव्य के रूप' (१९५८ ई०) पृष्ठ २३३

निबन्ध-साहित्य की भी नीव पडी। इसके पहले गद्य केवल कथात्मक होता था।"[1] इस विवेचन से यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि हिन्दी-निबन्ध का आत्मतत्त्व पूर्णतया भारतीय है इसमे पाश्चात्य-साहित्य का आरोप लगाना निरा भ्रम पूर्ण है।

भारतेन्दु-युग के लेखक भी बडे प्रतिभा सम्पन्न थे। उनके सबल व्यक्तित्व और कर्मठता ने निबन्ध के विकास मे बडा सहयोग दिया। इसी युग के निबन्धकारो मे भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र, बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन', लाला श्री निवासदास, अम्बिकादत्त व्यास और गोविन्दनारायण मिश्र के नाम उल्लेखनीय है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (१८५०-१८८५ ई०) प्रतिभाशाली साहित्य-कार थे। इन्होने साहित्य की प्राय प्रत्येक विधा पर अपनी लेखनी चलायी है। निबन्ध के क्षेत्र मे यद्यपि इन्हे सफलता नही मिली, फिर भी ऐतिहासिक दृष्टि से इनके निबन्धो का साहित्य मे स्थान है। इनके निबन्ध अधिकतर लेख की कोटि मे आते है। उनमे भावात्मकता तथा अनुभूति की गहराई नही है। इन्होने सामाजिक, राजनीतिक, ऐतिहासिक आदि विषयो पर निबन्ध लिखे हैं। इनके निबन्ध सामान्य और चलतू भाषा मे लिखे गये है। इनकी शैली व्यास है। बालकृष्ण भट्ट (१८४४-१९१४ ई०) के निबन्ध उत्कृष्ट है। इन्होने साहित्यिक कोटि के बडे सुन्दर विचारात्मक निबन्ध लिखे है। कुछ निबन्ध इनके भावात्मक और व्यग्यात्म भी है पर इनमे इनका व्यक्तित्व पूर्ण प्रत्यक्ष नही हो सका है, कारण ये परिमार्जित और सस्कृतनिष्ठ भाषा लिखने के पक्षपाती थे। इनके भाव इनकी भाषा मे दबे दिखाई देते है। भट्ट जी ने भी साहित्यिक, राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, नैतिक, मनोवैज्ञानिक आदि विषयो पर निबन्ध लिखे है। इनके निबन्धो की शैली व्यास और समास है। प० प्रतापनारायण मिश्र (१८५६-१८९४ ई०) के निबन्ध व्यक्तित्व प्रधान है। इन्होने छोटे-छोटे तथा सामान्य विषयो पर उत्कृट निबन्ध लिखे है। इनके निबन्धो की भाषा प्रवाहपूर्ण और मुहावरेदार है। हास्य और व्यग्य के लिए ग्रामीणता का पुट भी यत्र-तत्र मिलता है। इन्होने हास्य और व्यग्य तथा मुहावरेदार शैली का प्रयोग अधिकतर अपने निबन्धों मे किया है। बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' (१८५५-१९२२ ई०) ने प्रमुख रूप से, विचारात्मक निबन्ध लिखे है। ये अलकारिक भाषा लिखने के पक्ष मे थे। अनुप्रासिक छटा लाने के लिए अर्थ का भी विचार नही करते थे। एक-एक शब्द चुन-चुन कर रखते थे। ये शब्द के गढिया थे। इनकी भाषा जन-सामान्य की समझ से बाहर की थी। शब्दो की कलाबाजी और चमत्कार प्रदर्शन मे अधिक लिप्त होने के कारण इनके निबन्ध नीरस बन गये हैं। अपने युग मे ये सबसे अधिक क्लिष्ट भाषा लिखने वालो मे थे। लाला श्री निवास दास (१८५०-१८८७ ई०) ने यद्यपि

---

१. डा० शितिकंठ मिश्र : 'खड़ी बोली का आन्दोलन' (२०१३ वि०), पृ० ११३

निबन्ध बहुत-कम लिखे है। पर जितने लिखे हैं वे बड़े सरस और पुष्ट है। भाषा भी इनकी साफ-सुथरी और चलतू है, दिल्ली के प्रान्तीय तथा उर्दू भाषा के शब्दो का प्रयोग अधिकता से किया गया है। अम्बिकादत्त व्यास (१८५८-१९०० ई०) ने भी बहुत-कम निबन्ध लिखे है। इनकी भाषा मे पडिताऊपन अधिक है तथा भाषा भी अधिक व्यवस्थित नही है। गोविन्दनारायण मिश्र (१८५९-१९२३ ई०) भी 'प्रेमघन' की तरह काव्यात्मक भाषा लिखने के पक्षपाती थे। इनके निबन्ध भी विचारात्मक-कोटि के ही है। इनकी शैली मे प्रतीक और लाक्षणिकता का प्रयोग विशेष रूप से हुआ है। वाक्य भी अनुप्रासो के मोह मे बड़े लम्बे है। स्वाभाविकता इनके निबन्धो मे बहुत-कम है। इन निबन्धकारो के अतिरिक्त ठाकुर जगमोहन सिंह (१८५७-१८९९ ई०), राधाचरण गोस्वामी (१८५९-१९२३ ई०) आदि ने भी कुछ निबन्ध लिखे है जो तत्कालीन स्थिति पर अच्छा प्रकाश डालते है। भाषा भी इन निबन्धो की सरल है।

उपर्युक्त निबन्धकारो मे बालकृष्ण भट्ट और प्रतापनारायण मिश्र ही प्रमुख है। शेष निबन्धकारो मे वास्तविक निबन्ध-कला के दर्शन नही होते। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के निबन्धो की भाषा सुसगठित या सुव्यवस्थित नहीं है। उसमे लेख के गुण अधिक है। बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' की भाषा अस्वाभाविक और क्लिष्ट है। वह एक निबन्धकार की भाषा न होकर, एक कवि की भाषा है। लाला श्री निवासदास की भाषा मे प्रान्तीय और उर्दू भाषा के शब्दो का बाहुल्य है। अम्बिकादत्त व्यास मे पडिताऊपन अधिक होने के कारण उनकी भाषा भ्रातिपूर्ण और गम्भीरता से हीन है। गोविन्दनारायण मिश्र मे चमत्कारिकता अधिक होने के कारण स्पष्टता कम है, उनकी भाषा प्रतीको आदि से दबी हुई है। ठाकुर जगमोहनसिंह और राधाचरण गोस्वामी के निबन्ध भी लेख की कोटि मे है। इनमे निबन्ध का विकास नही दिखाई देता। इस प्रकार इन लेखकों के निबन्धों मे स्वाभाविकता, साहित्यिक शैली की विशिष्टता, गम्भीरता एव वैयक्तिकता के दर्शन नही होते। डा० लक्ष्मी-सागर वार्ष्णेय भी इन लेखको को निबन्धकार नही मानते। वे लिखते है—"भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, उपाध्याय, बद्रीनारायण चौधरी, 'प्रेमघन', जगमोहनसिंह, अम्बिकादत्त व्यास, राधाचरण गोस्वामी, गोविन्दनारायण मिश्र आदि अनेक लेखको की ऐसी रचनाएं मिलती है जिनमे निबन्ध के कुछ लक्षण अवश्य मिल जाते हैं, किन्तु उन्हे निबन्ध न कहकर लेख कहना ही अधिक युक्ति संगत होगा। निबन्ध रचना के कुछ लक्षण होने पर भी निबन्ध जैसे होने चाहिए वे वैसे नही है। यह स्मरण रखना चाहिए कि एक लेखक गद्य-शैलीकार होते हुए भी निबन्ध लेखक की कोटि मे नही आ सकता। उन्नीसवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे निबन्ध रचना का यदि वास्तविक रूप कही मिलता है तो बालकृष्ण भट्ट और प्रतापनारायण मिश्र की रचनाओं मे मिलता

है ।"[१] बालकृष्ण भट्ट और प्रतापनारायण मिश्र ही इस युग के वास्तविक निबन्धकार हैं। दोनों ही लेखक अपना पृथक् अस्तित्व रखते हैं, दोनों की अपनी मौलिकता और विशिष्टता है। भट्ट जी सुव्यवस्थित और संस्कृतनिष्ठ भाषा लिखने वालों में हैं। इनके निबन्ध प्रमुख रूप से विचारात्मक हैं। मिश्र जी स्वाभाविक एवं प्रभावपूर्ण भाषा लिखने वालों में हैं। इनकी भाषा में वैयक्तिकता अधिक है। इनके निबन्ध प्रमुख रूप से वर्णनात्मक हैं। दोनों ही लेखकों का अपना अलग क्षेत्र है। अतः भारतेन्दु-युगीन निबन्ध साहित्य दोनों का समान रूप से ऋणी है। इसीलिए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल लिखते हैं—"पंडित प्रतापनारायण मिश्र और पंडित बालकृष्ण भट्ट ने हिन्दी गद्य-साहित्य में वही काम किया है जो अंग्रेजी गद्य-साहित्य में एडीसन और स्टील ने किया था।"[२]

भारतेन्दु-युगीन निबन्ध-साहित्य को प्रमुख रूप से दो भागों में बांटा जा सकता है—विचारात्मक निबन्ध और रचनात्मक निबन्ध। विचारात्मक निबन्ध बहुत-कुछ भारतीय संस्कृत-परम्परा से प्रभावित हैं और रचनात्मक-निबन्ध किसी हद तक पश्चिमी अंग्रेजी-साहित्य से। विचारात्मक निबन्धों में लेखक के विचार या निबन्ध का विषय प्रमुख है। इन निबन्धों की शैली समास है। लेखकों ने इन निबन्धों में, बड़े तर्क पूर्ण ढंग से अपने विचारों का प्रतिपादन किया है। रचनात्मक निबन्ध व्यंग्यविनोद से युक्त हैं, इनकी भाषा बड़ी सरल—कहावतों और मुहावरों से परिपूर्ण है। इनके मूल में लोक-भावना प्रमुख है। इन निबन्धों में विषय प्रधान न होकर लेखक का व्यक्तित्व प्रधान है। वैयक्तिकता की प्रमुखता के कारण ये निबन्ध बड़े स्वाभाविक हैं। इनमें विचारात्मक निबन्धों की अपेक्षा वास्तविक निबन्ध के गुण अधिक हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल लिखते हैं—"आधुनिक पाश्चात्य लक्षणों के अनुसार निबन्ध उसी को कहना चाहिए जिसमें व्यक्तित्व अर्थात् व्यक्तिगत विशेषताएं हों।"[३] इस विभाजन के अनुसार विचारात्मक निबन्धों के जनक बालकृष्ण भट्ट और रचनात्मक निबन्धों के जनक प्रतापनारायण मिश्र निर्विवाद कहे जा सकते हैं। प्रो० जयनाथ 'नलिन' लिखते हैं—"मिश्र जी भारतेन्दु-युग के अत्यन्त प्रिय लेखक हैं। इनके अनेक निबन्ध हिन्दी के अच्छे निबन्धों में गिने जा सकते हैं। आत्मीयता, आकार-संकोच, भाषा का चटपटापन, उछलता उमंग भरा व्यक्तित्व जवानी का फक्कड़पन

---

१. डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय : "आधुनिक हिन्दी साहित्य" (१९५४ ई०) पृष्ठ १३३

२. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : "हिन्दी-साहित्य का इतिहास" (२००६ वि०) पृष्ठ ४६७

३. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : "हिन्दी-साहित्य का इतिहास" (२००६ वि०) पृष्ठ ५०२

और तेज, उक्ति चमत्कार और व्यंग्य की बौछार आदि विशेषताए मिश्र जी को शक्तिशाली निबन्धकार प्रमाणित करती है। अपने क्षेत्र मे वह एक मात्र लेखक स्वय है।"[१] मिश्र जी के रजनात्मक निबन्धो मे उनकी अपनी मौलिकता भी है। डा० रामविलास शर्मा लिखते है—"निबन्ध लिखना हिन्दी मे नई चीज थी। बगला मे उपन्यास, कविता, नाटक आदि के लिए आदर्श मिल सकते थे, परन्तु प्रतापनारायण मिश्र आदि के-से निबन्ध हिन्दी की अपनी उपज थे।"[२] इस प्रकार हिन्दी मे रजनात्मक निबन्धो का प्रणयन मिश्र जी से ही प्रारम्भ होता है। विचारात्मक निबन्धो की परम्परा तो भारत मे किसी-न-किसी रूप मे मिलती भी है, पर रजनात्मक निबन्धो का रूप भारत मे मिश्र जी से पूर्व नही मिलता। हाँ, लेख भारतेन्दु जी के दो एक अवश्य मिलते है, पर उन्हे मिश्र जी के निबन्धो की कोटि मे नही रक्खा जा सकता। मिश्र जी के निबन्धो की मौलिकता, स्वाभाविकता और सरसता को ही देखकर डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय मिश्र जी को बालकृष्ण भट्ट से भी श्रेष्ठ निबन्धकार मानते है—"भाषा प्रयोग आदि की दृष्टि से मिश्र जी मे चाहे जो दोष आ गये हो, किन्तु निबन्धकार के वास्तविक रूप के दर्शन भट्ट जी की अपेक्षा हमे उन्ही मे अधिक होते है। उनके निबन्धो मे दोष केवल इसलिए दिखाई देते है कि वे जन-समुदाय को छोड़ना नही चाहते थे। इस प्रधान उद्देश्य के सामने उन्होने अन्य बातो पर अधिक ध्यान न दिया। विद्वान होकर भी वे अपनी विद्वता प्रकट करना नही चाहते थे। विदग्ध साहित्य की रचना वे भले ही न कर पाये हो, किन्तु उनकी रचनाओं मे साधारण समाज की रुचि प्रतिबिंबित है। उनकी लेखनी और स्वभाव ने एक नवीन पाठक समुदाय ही उत्पन्न कर दिया।"[३] मिश्र जी की रजनात्मक परम्परा हिन्दी साहित्य को उनकी अपनी देन है। उनकी मौलिकता और उनमे एक नयी विधा के उन्नायक का रूप देखकर ही डा० श्याम सुन्दरदास ने उन्हे हिन्दी का मौतेन कहा है। जिस प्रकार पाश्चात्य निबन्ध-साहित्य के जन्मदाता मौतेन कहा है। उसी प्रकार हिन्दी निबन्ध-साहित्य के प्रतापनारायण मिश्र है। वैसे विचारात्मक-निबन्ध का जहा तक प्रश्न है उसमे तो बालकृष्ण भट्ट सर्वोपरि है पर मिश्र जी मे मौलिकता उनसे अधिक है। साथ ही मिश्र जी अपने रजनात्मक-निबन्ध क्षेत्र के जनक और सम्राट दोनो ही है जबकि भट्ट जी अपने क्षेत्र के केवल जनक ही है।

मिश्र जी का सम्पूर्ण साहित्य लोक-भावना से ओत-प्रोत है। उनके जीवन का उद्देश्य ही देश-सेवा, समाज-सेवा और हिन्दी-सेवा था। अन्य विधाओ की अपेक्षा

---

१. प्रो० जयनाथ नलिन' : 'हिन्दी-निबन्धकार' (१९५४ ई०) पृष्ठ ९३
२. डा० रामविलास शर्मा' : 'भारतेन्दु-युग' (१९५६ ई०) पृष्ठ ८९
३. डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय : आधुनिक हिन्दी साहित्य' (१९५४ ई०) पृष्ठ १३९-४०

निबन्ध मे उनका उद्देश्य अधिक स्पष्ट और जोरदार है । वे कहते है—"अपना घर, अपना मनोमंदिर, अपने बन्धु-बान्धव, इष्ट मित्र, पड़ोसी और स्वदेशी भाइयो के घरो को देखो और निज का घर समझ के उनके अभावो को दूर करो । सब गृही भाइयो के लिए सुख का उपाय करो, पर आज ही से, इसी क्षण से, सन्नद्ध हो जाव क्योकि ढिल्लरपन से निर्वाह न होगा । मृत्यु पुकार रही है, मनात. शीघ्र सभल, तेरी आखे मुदने मे विलम्ब नही है । एक पल भर मे सब मनोर्थ म्रियमाण हो जायँगे । अपना भला चाहता है तो चाहने से कुछ न होगा, जो करना है करने मे जुट जा, दिन थोड़ा है । भारतमाता रो-रो कह रही है कि मेरी गति क्या से क्या हो रही है, मेरे हितार्थ, यदि तुम मेरे सच्चे सपूत हो तो, तुम्हे दूर जाना है । क्या तुम्हारा मन इन बातो को सोच के नही कहने लगता कि अब मेरा यहा अर्थात् आलस्य के साथ रहने मे निर्वाह नही है ।"[१] हिन्दी सेवा का स्वर भी उनके निबन्धो मे प्रमुख है । उर्द के बढ़ते हुए प्रचार को देखकर वे कहते है—"अब आज अन्य भाषा, वरन अन्य भाषाओ की करवट (उरदू) छाती का पीपल हो रही है । तब यह चिन्ता खाये लेती है कि चुड़ैल से पीछा छूटै । एक बार उद्योग किया गया सो तो हटर साहब के पेट मे समा गया । फिर भी चिन्ता पिशाची गला दबाए है ।"[२] लोक-भावना की प्रमुखता के कारण मिश्र जी के निबन्धो मे उपदेशात्मकता की मात्रा पर्याप्त है । यहा तक कि विचारात्मक निबन्धो मे भी कही-कही उपदेशात्मकता के पुट विद्यमान है । तत्कालीन परिस्थिति के प्रति जागरूकता मिश्र जी के प्रत्येक निबन्ध मे मिलती है । उनका देश और समाज की दयनीय स्थिति का क्षुब्ध हृदय प्रत्येक निबन्ध मे झाकता दिखायी देता है । उनके निबन्धो मे धर्मान्धता नही है, वे शुद्ध वैज्ञानिक पीठिका पर लिखे गये है ।

मिश्र जी के निबन्धो मे उनका व्यक्तित्व प्रधान है । छोटे-से-छोटे विषय को व सरस और रमणीय बना लेते है । वे विषय की अपेक्षा पाठको की अभिरुचि को अधिक महत्व देते है, इसलिए वे बराबर हास्य और व्यग्य को साथ लिए चलते है । उनमे पाठकों के प्रति बड़ी आत्मीयता है । वे पाठको के बहुत समीप पहुच जाते है । लेखक और पाठक के बीच दूरी बिल्कुल ही नही है । वे उनके बिल्कुल पास बैठकर बातचीत करते है—"ले भला बतलाइए तो' आप क्या है ? आप कहते होगे, वाह आप तो आप ही है । यह कहा की आपदा आयी ? यह भी कोई पूछने का ढग है ? पूछा होता कि आप कौन है तो बतला देते कि हम आपके पत्र के पाठक है और आप 'ब्राह्मण' सम्पादक है अथवा आप पंडित जी है, आप सेठ जी है, आप लाला जी है,

---

१. 'ब्राह्मण' खण्ड ४ सख्या ८ ('दिन थोडा है, दूर जाना है, यहां ठहरु तो मेरा निबाह नही है')

२. 'ब्राह्मण' खण्ड २ संख्या ५ ('समझदार की मौत है')

आप बाबू साहब है, आप मियां साहब, आप निरे साहब है। आप क्या है ? यह तो प्रश्न की कोई रीति ही नही है।"[1] मिश्र जी बड़ी बेतकल्लुफी से बातचीत करते है इससे उनके निबन्धो मे बड़ी स्वाभाविकता और सरसता आ गयी है। डा० लक्ष्मी-सागर वार्ष्णेय लिखते है—"मिश्र जी के निबन्धो के विषय और शैली दोनों मे सरसता है, किन्तु वे विषय-प्रधान न होकर व्यक्तित्व प्रधान है। स्वभाव के अनुसार ही उन्होने विषय-निर्वाचन किया है। उन्होने यह प्रमाणित कर दिया है कि निबन्ध किसी भी विषय पर लिखा और साधारण विषय भी रोचक बनाया जा सकता है। लेखक के लिखने का ढंग भी ऐसा है मानो वह हमारे सामने साक्षात् बैठा सब कुछ कह रहा हो। एक-एक शब्द मे हम उसकी भंगिमाओ का चित्र अपने सामने चित्रित कर सकते है। विषय निरूपण करते समय मिश्र जी नीरस, शुष्क और विस्तृत बाते नही रखते। वे विषय का कोई एक पक्ष लेकर सब प्रकार से उसमे साहित्यिक सौन्दर्य उत्पन्न कर उसके साथ पाठको का रागात्मक सम्बन्ध स्थापित कर देते है। विषय-प्रतिपादन-शैली और भाषा के लाक्षणिक प्रयोगो द्वारा वे अवर्णनीय रसात्मकता की सृष्टि किये बिना नही रहते। यह बात हमे भट्ट जी के निबन्धो मे नही मिलती।"[2] मिश्र जी के निबन्धो मे हास्य और व्यंग्य की प्रमुखता ही उनकी विशिष्ट मौलिकता है इसी मे उनके व्यक्तित्व की विलक्षण छाप है। लेकिन मिश्र जी के निबन्ध व्यक्तित्व प्रधान होते हुए भी पूर्ण वैयक्तिक नही है उनमे उपदेशात्मकता और पाठकों से समीपता अधिक है। वैयक्तिक निबन्धो मे उपदेश, शिक्षा, ज्ञान-प्रदर्शन, किसी के मत का खण्डन-मण्डन और तर्क-वितर्क नही होता, उसमें लेखक केवल विषय के सहारे अपने भावो की अभिव्यक्ति कर देता है। वैयक्तिक निबन्धो मे लेखक के व्यक्तित्व की विशेषता मात्र प्रकट होती है तथा इसमें हास्य और व्यंग्य की प्रधानता रहती है। इन निबन्धो मे लेखक की शिक्षा-दीक्षा का महत्व न होकर उसकी वैयक्तिक-प्रतिभा का महत्व होता है। मिश्र जी मे प्रतिभा तो प्रचुर मात्रा मे थी और उसकी अभिव्य-क्ति भी निबन्धो में पूरी तरह हुई है। उनके प्रत्येक निबन्ध में उनका व्यक्तित्व ही लहरा रहा है। हास्य और व्यंग्य की सफल योजना भी उनके निबन्धो मे है और वे सरस तथा प्रभावोत्पादक भी है पर उपदेश और उद्धरण शैली के कारण हम उन्हे शुद्ध वैयक्तिक निबन्ध नही कह सकते। हा, वे वैयक्तिक निबन्धा के बहुत-समीप अवश्य है। उनके निबन्ध विषय प्रधान न होकर व्यक्तित्व प्रधान ही है और उस युग के निबन्धकारो मे सबसे अधिक वैयक्तिकता मिश्र जी के ही निबन्धो मे है।

मिश्र जी के निबन्धों का वर्गीकरण

निबन्ध का क्षेत्र बड़ा विस्तृत है। अभी तक निबन्धो का कोई निश्चित वर्गी-

---

१. 'ब्राह्मण' खण्ड ९ संख्या ८ 'आप' : प्रतापनारायण मिश्र
२ डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय : 'अधुनिक हिन्दी साहित्य' (१९५४ ई०) पृष्ठ १३८

भी छिपा होता है । शैली की दृष्टि से विवेचन करने पर निबन्ध की प्राय सभी विशिष्टताए सामने आजाती है । फिर मिश्र जी के निबन्ध तो व्यक्तित्व या शैली प्रधान ही हे । इनके निबन्धो के विवेचन के लिए तो शैलीगत वर्गीकरण ही अधिक समीचीन होगा । मिश्र जी के निबन्धों को रूप या शैली की दृष्टि से चार भागो मे विभक्त किया जा सकता है—वर्णनात्मक निबन्ध, विचारात्मक निबन्ध, भावात्मक निबन्ध तथा हास्य और व्यग्यपरक निबन्ध । वैसे इस विभाजन की पृथक् कोई सीमा रेखाए नही है । कही-कही एक ही निबन्ध मे चारो रूपो के दर्शन हो जाते है । यह विभाजन केवल रूप विशेष की प्रमुखता को दृष्टि में रखकर किया गया है ।

वर्णनात्मक निबन्धक

इन निबन्धो मे इतिवृत्तात्मकता की प्रमुता रहती है । इनमे विचार की अपेक्षा परिचय अधिक होता है । वर्णनात्मक निबन्धो मे रोचक शैली और सरसता की विशेष आवश्यकता होती है । वर्णन प्रधान होने के कारण कल्पना शक्ति का अत्यधिक सहारा लिया जाता है । इन निबन्धो की भाषा बडी सरल और प्रवाह पूर्ण होती हे । विषय सरल और सामान्य होते हैं पर लेखक अपनी विशिष्ट वर्णन शैली द्वारा उन्हे आकर्षक बना लेते है । मिश्र जी के अधिकाश निबन्ध वर्णनात्मक ही हे । उन्होने राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, साहित्यिक आदि अनेक विषयो पर वर्णनात्मक निबन्ध लिखे है । इन निबधो मे गगा जी, बेगार, रिशवत, दयापात्र जीव, कचहरी मे शालिग्राम जी, भेड़ियाधसान, देशोन्नति, जातीय भण्डार, गगा जी की स्थिति, रसिक समाज, बेकाम न बैठ कुछ किया कर, उन्नति की धूम, विस्फोटक, हिम्मत राखो एक दिन नागरी का प्रचार हो होगा, सबै सहायक सबल के कोउ न निबल सहाय, पवन जगावत अगिन को दीपहि देत बुझाय, भौ, नारी, पादरी साहब का व्यर्थ यत्न, बलि पर विश्वास, पतिव्रता, दबी हुई आग, पक्ष, कानपुर और नाटक कन्नौज मे तीन दिन, हम राजभक्त है, प्रतापचरित्र, कांग्रेस की जय, धरती माता, धरती माता का पूजा, सोशल कान्फरेंस, वृद्ध, द, ग्रामों के साथ हमारा कर्त्तव्य नामक निबन्ध प्रमुख है । राजनीतिक विषयो से सम्बन्धित निबन्धो मे अग्रेजी की शोषक प्रवृति, अग्रेजी के पक्षपात और उनके द्वारा लगाये गये टैक्सो की आलोचना तथा देश भक्ति व्यक्तियो और सस्थाओ की प्रशसा की गयी है । अंग्रेजो से भारत का कोई हित न देखकर, मिश्र जी लिखते है-"हम आज पराधीन सर्व साधन हीन है । चाहो कर्म का फल कहो, चाहो ईश्वर की इच्छा समझो, चाहो जमाने की गरदिश मानो, हम दूसरो की आख देखते है और दूसरे लोग जैसे होते है इतिहासवेत्ताओं से छिपा नही है । इससे हमें अगरेजो के अत्याचार से रोना न चाहिए और यह शिक्षा भी न रखना चाहिए कि यह हमारी भलाई करने आये है । इलबर्ट बिल, शिक्षा कमीशन, बेंकस साहब का मुकदमा, सब इसी बात के उदाहरण है कि "सबै

सहायक सबल के" इत्यादि। कोई क्यो न हो हमारी सहायता के लिए अपनी हानि तथा अपने सजातियो की रूप हानि न करेगा। जब तक हम ऐसे ही बने रहेंगे जैसे आज हैं तब तक हमारा रोना वा चिल्लाना किसी के दिल पर असर न करेगा।"[1] सामाजिक निबन्धो मे फूट, व्यभिचार, कुरीतियो आदि की भर्त्सना करते हुए भारतीयो को समाज सुधार की ओर प्रेरित किया गया है। मिश्र जी देश या समाज की उन्नति एकता मे ही निहित मानते है। वे कहते है-"यदि आप हिन्दुस्तानी हैं और हिन्दुस्तान का उद्धार किया चाहते है तो किसी के कहने सुनने मे न आ के अपने यहा की तुच्छ से तुच्छ वस्तु एव व्यक्ति को सारे ससार के उत्तमसोत्तम पदार्थो अथच पुरुषो से श्रेष्ठ समझिए और पूर्ण पुरुष के साथ दूसरो को भी यही समझाते रहिए तथा अपनो से अपनायत निभाने मे किसी प्रकार का भय-सकोच, लालच-लज्जा जी मे न आने दीजिए। यह प्रण कर लीजिए कि चाहे जैसी हानि हो, चाहे जो कष्ट हो कुछ चिन्ता नही है। सर्वस्व जाता रहे, अभी मृत्यु हो जाय, मरने पर भी कठीन से कठीन नर्कजालन अनन्ता काल तक सहनी पड़े पर अपने हिन्द और अपनी हिन्दी से 'हम यह दो बात कहके हारे है। तुम हमारे हो हम तुम्हारे है।' बस फिर प्रत्यक्ष देख लीजिएगा कि कितने शीघ्र अथच कैसी कुछ उन्नति आखो के आगे दिखाई देती है। पर बातें कहने की नही है कर उठाने की हैं।"[2] धार्मिक विषयो से सम्बन्धित निबन्धो मे पाखण्डियो, बनावटी साधु-सतो, मतमतान्तरो, आडम्बरो आदि पर आक्षेप किये गये हैं। लम्पटदास पर व्यग्य करते हुए वे लिखते हैं-"लम्पटदास बाबा की चेलियाँ, क्योकि" गुरु साक्षात् परब्रह्म लिखा है। बरच (राम ते अधिक राम कर दासा)। फिर क्या, जिसने अपना तन मन धन वरंच धर्म कर्म सरवस्व 'कृष्णार्पन' कर दिया उस अनन्य भक्ति की मुक्ति मे भी क्या कुछ सदेह है?'[3] साहित्यिक विषयो पर लिखे गये निबन्ध बड़े सरस हैं। इनमे विषय का उतना महत्व नही है जितना व्यक्तित्व का है। विषय सामान्य है पर उनका वर्णन-चातुर्य प्रभाव-पूर्ण है। उदाहरण के लिए 'द' निबन्ध की कुछ पक्तिया देखिए—हमारी और फारस वालो की वर्णमाला भर मे इससे अधिक अप्रिय, कर्णकटु और अस्निग्ध अक्षर, हम तो जानते है और न होगा। हमारे नीति विदाम्बर अंग्रेज बहादुरो ने अपनी वर्णमाला मे बहुत अच्छा किया जो नही रक्खा। नही तो उस देश के लोग भी देना सीख जाते तो हमारी तरह निष्कचन हो बैठते। वहा के चतुर लोगो ने बड़ी दूरदर्शिता

---

१. 'ब्राह्मण' खण्ड २ सख्या ४ (सबै सहायक सबल के कोऊ न निबल सहाय। पवन जगावत अगिन को दीपहि देत बुझाय।।")

२. ब्राह्मण' खण्ड ८ सख्या ६ (उन्नति की धूम)

३. 'ब्राह्मण' खण्ड १ सख्या १० (मुक्ति के भागी)

करके इस अक्षर के ठौर पर 'डकार' अर्थात 'डी' रक्खी है, जिसका अर्थ ही डकार जाना, अर्थात यावत् ससार की लक्ष्मी, जैसे बने वैसे, हजम कर लेना।—इधर हमारे यहाँ दकार का प्रचार देखिए तो नाम के लिए देओ, यश के लिए देओ, देवताओ, के निमित्त देओ, पितरो के निमित्त देओ राजा के हेतु देओ, कन्या के हेतु देओ, मर्जे के वास्ते देओ, अदालत के वास्ते देओ, कहा तक कहिए, हमारे बनवासी ऋषियो ने दया और दान को धर्म का अग ही लिख-मारा है। सब बातो मे देव, और उसके बदले मे लेव क्या ? झूठी नामवारी, कोरी वाह वाह, मरणातर स्वर्ग, पुरोहित जी का आशीर्वाद, रुजगार करने की आज्ञा वा खिताब, क्षणिक सुख इत्यादि। भला देश क्यो न दरिद्री हो जाय ?"[१] साहित्यिक निवन्धो मे मिश्र जी की देश-भक्ति की छाप यत्र-तत्र मिलती है। 'भौं' का वर्णन करते हुए भी वे अन्त मे लिखते है-"यद्यपि हमारा धन, बल, भाषा इत्यादि सभी निर्जीव हो रहे है तो भी यदि हम पराई भौंहें ताकने की लत छोड दे, आपस मे बात-बात पर भौहे चढाना छोड दे, दृढता से कटिबद्ध होके वीरता से भौहे तान के देशहित मे सन्नद्ध जाय अपने देश की बनीवस्तुओ का अपने धर्म का, अपनी भाषा का, अपने पूर्व पुरुषो के रुजगार और व्यवहार का आदर करे तो परमेश्वर अवश्य हमारे उद्योग का फल दे। उसके सहज भृकुटी विलास मे अनन्त कोटि ब्रह्माड की गति बदल जाती है, भारत की दुर्गति बदल जाना कौन बडी बात है।"[२]

मिश्र जी के वर्णन बड़े प्रभावोत्पादक है। वे अपने निबन्धो मे भूमिका न बाधकर सीधे विषय पर आ जाते है पर वर्णन का ढग ऐसा सजीव है कि अस्वाभाविकता नही आने पाती। 'पक्ष' निबन्ध को देखिए वे किस कुशलता से प्रारम्भ करते है—"यह दो अक्षर और तीन अर्थ का शब्द भी ऐसा उपयोगी है कि इसके बिना कोई काम ही नही चल सकता। यदी पक्षी के पक्ष जाते रहे तो उसका जीना भारी हो जाय। यदि महीने मे कृष्ण पक्ष और शुक्ल पक्ष न हो तो ज्योतिषियो को गणित मे बडी गडबडी पड़े। यदि किसी का पक्ष करने वाला कोई न हो तो वह एक पक्ष क्या एक क्षण भी सुख से नही बिता सकता।"[३] बीच-बीच मे मिश्र जी छोटी-छोटी कहानियो और घटनाओ को भी प्रसगानुकूल देते जाते है जिससे विषय भी स्पष्ट हो जाता है और वर्णन मे भी सरसता आ जाती है। निबन्ध का अन्त भी वे या तो विषय का निष्कर्ष देकर करते है या उपदेश देते हुए उसे समाप्त कर देते है। दोनो ही ढग बड़े मर्मस्पर्शी उदाहरण के लिए 'पतिव्रता' निवन्ध का अन्त देखिए-'निरे न्याय और धर्म से वे राह पर न आवेगी। ऐसी युक्त से वर्तना चाहिए कि वे प्रसन्न भी रहे और कुछ डरती भी रहे। तभी

---

१. 'ब्राह्मण' खण्ड ४ सख्या २
२ 'ब्राह्मण' खण्ड ४ सख्या ३
३. 'ब्राह्मण' खण्ड ५ संख्या ४

प्रीत करेंगी। कन्नौजियो की तरह निरी डडे बाजी से वे केवल डर सकती है, प्रीति न करेगी। अगरवालो, खत्रियो की भाति निरी स्वतत्रता सौप देने से भी वे सिर चढेगी। अतः भय और प्रीति दोनो दिखाना, स्वतत्र, परतन्त्र दोनो बनाए रहना। मौके-मौके मे उन्हे अनुमति और शिक्षा भी देते रहना, और कभी-कभी उनकी सलाह भी लेते रहना। बस इन उपायो से सम्भव है कि भारत कन्याए पुन पतिव्रत की ओर झुकने लगेंगी। और पतिव्रताओ के प्रभाव से फिर हमारी सौभाग्य-लक्ष्मी की वृद्धि होगी।'[1]

रोचकता के लिए मिश्र जी ने वर्णनात्मक निबन्धो मे हास्य और व्यग्य की योजना भी जहा-तहा की है। 'नारी' निबन्ध की कुछ पक्तिया यहा पर द्रष्टव्य है—''न का अर्थ है नही और अरि कहते है शत्रु को भावार्थ यह हुआ कि न यह शत्रु है, न इनसे अधिक कोई शत्रु है। जहा तक हो इन्हे स्वतत्रता न सौपो। अच्छे वैद्यो के द्वारा, पथ्यापथ्य विचार द्वारा, म्यूनिसिप्यलिटी द्वारा, सदुपदेश द्वारा नारी मात्र को अनुकूल रखना ही श्रेयस्कर है। तनिक भी व्यतिक्रम पाओ तो वैद्यराज से कहा, महाराज नारी देखिए, मुहल्ले के मेहतर से कहा कि चिलम पीने को यह पैसा लो और नारी अभी साफ करो, घर की लक्ष्मी से कहो नारी। ऐसा उचित नही। कोई अफीम खा गया हो तो उसके सम्बन्धी से कहो कि नारी का साग खिलाना चाहिए। इसी प्रकार सदैव नारी का विचार और भगवान मदनारी (कामदेव का नाशक शिव) का ध्यान रखा करो, नहीं महाअनारी हो जाओगे।'[2] इसके अतिरिक्त कथन को जोरदार बनाने के लिए कहावतो और मुहावरो तथा ग्रामीण शब्दो का प्रयोग भी बहुतायत से किया गया है। उदाहरण के लिए कुछ पक्तिया देखिए—''बहुतेरे बड-कुल महापुरुष कह बैठते हैं, 'हमारे वश मा विद्या फलति ही नाहिनु' अथवा 'का सुवा मैना आहिन ?' तो इनसे कौन कहे कि विश्वामित्र महाराज आदिक महर्षि, जो हमारे वंश के शिरोमणि थे उनको विद्या न फलती तो बडे-बडे महाराज बडे बडे अवतार क्यों उनकी प्रतिष्ठा करते ? श्री रामचन्द्र मर्यादा पुरुषोत्तम ने क्या सुवा मैना से धनुर्वेद पढा था ? इसी मिथ्याभिमान के कारण अनेक्य इस जाति मे ऐसी हो गयी कि एक भाई दूसरे भाई को तुच्छ समझता है।—यह तो कहा हो सकता कि मिशिर जी दुबे जी को कुछ मान्य समझें। ढूढने से कुछ नाते दारी भी निकल आवे तो 'होई, नाते का नात पनाते का ठ्यागरन' कहके मुह फेर लेंगे। कनवजियो मे किसी ने न देखा होगा कि एक ही कुल के पचास घर भी एक दूसरे के दुख-सुख में साथी हो। जहा सुनो यही सुनने मे आवेगा कि 'आही तो भयाचार पे आवाज

---

१. 'ब्राह्मण' खण्ड ४ संख्या १२

२. 'ब्राह्मण'' खण्ड ४ सख्या ४

ही छूटिगै है।'[1] कही-कही तो एक ही वाक्य मे मुहावरो की झडी सी लगी दिखायी देती है "यद्यपि बात का कोई रूप नही बतला सकता कि कैसी है पर बुद्धि दौडाइए तो ईश्वर की भाति इसके भी अगणित ही रूप पाइएगा। बडी बात, छोटी बात, सीधी बात, टेढी बात, खरी बात, खोटी बात, मीठी बात, कडवी बात, भली बात, बुरी बात, सुहाती बात, लगती बात, इत्यादि सब बात ही तो है? बात के काम भी इसी भाति अनेक देखने मे आते है। प्रीति बैर, सुख-दुख, श्रद्धा-घृणा, उत्साह-अनुत्साहादि जितनी उत्तमता और सहजतया बात के द्वारा विदित हो सकते हैं दूसरी रीति से वैसी सुविधा ही नहीं। घर बैठे लाखो कोस का समाचार मुख और लेखनी से निर्गत बात ही बतला सकती है। डाकखाने अथवा तारघर के सहारे से बात की बात मे चाहे जहा की जो बात हो जान सकते है। इस के अतिरिक्त बात बनती है, बात बिगडती है, बात आ पडती है, बात जाती रहती है, बात उखडती है। हमारे तुम्हारे भी सभी काम बात ही पर निर्भर करते है—'बातहि हाथी पाइए बातहि हाथी पाव'।'[2]

वर्णनात्मक निबन्धो मे मिश्र जी ने प्रमुख रूप से व्यास, उद्धरण, उपदेशात्मक, चित्रात्मक और काव्यात्मक शैलियो का प्रयोग किया है। सभी शैलिया पूर्ण उत्कर्ष पर पहुँची दिखाई पडती है। उनके वर्णनो की सजीवता का परिचय इन्ही शैलियो से ही मिल जाता है वर्णनात्मक निबन्धो की सफलता शैलियो पर ही निर्भर होती है। व्यास शैली वर्णनात्मक निबन्धो की प्रमुख शैली है। व्यास का अर्थ होता है विस्तार। जिस शैली मे विस्तार से विचार या भाव अभिव्यक्त किये जाय उसे व्यास कहते है। इसमे लेखक चलती भाषा मे, सहज रूप से अपने विचार स्पष्ट करता चलता है, कही-कही पुनरावृत्ति भी हो जाती है पर यह शैली बड़ी स्वाभाविक और सरस होती है। इसी का बहुत-कुछ रूप उपदेशात्मक और चित्रात्मक शैलियो मे भी रहता है। व्यास शैली का एक उदाहरण देखिये—'छोटे धधेवालो का तो कहना ही क्या है, बडे-बडे कोठी वाले हाथ पर हाथ धरे बैठे रहते हैं। यह तो बहुधा सुन लीजिए कि आज फलाने बिगड गये, आज ढिकाने का दिवाला निकल गया, पर यह बरसो से सुनने ही मे नही आता कि फलाने-फलाने रुजगार मे बन बैठे। यो ही नौकरी करने वालो की कौन कहे, उनकी जड तो धरती से सवा हाथ ऊपर (अधड मे) रहती ही है, जो रईस कहलाते है, जिनके यहां दस बीस जने नौकरी करते है वे स्वय हाय-हाय मे फसे रहते है। करें क्या विचारे, आमदनी आगे की सी रही नही, खर्च कम करें तो चार जने उंगली उठावे, पुरुखों का नाम धरा जाय। 'सम्पति

---

१. 'ब्राह्मण' खण्ड १ सख्या ८ (कान्यकुब्जों ही की सबसे हीन दशा क्यों है?')
२. 'ब्राह्मण' खण्ड ७ संख्या १० ('बात')

थारी पनि बडी यहै विपति इक आय'। ज्यो-त्यो भरमाला बाधे बैठे रहते है। पता लगावो तो ऐसा बिरला ही अमीर होगा जो कर्ज मे न डूबा हो।"[१]

उद्धरण शैली मे अन्य लेखको के वाक्याशो को उद्धृत करके अपने कथन का समर्थन किया जाता है। मिश्र जी ने अपने निबन्धो मे हिन्दी, सस्कृत और उर्दू के अनेक उद्धरण दिये है। इनसे उनके कथन बडे बलिष्ठ हो गये हैं। यथा—"धन्य गगे! सर्वदेवमयी गगा जिन्होने कहा है, निहायत ठीक कहा है, क्योकि 'श्रीहरिपद-नख-चन्द्रकात-मनि-द्रवित सुधारस। ब्रह्म-कमंडल-मडन, भव-खण्डन सुर-सरबस। शिवसिर मालति,माल, भगीरथ, नृपति-पुन्य-फल। ऐरावत-गज गिरि-पति हिमनग कठहार कल॥' इत्यादि वाक्य स्मरण होते ही तबियत को ताजगी होती है। फिर तुम्हे अमृतमयी क्यो न माने ? बहुत का विश्वास है, बहुत पोथियो मे लिखा है कि गगास्नातक मरणान्तर शिवत्व अथवा विष्णुत्व को प्राप्त होता है। श्री मान् कविवर अबदुल रहीमखा (खानेखाना) जो अकबर के समय मे सस्कृत के और भाषा के बडे अच्छे वेत्ता थे, उनका एक श्लोक बहुत प्रसिद्ध है कि 'अच्युतचरणतरगिणि! शशिशेखरमौलिमालतीमाले। मम तनुवितरणसमये हरता देया न मे हरिता।' अर्थात् विष्णु बनाओगी तो मुझे कृतघ्नता का दोष होगा, क्योकि तुम उनके चरण से निकली कहाती हो। अतएव शिव बनाना, जिसमे तुम्हे सिर पर धारण करू। अन्य मतवाले देख ले कि अच्छे मुसलमान भी हमारी गगा को क्या कहते है। फिर उन हिन्दुओ को हम क्या कहे जो गगा की प्रीति नही करते।"[२]

उपदेशात्मक शैली के दर्शन मिश्र जी के प्राय: सभी निबन्धो मे होते है। कोई भी विषय हो वे उपदेश का रास्ता निकाल लेते है। उपदेशात्मक शैली बडी सरल और सामान्य बुद्धिवालो के अनुकूल होती है। इसमे शब्दो का चमत्कार न होकर विचारो का सीधा प्रकाशन होता है। पाठको से इसमे बडी आत्मीयता से बात की जाती है। देखिए—"हम और हमारे सहयोगीगण लिखते-लिखते हार गये कि देशोन्नति करो, पर यहा वालो का सिद्धान्त है कि 'अपना भला हो देश चाहे चूल्हे मे जाय' यद्यपि जब देश चूल्हे मे जायगा तो हम बच न रहेगे। पर समझना तो मुश्किल काम है ना। सो भाइयो, यह तो तुम्हारे ही मतलब की बात है। आखिर कपडा पहिनोहीगे, एक बेर हमारे कहने से एक-एक जोडा देशी कपडा बनवा डालो। यदि कुछ सुभीता देख पडे तो मानना, दाम कुछ दूने न लगेंगे, चलेगा तिगुने से अधिक समय। देशी लक्ष्मी और देशी शिल्प के उद्धार का फल सेतमेत। यदि अब भी न चेतो तो तुमसे

---

१. 'ब्राह्मण' खण्ड ६ संख्या ८ ('समय का फेर')
२. 'ब्राह्मण' खण्ड ३, संख्या ९-१० ('गगा जी')

ज्यादा भकुआ कौन ? नही-नही हम सबसे अधिक, जो ऐसो को हितोपदेश करने मे व्यर्थ जीवन खोते हे ।"[१]

वर्णनात्मक निबन्धो मे चित्रात्मक और काव्यात्मक शैली का प्रयोग भी मिश्र जी ने कही-कही किया है । चित्रात्मक शैली मे वर्णन ऐसी कुशलता से किया जाता है कि उसकी चित्र सा सामने आ जाता हे । इस शैली के लिए मिश्र जी का 'वृद्ध' निबन्ध दर्शनीय है'। *काव्यात्मक शैली मे अलंकारो का प्रयोग विशेष रूप से होता है ।* मिश्रजी की काव्यात्मक शैली मे रूपक, उपमा, श्लेप, अनुप्रास और यमक अलकारो का प्रयोग अधिकतर किया गया है । इसके लिए नारी, पक्ष, इनकमटैक्स आदि निबन्ध उल्लेखनीय है । निम्नलिखित उद्धरण मे चित्रात्मक और काव्यात्मक दोनो शैलियो को एक साथ देखिए -- "इस दो अक्षर के शब्द तथा इन थोडी सी छोटी-छोटी हड्डियो मे भी उस चतुर कारीगर ने वह कला दिखलायी हे कि किसके मुँह में दात है जो पूरा-पूरा वर्णन कर सके । मुख की सारी शोभा और यावत भोज्य पदार्थो का स्वादु इन्ही पर निर्भर ह । कवियो ने अलक (जुल्फ), भ्रू (भौ) तथा वरुणी आदि की छवि लिखने मे बहुत-बहुत रीति से बाल की खाल निकाली है, पर सच पूछिए तो इन्ही की शोभा से सबकी शोभा है । जब दातो के बिना पुपला सा मुह निकल आता हे और चिबुक (ठोढी) एव नासिका एक मे मिल जाती हे उस समय सारी सुघराई मट्टी मे मिल जाती है । नैनबाण की तीक्ष्णता, भ्रूचाप की खिचावट और अलकपन्नगी का विष कुछ भी नही रहता । कवियो ने इसकी उपमा हीरा, मोती, माणिक से दी है वह वहुत ठीक है वरच यह अवयव कथित वस्तुओ से भी अधिक मोल के हैं । यह वह अग है जिसमे पाकशास्त्र के छहो रस एव काव्य-शास्त्र के नवों रस का आधार है ।"[२]

इस प्रकार मिश्र जी के वर्णनात्मक निबन्ध वर्णन, शैली, आदि की दृष्टि से बडे उत्कृष्ट है । इनमे स्वाभाविकता और सजीवता प्रचुर मात्रा मे है । हास्य और व्यग्य के फुहारे तथा कहावतो और मुहावरो के सुष्ठ प्रयोग इनमे अवर्णनीय छटा का सचार करते है । इन निबन्धो में मिश्र जी का व्यक्तित्व पूरी तरह निखरा दिखाई पडता है ।

विचारात्मक निबन्ध

ये निबन्ध बुद्धि प्रधान होते है । इनका सम्बन्ध मस्तिष्क से होता है । इनमें खण्डन-मण्डन, तर्क-वितर्क आदि का विशेष सहारा लिया जाता है । भाषा भी इनकी कुछ क्लिष्ट होती है तथा विचारों का प्रतिपादन होने के कारण नीरसता भी आ

---

१. 'ब्राह्मण' खण्ड ३ संख्या १२ ('देशी कपड़ा')

२. 'ब्राह्मण' खण्ड ५, संख्या २ ('दांत')

जाती है। विचारात्मक निबन्धों मे लेखक की प्रवृत्ति थोड़े मे बहुत कहने की ओर होती है। इन निबन्धों मे लेखक को अपने विषय का तर्क-सम्मत विवेचन ही अभीष्ट होता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल विचारात्मक निबन्धों का विवेचन करते हुए लिखते हैं—"शुद्ध विचारात्मक निबन्धों का चरम उत्कर्ष वही कहा जा सकता है जहा एक-एक पैराग्राफ मे विचार दबा-दबाकर कसे गये हो और एक-एक वाक्य किसी सम्बद्ध विचार-खण्ड को लिए हो।"[1] विचारात्मक निबन्ध लिखने मे अध्ययन, मनन और चिन्तन की बडी आवश्यकता होती है। इन निबन्धों मे भाव और कल्पना को अधिक प्रश्रय नही मिलता। इनमे विचार ही सुदृढ रूप मे सजाये जाते है। मिश्र जी स्वच्छन्द प्रकृति के होने के कारण अधिक विचारात्मक निबन्ध नही लिख सके। उनमे अध्ययन, मनन और चिन्तन की मात्रा बहुत-कम थी। वे जो कुछ लिखते थे, अपनी प्रतिभा के बल पर लिखते थे। उनमे प्रतिभा विलक्षण थी। इसी प्रतिभा का ही प्रभाव उनके निबन्धो पर पडा है। उनके विचारात्मक निबन्ध सख्या मे कम होते हुए भी उत्कृष्ट है। उनमे उनका प्रौढ ज्ञान सर्वत्र दिखाई पडता है। मिश्र जी के विचारात्मक निबन्धों के विषय प्राय साहित्यिक और धार्मिक है। इन निबन्धों मे सोने का डडा और पौंडा, नास्तिक, ईश्वर की मूर्ति, मतवालों की समझ, शिवमूर्ति, मदवादी अवश्य नर्क मे जायगे, ईश्वर का वचन, धर्म और मत, काल, पौराणिक गूढार्थ, भ्रम है, हरि जैसे को तैसा है, दशावतार, पुराण समझने को समझ चाहिए, झगडालू पथ, प्रतिष्ठा केवल प्रेमदेव की है, प्रेम एव परोधर्म, मुनीना च मतिभ्रम., खडी बोली का पद्य, आल्हा आह्लाद, अपभ्रंश, एक सलाह आदि निबन्ध प्रमुख है। साहित्यिक विषयो पर लिखे गये निबन्धो मे भाषा और उस पर चल रहे तत्कालीन विवाद पर विचार किया गया है। इन निबन्धो से उनके भाषा सम्बन्धी-शास्त्रीय ज्ञान का पता चलता है। 'आजी' शब्द पर किये गये आक्षेप पर दिया गया इनका उत्तर इस प्रसग मे दृष्टव्य है— "आजा (पितामह) आजी (बरच संबोधन मे अरी आजी—आर्या जी) ऐया और अजी, ऐजी तथा जी एव मद्रासी ऐयर (कुलीन ब्राह्मण) सब आर्य शब्द की रग बदलौअल है। बरच हिन्दी की सृष्टि ही सस्कृत शब्दो के अपभ्रश से हुई है। अक्षि (आंख), कर्ण (कान), मुख (मुह) इत्यादि लाखो शब्द यदि शुद्ध रूप मे प्रयोग किये जाय तो निरी सस्कृत ही बोलना पडे। इससे अपभ्रश का त्याग करना भी भाषा का अंग भग करना है क्योकि उसके बिना निर्वाह ही नही। प्रकृति का नियम ही सस्कृत के 'यत्' शब्द को बगाल मे ले जाकर 'जती' और 'जे' तथा विलायत मे पहुच कर दट(That) के रूप मे जैसे ला डाला है वैसे ही अनेक शब्दो के अनेक रूपातर करके अर्थान्तर की छटा दिखाता रहता है।... अग्रेजी 'जियोग्राफी' अरबी 'जुगराफिया' और फारसी

---

१. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' (२००६ वि०) पृ० ५०९

'जायगाह्' 'जागाह्' 'जागह' 'जगह्' 'जाय' और 'जा' सब संस्कृत बाले 'जगत्' अथवा 'जग' के रूपान्तर है। पर यदि कोई हठत. उलट फेर के किसी शब्द की किसी भाषा के साथ रजिस्ट्री किया चाहे तो हसी कराने के सिवा कुछ लाभ न उठायेगा।"[1] मिश्र जी को शब्दो की व्युत्पत्ति का अच्छा ज्ञान था। वे बडे तर्क पूर्ण ढग मे शब्दो की व्युत्पत्ति पर विचार करते थे। उनके ये विचार, उनके प्रौढ भाषा ज्ञान के प्रतीक है। 'आप' शब्द की व्युत्पत्ति देखिए वे किस प्रकार सिद्ध करते है—"संस्कृत मे एक आप्त शब्द है, जो सर्वथा माननीय अर्थ मे आता है, यहा तक कि न्याय शास्त्र मे प्रमाण चतुष्टय (प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, और शब्द) के अन्तर्गत शब्द-प्रमाण का लक्षण ही यह लिखा है कि 'आप्तोपदेश: शब्द.' अर्थात् आप्त पुरुष का वचन प्रत्क्षादि प्रमाणो के समान ही प्रमाणित होता है, वा यो समझ लो कि आप्त-जन प्रत्यक्ष, अनुमान और उपनाम प्रमाण से सर्वथा प्रमाणित ही विषय को शब्द बद्ध करते है। इससे जान पडता है कि जो सब प्रकार की विद्या, बुद्धि, सत्यभाषणादि सद्‌गुणो से सयुक्त हो वह आप्त है और देवानगरी भाषा मे आप्त शब्द सबके उच्चारण मे सहजतया नही आ सकता इससे उसे सरल करके आप बना लिया गया है, और मध्यम पुरुष तथा अन्य पुरुष के अत्यन्त आदर का द्योतन करने के काम मे आता है।"[2] इसके साथ ही अन्य भाषाओ मे भी वे 'आप' का रूपान्तर बडी कुशलता से दिखाते है— "अरबी के अब्ब (पिता, बोलने मे अब्बा) और योरोपीय भाषाओ के पापा (पिता) पोप (धर्म-पिता) आदि भी इसी आप से निकले है। हा, इसके समझाने मे भी जी ऊबे तो अग्रेजी के एबाट (Abot-महत) तो इसके हई है, क्योंकि उस बोली मे ह्रस्व और दीर्घ दोनों प्रकार का स्थानापन्न है, और आकार का वकार मे बदल लेना कई भाषाओ की चाल है। रही टी (T) सो वह तो 'तकार' हई है। फिर क्या न मान लीजिएगा कि एबाट साहब हमारे बरंच शुद्ध आप्त से बने है। हमारे प्रान्त मे बहुत से उच्च वंश के बालक भी अपने पिता को अप्पा कहते है, उसे कोई-कोई लोग समझते है कि मुसलमानो के सहवास का फल है। पर उनकी समझ नही है। मुसलमान भाइयो के लडके कहते है अब्बा और हिन्दू सन्तान के पक्ष मे 'पकार' का उच्चारण तनिक भी कठिन नही होता, यह अग्रेजो की 'तकार' और फारस वालो की टकार नही है कि मुह से न निकले और सदा मोती का मोटी अर्थात् स्थूलागी स्थी और खस की टट्टी का तत्ती अर्थात् गरम ही हो जाय। फिर अब्बा को अप्पा कहना किस नियम से होगा। हा, आप्त से आप और अप्पा तथा आपा की सृष्टि हुई है, उसी को अरबवालो ने अब्बा मे रूपान्तरित कर लिया होगा। क्योकि उनकी वर्णमाला मे 'पकार' (पे) नही होती। सो बिस्वा बप्पा, बाप, बाबू, बब्बा, बाबा, बाबू आदि

---

१. 'ब्राह्मण' खण्ड ७ संख्या ६ (अपभ्रंश')
२. 'ब्राह्मण' खण्ड ९ सख्या ८ ('आप')

भी इसी मे निकले है क्योंकि जैसे एशिया की कई बोलियो मे 'पकार' को 'बकार' व 'फकार' मे बदल देते है, जैसे पादशाह-बादशाह और पारसी-फार्सी आदि, वैसे ही कई भाषाओ मे शब्द के आदि मे 'बकार' भी मिला देते है जैसे वक्ते शब बवक्ते शब तथा तग आमद बतग आमद इत्यादि और शब्द के आदि को ह्रस्व 'अकार' का लोप भी हो जाता है, जैसे अमावस का मावस (सतसई आदि ग्रन्थ मे देखो) ह्रस्व अकारान्त शब्दो मे 'अकार' के बदले ह्रस्व वा दीर्घ, दीर्घ को ह्रस्व अ, इ, उ आदि की वृद्धि वा लोप भी हुवा ही करता है, फिर हम क्यो न कहे कि जिन शब्दो मे अकार और पकार का सम्पर्क हो, एव अर्थ मे श्रेष्ठता की ध्वनि निकलती हो वह प्राय समस्त ससार शब्द हमारे आप्त महाशय वा आप ही के उलट-फेर से बने है।"[1] मिश्र जी का यह विवेचन वस्तुत किसी भाषा वैज्ञानिक के विवेचन से कम महत्व का नही है। इसमे उनकी बौद्धिकता, सूझ और तार्किकता पूर्ण उत्कर्ष पर पहुची हुई है।

धार्मिक विषयो से सम्बन्धित निबन्धो मे आस्तिक-नास्तिक, धर्म-मत, सगुण-निर्गुण, ज्ञान और प्रेम आदि पर तर्क-सम्मत विचार किया गया है। मूर्तिपूजा के विवाद का निराकरण करते हुए वे लिखते है—"विचार कर देखिए तो प्रतिमा पूजन मे नास्तिको के अतिरिक्त बचा कोई भी नही है। जो ईश्वर को मानेगा उसका निर्वाह किसी न किसी प्रकार की प्रतिमा के बिना नही हो सकता चाहे ध्यानमयी प्रतिमा हो चाहे शब्दमयी प्रतिमा हो, है सब हमारे ही मन और वचन का विकार और उस निराकार निर्विकार के महत्व का अभ्यास मात्र। पर क्या कीजिए ईश्वर को मानकर चुपचाप बैठे रहे अथवा मन मे किसी भाति उसका विचार आने ही न दे तो भी नही बनता। इसी से आस्तिक मात्र को उसकी प्रतिमा बनानी पडती है। जहाँ हमने मन अथवा वचन से कहा—"हे प्रभो हम पर दया करो" वही हम उस निराकार की छाती के भीतर मन की कल्पना कर चुके। क्योंकि मन न होगा तो दया ठहरेगी कहाँ और शरीर न होगा तो मन रहेगा कहाँ? जिस समय हम कहते है कि "हे नाथ! हमारी रक्षा करो, हम तुम्हे प्रणाम करते है" उस समय उस अप्रतिमा के आस्तित्व मे हाथ और पाँव की कल्पना करते है क्योंकि रक्षा हाथो से की जाती है और प्रणाम चरणो पर किया जाता है। कारण के बिना कार्य का मान लेना तर्कशास्त्र के विरुद्ध है, फिर कौन निराकारवादी ईश्वर के मन कल्पित हस्तपदादि रचना से बच गया?"[2] मिश्र जी के धार्मिक विषयो पर लिखे गये निबन्धो मे अवैज्ञानिकता एव सकीर्णता नही है। उनमे विभिन्न तर्क देते हुए नवीन युग की मान्यताओ के अनुरूप विचारो का प्रतिपादन किया गया है। यद्यपि मिश्र जी मे सनातन धर्म के प्रति ममत्व था पर वे उसके अन्धविश्वासो और पुरातन

---

१. 'ब्राह्मण' खण्ड ९ संख्या ८ ('आप')
२. "ब्राह्मण" खण्ड ८ सख्या ११ (ईश्वर की मूर्ति)

विचारधाराओ से बहुत दूर थे। वे सनातन-मान्यताओं को वैज्ञानिक दृष्टि से देखते थे। कामदेव के वाहन और कुसुमायुध नाम की व्याख्या देखिए वे कितने अच्छे ढग से करते है—"भगवान मनोभव का बाहन तथा ध्वजाचिन्ह (जिस देवता का जो वाहन होता है बहुधा वही ध्वजा में भी रहता है) मत्स्य है। इसका तात्पर्य वैद्यक के मत मे यह है कि मछली खाने तथा काडलिवर आइल (मछली का तेल) पीने से यह बहुत बुद्धि की प्राप्त होते हैं। ज्योतिष के मत से मीन राशि के सूर्यो मे अधिक उन्नत होते हे। कर्मकाण्ड की रीति से मछलियो को चारा देने से अनेक कामना सिद्ध होती है तथा हमारे सिद्धान्त मे—"मीन काटि जल धोइए खाए अधिक पियास। तुलसी प्रीति सराहिए मुयेहु मीत की आस।" इस महावाक्य का अनुसरण करने से कोटि काम सुन्दर भगवान प्रेमदेव बडे ही प्रसन्न होते है। इनके कुसुमायुध नाम का अभिप्राय यह है कि नाना जाति के पुष्पो का अवलोकन और घ्राण करने से मन्मथ का उद्दीपन तथा विज्ञान दृष्टि मे देखने से अनेक सुख संतोषजनक विचार ऐसे उत्पन्न होते है कि उनका अनुभव करो तो जान पडता है कि किसी ने बाण मार दिया। संसारियो को फूल बूटा तथा मछलियो के चित्र काढने से कीर्ति एवं धन लाभ होता है जिससे सारी कामना सफल होती है और सदा निशाने पर तीर लगता रहता है। अर्थात् निर्वाह योग्य वस्तुओ का मनोरथ निष्फल नही होने पाता। रसिको के लिए कुसुम कोमल अवयव वालो का दर्शन स्पर्शन तथा मीन चचल नेत्रो का अवलोकन बाण के समान हृदयस्पर्शी होता है। ऐसे-ऐसे अगणित भाव अनुभव करके इस देवता के साथ मत्स्य और पुष्प का सम्बन्ध रक्खा गया है।"[1]

हास्य और व्यंग्य के अवतार होते हुए भी मिश्र जी अपने विचारात्मक निबन्धों मे काफी सयत और गम्भीर है। ये निबन्ध उनके दोहरे व्यक्तित्व के प्रतीक है। इनमे वे बड़ी सतर्कता के साथ विभिन्न मतो का खण्डन-मण्डन करते हुए आगे बढते है। इन निबन्धो मे उनकी विवेचनात्मक और तार्किक शक्ति पूर्ण उत्कर्ष पर पहुंची दिखाई देती है। अपने मत या विचार को पुष्ट करने के लिए वे प्रसिद्ध विद्वानो के उद्धरण भी बीच-बीच म देते जाते है। प्रत्येक विचार-खण्ड के प्रत्येक पहलू पर उनकी दृष्टि समान रूप से रहती है। वे एक-एक बात का क्रमिक विवेचन करते चलते है। कही-कही पर, महत्वपूर्ण तथ्यो की पारिभाषिक शब्दावली मे भी बाध देते है—"धर्म वास्तव मे परमानन्दमय परमात्मा एव उनके भक्तो से प्रेम तथा संसार मे क्षेम–स्थापन का नेम मात्र है।[2]" इन निबन्धों मे हास्य और व्यंग्य, कहावतो और मुहावरों तथा ग्रमीण शब्दो का प्रयोग बहुत कम किया गया क्योकि विचारात्मक निबन्धो मे इन्हे

१. 'ब्राह्मण' खण्ड ८ संख्या ११ (ईश्वर की मूर्ति)
२. 'ब्राह्मण' खण्ड ८ संख्या १२ ('छल')

बहुत कम स्थान दिया जाता है। मिश्र जी ने इनका प्रयोग नीरसता के परिहार के लिए यत्र-तत्र ही किया है। उदाहरण के लिए कुछ पंक्तियां देखिए—"जब आप हमारी मूर्तियो को वैदिक प्रमाणों से पाषाण बनावेंगे तब हम भी कह देंगे कि आप प्रेममय परमात्मा को तो मानते ही नही, न उसका प्रेमानन्द लाभ करने मे यत्नवान होते है, केवल शास्त्रार्थ नाधने के लिए 'परमेश्वर' नामक शब्द ठहरा रक्खा है जो परमेश्वर अक्षरो का विकार मात्र है, तथा जिसके विषय मे श्री मार्कण्डेय पुराण मे लिखा है कि 'देवि त्वेश्वर शुभस्त्रैलोक्ये परमेश्वर' पर भइया, हम तो उसकी महारिणी आदिशक्ति को मानेंगे, आपकी इच्छा रही। यदि इस उत्तर से आपको क्रोध आवे तो अपने निराकार निर्विकार से हमे दड दिवाइए और हम अपने साकार दृश्यमान भगवत्स्वरूप से सहायता लेकर उन्ही के द्वारा कपालभजन करके तत्क्षण अपने ईश्वर की महिमा दिखा देंगे। पर यह बाते तो उस समय के लिए है जब झगडा खडा हो।[१]"

मिश्र जी के विचारात्मक-निबन्ध-प्रमुख रूप से समास, व्यास, उद्धरण काव्यात्मक और तर्कप्रधान शैलियों मे लिखे गये है। समास शैली की इन निबन्धों मे प्रधानता है। यह शैली विचारात्मक निबन्धो के लिए विशेष उपयोगी होती है। उसमे लेखक की प्रवृत्ति थोडे मे बहुत कहने की होती है। सस्कृत के तत्सम शब्दो का प्रयोग इस शैली मे बहुतायत से किया जाता है। कही-कही कृत्रिमता भी आ जाती है। पर मिश्र जी की शैली बडी स्वाभाविक है। उसमे चमत्कार प्रदर्शन की भावना नही है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित पंक्तिया देखिए—"जो इनके रसास्वादन के अभ्यासी हैं तथा इन्हे परिमितिबद्ध रख के दास्य स्वीकार करने के स्थान पर मनोविनोद सम्पादन मात्र मे इनकी सहायता समयानुसार ले लिया करते है वे कदापि पागल नही बनते वरच पागलपन की जड अर्थात् चित्त की उद्विग्निता दूर करके अधिक सावधान और चातुर्यमान हो जाते है और बहुधा देशकाल पात्र का विचार करके इन्ही के द्वारा दूसरो को पागल बनाके, हसा खिला के मूड़ लेते है।[२]"

व्यास शैली मिश्र जी को विशेष प्रिय है। इसके लिखने मे उन्हे बड़ी स्वच्छन्दता रहती है। इसका प्रयोग वे अधिकतर अपने निबन्धो मे करते है। देखिए— "जिस देश मे शिल्प विद्या का प्रचार और जहा लोगो के जी मे स्नेह एव सहृदयता का उद्गार होगा वहा मूर्तिपूजा किसी के हटाए नही हट सकती। मुहम्मदीय मत जब तक अरब के अशिक्षितो मे रहा तभी तक प्रतिमापूजन से बचा रहा, जहा फारस के रसिको मे फैला झट 'शीया' सम्प्रदाय नियत हो गयी। इसी प्रकार राष्ट्रीय मत जब तक तुर्किस्तान मे रहा, जहा के प्रेम की यह दशा है कि खुद हजरत ईसा को

१. 'ब्राह्मण' खण्ड ६ संख्या १० ('पौराणिक गूढ़ार्थ')
२. 'ब्राह्मण' खण्ड ६ संख्या ३ ('धर्म और मत')

उनके चुने हुए बारह शिष्यो मे से एक शिष्य यहूदाह इस्करोती ने केवल तीस रुपये के लोभ मे प्राण ग्राहक शत्रुओ के हाथ सौप दिया, ऐसे देश मे मूर्तिपूजा क्या होती जहा साक्षात ही पूजा के लाले पडे थे। परन्तु रूम मे मसीही धर्म को आते देर न हुई कि महात्मा मसीह की प्रतिकृति पूजने लगी, रोमन कैथोलिक मत फैला गया।'[1]

उद्धरण शैली का प्रयोग मिश्र जी बहुतायत से करते है। उनका शायद ही कोई ऐसा निबन्ध हो जिसमे एक-आध हिन्दी, सस्कृत और उर्दू का उद्धरण न हो। उदाहरण के लिए कुछ पक्तिया देखिए—"उस अतर्क्य की उपासना भी अतर्क्य है। जैसी श्री वल्लभाचार्य स्वामी की आज्ञा है कि 'सर्वदा सर्वभावेन भजनीयो ब्रजाधिप'। सोई सब महानुभावो मे देख पडता है। शकर स्वामी ने 'अहब्रह्मास्मि' कहा। सो प्रेम की पराकाष्ठा से अहकार व नास्तिक्य से नही। 'अनलहक' कहने को मसूर के कोई नही समझा। वह खुद को भूल जाते है जो उनकी याद करते है। पर यह बात कहने व शास्त्रार्थ करते फिरने की नही है, केवल आत्मा में उस आश्चर्यमय का अनुभव करो। आनन्द के जोश (उमग) मे जो निकलेगा सच ही है। इसके बिना वही 'कलौ वेदान्तिनो सति फाल्गुने बालका इव' की गति होनी है। हमारे सर्वथा मान्य श्री भारतेन्दु जी ने कहा है 'जो है तुम से जुदा व मेरे लेखे रब या राम नही। यार तुम्हारे सिवा दुनिया मे मुझे कुछ काम नही।' अथवा 'प्यारे प्राणनाथ पिय-प्रियतम सुनतहि हियो जुडात। ईश्वर ब्रह्मनाम हो वासे कानन फारे खात।' क्या कोई सहृदय इन वचनो को नास्तिकता कह सकता है ? कभी नही।'[2]

काव्यात्मक शैली का प्रयोग मिश्र जी ने विचारात्मक निबन्धो में अधिक नही किया, क्योकि उनके विचारात्मक निबन्धो का उद्देश्य चमत्कार प्रदर्शन न होकर विचारो का प्रतिपादन करना था। इस शैली के उदाहरण उनके निबन्धो मे यत्र-तत्र ही मिलते है। इसके लिए 'झगडालू पथ' निबन्ध की कुछ पक्तिया उदाहरणार्थ दी जा सकती है—'यदि मनोदृष्टि पक्षपात के रोग से दूषित न हो और सहृदयता के अंजन से अजित की जाय तो प्रत्यक्ष देख पडेगा कि शैव, वैष्णव शाक्त, सौर और गाणपत्य लोगो के यहा ईश्वर की महिमा तथा जीव के वास्तविक कल्याण के सभी मनोविनोदक एव शान्ति कारक सामान पुष्कलता के साथ विद्यमान है तथा प्रत्येक सम्प्रदाय की अनेक शाखाओ मे से एक-एक के मध्य उपास्यदेव की महान महिमा और उपासक के आनन्द प्राप्ति की रीति वह—वह देखने मे आती है कि साधारण बुद्धि को समझने की सामर्थ्य नही।'[3]

---

१ 'ब्राह्मण' खण्ड ३ संख्या ६ ('शिवपूजन')

२. 'ब्राह्मण' खण्ड २ संख्या ३ ('मतवालों की समझ')

३. 'ब्राह्मण' खण्ड ९ संख्या ४ ('झगड़ालू पथ')

तर्क-प्रधान शैली का विचारात्मक निबन्धो मे विशेष महत्त्व है। इस शैली मे, विषय से सम्बन्धित अन्य विचारो या शकाओ का खण्डन-मण्डन करते हुए अपने विषय का प्रतिपादन किया जाता है। इसे विवेचन शैली भी कहते है। मिश्र जी के निबन्धो मे यह शैली काफी प्रयुक्त हुई है। उदाहरणार्थ कुछ पक्तिया देखिए—"प्रत्येक ज्ञानी का वचन वास्तव मे कुछ भलाई ही सिखाता है। जिन्होने कहा है 'ससार झूठा है' वे निश्चय सच्चे थे। उनके इस कथन का तात्पर्य यह था कि सासारिक विषय केवल थोडे दिन के लिए है। अत मे वही 'मूद गई आखे फिहि काम की।' अतएव उनके स्वादु मे हमे ऐसा न लिप्त हो रहना चाहिए कि हम एग्लोइण्डियन लोगो कि भाति यह सिद्धान्त कर ले कि 'आप जियते जग जिए कुत्ता मरे न हानि।' ऐसे ही जिन्होने जगत को सत्य माना है वे भी सच्चे है क्योकि वे समझते थे कि जो ससार सर्वदा मिथ्या ही मान लिया जाय तो हम भी मिथ्या हो जायगे और हमारे अवश्य कर्त्तव्य धर्म कार्य भी मिथ्या ठहरेगे। यदि किसी बुद्धि के शत्रु ने सत्कर्म मिथ्या समझ लिया तो उसने अपना तथा अपने मित्रो का जन्म ही नष्ट कर दिया, जैसा राजर्षि भर्तृहरि जी का सिद्धान्त है कि 'येषा न विद्या न तपो न दान ज्ञान न शील न गुणो न धर्म। ते मर्त्य लोके भुविभारभूता मनुष्य रूपेण मृगाश्चरति।' अब हमारे सर्वहितैषी सज्जन विचार ले कि उपरोक्त दोनो बाते यद्यपि परस्पर विरुद्ध सी ज्ञात होती है पर वस्तुत दोनो का झुकाव यही है कि यावज्जीवन मनुष्य को निरा निजस्वार्थी न होकर प्रसन्नतापूर्वक सदनुष्ठानो मे लगे रहना चाहिए।"[१]

मिश्र जी के विचारात्मक निबन्धो के तर्क अकाट्य है। उनमे उद्धरण आदि यथास्थान होने से सदेह के लिए कही स्थान नही रह जाता। वे अपने विचारो के प्रमाण अनायास ही ढूढ लेते है। मिश्र जी को उद्धरण आदि के लिए कही भटकना नही पडता था। वे एक बार जो चीज पढ लेते थे वह उनके मस्तिष्क मे पत्थर की लकीर सी बन जाती थी। इसलिए वे गहन अध्ययन न करके भी उत्कृष्ट निबन्ध लिख जाते थे। बालमुकुन्द गुप्त लिखते है—"दूसरे लोग बहुत सोच-सोच कर और बडी चेष्टा से जो खूबिया अपने गद्य मे पैदा करते थे वह प्रतापनारायण मिश्र को सामने पडी मिल जाती है।"[२] मिश्र जी के विचारात्मक निबन्धो को देखकर कोई यह नही कह सकता कि ये निबन्ध किसी अध्ययनशील और सुदृढ-विचारक के लिखे नही है। इन निबन्धो को देखने से उन पर लगाये ग्रामीणता आदि के आक्षेपो का सहज ही परिहार हो जाता है। मिश्र जी अपने विचारात्मक निबन्धो मे पूर्ण सफल है।

---

१. 'ब्राह्मण' खण्ड सख्या ३ ('मतवालो की समझ)

२. 'बालमुकुन्द गुप्त-निबन्धावली' प्रथम भाग (२००७ वि०)-पृष्ठ ७

भावात्मक निबन्ध

ईन निबन्धो का सम्बन्ध हृदय मे होता है। इनमे भाव-व्यजना और रागात्मकता की प्रमुखता रहती है। लेखक के अपने भाव ही इन निबधो मे अभिव्यक्त होते है। भावावेश मे होने के कारण लेखक का ध्यान भाषा और भावो की क्रमबद्धता पर विशेष नही रहता। वह कल्पना के सहारे कवित्वपूर्ण ढंग से अपने भावो मे उडता चला जाता है। इन निबन्धो मे तर्क आदि के लिए कोई स्थान नही है। अध्ययन भी इनके लिए अपेक्षित नही। लेखक की गहन अनुभूतिया और उनका स्पष्ट प्रकाशन ही भावात्मक निबन्धो का सर्वस्व है। कुछ साहित्यकार भावात्मक निबन्धो को वैयक्तिक निबन्ध के अन्तर्गत मानते है पर इन दोनो की बडी गहरी सीमा रेखायें है। इन्हे एक मे नही मिलाया जा सकता। भावात्मक निबन्धों मे हृदय प्रमुख होता है और वैयक्तिक निबन्धो मे भौतिक सम्बन्ध परिवार आदि प्रमुख होते हैं। *आचार्यनन्ददुलारे वाजपेयी विषयी प्रधान निबन्धो के विषय मे लिखते है*—"प्रत्येक व्यक्ति की रुचिया पृथक-पृथक होती है। इन्ही रुचियों का प्रकाशन ऐसी शैली मे किया जाना जो एक विशेष वातावरण का निर्माण करे, व्यक्तिमुखी निबन्ध शैली के उपयुक्त होता है। ऐसे निबन्ध प्राय. पारिवारिक वातावरण और सामान्य घरेलू दृष्टान्तो के लिए होते है।'[1] प्रो० जयनाथ 'नलिन' वैयक्तिक और भावात्मक-निबन्धो का अन्तर इस प्रकार स्पष्ट करते है—"आत्मपरक निबन्ध-लेखक भौतिक जीवन, समाज-सम्बन्ध, घरगृहस्थ से ही अधिक सम्बन्ध रखते है। भावात्मक तक हृदयानुभूति से संबद्ध है।'[2] इस प्रकार दोनों कोटियो मे पर्याप्त भेद है।

मिश्र जी के भावात्मक निबन्ध सख्या मे बहुत अधिक नही है। इनके भावात्मक निबन्धों को प्रमुख रूप से दो भागों में विभक्त किया जा सकता है—शुद्ध-भावात्मक निबन्ध और विचार प्रचार प्रधान भावात्मक निबन्ध। शुद्ध-भावात्मक निबन्धो मे प्रायः तत्कालीन देश-दशा या किसी महापुरुष की मृत्यु पर शोक-व्यक्त किया गया है। इस कोटि के निबन्धो मे रक्ताश्रु, वाजिदअलीशाह, अहह कष्टमपडितता विधेः, दीवाली मे उपासना आदि निबन्ध मुख्य है। इन निबन्धो मे प्रबलता का आधिक्य है। भावावेश मे लिखे गये होने के कारण विचारो मे क्रमबद्धता नही है। उदाहरण के लिए भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की मृत्यु पर लिखे गये शोक-निबन्ध की कुछ पंक्तिया देखिए-"हाय! हृदय विदीर्ण हुवा जाता है। आसू रुकते ही नही है। हाय-हाय सुनने से पहिले ही हमारा निरलज्ज शरीर क्यो न छूट गया। हाय पापी प्राण तुम क्यो न

---

१. विष्णुदत्त अग्निहोत्री : दृष्टिपात' (१९५५ ई०) आचार्यनन्ददुलारे वाजपेयी 'प्राक्कथन' पृष्ठ ४

२. प्रो० जयनाथ 'नालिने' : 'हिन्दी-निबन्धकार' (१९५४ ई०) पृष्ठ २७

निकल गये। हाय इस अधम जीवन का अन्त क्यों न हो गया। हाय आशा की जड़ कट गयी। बस अब क्या है, अभागा गंगा डूब जा। अरे अब मेरा कौन है ? स्वामी दयानन्द चल बसे। छाती पर पत्थर धर लिया। केशव बाबू सिधार गये, रो धो के कलेजा थाम लिया। यह दुख नहीं सहा जाता, हाय ! अब क्या होगा ? हाय हम तो हम, हमारे प्यारे राधाकृष्णदास को कौन समझावे ? रानी ही नहीं अनाथ हुई, भारत माता के कर्म में आग लग गयी। हाय देश-हितैषिता विधवा हो गयी। हाय हम क्या करेंगे ?"[1] भावावेश में लेखक को पुनरावृत्ति का भी ध्यान नहीं रहता, वह भावों में ही बहता चला जाता है। इसी प्रकार देश की दयनीय दशा देखकर भी मिश्र जी को बड़ा दुख होता है और वे लिखते हैं "हाय भारत ! न जाने तुम से दैव कब तक रुष्ट रहेगा। हा भगवति देवनागरी ! तुम्हारे भाग्य न जाने कब तक ऐसे ही रहेंगे। हाय वेद से ले के आल्हा तक की आधार हमारी प्यारी सर्वगुणागरी नागरी के अदृष्ट में न जाने क्या लिखा है कि इस बिचारी की वृद्धि के लिए हम चाहे जैसा हाय हाय करें पर सुनने वाला कोई देख ही नहीं पड़ता। हाय ! राजा अन्य देशी होने के कारण इसके गुण नहीं समझते। प्रजा मूर्ख और दरिद्र होने से इसकी गौरवरक्षा नहीं कर सकती पर परमेश्वर को हम क्या कहें जो सर्वज्ञ, अन्तर्यामी, दीनबन्धु इत्यादि अनेक विशेषण विशिष्ट होने पर भी हमारी मातृभाषा को भूला बैठा है। हा जगदीश ! क्या तुम्हारी दया से भी हमारे पाप बढ़ गये।"[1]

विचार प्रधान भावात्मक निबन्ध मनोविकारों पर लिखे गये हैं। इनमें हृदय की अपेक्षा बुद्धि से अधिक सहारा लिया गया है। इन निबन्धों में मनोयोग, स्वार्थ, आत्मीयता, चिन्ता, काम, निर्लिप्तता, लोकलज्जा, आत्मगौरव आदि उल्लेखनीय हैं। ये निबन्ध मनोविकारों से सम्बद्ध हैं अवश्य, पर इनमें विवेचनात्मक अधिक है। 'चिन्ता' नामक निबन्ध की कुछ पंक्तियाँ इस प्रसंग में द्रष्टव्य हैं—'स्वप्न भी चिन्ता-शक्ति की लीलाएं है और यह वह शक्ति है जिसका अवरोध करना मनुष्य के पक्ष में इतना दुसाध्य है कि असाध्य कहना भी अत्युक्ति न समझनी चाहिए। वह चाहे जागने में अपना प्राबल्य दिखलावे चाहे सोने में किन्तु परबस सब अवस्था में कर देती है जिसके प्रभाव से हम सोते में भी मारे-मारे फिरते हैं और जिन पुरुषों तथा पदार्थों का अस्तित्व नहीं है उनका संसर्ग प्राप्त करके मुंदी हुई शक्तिहीन आंखों से आंसू बहाते अथवा नाना घटनाएं देखते हैं, बन्द मुंह से बातें करते और ठट्ठा मारते हैं, बरंच कभी-कभी उसी की प्रेरणा से मृतकवत् पड़े हुए भी सचमुच खटिया छोड़ भागते हैं, उसकी जागृत दशा वाली, हाथ पांव चलते हुए चेतनावस्था वाली प्रबलता का क्या ही कहना है।"[2]

---

१. 'ब्राह्मण' खण्ड २, संख्या ११, ('रक्ताश्रु')
२. 'ब्राह्मण' खण्ड ५, संख्या ६, ('अहह कष्टमपडिततता विधेः'
३. ,, ,, ९, ,, ६, ('चिन्ता')

मिश्र जी के शुद्ध-भावात्मक निबन्धों में कहीं-कहीं वैयक्तिक निबन्धों का भी आभास होने लगता है। उनकी सहृदयता निबन्धो को बहुत-कुछ वैयक्तिक निबन्ध की कोटि में पहुचा देती है। उन्हे तत्कालीन देश-भक्तों, समाज-सुधारको और सच्चे पत्रकारों मे बडी सहानुभूति थी। वे उनकी कठिनाइयो को जनता तक पहुचाने और उनपर बडी सहृदयता से विचार करते थे। बालकृष्ण भट्ट की सच्चाई और कर्मठता पर वे बहुत मुग्ध थे। एक बार सरकार ने भट्ट जी पर, दस रुपया टैक्स लगा दिया। इसको सुनकर मिश्र जी का हृदय उद्विग्न हो उठा और उन्होने 'मरे का मारै साह मदार' निबन्ध मे सरकार के इस कार्य की जोरदार भर्त्सना की। 'हमारे मान्यवर' 'हिन्दी-प्रदीप' का हाल, हम समझते है, हमसे भी बुरा होगा। 'ब्राह्मण से दूना उसका आकार है, चौगुनी उसकी आयु है, उसके सम्पादक श्रीबालकृष्ण भट्ट है, वह हम से भी गई बीती दशा मे ठहरे। कुटुम्ब बडा, खर्च बडा, सहायक सगा बाप भी नही। स्पष्टवक्तापन के मारे जबानी दोस्त भी कोई नही। ऐसी हालत मे सरकार ने १०) रु० टैक्स के ले लिए। हम क्यो न कहें—'मरे को मारै शाह मदार'। वह बिचारे कौन धधा करते है, जो उनपर टिक्कस! दस रुपये मे क्या सरकार का खजाना भर गया। कर्मचारियों की कौन बडी नेकनामी हो गयी। कौन तनख्वाह बढ गई। कौन पदवी (खिताब) मिल गई। हाय क्या जमाना है। कि राजा प्रजा कोई गरीबो की हाय से नही डरता।"[1] इस प्रकार के सहृदयता पूर्ण निबन्ध बहुत कुछ वैयक्तिक निबन्ध की कोटि मे पहुच जाते है। पर मिश्रजी के अधिकाश निबन्धो मे भावाधिक्य और विचारो की प्रमुखता है। इसलिए उन्हें वैयक्तिक निबन्धों मे नही रक्खा जा सकता।

मिश्र जी के भावात्मक निबन्धो मे काल्पनिकता अधिक नही है, वे भावात्मक-तथ्यो की भूमिका पर लिखे गये है। हास्य और व्यग्य को भी उनमे स्थान नही मिला। वैसे भी भावात्मक निबन्धो मे भाव प्रबलता अधिक होती है इसलिए उनमे हास्य और व्यग्य को स्थान नही मिल पाता। कहावतो और मुहावरो का प्रयोग भी उनमे बहुत कम हुआ है। शैली भी उनकी आलकारिकता से रहित है पर ओजपूर्ण (Forcible) होने के कारण बड़ी प्रभावोत्पादक है देखिए—

"नाथ! जिन्होने तुम्हारी अलौकिक लीला देखी है, तुम्हारे अकथनीय खेल देखे है, वे केवल तुम्हारे साथ हार जाने को अपना सर्वस्व दाव पर लगा देगे। उन्हे तो केवल तुम्ही लुभा सकते हो। आहा! जगत मे चोर, जुआरी और इससे बुरा कहला कर भी तुम्हारे साथ तन, मन, धन सब हार बैठने मे वह आनन्द है जिसके आगे त्रैलोक्य की जीत भी तुच्छ जंचती हे। प्रभो तुम्हारी सभी बाते अतर्क्य है।

१ 'ब्राह्मण' खण्ड ४, संख्या ९, ('मारे का मारै साह मदार')

यद्यपि तुम सर्वोपरि, सर्वश्रेष्ठ हो पर हमारा विश्वास यही है कि तुम प्रेमियों के साथ प्रेमद्यूत मे हार के, अपनी प्रभुता छोड के, उनसे स्नेह करते हो।''[1]

मिश्र जी ने शुद्ध-भावात्मक निबन्धो मे प्रमुख रूप मे तरग और प्रलाप तथा विचार प्रधान भावात्मक निबन्धो में व्यास और समास शैली का प्रयोग किया है। तरंग शैली मे भाव लहराते हुए—तरंग की भाति उठते तथा गिरते प्रतीत होते है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित पक्तिया दृष्टव्य है—''हे परमानन्दमय ! प्रेम-स्वरूप ! प्राणप्रिय ! तुम्हारे प्रेम की झलक मात्र मे हमारे हृदय मदिर की चिर सचित पाप मलिनता एक साथ दूर होती है। हम चाहे कोटि यत्न करे तो भी न हो सके, पर तुम्हारी सहज अनुग्रह से हमारा आत्मभवन स्वच्छ हो जाता है, प्रकाशपूर्ण हो जाता है और नवीन शोभायुक्त हो जाता है। हे परम सुन्दर । तुम्हारे सान्निध्य से तदीय समाज को नित्य त्यौहार, सदा दिवाली ही रहती है। हमारी सासारिक चिन्ता की तो खील-खील हो जाती है। तुम्हारे आगे सारा जगत लडका का घिरौंदा सा दिखाई देता है। तुम्हारे भक्ति पन्थ मे बाधा करने को ससार चाहे कोटि रूप धरे पर तुम्हारे ज्ञानी को खिलौना ही सा जान पडेगा। अहा ! तुम्हारे गुणानुवाद मे वह मिठाई है जिसके स्वादु अमृत भी तुच्छ है।''[2]

प्रलाप शैली मे भाव उखडे से प्रतीत होती है। जहा भावातिरेक के कारण लेखक भावो को सभाल नही पाता वहा इस शैली के दर्शन होते है। इस शैली मे बुद्धि तथा सयम का प्राय अभाव रहता है । भाव जैसे उमडते है वैसे ही असम्बद्ध स्थिति मे रख दिये जाते है। लेखक को भावावेश मे यह ध्यान ही नही रहता कि हम अपने भावो को कैसे अभिव्यक्त कर रहे है । इस शैली के उदाहरणार्थ 'वाजिद-अलीशाह' निबन्ध की कुछ पक्तिया देखिए—

''हाय ! आज हमी नही रो रहे है, हमारी लेखनी का भी हृदय विदीर्ण हो रहा है। हसी मत समझो मारे दु ख के उन्माद हो रहा है, इससे रक्त काला पड गया है और आसुओ के साथ नेत्र द्वारा बहा जाता है। हाय शाह वाजिदअली! हा सुलताने आलम ! हा अख्तर ! हाय सूबे अवध के कन्हैया ! तुम हमारा मान न करते थे, तुम हमारी जाति के न थे तो भी हमारा बादशाह कलकत्ते मे बैठा है, यह स्मरण हमारे लिए सतोषजनक था। तुम्हारा अन्त करण हमसे ममता रखता था, इसमे कोई सन्देह नही। पर हाय ! दुष्ट दैव से इतना भी न देखा गया।''[3]

व्यास शैली का प्रयोग विचार प्रधान भावात्मक निबन्धो मे बहुत अधिक

---

१. 'ब्राह्मण' खण्ड ४, संख्या २, ('दिवाली मे उपासना')

२. '—वही—'

३. 'ब्राह्मण' खण्ड ४, संख्या ३,

किया गया है। इस शैली मे लिखे गये 'मनोयोग निबन्ध' की कुछ पंक्तिया नीचे दी जाती है—

"यदि एक तुच्छ तृण की दशा को विचार चलिए तो अनुमान शक्ति समझावैगी कि एक किसी बन बाटिका, खेत वा मैदान की शोभा का वह अग रहा होगा, कितने ही साधारण तथा असाधारण व्यक्ति उसे देखने आते होगे, कितने ही साधारण तथा असाधारण व्यक्ति उसे देखने आते होगे, कितने ही क्षुद्र कीट एवं पुष्प-रत्नो ने उस पर विहार किया होगा। कितने ही क्षुधित पशु उसके लिए लालायित होकर रह गये होगे और आज वह कितने ही दैविक दैहिक सुख दु ख देखता हुआ इस दशा को पहुचा है तथा अब भी न जाने किस की आख मे पडके दुःख का हेतु हो, किस ठौर पर जल वा पवन के मध्य नृत्य करे वा कहा पर अग्नि के द्वारा भस्म मे रुपान्तरित हो जाय।"[1]

मनोविकारो पर लिखे गये निबन्धो मे कही-कही मिश्र जी ने समान शैली का भी प्रयोग किया है। निम्नलिखित उदाहरण इस शैली के लिए द्रष्टव्य है—

"ससार मे असाधारण विद्याबुद्धिगुणगौरवादिविशिष्ट व्यक्ति रत्न बहुत थोडे होते है, पर निरे निरक्षर निर्बुद्धि गुणशून्य भी बहुत नही होते। सृष्टिकर्ता ने श्रेष्ठता प्राप्त करने की थोड़ी बहुत सुविधा सभी को दे रक्खी है और मानवीय मानीषियो ने सृष्टिशिरोमणि (अशरफुलमखलूकात) की पदवी मनुष्य मात्र को दे रक्खी है, अत. किसी को भी अपना जीवन तुच्छ न समझना चाहिए।"[2]

मिश्र जी के भावात्मक निबन्ध उनकी सहृदयता और उनके निश्छलहृदय की अभिव्यक्ति है। उनका कोमल और उदार हृदय उन मे पूरी तरह समन्वित है।

हास्य और व्यंग परक निबन्ध

इन निबन्धो का उद्देश्य पाठको का मनोरजन तथा देश या समाज का सुधार करना होता है। हास्य-प्रधान निबन्धो मे मनोरजन पर विशेष दृष्टि रहती है और व्यग्यात्मक निबन्धो मे सुधार पर। हास्य-प्रधान निबन्ध कभी-कभी कोरे मनोरजन के लिए भी लिखे जाते है। इनमे हास्य योजना के लिए असगत, अस्वाभाविक और विद्रूप वस्तुओ का वर्णन किया जाता है। इन निबन्धो के पढने से पाठको का हृदय प्रसन्न और शक्तिशाली बनता है, उनमे नयी चेतनता आ जाती है और वे थोड़े समय के लिए संसारिक-सघर्षो से दूर हो जाते है। हास्य-प्रधान निबन्धो का साहित्य मे महत्वपूर्ण स्थान है। बालकृष्ण भट्ट तो निबन्ध का जीवन ही हास्य मानते

---

१. 'प्रतापनारायण-ग्रन्थावली' प्रथम खण्ड (२०१४ वि०), पृष्ठ ६६२।

२. 'प्रतापनारायण-ग्रन्थावली' प्रथम खण्ड (२०१४ वि०) पृष्ठ ६७३-७४.

है—"रसिक पढने वाले हास्य रस पर अधिक टूटते है। सच पूछो तो हास्य ही लेख का जीवन है। लेख पढ कुद की कली समान दान न खिल उठे तो वह लेख ही क्या—हमारे संस्कृत-साहित्य मे तो वक्रोक्ति ही काव्य का जीवन माना गया है वक्रोक्ति काव्य जीवनम्' हास्य मे अवश्यमेव कुछ न कुछ वक्रोक्ति रहती है।"[1] व्यंग्यात्मक निबन्धो मे लेखक व्यग्य के माध्यम से अपनी बात कहता है। व्यग्य, कहने का एक विशेष ढग होता है जिसमे वास्तविक स्थिति मे बताकर कोई बात कही जाती है और जिसके पढने से स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि लेखक वर्णित वस्तु की प्रशंसा न करके निन्दा कर रहा है। इन निबन्धो मे लेखक की दृष्टि सामाजिक कुरीतियों और अनाचारो पर रहती है, वह इन पर अपने तीखे व्यग्य-बाण चलाता है। इन निबन्धों मे लेखक की वाणी ऊपर से बडी शिष्ट और मधुर रहती है पर भीतर से बडी गहरी मार करती है। लेखक, व्यग के माध्यम से कटु-से-कटु बात नि सकोच कहा जाता है। व्यग्य मे आवेष्टित होने के कारण वह बात पाठक को बुरी तो लगती ही नही, बल्कि वह सीधी मर्म-स्थल पर चोट करती है। इसमे समाज का उत्थान बडी शीघ्रता से होता है। प्रो० जयनाथ 'नलिन' लिखते है—"लेखक व्यग के द्वारा अपनी रचना को प्रभावशाली ही नही, अर्थ—विस्तार, अर्थ-गाम्भीर्य और अर्थ-सिद्धि से भी सम्पन्न, कर सकता है। व्यग्य-सम्पन्न—निबन्ध समाज, साहित्य, शासन के जीवन मे जो उथल-पुथल मचाते है, विचारात्मक, तर्कपूर्ण, दार्शनिक, निबन्ध भी नही मचा सकते।"[2] व्यग्य लेखक के लिए आत्मिक-साधना की बडी आवश्यकता होती है। उसमे किसी प्रकार की दलगत सकीर्णता या पक्ष-पात की भावना न होनी चाहिए। व्यग की प्रभावोत्पादकता और तीक्ष्णता लेखक के ही आधीन होती है। लेखक का हृदय जितना ही उदार और विशाल होगा उसके व्यग्य भी उतने ही तीक्ष्ण और हृदयस्पर्शी होगे। हास्य और व्यग्य का शिष्ट और मर्यादित होना भी वाछनीय है क्योकि इसका प्रभाव पाठको के चरित्र पर सीधा पड़ता है।

मिश्र जी के हास्य और व्यंग्य-परक निबन्ध सामाजिक और धार्मिक क्षेत्र की सकीर्णताओ को आधार बनाकर लिखे गये है। इन निबन्धो मे हो औ ओ ली है, मस्ती की बड, धोखा, किस पर्व मे किसकी बनि आती है, किस पर्व मे किस पर आफत आती है, तिल, छै! छै!! छै!!!, मुच्छ, समझदार की मौत है, घूरे के लत्त बिनै कनात का डौल बाधे, ट, होली है, खुशामद, उपाधि, स्वतंत्रता, मार-मार कहे जाओ नामर्द तो खुदा ही ने बनाया है, फूटी सहै आजी न सहै आदि

---

१. 'हिन्दी-प्रदीप' जिल्द २३, सख्या १-२-३।

२. प्रो० जयनाथ 'नलिन' : 'हिन्दी-निबन्धकार' (१९५४ ई०) पृष्ठ १४।

निबन्ध प्रमुख है। इनमे भारतीयो के अन्धविश्वास और अकर्मण्यता पर खूब छींटा-कसी की गयी है। बनावटी देश-भक्तो, प्रचारको और देश-द्रोहियो के कार्यो का भी खूब भडाफोड किया गया है। मिश्र जी सच्चे देश-भक्त थे, इसलिए उनकी दृष्टि सभी पर समान रूप से पडी है। उन्होने सच्ची तथा देश-हित की बात डके की चोट पर कही है। उन्हे खुशामद तो आती ही नही थी। वे स्पष्ट कहते है—"यार बुरा मानो चाहे भला पर कहेगे वही जो तुम्हारे और सबके हित की हो। जब तक आचरण न सुधरेगे तब तक यह सब भगतई और भलमसी कीसी काम की नही है।"[१] बनावटी देश सुधारको पर वे कहते है—"घर कि मेहरिया कहा नाही मानती, चले है दुनिया भर को उपदेश देने; घर मे एक गाय नही बाध जाती, गौरक्षिणी सभा स्थापित करेगे, तन पर एक सूत देशी कपडे का नही है, बने है देश हितैषी, साढे तीन हाथ का अपना शरीर है, उसकी उन्नति नही कर सकते, देशोन्नति पर मरे जाते है—कहा तक कहिए, हमारे नौसिखिया भाइयो को 'माली खूलिया' का आजार हो गया। करते धरते कुछ भी नही है बक-झक नाधे है।"[२] मिश्र जी जातिगत उच्चता को भी श्रेष्ठ नही मानते थे। ब्राह्मणों की निरक्षरता पर उन्होने गहरा व्यग्य किया है—"चाहे निरक्षर भट्टाचार्य हो, चाहे कुल कुबुद्धि कौमुदी रट डाली हो, पर जहा लम्बी धोती लटका के निकले बस—अहं पडित—सरस्वती तो हमारे ही पेट मे न बसती है! लाख कहो एक न मानेंगे। अपना सर्वस्व खोलकर हमारे घाऊघप्प पेट को ठास-ठास न भरे वही नास्तिक, जो हमारी बेसुरी तान पर वाह-वाह न किये जाय वही क्रुष्टान, हम से चू भी करे सो दयानदी। जो हम कहे वही सत्य है। ले भला हम तो हम, दूसरा कौन।"[३] मिश्र जी बडे निडर थे। वह सरकार के अनैतिककार्यों की भी जोरदार भर्त्सना करते थे। उस समय सरकार भारतीयो को प्रसन्न करने के लिए—बडे-बडे पर खुशामदी लोगो को-उपाधिया बाटती थी और उनसे फिर अनेक अनैतिक कार्य कराती थी। मिश्र जी ने सरकारी उपाधियों पर बडा अच्छा व्यंग्य किया है—"एक प्रकार की उपाधि सरकार से मिलती है। यदि उसकी भूख हो तो हाकिमो की खुशामद तथा गौरागदेव की उपासना मे कुछ दिन तक तन, मन, धन से लगे रहिए। कभी आपके नाम मे भी सी एस० आई० अथवा ए० बी० सी० से किसी अक्षर का पुछल्ला लग जायगा। अथवा राजा, राजबहादुर, खा बहादुर अथवा महामहोपाध्याय की उपाधि लग जायगी। पर यह न समझिए कि राजा कहलाने के साथ कही की गद्दी भी मिल जायगी अथवा

---

१. 'ब्राह्मण' खण्ड १, सख्या ४, ('गुप्त ठग')

२. „ खण्ड २, संख्या १, ('घूरे के लत्ता बिने कनातन का डौल बांध')

३. „ खण्ड १, सख्या १, ('हो ओ ओ ली है')

सचमुच के राजा भी आपको कुछ गने गूँथेंगे। हा, मन मे समझे रहिए कि हम भी कुछ हे पर उपाधि की रक्षा के लिए कपडा लत्ता, चेहरा-मोहरा, सवारी—शिकारी, हजूर की खातिरदारी आदि मे घर क धान पयार मे मिलाने पडेगे। अपने धर्म कर्म, देश जाति आदि से फिरट रहना पडेगा, क्योकि अब तो आपक पीछे उपाधि लग गई है। इसी से कहते है उपाधि का नाम बुरा। उपाधि पाना अच्छा है सही पर ऐसा ही अच्छा है जैसा बैकुण्ठ जाना, पर गधे पर चढ के।'[1] मिश्र जी के सभी निबन्ध लोकभावना से परिपूर्ण है। इनके लिखने मे मिश्र जी का दृष्टिकोण सुधारात्मक रहा है, इसलिए उपदेशात्मकता का पुट भी जहा तहा मिलता है। हिन्दुओ की-धर्म के प्रति—अन्धविश्वास पूर्ण कट्टरता को लक्ष्य करके वे कहते है—"कोई हिए कपारे का अन्धा, इन्द्रियो का बन्दा, मौलवी तथा पादरियो के मायाजाल मे फस के उनसे चोटी कटा ले, फिर वह चाहे जैसा अपने किए पर रोवे, उसका हिन्दू होना असम्भव। "क्यो भाई शास्त्र की रीति मे प्रायश्चित करा मिला न लेव।" "वाह जी ! हमारा धर्म जाता रहेगा।" "हूँ हूँ, झूठ बोलने मे धर्म नही जाता, यवनी-गमन मे धर्म नही जाता, गोरक्त मिश्रित विलायती शक्कर खाने मे धर्म नही जाता, एक स्वदेशी भाई का कुमार्ग स स्वधर्म मे लाने से धर्म भाग जायगा ? 'प्रेमएवपरोधर्म्म.' तो उसी दिन रफूचक्कर हो गया था जिस दिन जयचन्द्र पृथ्वीराज मे विरोध हुआ था। एक दिन होगा कि हिन्दू गूलर के फूल हो जाएँगे, तब बडा धर्म रह जायगा। यदि प्रायश्चित की प्रथा निकल जाती तो विधर्मियो के कुछ दात खट्टे हो जाते।"[2] इस प्रकार मिश्र जी के निबन्धो मे सर्वत्र एक समाज सुधारक की आवाज सुनाई पडती है। उन्होने कोरे चमत्कार या मनोरजन के लिए अपने हास्य-व्यग्यात्मक निबन्ध नही लिखे। उनके निबन्धो मे निरर्थक हास्य-योजना कही नही मिलेगी। प्रत्यक हास्य के मूल मे कोई-न-कोई उपदेश छिपा है।

मिश्र जी के हास्य और व्यग्य बड़े हृदय-स्पर्शी है। सामान्य-से-सामान्य विषय मे वे हास्य और व्यग्य की सामग्री ढूँढ लेते थे। उनकी स्वच्छन्दता और बे-तकल्लुफी उनके निबन्धो मे अपूर्व सरसता का सचार करती है। देखिए, खुशामद की वह कितने अच्छे ढग से खुशामद करते है—"खुशामद वह चीज है कि पत्थर को मोम बनाती है। बैल को दुह के दूध निकालती है। विशेषत. दुनियादार, स्वार्थपरायण, उदरम्भर लोगो के लिए इससे बढके कोई रसायन ही नही है। जिसे यह चतुराक्षरी मंत्र न आया उसकी चतुरता पर छार है, विद्या पर धिक्कार है और गुणो पर फिटकार है। कोई कैसा ही सज्जन, सुशील, सहृदय, निर्दोष, न्यायशील, नम्रस्वभाव, उदार,

---

१. ब्राह्मण' खण्ड ५, सख्या १२, ('उपाधि')

२. ,, १, संख्या १२, ('फूटी सहै आंजी न सहै')

सदगुणागार, साक्षात सतयुग का औतार क्यो न हो पर खुशामद न जानता हो तो इस जमाने मे तो उसकी मट्टी ख्वार है, मरने के पीछे चाहे भले ही ध्रुवजी के मुकुट का मणि बनाया जाय। और जो खुशामद मे रीझता न हो उसे भी हम मनुष्य नही कह सकते। पत्थर का टुकडा, सूखे काठ का कुन्दा या परमयोगी, महावैरागी कहेगे।"[1] मिश्र जी के व्यग्यो मे कही-कही कटुता भी आगयी है, पर उसमे सरसता मे किसी प्रकार का अवरोध नही पडता। वे जब लोगो को समझाते-समझाते परेशान हो जाते और लोगो पर कोई प्रभाव नही पडता, तब वे खीज कर कटु-व्यग्यो का प्रहार करने लगते है। उदाहरण के लिए 'मार-मार कहे जाओ नामर्द तो खुदा ही ने बनाया है' निबन्ध की कुछ पक्तिया देखिए—"राम-राम! क्या मनहूसी की बात निकाल बैठे। आखिर वही हो न। सियारो के मुह कही मंगल निकलते है? सूझै न बूझै मुह मे आया सो बके सिद्ध। जानते नही हो, हम उन लोगो के बंश के है जो अपने समय सारे भूगोल के शिरोमणि थे? बस वही बाबा आदम के आगे की बाते लिए बैठे रहो *'मेरे बाप ने घी खाया था न मानो मेरा हाथ सूघ लेव'*। सो तुम्हारे हाथ में रहा क्या है? वही ढेखुली के तीन पात। सो भी जो यही लच्छन रहे तो कुछ दिन मे देखना कि घर के धान पयार मे मिल गये। फिर वही पुरानी शेखी निबुआ लोन लगा के चाटना, सो उससे होना क्या है? मरने पर चाहे भले ही बैकुण्ठ पाओ यहाँ तो वही कौडी के तीन-तीन बने रहोगे।"[2] मिश्र जी के कटु-व्यग्य भी वास्तविकता और समष्टि-भावना से युक्त होने के कारण पाठको को बुरे नही लगते। पाठक उनके मर्म को हसकर समझ लेते हैं। कटु-व्यग्यो का विरोध तो तभी होता है जब वे ईर्ष्या या किसी दलगत सकीर्णता को लेकर किये जाते है पर मिश्र जी मे यह कुछ भी नही था। वे तो बडे साफ हृदय के, परोपकारी देश-भक्त थे। मिश्र जी के हास्य और व्यग्यो मे एक-आध स्थान पर अश्लीलता भी आगयी है। पर ऐसा केवल यथार्थ के अनुरोध से ही हुआ है। देखिए—"सच है "सब ते भले है मूढ जिन्हे न व्यापै जगत गति"। मजे से पराई जमा गपक बैठना, रडिका देवी की चरण सेवा मे तन, मन, धन से लिप्त रहना, खुशामदियों से गप मारा करना, जो कोई तिथ त्योहार आ पडा तो गगा मे चूतड धो आना, वहाँ भी राह भर पराई बहू, बेटिया ताकना, पर गगा पुत्र को चार पैसे देकर सेतमेत मे धरममूरत धरमी औतार का खिताब पाना। ससार परमार्थ दोनो तो बन गये अब काहे की है है, काहे की खै खै है। मुह पर तो कोई कहने ही नही आता कि राजा साहब लडकपन मे कैसे थे। पीठ पीछे तो लोग नवाब को भी गालियां देते है इससे क्या होता है।"[3]

---

१. 'ब्राह्मण' खण्ड ५ संख्या ५ ('खुशामद')
२. 'ब्राह्मण' खण्ड १ संख्या ५
३. 'ब्राह्मण' खण्ड २ संख्या ५ ('समझदार की मौत है')

वैसे ऐसे अश्लील व्यग्य मिश्र जी ने बहुत ही कम किये ह। उनके अधिकाश व्यग्य मर्यादित और शिष्ट हे। हाँ, तीक्ष्णता उनमे अवश्य जोरदार हे। पर वह तीक्ष्णता हृदय को गुदगुदाती और प्रेरित करती हे, मारती और खिझाती नही।

मिश्र जी ने हास्य-योजना के लिए श्लेष, कहावतो-मुहावरो और ग्रामीण-शब्दो का प्रयोग बहुतायत से किया है। यही उनके हास्य के उपकरण है। श्लेष द्वारा वे अपने निबन्धो मे चमत्कार उत्पन्न कर देते थे। "हो ओ ओ ली है" निबन्ध का शीर्षक ही श्लेष मे युक्त है। इस निबन्ध मे श्लेष का प्रयोग कई स्थानो पर हुआ है। कुछ पक्तिया देखिए—"अरे भाई, कुछ बाकी भी है कि सभी उडा बैठे? सच तो कहते हो, विद्या गई ऋषियो के साथ, वीरता सूर्यवशी-चन्द्रबशियो के साथ, रही सही लक्ष्मी थी, सो भी अपने पिता (समुद्र) के घर भागी जाती हे। फिर सब तो इन्ही तीनो के आधीन ठहरे, आज नही तो कुछ दिन पीछे, सही हो (तो) ली ही हे।

अरे वाह तुम भी निरे वही हो, कहो खेत की सुनो खलिहान की। अजी आज धुलेडी है। अब समझे?

हाँ! हाँ!! आज ही पर क्या है, जब कभी कोई अन्यदेशी विद्वान वा यही का ज्ञानवान आगे वालो के चरित्र से हमारी तुम्हारी करतूत का मिलान करेगा तो कह उठेगा—'धु:लेडी है'।' [1]

कहावतों और मुहावरो का प्रयोग तो उनके प्रत्येक निबन्ध मे देखा जा सकता है। उनके हास्य और व्यग्य के तो ये प्रधान उपकरण ही हैं। किसी-किसी निबन्ध मे तो इनकी झडी सी लगी दिखाई देती है। कहावतो और मुहावरो के मिश्र जी बड़े धनी थे। हजारो की सख्या मे कहावते और मुहावरे उनके निबन्धों मे मिलेंगे। इनके द्वारा उनके निबन्धो मे अपूर्व हास्य और व्यग्य की योजना तो हुई ही है साथ ही इनसे निबन्धो मे प्रभावोत्पादकता भी आ गयी है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित पक्तिया देखिए—"कपड़ा लत्ता चेहरा मोहरा देखो तो भले मानसो का सा। बाते सुनो तो साक्षात् युधिष्ठिर जी का अवतार। कोई जाई जाने धरती के खम्भ, धर्म का पुतला, प्रेम का रूप, जो है सो बस आप ही है। पर कौडी-कौडी के लिए सब सतजुग वाली बाते बिलैमान हो जाती है। दूकान पर आये नही कि "या महादेव बाबा भेज तो कोई भोला भाला आख का अधा गाठ का पूरा"। अ ह ह ह ह बलि-हारी बलिहारी बगुला भगत, बलिहारी। ध्यान करते देखै सो तो जाने कि ब्रह्म से तन्मय हो रहे है पर मछली निकली कि गप। जानते होगे कि कोई

१. 'ब्राह्मण' खण्ड १ सख्या १ ('हो आ ओ ली है')

जानता ही नही, यह नहीं समझते "पापु अटारी चढि के गोहरावत है" । भला यार लोगो मे भी कुछ छिपती है ।"[१]

ग्रामीण-शब्दों का प्रयोग भी इनके निबन्धों मे बहुत-अधिक हुआ है । कहावतें और मुहावरे भी बहुत-कुछ ग्रामीणता के ही द्योतक है । बैसवाडी क्षेत्र के शब्द इनके निबन्धो मे बहुत-अधिक मिलते है । इन शब्दो द्वारा अच्छी हास्य-योजना की गयी है । उदाहरणार्थ 'छै ! छै !! छै !!!' निबन्ध की कुछ पक्तिया देखिए—"खैर, तो कान फटफटा के सुनो । बगले की तरह ध्यान लगा के सुनो, समझो । कचटियावलिन जो है सो राम आसरे ते जा समय के बिखै रामलीला का प्रारम्भ होता है गोविन्दाय नमोनम' वा समय के बिखै जो है तो गावन-गांवन, नगरन-नगरन के बिखै आनद करि-करि कै जै औ छै का आगमन होत है जो है सो गोविन्दाय नमोनम । कहौ कैसे ? तो जा समै के बिखै रामचन्द्र के सवारी निकरति है, गोविन्दाय नमोनमः, वा समय के बिखै, जहाँ कौन्यो रामादल के वीर अथवा कौन्यो तमासगीर के मुख ते जो है सो यतरा निकरिगा गोविन्दाय नमोनम कि बोलौ राजा रामचन्द्र की जै, अथवा-बोलैगा सो निहाल होगा, बोल दे रजा आ आ आ आ रा आ म चन्नुद्र की ई ई जै ! हुअई चारिउ कैती जै जै जै जै के धुनि छाय जाति है, गोविन्दाय नमोनम ।"[२]

कथन को चमत्कार पूर्ण और मनोरजक बनाने क लिए वक्रोक्तियो का प्रयोग भी मिश्र जी ने बहुत किया है । उपाधि, ट, स्वतंत्रता आदि निबन्ध इनके लिए दृष्टव्य है । इन निबन्धो म उनका उक्ति वैचित्र्य सराहने योग्य है ।

मिश्र जी के व्यग्य-कथन का ढग भी बड़ा अनूठा है । उन्होने अपने हास्य और व्यग्यात्मक निबन्धों मे परिहासात्मक, व्यग्यात्मक, लोकोक्ति और मुहावरा, आलकारिक तथा सवाद शैलियो का प्रयोग प्रमुख रूप से किया है । सभी शैलिया अपने उद्देश्य और प्रभाव मे अद्वितीय हैं । परिहासात्मक शैली विशेष रूप से हास्य-प्रधान निबन्धो में प्रयुक्त हुई है । इसमे उनका मनमौजीपन विशेष दिखाई देता है । व्यग्य और कटुता इसमे नही हैं । उदाहरणार्थ 'मुच्छ' निबन्ध की कुछ पंक्तिया लीजिए—"लोग दाढ़ो को भी मर्द की पहिचान बतलाते है । पर कहा ऊर्द्धगामी केश कहा अधोमार्गी । मुच्छ के आगे सब तुच्छ हैं । यह न हो तो मुँह क्या सोहे । बहुतेरे रसिकमना वृद्धजन खिजाव लगाके मुह काला करते है । यह नही समझते कि मुच्छ का यह भी रग है जिसकी बदौलत गाव भर नाती बनजाता है । बाजे मायाजाल ग्रस्त बुड्ढो को नाती से मुच्छै नुचवाते बड़ा सुख मिलता है । पुपले-पुपले मुह मे तमाखू भरे

---

१. ब्राह्मण' खण्ड १ संख्या ४ ('गुप्त ठग')

२. 'ब्राह्मण' खण्ड ८ संख्या ४-५

हो हो हो हो, अरे छोड भाई, कहते हुए कैसे 'पुलक प्रफुल्लित पूरित गाता' देख पडते है । कभी किसी बूढे कनवजिया को मेनुआ पीते देखा है ? मुच्छो से उरौनी चूती है, ह ह ह ह ह ।"[1]

व्यंग्यात्मक शैली मे व्यंग्यो की प्रधानता रहती है । इसमे लेखक कुछ खीजा सा रहता है, जबकि परिहासात्मक शैली मे प्रसन्न । मिश्र जी की व्यंग्यात्मक शैली मे उपदेशात्मकता एव सुधार की भावना अधिक है । इस शैली का प्रयोग उन्होंने अपने निबन्धो मे बहुत-अधिक किया है । उदाहरण के लिए कुछ पक्तिया दृष्टव्य है—"यह मूरत स्वामी कलियुगानन्द सरस्वती शैतानाश्रम बचकगिरि जी की, उनसे भी अधिक है । क्यों न हो, ब्राह्मण—गुरु सन्यासी प्रसिद्ध ही है । जहा—'नारि मुई घर सम्पति नाशी मूड़ मुड़ाय भये सन्यासी' । फिर क्या, ईश्वर और धर्म के नाम मूड ही मुडा चुके, अब तो 'तुलसी या ससार मे चार रतन है सार । जूआ मदिरा मास अरु नारी सग विहार' । काशी आदि मे, दिन दहाडे बिचारे गृहस्थ यात्रियो की आखो मे धूल झोकना हो तो लाल कपडो का धर्म है । धन्य हे ! जहा ऐसे ऐसे महापुरुष हों उस देश का कल्याण क्यों न हो जाय ।"[2]

लोकोक्ति और मुहावरा शैली मिश्र जी की सबसे प्रिय शैली है । इसके द्वारा वह सहज ही हास्य की सामग्री जुटा लेते है और इसका प्रभाव भी पाठको पर बडा गहरा पडता है । यह शैली पाठको से बहुत शीघ्र तादात्म्य स्थापित कर लेती है । इसके भाव भी बडे सुलझे हुए और गरिमा-पूर्ण होते है । इसमे लोक-प्रसिद्ध कहावतो और मुहावरो का प्रयोग होता है इससे पाठक इसे अपनी शैली समझने लगते है और इसके पढने मे बडी दिलचस्पी लेते है । मिश्र जी इस शैली के सफल प्रयोक्ता है । उनकी इस शैली का एक उद्धरण नीचे दिया जाता है—

"यदि अनेगने तीन जने हुए भी तो होता क्या है, अकेला चना भाड़ फोड सकता है ? उनकी सुनता कौन है, उनका सहायक कौन होता हे ? सिर पीटा करे, यार लोग अपनी बनगैती चाल छोडते थोडी है । जितना कर सकते हो उतना करते होते तो क्यो घर फूक तमाशा देखते, देश दिन-दिन दीन दशा को पहुचता जाता है । क्या सूझता नही कि बाप दादे कैसे बलवान होते थे कि उनमे साठा सो पाठा की कहावत प्रसिद्ध थी और तुम बीसा सो खीसा हो जाते हो । 'टटकन ते कहू गाजै टरती है ?' तुम मेहनत करते मर जाओगे, कही कोई अंगरेज बहादुर नई चीज निकालेगे, सब लैया पुंजिया समेट के ले जायेंगे । 'तेली जोडै परी-परी मेहमान लुड-कावै कुप्पा' की कहावत हो जायेगी ।"[3]

---

१. 'ब्राह्मण' खण्ड २ संख्या ९-१०
२. "ब्राह्मण" खण्ड १ संख्या १ ('हो जो ओ ली हे')
३. 'ब्राह्मण' खण्ड १ सख्या ५ ('मार-मार कहे जाओ नामर्द तो खुदा ही ने बनाया है')

मिश्र जी ने आलकारिक शैली का प्रयोग भी अपने निबन्धो मे यत्र-तत्र किया है। पर उनकी आलंकारिकता भावों को दबाने वाली नही है, उसमे स्वाभाविकता और सरसता पूरी मात्रा मे है। उनकी इस शैली मे अनुप्रास, उपमा, श्लेष और यमक अलकार अधिक मिलते हे। अनुप्रास का एक उदाहरण देखिए—"हमे अति उचित है कि इसी घटिका से अपनी टूटी फूटी दशा सुधारने मे जुट जाय। —नागर नट की दया से सारे अभाव झट पट हट जायगे और हम सब बातो मे टच हो जायगे। यह 'टकार' निरस सी होती है, इससे इसके सम्बन्धी आर्टिकल मे किसी नटखट सुन्दरी की चटक, मटक भरी चाल और गालो पर लटकती हुई लट, मटकती हुई आखो के साथ हट ! अरे हट ! की बोलचाल का सा मजा तो ला न सकते थे, केवल टटोल टटान्न के थोडी सी एडीटरी की टेक निभा दी है।"[1]

इसी प्रकार उपमा, श्लेप और यमक अलकारों की छटा भी क्रमश. होली है, छै ! छै !! छै !!! और किस पर्व म किसकी बनि आती है निबन्धो मे देखी जा सकती है।

सम्वादशैली मे भी मिश्र जी ने हो ओ ओ ली है, छै ! छै ! ! छै ! ! ! आदि कई व्यग्यात्मक निबन्ध लिखे है। इस शैली मे उनकी उक्तिया बडी उत्कृष्ट हे। सवाद भी बडे स्वाभाविक और मनोरंजक हे। उदाहरणार्थ एक सम्वाद की कुछ पक्तिया देखिए—

"हुश्त ! मनहूस कही का ! वाह रे तेरी छै !

हमारी छै काहे की, तेरी हो। जानै न बूझै कठोता लेके जूझै। कुछ समझता भी है हम क्या कहते है, कि मुट्ठी पकडने दौडता है ?

सब समझते है। बस, चुप रहो।

समझते हो ! अपना सिर ! समझते है। भला बता तो हम क्या कहेगे ?

वाह ! हम कोई अतरजामी है ? हा अदाज से जानते है, सख्यासार लिखते-लिखते दिमाग मे गरमी चढ गयी है इसी से बार-बार छै की गिनती याद आती है।"[2]

उपर्युक्त विवेचन के बाद अब यह कहने की आवश्यकता नहीं रह जाती कि मिश्र जी को हास्य और व्यग्यात्मक निबन्धो मे अपूर्व सफलता मिली है। मिश्र जी के-से हास्य और व्यग्यात्मक निबन्ध अभी तक कोई निबन्धकार नही लिख सका। मिश्र जी को—निबन्धो के क्षेत्र मे इतनी अधिक प्रसिद्ध इन्ही निबन्धों के कारण मिली है। वे अपने इस क्षेत्र के अकेले सम्राट हैं।

मिश्र जी के निबन्धों मे, प्रमुख विशिष्टता उनकी शैली द्वारा उत्कृष्ट बना देते हैं। डा० रमाशकर शुक्ल 'रसाल' उनकी शैली का मूल्याकन करते हुए लिखते है—

---

१. 'ब्राह्मण' खण्ड ४ सख्या ११ ('ट')
२. 'ब्राह्मण' खण्ड ८ सख्या ४-५ (छै ! छै !! छै !!!)

"गद्य मे व्यंग्यपूर्ण वक्रता, लोकोक्तियो के द्वारा चलतापन लाने का श्रेय इन्ही को प्राप्त है।"[1] मिश्र जी हास्य और व्यंग्य तथा कहावतो और मुहावरो से युक्त एक नवीन अकृत्रिम शैली के जन्मदाता है। उनकी शैली बडी स्वाभाविक, सुबोध, सरस और प्रभावोत्पादक है। उसमे उनका व्यक्तित्व सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है। वे बड़ी आत्मीयता के साथ पाठको से बातचीत करते है। उनकी शैली मे लेखक और पाठक के बीच कोई दुराव नही है। मिश्र जी की शैली की आत्मीयता देखकर ही डा० रामविलास शर्मा लिखते है—'साहित्य की सच्ची सप्राणता उसी शैली मे है जहा लेखक और पाठक के बीच कोई दुराव नही रह जाता।"[2] मिश्र जी शैली के बडे धनी थे इसी से उनके निबन्ध, गद्य को एक नयी गति देने तथा उसे सरस और शक्तिशाली बनाने मे सफल हो सके है।

निबन्धों की भाषा

मिश्र जी ने अपने निबन्ध अवधी, व्रज, उर्दू और खडी बोली में लिखे है। अवधी भाषा का आंशिक प्रभाव तो उनके कई निबन्धो पर पडा है। पर शुद्ध अवधी मे लिखा उनका केवल एक ही 'तिल' नामक निबन्ध प्राप्य है। यह निबन्ध हास्य योजना के उद्देश्य से लिखा गया है। कुछ पक्तिया उदाहरणार्थ देखिए—"वाह रेतिल, जेह के बिना पिलर पानी नाही पावति, देउतन का होमु नाही होत, तेहि कै बड़ाई मनई कैसे कर सकत है? ई दाखई का छ्रदाट होत है पै गुन बडे-बडे भरे है। स्यनही के पहर उठि कै पैसा ध्याला भरि चबाय लीनकरै कीतौ नेनू (मक्खन) के साथ खाय लीन करे तो कौनौ रोगु दोखु नेरे न आवै। तेलु एहिका अस दूसर होतै नाहीना। सब फुलेल एही मे बनत है, जिन के बिन बडे-बडे रसिया और बडी-बड़ी सुन्दरिन का चिकनपट नाही होत। फुरी पूछौ तो तेल फुलेल मे अक्याल सिंगारउ नाही होत, आखिन कै जोतिउ बाढति है। माथे मा जुड़वनिया होति है और दाह भरि निरदोखिल ह्वै जाति है।"[3] व्रजभाषा का भी—अवधी की ही भाति—केवल एक ही—'लत' नामक निबन्ध मिलता है। यह भी हास्य के ही उद्देश्य मे लिखा गया है। कुछ अंश उदाहरणार्थ अवलोकनीय है—"परमेश्वर को नाना प्रकार की सृष्टि रचने की लत है। उनको कुछु प्ररोजन नाय पै एक को बनावै है, एक को नसावै है। याई लत के मारे ज्ञानीन मे जगतपिता, प्रेमीन मे जगजीवन कहावै है। पढे लिखेन में पूजे जाय है। गवारन की गारी खाय है। पानी बहुत बरसै तौ मूरख कहिंगे, 'सारे के घर में

---

१. डा० रमाशंकर शुक्ल 'रसाल' : 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' (प्रथम सस्करण) पृष्ठ ६५०-५१

२. डा० रामविलास शर्मा 'भारतेन्दु-युग' (१९५६ ई०) पृष्ठ ९०

३. 'ब्राह्मण' खण्ड ६ संख्या ६

पानी ही पानी हे गयो है।' जब नाय बरसे तब कहै है कै 'नपूतो सूख गयो है।' धन्य रे नन्द के छोरा! गारिऊ खाय है पै लत नाय छोडे है। हमारे रिसिन को भगवान के भजन और जगत के उपकार की लत परी ही, जाके मारे सारे सुखन को छोडि, ससार सो मुख मोड़ि, कदमूल खाय-खाय बन मे जाय रहे है। याई के फल सो ब्रह्ममय कहावे।"[1] उर्दू मे मिश्र जी ने कई निबन्ध लिखे थे जो 'भारत-प्रताप' मे प्रकाशित हुए थे[2] पर आज वे अप्राप्य है।

खडी बोली, मिश्र जी के निबन्धो की प्रमुख भाषा है। इसके परिमार्जित और सरल दोनो रूप उनके निबन्धो मे मिलते है। परिमार्जित खडी बोली मे कहावतो, मुहावरो की उछल-कूद और व्यग्यात्मकता नही है इस भाषा का प्रयोग गम्भीर विषयो के विवेचन मे किया गया है। मिश्र जी के विचारात्मक निबन्ध इसी भाषा मे लिखे गये है। 'सलग्नता' निबन्ध की कुछ पक्तिया देखिए—"विद्या सत्सग के द्वारा बुद्धि प्रकाशित होने पर बहुत से कर्त्तव्य आप से आप सूझने लगते है जिन मे से यदि दो एक का भी भली भाति सग्रह त्याग निर्वाहित हो जाय तो जीवन के साफल्य मे बड़ी भारी सुविधा होती है, किन्तु यह भी स्मरण रखना चहिए कि ऐसे बृहत्कार्य सहज मे नही होते। भले कामो के पूर्ण होने मे अनेक अडचनें तथा बुरे कर्मों की विपक्षता मे भी बहुत से प्रलोभन बाधा डालते है। दुष्प्रकृति के लोग बहुधा निष्कारण भी केवल अपने मनोविनोद के उद्देश्य से विरोध कर उठते है, आलस्य अथवा आत्मपक्ष के अनुरोध से बहुतेरे चिरपरिचित मित्र भी विरोधी बन जाते है और ऐसी दशा मे एक वा अनेक बार उद्योग की पूर्ण सफलता मे अवरोध की सम्भावना हुआ करती है।"[3] मिश्र जी ने अपनी 'सुचाल-शिक्षा' और 'शैव सर्वस्व' पुस्तको मे इसी भाषा का प्रयोग किया है।

सरल खड़ी बोली, मिश्र जी की सबसे प्रिय और स्वाभाविक भाषा है। इसी का प्रयोग उन्होने अपने अधिकाश निबन्धो मे किया हे। उनके वर्णनात्मक और व्यग्यात्मक निबन्ध इसी भाषा मे लिखे गये है। मिश्र जी के व्यक्तित्व की सम्यक् अभिव्यक्ति इसी भाषा मे दिखाई पड़ती है। एक उदाहरण लीजिए—"यदि आप निरे सच्चे, निरे सीधे, निरे न्यायी, निरे सज्जन है तो रिषियो की भाति बनवास स्वीकार कीजिए। यदि आप हमारी तरह अधकचरे है कि प्रेम सिद्धात भी नही छोड़ा चाहते, काइयापन भी नही सीखा चाहते और निर्वाह भी चाहते है तो, जन्म को रोइए। आशा छोडिये कि कभी आपके शेखचिल्ली जैसे मनोर्थ पूरे होगे। पर हा, यदि आप

---

१. 'ब्राह्मण' खण्ड ५ संख्या ११

२. 'बालमुकुन्द गुप्त-निबन्धावली' प्रथम भाग (२००७ वि० पृष्ठ-१४

३. 'प्रतापनारायण-ग्रन्थावली' प्रथम खण्ड (२०१४ वि०) पृष्ठ ६८३-८४

गुरुघंटाल, बिरगिट के छंटे, सव गुन भरी वैंदरा सोंठ हो, धर्म कर्म स्वर्ग मुक्ति देवता पितर इत्यादि को धोखे की टट्टी बना के, परायाधन, पराया कल, पराया यश मिट्टी मे मिला के येन केन प्रकारेण अपनी टट्टी जमा सकते हों—उस्तादी यह है कि भेद न खुलने पावै—तभी सुख पूर्वक जीवन यात्रा कर सकते है।"[1] इस भाषा मे बैंसवाडी क्षेत्र की लोकोक्तियो, मुहावरो और ग्रामीण-शब्दो का प्रयोग बहुतायत से किया गया है। यह भाषा जन सामान्य के स्तर को ध्यान मे रखकर लिखी गयी है। जो शब्द समाज मे—जिस रूप मे—प्रचलित है उसका प्रयोग उसी रूप में—इस भाषा मे किया गया है। इसके प्रमाण मे, उनके द्वारा प्रयुक्त किये गये—तिसपर, इस्पर, इसके, उसके, सकते, रिषि, राछस, रितु, औगुण, औतार, परकार, समै बतलावै, तौ, सौ, जाव आदि शब्द उल्लेखनीय है। बैंसवाडी शब्दों के लिए बह, बैलच्छि, चिरौरी, आहिन, छौकने, बिखै, पाव, बाचत, अगुवा, बहेतू, डौलु, निकरत, चिकनई, घटिहई, निवाह, अविकल मनुविख आदि शब्द देखे जा सकते हैं। कुछ निरर्थक शब्द भी तुक के मोह से उन्होने भाषा मे मिलाये है जैसे अशुद्ध-फशुद्ध, जागना,-जूगना, नागरी-सागरी, परीक्षा-बरीक्षा आदि। एक-आध अरबी, फारसी के शब्द भी इनकी भाषा मे इधर उधर मिलते है जैसे—कदर, मुदर्रिस, मुआफ, जुल्म, इंसाफ आदि। वैसे मिश्र जी ने अरबी, फारसी के अनुचित प्रभाव से सदैव भाषा को बचाने का प्रयत्न किया है। अरबी, फारसी के जो शब्द हिन्दी मे घुलमिलगये है उन्ही शब्दों को उन्होने अपनी भाषा मे स्थान दिया है। सस्कृति के भी अधिक शब्द उनकी भाषा मे नही आने पाये है। केवल विशेषणों के रूप मे कही-कहीं सस्कृत-पदावली मिलती है। यथा—"तो क्या हमारे यावदाथकुलदिवाकर सूर्यवंसावतंस मेवाण देशाधिपति सरीखे सर्वसद्गुणालंकृत महाराना तथा अन्यान्य आर्येन्दगण पीछे रह जायंगे?"[2] इसके अतिरिक्त अग्रेजी के भी शब्द—Indirect, Known, Half Civilized, Direct, Un-known, Come, Tax, Mount, Born, Lover, Preech, Love, Lady, Lad, Nature, Article, Policy, Authority, Progress आदि यत्र-तत्र इनकी भाषा मे मिलते हैं। कही-कही अग्रेजी की कहावतों—All is not gold that glitters, Eat drink and be merry, Might is right, Necessity is the mother of invention. आदि का भी प्रयोग उन्होने अपनी भाषा मे किया है। इन विभिन्न भाषाओं के शब्दों का प्रयोग, केवल भाषा के वास्तविक रूप को सामने लाने के उद्देश्य से किया गया है। ये शब्द भाषा मे अलग से जुडे या भार बने नही प्रतीत होते और न इनके प्रयोग में किसी प्रकार के चमत्कार प्रदर्शन की भावना ही लक्षित होती है।

---

१. 'ब्राह्मण' खण्ड ४ संख्या १ ('दुनिया अपने मतलब की है')
२. 'ब्राह्मण' खण्ड २ संख्या २ ('हिम्मत राखो एक दिन नागरी का प्रचार होगा')

इन शब्दों के प्रयोग से मिश्र जी की भाषा बड़ी सरल, स्वाभाविक और जन-सामान्य के अनुकूल बन गयी है। कहावतो और मुहावरो ने तो इनकी अभिव्यक्ति को और भी जोरदार बना दिया है। इस भाषा मे मिश्र जी की मौलिकता सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है।

मिश्र जी की सरल खडी बोली में ग्रामीणता का पुट देखकर कुछ साहित्यकार उन्हे सामान्य और अव्यवस्थित गद्य लेखक मानते है पर स्थिरता से विचार करने पर यह धारणा बड़ी निर्मूल जान पडती है। मिश्र जी परिमार्जित भाषा भी पूर्ण अधिकार के साथ लिखते थे, जिसका प्रमाण हमे उनके विचारात्मक निबन्धों में सहज ही मिल जाता है। ग्रामीण शब्दों का प्रयोग उन्होंने अपनी भाषा मे लोक-हित और हिन्दी-प्रचार के उद्देश्य से किया है। ग्रामीण शब्दो द्वारा वे भाषा मे ऐसी सरसता, तरलता और लोच पैदा कर देते थे कि पाठकों का मन बहुत शीघ्र उसकी ओर आकृष्ट हो जाता था और वे उसमें कही बात सहज ही समझ लेते थे। मिश्र जी ने अपनी भाषा की तरलता द्वारा एक नया पाठक समुदाय ही तैयार कर दिया था। मिश्र जी की यह भाषा बडी भावानुरूपिणी है। अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' मिश्र जी की इस भाषा पर मुग्ध होकर लिखते है—"अहा! भाषा हो तो ऐसी हो, क्या प्रवाह है! क्या लोच! कैसी फड़कती और चलती भाषा है। दुःख है, यह भाषा प० जी के साथ ही चली गयी, फिर ऐसी भाषा लिखने वाला कोई उत्पन्न नही हुआ। मुहावरेदार भाषा लिखने मे जैसा भाव विकास होता है, वैसा अन्य भाषा लिखने मे नही। यदि होता भी है तो उतना प्रभावजनक नही होता। पं० जी की भाषा में अनेक शब्द शुद्ध रूप मे नही लिखे गये हैं, कारण इसका यह है कि उनको उस रूप में उन्होंने लिखा है, जैसा वे बोल-चाल मे है। उनकी यह प्रणाली ग्रहीत नही हुई। कारण इसका यह है कि एक तो बोल-चाल पर इतनी दृष्टि कौन डाले दूसरी बात यह कि जब कुछ विशेष कारणो से शब्द को तत्सम रूप मे लिखा जाना ही अच्छा समझा जाने लगा, तो व्यर्थ सर कौन मारे। चाहे जो हो, परन्तु ऐसी भाषा लिखना टेढी खीर है, सब ऐसी भाषा नहीं लिख सकते। यह गौरव प० प्रतापनारायण मिश्र को हिन्दी लिखने वालों में और पं० रत्ननाथ को उर्दू लिखने वालो में प्राप्त हुआ, अन्य को नही। आश्चर्य नही कि कोई दिन ऐसा आवे जिस दिन यह भाषा ही आदर्श मानी जावे।"[1] इस प्रकार मिश्र जी की ग्रामीणता उनकी भाषा मे दूषण न होकर, भूषण बन गयी है। उनकी भाषा बड़ी साधु, सुबोध, स्वच्छन्द, चलती हुई, प्रभावपूर्ण, रोचक और सजीव है।

---

१. अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' : 'हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास' (१९९७ वि०) पृष्ठ ६६२-६३

मिश्र जी के निबन्धों में बुद्धि और भाव का समुचित संयोग दिखाई पड़ता है। उन्होने अपने विचारो को सरलता और रोचकता के बीच ऐसी आत्मीयता से सजोया है कि पाठक उन्हे अपनी वस्तु समझकर बड़ी अभिरुचि के साथ ग्रहण करते है। मिश्र जी का जैसा फक्कड़ और स्वच्छन्द व्यक्तित्व था वैसे ही उनके निबन्ध भी फक्कड़पन लिए, बड़ी स्वच्छन्द गति से चलते है। डा० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा के शब्दो में—"उनके लेखो मे सर्वत्र व्यक्तित्व की छाप लगी मिलती है। जैसा उनका स्वभाव था वैसा ही उनका विषय-निर्वाचन भी था। इसके अतिरिक्त उनकी रचना मे आत्मीयता का भाव अधिक मात्रा मे रहता था। साधारण विषयों को सरल रूप मे रखकर वे सुनने वाले का विश्वास अपनी ओर आकृष्ट कर लेते थे।"[1] मिश्र जी ने जन-साहित्य की रचना कर हिन्दी के शब्द-भण्डार को समृद्धिशाली बनाने में सराहनीय कार्य किया। मिश्र जी के-से साहित्यकार को पाकर हिन्दी-गद्य शक्ति और गति से परिपूर्ण होकर उर्दू की प्रतिस्पर्द्धा मे बेरोक आगे बढ़ सका। कहने की आवश्यकता नही कि मिश्र जी आजीवन हिन्दी-गद्य को उन्नति-शील बनाने में लगे रहे। मिश्र जी की कर्मठता और हिन्दी-सेवा के कारण उनका नाम हिन्दी-गद्य-निर्माताओ की सूची में सदैव ऊपर लिखा जायगा।

---

१. डा० जगन्नाथप्रसाद शर्मा : 'हिन्दी गद्य-शैली का विकास' (२०१२ वि०) पृष्ठ ६२

चौथा अध्याय

मिश्र जी की पत्रकारिता

पत्रकारिता का जन्म मनुष्य की जिज्ञासावृत्ति के परिणाम स्वरूप हुआ है। मनुष्य आदिकाल से दूसरों के उत्थान-पतन और सुख-दुख को जानने का इच्छुक रहा है और अपनी इस जिज्ञासा की तृप्ति के लिए समयानुसार विभिन्न साधनों को अपनाता आया है। ज्यों-ज्यों मनुष्य का बौद्धिक विकास होता गया त्यों-त्यों उसके साधन भी उत्कृष्ट और युगानुरूप होते गये। आधुनिक वैज्ञानिक काल मे पत्रकारिता उसकी जिज्ञासापूर्ति का ही एक प्रमुख साधन है। पत्रकारिता मनुष्य को समय की सम्पूर्ण गतिविधि से परिचय कराती और उसे युग के अनुरूप बढने को प्रोत्साहित करती है। इसमे लोकहित की भावना प्रचुर मात्रा मे रहती है। जनता के विचारों को समझना, उसके हित की बात उसे समझाना और निर्भयतापूर्वक उसके दोषो को प्रकट करना ही पत्रकारिता का उद्देश्य है। पत्रकारिता युग का प्रतिबिम्ब है। युग आज कहाँ पहुँच चुका है? और हमें कहाँ पहुँचना चाहिए? यह बताना पत्रकारिता का ही कार्य है। आज पत्रकारिता का क्षेत्र इतना विस्तृत हो गया है कि जन-मन से सम्बन्धित कोई भी विषय उसके क्षेत्र से बाहर नही है। कमलापति त्रिपाठी लिखते हैं—"साधक के लिए साधना का, त्यागी के लिए उत्सर्ग का, तपस्वी के लिए कष्ट-सहन तथा अनासक्ति का, योद्धा के लिए संघर्ष और रण का, कवि के लिए अनुभूति की अभिव्यक्ति का, कलाकार के लिए संसृति के गूढ और रहस्यमय चित्रों के चित्रण करने का, आलोचकों के लिए जीवन की स्थूल और सूक्ष्म धारा के विवेचन का, साहित्यिक के लिए लौकिक और अलौकिक, यथार्थ और भावुक जगत को प्रकाश में लाने का पथ एक साथ ही उपस्थित कर देने मे सिवा पत्र-कारिता के आज कौन समर्थ है? ज्ञान और विज्ञान, दर्शन और साहित्य, कला और कारीगरी, राजनीति और अर्थनीति, समाजशास्त्र और इतिहास, संघर्ष और क्रान्ति, उत्थान और पतन, निर्माण और विनाश, प्रगति और दुर्गति के छोटे-बड़े प्रवाहों को प्रतिबिम्बित करने में पत्रकारिता के समान दूसरा कौन सफल होता है?"[1] आधुनिक जनवाद के लिए तो पत्रकारिता नितान्त आवश्यक है, जनता में नयी चेतना फैलाना, जन-समाज को

---

१. कमलापति त्रिपाठी तथा पुरुषोत्तमदास टण्डन : 'पत्र और पत्रकार' (प्रथम संस्करण) निवेदन से

संगठित करना, किसी विशेष आन्दोलन को सक्रिय बनाना पत्रकारिता द्वारा सहज ही सम्भव है। साहित्यिक-क्षेत्र मे भी पत्रकारिता का विशिष्ट स्थान है। हिन्दी-गद्य को व्यावहारिकता पत्रकारिता द्वारा ही प्राप्त हुई है। पत्रकारिता के लिए सरल और सीधी जन-सामान्य के अनुकूल-भाषा की आवश्यकता होती है। इसमे विचारों को बड़े सरल और स्वाभाविक ढग से अभिव्यक्त किया जाता है, जिसमे अधिक-से-अधिक लोग इससे लाभ उठा सकें। इस प्रकार पत्रकारिता समाज, राष्ट्र तथा साहित्य के लिए बड़ी उपयोगी सिद्ध हुई है और आजकल तो यह मानव-जीवन का अभिन्न अग बन गयी है।

मिश्र जी से पूर्व हिन्दी-पत्रकारिता

पत्रकारिता का जो रूप आज हम देख रहे हैं वह मुद्रण-यंत्रो की देन है। वैसे भारत मे मुद्रण-यंत्रो के विकास के पहले भी बिना छपे हुए समाचारो के प्रकाशन और वितरण की क्षीण परम्परा विद्यमान थी। प्रजा के हितार्थ—राजाज्ञाओं के रूप में अनेक समाचार निकलते और जनता तक पहुँचाये जाते थे। समाचार पहुँचाने का काम प्रमुख रूप से भाट और दूत करते थे। कभी-कभी डुग्गी पीट कर भी समाचार या आदेश सुनाये जाते थे। महत्वपूर्ण आज्ञायें शिला-लेखो या स्तम्भ-लेखो के रूप मे भी प्रकाशित की जाती थीं। आगे चलकर, मुगल-काल मे तो कई हस्त-लिखित अखबार भी निकलने लगे थे। इन अखबारो का भी सम्बन्ध राजकीय-कार्यों या आज्ञाओं से ही था। इनके लिखने के लिए अखबारनवीस या परचानवीस होते थे। अम्बिकाप्रसाद बाजपेयी मुगल-कालीन अखबारों के विषय में लिखते है—"वे हाथ से लिखे जाते थे और उनके लेखकों का वेतन चार-पाँच रुपये मासिक होता था। अवध के बादशाह के यहां ६६० अखबारनवीस थे। प्रकाशित समाचार-पत्रों में बहादुरशाह का "सिराज-उल-अखबार' प्रसिद्ध है। इन सब अखबारों में सत्य घटनाएँ ही लिखी जाती थीं, यह नही कहा जा सकता। फिर भी वर्तमान ढंग के अखबारो के पहले इस तरह के अखबार थे। इनके सिवा राजदरबार से लगे हुए उमरा भी अपने 'वाकया-नवीस' रखते थे, जो उन्हें राजदरबार की घटनाएँ लिखकर दे दिया करते थे। इन अखबारो के एक से अधिक भी ग्राहक होते थे और 'अखबारनवीस' इन अखबारों की नकलें करके अपने ग्राहकों को दिया करते थे, जिनसे वेतन में धन पाते थे[1]।" लेकिन इन अखबारों या समाचारों में और आज की पत्रकारिता में बड़ा अन्तर है। आधुनिक पत्रकारिता इस परम्परा से सम्बद्ध न होकर पाश्चात्य-परम्परा और मुद्रण-यंत्रो से सम्बन्धित है।

भारत में मुद्रण-यत्रो का विकास अंग्रेजों के आगमन के बाद हुआ। वैसे भारत मे छापने की कला की भी क्षीण-परम्परा बहुत पहले से थी, इसका प्रमाण

१. अम्बिकाप्रसाद बाजपेयी : 'समाचार पत्रों का इतिहास' (२०१० वि०) पृष्ठ १

गवर्नर-जेनरल वारेन हेस्टिंग्ज (सन् १७७२-८६ ई०) के समय में प्राप्त एक मुद्रण-यंत्र से मिलता है । यह मुद्रण-यंत्र काशी मे गडा हुआ मिला था, इसके विषय मे यह अनुमान किया जाता है कि यह एक हजार वर्ष से कम का गडा नही था ।[1] पर भारतीय मुद्रण-यन्त्रों की छपी सामग्री आज अप्राप्य है इसलिए इसका आधुनिक पत्रकारिता से कोई सम्बन्ध नही है । भारत मे सबसे पहला प्रेस पोर्चुगीजो ने यूरोप से मगाकर १६१६ ई० में बम्बई मे स्थापित किया था ।[2] इसके बाद डेनमार्क के पादरियो ने तिनकोवर (तनजोर) में एक प्रेस १७१२ ई० मे खोला । इसमे पहले रोमन अक्षरों मे छपाई होती थी बाद में तामिल अक्षरो में होने लगी ।[3] इन्ही पोर्चुगीजो के अनुकरण पर कुछ भारतीयों ने भी छापाखाने स्थापित किये । इसके अतिरिक्त अंग्रेजों ने अपने धर्म के प्रचारार्थ अनेक छापाखाने खोले । सन् १७८९ ई० तक भारत मे कई छापाखाने स्थापित हो चुके थे । इसी समय एक छापाखाना मद्रास में और एक कलकत्ता में चल रहा था । कलकत्ता का प्रेस सरकारी था । इसके प्रबन्धक चार्ल्स विलकिन्स थे ।[4] इसके बाद फिर भारत मे बहुत से छापाखाने स्थापित हो गये । आगे इनका विवरण देना यहा पर अनावश्यक होगा ।

मुद्रण-यंत्रों के स्थापित हो जाने के बाद भारत में पत्रकारिता का विकास प्रारम्भ हुआ । पत्रकारिका के विकास का श्रेय अंग्रेजो को है । अंग्रेजों ने ही सर्व प्रथम अंग्रेजी भाषा मे पत्रों का प्रकाशन प्रारम्भ किया । पहले-पहल २९ जनवरी, १७८९ ई० मे कलकत्ता से जेम्स आगस्टस हिकी के सम्पादकत्व में 'बंगाल गजेट' प्रकाशित हुआ ।[5] यही भारतीय-पत्रकारिता का पहला पत्र है और जेम्स आगस्टस हिकी भारतीय-पत्रकारिता के जन्मदाता है । यह पत्र केवल दो पृष्ठों का साप्ताहिक पत्र था । इसके पत्र बारह इंच लम्बे और आठ इंच चौड़े थे । इस पत्र में सरकारी कार्यो की कटु आलोचना की जाती थी । यह पत्र बड़ा निष्पक्ष और स्वतंत्र था । आगे चलकर, हिकी को सरकार की आलोचना करने के कारण—अनेक यातनाएं सहनी पड़ीं ।[6] इस प्रकार भारतीय-पत्रकारिका का प्रारम्भ ही संघर्ष और कठिना-

---

१. 'राधाकृष्ण ग्रन्थावली' पहला खण्ड (१९३० ई०) पृष्ठ ४९३ (हिन्दी भाषा के सामयिक पत्रों का इतिहास)

२. अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी : 'समाचार पत्रों का इतिहास' (२०१० वि०) पृष्ठ ७

३. '—वही—' '—वही—' पृ० ७

४. '—वही—' '—वही—' पृ० ९

५. कमलापति त्रिपाठी तथा पुरुषोत्तमदास टंडन : 'पत्र और पत्रकार' (प्रथम संस्करण) पृष्ठ ७८

६. '—वही—' '—वही—' पृष्ठ ७—७९

इयों से होता है। इसके बाद अंग्रेजी मे 'इण्डियन गजेट' (१७८० ई०), 'कलकत्ता गजेट' (१८८४ ई०), 'बगाल जर्नल' (१७८५ ई०), 'ओरियन्टल मैगजीन' (१७८५ ई०) आदि कई पत्र प्रकाशित हुए। धीरे-धीरे तो प्रायः सभी प्रान्तो मे अंग्रेजी पत्र फैल गये।

सन् १८१६ ई० तक भारत मे जितने भी पत्र निकले, सब अंग्रेजी मे थे और इनके प्रबन्धक तथा सम्पादक अंग्रेज थे। ये सभी पत्र प्रायः साप्ताहिक या मासिक थे। कलकत्ता अंग्रेजो का प्रमुख केन्द्र था इसलिए अधिकांश पत्र कलकत्ते से ही प्रकाशित हुए। आगे चलकर, अंग्रेजो ने ईसाई मत फैलाने के उद्देश्य से देशी-भाषाओ मे भी पत्र निकालने प्रारम्भ किये। सर्व प्रथम १८१७ ई० मे बैपटिस्ट मिशनरियो ने सीरामपुर मे 'दिग्दर्शन' नाम का मासिक पत्र निकला।[1] इसके निकलने के बाद दो महीने के अन्दर ही 'बेंगाल ग्याजेट' और 'समाचार-दर्पण' नाम के दो साप्ताहिक पत्र भी निकाले गये। इनमे पहला पत्र कलकत्ता से और दूसरा सीरामपुर से प्रकाशित हुआ। ये दोनो पत्र बंगला मे थे।[2] 'समाचार-दर्पण' बंगला और अंग्रेजी दोनों मे मे प्रकाशित होता था। इसके संपादक जोशुआ मार्शमैन थे।[3] इस पत्र का मूल उद्देश्य ईसाई-धर्म का प्रचार करना था। 'बेंगाल ग्याजेट' बंगला भाषा मे प्रकाशित पहला पत्र था। इसके प्रकाशक हरुचन्द्रराय और गंगाकिशोरी भट्टाचार्य थे। ये दोनों बंगाली सज्जन राजा राममोहन राय के मित्र और आत्मीय-सभा के सदस्य थे। इनके द्वारा प्रकाशित 'बेंगाल ग्याजेट' ने समाचार-दर्पण से अच्छी प्रतियोगिता की और ईसाई-धर्म के प्रचार को रोकने का प्रयत्न किया।[4] इसके बाद सन् १८२० मे 'संवाद-कौमुदी' नाम से एक और साप्ताहिक-पत्र ईसाईयो के विरोध मे बंगला से प्रकाशित हुआ।[5] इस प्रकार प्रतिस्पर्द्धा स्वरूप देशी-भाषाओं मे पत्रो का निकलना प्रारम्भ हुआ और थोड़े ही समय मे बहुत से पत्र निकलने लगे।

अंग्रेजी और देशी-भाषाओ में पत्र कारिता का विकास हो जाने के बाद लोगो की दृष्टि हिन्दी मे भी पत्र निकालने की ओर गयी और सबसे पहले युगुलकिशोर शुकुल ने 'उदन्त मार्त्तण्ड' नामक पत्र ३० मई, १८२६ ई० को कलकत्ते से निकाला। यह पत्र साप्ताहिक था। इसका प्रकाशन प्रति मंगलवार को होता था। इसके पृष्ठ

---

१. अम्बिकाप्रसाद बाजपेयी : 'समाचार पत्रों का इतिहास' (२०१० वि०) पृ० ३३

२. '—वही—' '—वही—' पृ० ३४

३. अम्बिकाप्रसाद बाजपेयी : 'समाचार पत्रों का इतिहास' (२०१० वि०) पृ० ३४

४. '—वही—' '—वही—' पृ० ३४

५. सं० रोलैण्ड ई० वूलसले . 'भारतीय पत्रकार कला' (२०१० वि०) पृ० २४

२० अगुल लम्बे और १३ अगुल चौडे थे।[1] यह पत्र हिन्दी-भाषियो के हितार्थ निकाला गया था। इसकी सूचना 'उदन्त मार्त्तण्ड' मे इस प्रकार निकली थी—'यह उदन्त मार्त्तण्ड' पहले पहल हिन्दुस्तानियों के हित के हेत आज तक किसी ने नही चलाया पर अग्रेजी और फारसी और बगले मे जो समाचार का कागज छपता हे उसका सुख उन ब्रोलियों के जानने ओ पढने वालों को ही होता है। इससे नित्य समाचार हिन्दुस्तानी लोग देखकर आप पढ़ ओ समझ लेय औ पराँई अपेक्षा न करें औ अपने भाषा के उपज न छोड़े इसलिए बड़े दयावान करुणा और गुणनिके निधान सबके कल्याण के विषय गवर्नर जेनेरल बहादुर की आयस से जैसे साहस मे चित्त लगाय के एक प्रकार से यह नया ठाट ठाटा।"[2] इस पत्र का वार्षिक मूल्य दो रुपया था। यह पत्र एक वर्ष सात महीने चलकर ११ दिसम्बर, १८२७ ई० को बन्द हो गया।[3] इसके बाद १० मई, १८२९ ई० को कलकत्ते से 'बंगदूत' नामक साप्ताहिक पत्र प्रकाशित हुआ। इसके सम्पादक नीलरतन हालदार थे। यह पत्र बंगला के 'बगदूत' का हिन्दी मे अनुवाद करके निकाला जाता था। यह पत्र भी अधिक नही चल सका। इसके केवल ११-१२ अक ही प्रकाशित हो सके।[4] इस पत्र के बन्द होने के बाद लगभग १५ वर्ष तक हिन्दी का कोई भी पत्र नही निकला। इसका कारण यह था कि उस समय हिन्दी के पत्र पढने वालो की संख्या बहुत कम थी। इससे इन पत्रो के निकालने मे लाभ तो दूर रहा, हानि ही उठानी पडती थी। आगे फिर राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द ने साहस करके १८४५ ई० में अपना 'बनारस अखबार' निकाला। यह हिन्दी प्रदेश मे प्रकाशित होने वाला पहला साप्ताहिक-पत्र था। लेकिन इसकी भाषा उर्दू के अधिक समीप थी। इसके सम्पादक गोविन्दरघुनाथ थत्ते थे, जो राजा साहब के आदेशानुसार लिखते थे।[5] इसमें अंग्रेजो की खुशामद अधिक रहती थी। इस पत्र की प्रतिक्रिया स्वरूप तारामोहन मैत्र ने काशी से 'साप्ताहिक सुधार' (१८५० ई०) और राजा लक्ष्मणसिह ने आगरा से 'प्रजा हितैषी' (१८५५ ई०) पत्र निकाले।[6] इसी बीच 'मार्त्तण्ड' (११ जून, १८४६ ई०), 'ज्ञान दीपक' (१८४६ ई०), मालवा अखबार' (१८४८ ई०), 'जगद्दीपक भास्कर' (१८४९ ई०), 'बुद्धि प्रकाश' (१८५२

---

१. अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी : 'समाचार पत्रों का इतिहास' (२०१० वि०) पृ० ९३
२. '—वही—' '—वही—' पृ० ९७
३. अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी : समाचार पत्रों का इतिहास' (२०१० वि०) पृ० ९३
४. '—वही—' —वही—' पृ० १०५
५. 'राधाकृष्ण-ग्रन्थावली' पहला खण्ड (१९३० ई०) पृ० ४९५ (हिन्दी भाषा के सामयिक पत्रों का इतिहास)
६. डा० राजेन्द्रप्रसाद शर्मा : 'हिन्दी गद्य के निर्माता पण्डित बालकृष्ण भट्ट' (१९५८ ई० पृष्ठ १४३

ई०), 'मजहरुल सरुर' (१८५२ ई०), 'ग्वालियर गजेट' (१८५३ ई०), 'सर्वहितकारक' (१८५५ ई०) आदि पत्र भी निकले। अब धीरे-धीरे हिन्दी-पत्रो की सख्या बढने लगी। लोगो की दृष्टि अब हिन्दी पत्रकारिता की ओर विशेष उन्मुख हुई। सन् १८५४ मे कलकत्ते से 'समाचार सुधावर्षण' नाम का दैनिक पत्र भी प्रकाशित हुआ। यह हिन्दी का प्रथम दैनिक पत्र था।[1] इसके बाद १८५७ ई० मे क्रान्ति हो जाने से पत्रकारिता कुछ दिन शिथिल रही। फिर सन् १८५९ ई० मे अहमदाबाद से 'धर्मप्रकाश' नाम का एक मासिक पत्र निकला। इसके सम्पादक मनसुखराम थे।[2] इसके पश्चात् 'लोकमित्र' (१ जनवरी, १८६३ ई०), 'भारतखन्डामृत' (१८६४ ई०), 'तत्वबोधिनी पत्रिका' (१८६५ ई०), 'ज्ञान-प्रदायिनी पत्रिका' (१८६६ ई०), 'वृत्तान्त विलास' (१८६७ ई०) आदि कई पत्र प्रकाशित हुए। अब तक हिन्दी मे निकलने वाले पत्रों की सख्या पर्याप्त हो चुकी थी पर पाठको की कमी के कारण अधिकांश पत्र एक-एक, दो-दो साल चलकर ही समाप्त हो गये।

सन् १८६७ ई० तक पत्रकारिता की दिशा मे अधिक प्रगति नही हुई। हां, संख्या की दृष्टि से अवश्य पर्याप्त पत्र निकले, जिनका ऐतिहासिक परम्परा मे महत्व-पूर्ण स्थान है पर इन पत्रों मे सप्राणता और राष्ट्रीयता की निहायत कमी रही। इनमे अधिकाश पत्र किसी सम्प्रदाय या क्षेत्र विशेष से ही सम्बन्धित रहे। कुछ पर ईसाई धर्म के प्रचार तथा कुछ उसके विरोध मे प्रकाशित हुए और कुछ पत्रो का उद्देश्य केवल अंग्रेजो की प्रशंसा मात्र करने तक ही सीमित रहा। इन पत्रो के विषय प्रमुख रूप से धार्मिक और सामाजिक रहे। इस प्रकार पत्रकारिता की दिशा मे, अब-तक संकीर्णता की मात्रा ही अधिक रही। भाषा भी प्रायः इनकी उर्दू-गर्भित और अव्यव-स्थित रही। पत्रकारिता का समुचित विकास 'कविवचनसुधा' के प्रकाशन के बाद हुआ। यह पत्र भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा काशी से सन् १८६८ में निकाला गया। पहले यह पत्र मासिक था पर कुछ दिन चलने के बाद पाक्षिक, और फिर साप्ताहिक हो गया। प्रारम्भ में इस पत्र मे केवल कवियो की कविताओं के संग्रह ही प्रकाशित होते थे पर आगे चलकर सुन्दर राजनीतिक और सामाजिक लेख भी निकलने लगे।[3] इस पत्र का मूल उद्देश्य भारतीयों में स्वत्व-भाव का संचार करना था। इसके उद्देश्य को समझने के लिए इसके मुख पृष्ठ पर दी हुई निम्नलिखित पंक्तियां दृष्टव्य हैं—

"खल गनन सों सज्जन दुखी मति होइ हरिपद मति रहैं।
उपधर्म छूटै सत्व निज भारत गहै कर दुख बहैं।

---

१. अम्बिकाप्रसाद बाजपेयी : 'समाचार पत्रों का इतिहास' (२०१० वि० पृ० ११९
२. '—वही—' '—वही—' पृ० ११९
३. अम्बिकाप्रसाद बाजपेयी : समाचार पत्रों का इतिहास' (२०१० वि०) पृ० १२८

बुध तजहिं मत्सर नारि नर सम होंइ जग आदर लहैं ।
तजि ग्राम कविता सुकवि जन की अमृत बानी सब कहैं ।"[1]

"कविवचन सुधा" के स्वाधीन, उदार और महत-दृष्टिकोण से इसे बडी लोकप्रियता प्राप्त हुई। थोड़े दिनों मे इसकी कीर्ति संसार में फैल गयी। राधाकृष्ण दास इसके विषय मे लिखते है "कविवचन सुधा" का आदर सर्व साधारण मे बढता गया और इसके लेख ऐसे ललित होते थे कि यद्यपि हिन्दी भाषा के प्रेमी उस समय गिने हुए थे तथापि लोग चाकित की भाँति टकटकी लगाए रहते थे और हाथों हाथ सब बंट जाता था यहां तक कि अब एक फाइल भी कही नहीं मिलती है।"[2] डा० रामविलास शर्मा ने भी लिखा है—"कविवचन सुधा ने साहित्यकारों की एक पूरी पीढी को भाषा साहित्य और देश भक्ति की शिक्षा दी थी निस्सदेह इतना गौरवपूर्ण काम किसी सम्पादक या पत्रकार ने आज तक नही किया।"[3] "कविवचन सुधा" द्वारा भारतेन्दु जी जनता में राष्ट्रीय चेतना फैलाने का प्रयत्न किया। शर्मा जी फिर आगे लिखते है—"कविवचन सुधा का प्रकाशन प्रारम्भ करके भारतेन्दु ने वास्तव मे एक नये युग का सूत्रपात किया। पत्र पत्रिकाओ ने हमारे जातीय जीवन को पहिले कभी इतना प्रभावित न किया था और कोई भी पत्रिका हिन्दी की चोटी के लेखको को प्रभावित करने का ऐसा निरपवाद श्रेय नही ले सकनी जैसे कविवचन सुधा। यह पत्रिका जनता का पक्ष लेने वाली, जनता के हितों के लिए संघर्ष करने वाली, राजनीति के पीछे चलने वाली इकाई नही वरन उसे मशाल दिखाने वाली सचाई थी। भारतेन्दु ने "कविवचन सुधा' का आदर्श लोगो के सामने रखा। उनसे पहिले लोगों ने पत्र निकाले थे लेकिन उनमे से कोई भी इस लगन से एक निश्चित उद्देश्य के लिए जमकर न खड़ा था। भारतेन्दु ने सत्य का और न्याय का पक्ष लिया। चाटुकारों, राजभक्तो और रुढ़वादियों की उन्होंने जरा भी पर्वाह नकी। "कविवचन सुधा" और "हरिश्चन्द्र मैगजीन" जनता का शसक्त स्वर बन गई। सरकार का उन्हे कोप भाजन बनना पड़ा लेकिन देश सेवा का बीड़ा उठा कर उन्होंने इतिहास मे अपना नाम अमर कर लिया।"[4] "कविवचन सुधा द्वारा पत्रकारिता को एक नया मोड़ मिला। सभी तत्कालीन पत्रो को इसने अपनी ओर प्रभावित किया और सभी मे राष्ट्रीयता के बीज बोये।

---

१. 'राधाकृष्ण-ग्रथावली' पहला खण्ड (१९३० ई०) पृष्ठ ४९७ (हिन्दी भाषा के सामयिक पत्रो का इतिहास)

२'—राधाकृष्ण ग्रन्थावाली' पहला खण्ड (१९३० ई०) पृष्ठ ४९८ (हिन्दी भाषा के सामयिक पत्रों का इतिहास)

३—डा० रामविलास शर्मा : 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र' (१९५३ ई०) पृ० ९६

४—डा० रामविलास शर्मा : 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (१९५३ ई०) पृ० ११७

प्रारम्भ मे ब्रिटिश सरकार द्वारा इस पत्रिका की १०० प्रतियां ली जाती थी।"[१] लेकिन आगे इसकी देश भक्ति और उग्रता को देख कर सरकार ने इसकी प्रतिया लेना बन्द कर दिया। इसमे इस पत्रिका को बडी आर्थिक क्षति पहुची। बाबू बालमुकुन्द गुप्त लिखते है—"दु.ख की बात है कि बहुत जल्द कुछ चुगुलखोर लोगो की दृष्टि उस पर पडी। उन्होने "कविवचन सुधा" के कई एक लेखों को राजद्रोह पूरित बताया। दिल्लगी की बातो को भी वह लोग निन्दा सूचक बताने लगे। "मरसिया" नामक एक लेख उक्त पत्र मे छपा था, यार लोगों ने छोटेलाट सर विलियम म्योर को समझाया कि यह आपही की खबर ली गई है। सरकारी सहायता बन्द हो गई। शिक्षा विभाग के डाइरेक्टर केम्पसन साहब ने बिगड़कर एक चिट्ठी लिखी। हरिश्चन्द्र जी ने उत्तर देकर बहुत कुछ समझाया बुझाया पर वहां यार लोगो ने जो रंग चढा लिया था वह न उतरा।"[२] इस घटना से भारतेन्दु जी का स्वर और भी तीव्र तथा उग्र हो गया। साथ ही पत्रिका भी पहिले की अपेक्षा अधिक लोकप्रिय हो गयी।

भारतेन्दु की व्यस्तता के कारण पत्रिका नियत समय पर न निकल पाती थी। इसलिए कुछ समय बाद भारतेन्दु जी ने इसे पं० चिन्तामणि राव धड़फले के हवाले कर दिया। चिन्तामणि राव के हाथ में जाते ही यह पत्र समय से निकलने लगा पर जब भारतेन्दु जी ने इसमें लिखना छोड दिया तो यह पत्र निर्जीव हो गया। इसके बाद सन् १८८३ से तो इसकी हालत और भी बिगड़ गयी। इस वर्ष इलबर्ट बिल का आन्दोलन हुआ। राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द ने उसका विरोध किया। जिससे वे देशवासियो की दृष्टि में गिर गये। दुर्भाग्य से "कविवचन सुधा" ने भी उनका पक्ष लिया। इससे यह भी देशवासियों की दृष्टि मे गिर गयी।[३] आगे तो यह १८८५ ई० मे सदैव के लिए बन्द भी हो गयी।[४]

'कविवचनसुधा' के बाद 'वृत्तान्तदर्पण' (१८६८ ई०), विद्यादर्श' (१८६९-ई०), 'समयविनोद' (१८६९ ई०), 'आगरा अखबार' (१८७० ई०), 'अलमोड अखबार' (१८७१ ई०), 'हिन्दू प्रकाश' (१८७१ ई०), 'हिन्दी दीप्ति प्रकाश' (१८७२ ई०), 'विहारबन्धु' (१८७२ ई०) आदि पत्र प्रकाशित हुए। ये पत्र समान्य स्तर के ही रहे। इन्हे पत्रकारिता के क्षेत्र मे कोई विशिष्ट स्थान नही मिल सका। १५ अक्टूबर, १८७३ ई० को भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने काशी से 'हरिश्चन्द्र

---

१. 'बालमुकुन्द गुप्त-निबन्धावाली' प्रथम भाग २००७ वि० पृष्ठ ३१५

१. '—वही—' '—वही'— 'पृष्ठ' ३१६

३. राधाकृष्ण-ग्रन्थावाली पहला खंड (१९३० ई०) पृष्ठ ५००-५०१ (हिन्दी भाषा के सामयि पत्रों का इतिहास)

४. अम्बिका प्रसाव वाजपेजी समाचार पत्रों का इतिहास (२०१० वि० पृ० १३१)

मैगजीन' निकाली, जिसका नाम १८७४ ई० में बदलकर 'हरिश्चन्द्रचन्द्रिका' कर दिया। यह मासिक पत्रिका थी। इसका वार्षिक मूल्य ६) था।[१] इसमें उपन्यास, कविता, आलोचना, लेख और कहानिया प्रकाशित होती थी। इसके लेख ऐतिहासिक, राजनीतिक, साहित्यिक, पुरातत्व सम्बन्धी तथा हास्य और व्यंग्य से परिपूर्ण होते थे।[२] इसके लेखों के विषय मे स्वयं भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र जी कहते थे कि जैसे उमंग के जोरदार लेख मेरे और मेरे मित्रों के 'मैगजीन' में लिखे गये और छपे वैसे फिर् न लिख सके।[३] इसकी भाषा भी बडी परिमार्जित और प्रभावपूर्ण थी। आचार्यरामचन्द्र शुक्ल हिन्दी गद्य का स्वस्थ रूप इसी पत्रिका मे देखते है —"हिन्दी गद्य का ठीक परिष्कृत रूप पहले पहल इसी 'चन्द्रिका' से प्रकट हुआ। जिस प्यारी हिन्दी को देश ने अपनी बिभूति समझा, जिसको जनता ने उत्कठा-पूर्वक दौड़कर अपनाया, उसका दर्शन इसी पत्रिका मे हुआ। भारतेन्दु ने नई सुधरी हुई हिन्दी का उदय इसी समय से माना है। उन्होने 'कालचक्र' नाम की अपनी पुस्तक मे नोट किया है कि 'हिन्दी नई चाल मे ढली, सन् १८७३ ई०'।[४]" आगे, भारतेन्दु के पुराने मित्र पण्डित मोहनलाल विष्णुलाल पण्ड्या के जोर देने से यह पत्रिका १८८० ई० से 'मोहन-चन्द्रिका' के साथ सम्मिलित रूप में प्रकाशित होने लगी और इसका पूरा कार्य-भार भी पण्ड्या जी के हाथ में आ गया। पर भारतेन्दु की छत्रछाया से पृथक होकर यह 'चन्द्रिका' फिर पनप न सकी। १ जून- १८७४ ई० को भारतेन्दु जी ने फिर 'बालाबोधिनी' नाम की पत्रिका निकाली। यह मासिक पत्रिका स्त्रि-शिक्षा के प्रचारार्थ निकाली गयी थी।[५] इसके बाद फिर 'सदादर्श' (१८७४ ई०), 'काशी-पत्रिका' (१८७६ ई०), 'भारत-बन्धु' (१८७६ ई०), 'मित्रविलास' (१८७७ ई०), आदि पत्र निकले। ये पत्र भी अच्छी कोटि के थे।

उपर्युक्त पत्रों के बाद, १ सितम्बर, १८७७ ई० को प्रयाग से पण्डित बाल-कृष्ण भट्ट ने हिन्दी भाषा का अद्वितीय पत्र 'हिन्दी प्रदीप' निकाला।[६] यह पत्र भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के ही उद्देश्यों को लेकर चलने वाला पत्र था। देश-प्रेम का स्वर इसमे प्रमुख था। भाषा भी इसकी बड़ी उत्कृष्ट थी। इसमे निबन्ध अधिक और अच्छे

---

१. अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी : 'समाचार पत्रों का इतिहास' (२०१० वि०) पृ० १४३
२. —वही— —वही— पृ० १४४
३. 'राधाकृष्ण-ग्रन्थावली' पहला खण्ड (१९३० ई०) पृष्ठ ५१२ (हिन्दी भाषा के सामयिक पत्रों का इतिहास)
४. आचार्यरामचन्द्र : 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' (२००६ वि०) पृ० ४५६
५. अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी : समाचार पत्रों का इतिहास' (२०१० वि०) पृ० १४४
६. अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी : 'समाचार पत्रों का इतिहास' (२०१० वि०) पृ० १५०

निकलते थे। डा० रामविलास शर्मा इसके विषय मे लिखते है—"इलाहाबाद से बालकृष्ण भट्ट ने 'हिन्दी-प्रदीप' निकाला जो दीर्घकाल तक हिन्दी की सेवा करता रहा, यह पत्र स्वाधीन विचारो का समर्थक और अपने समय के श्रेष्ठ पत्रों मे था। जिस लगन से अनेक कष्ट सहते हुए वर्षो तक भट्ट जी ने इसे चलाया उसका मूल्य आकना कठिन है, उनकी दृढ़ता और अध्यवसाय आदर्श है।"[1] 'हिन्दी-प्रदीप' अपने सामयिक पत्रों मे (कुछ को छोडकर) सबसे अधिक दिन जीवित रहा। इसने साहित्य और समाज की ३३ वर्ष तक सेवा की। इसके बाद 'आर्यमित्र' (१८७८ ई०), 'भारतमित्र' (१८७८ ई०), 'जयपुर गजट' (१८७८ ई०), 'सारसुधानिधि' (१८७९ ई०), 'सज्जनकीर्त्ति सुधाकर' (१८७९ ई०), 'उचितवक्ता' (१८८० ई०), 'आनन्द-कादम्बिनी' (१८८१ ई०), 'प्रयागसमाचार' (१८८२ ई०) आदि पत्र निकले। इनमे 'भारतमित्र' और 'उचितवक्ता' विशेष उल्लेखनीय हैं। ये दोनो पत्र कलकत्ते से प्रकाशित होते थे। 'भारतमित्र' के प्रारम्भिक सम्पादक छोटूलाल मिश्र थे। यह एक राष्ट्रीय पत्र था। भाषा भी इसकी बड़ी साफ-सुथरी थी। थोडे ही दिनो मे इसकी गणना प्रतिष्ठित पत्रो मे होने लगी। यह ५७ वर्ष तक हिन्दी, हिन्दीभाषियो और कलकत्ते की सेवा करता रहा,[2] 'उचितवक्ता' के जन्मदाता और सम्पादक दुर्गा प्रसाद मिश्र थे। इस पत्र मे लेख बड़े सुन्दर निकलते थे। भारतेन्दु जी ने भी इसमे कई लेख लिखे थे। बाबू बालमुकुन्द गुप्त लिखते है—"इस पत्र मे कई गुण विशेष थे। मूल्य खूब कम था। एक बार रायल एक सीट पर छपता था और केवल एक पैसे मे बेचा जाता था। फिर छपाई-सफाई कागज आदि सब बातें इसकी अच्छी होती थी। इससे बढकर इसके तीखे और चटपटे लेख और चुटकले होते थे जो किसी को माफ नहीं करते थे। एक बार इसके ग्राहक भी दो डेढ़ हजार के लगभग हो गये थे। यह बात उस समय तक किसी पत्र को हासिल नही हुई थी। इतने पर भी यह पत्र गिरा। उसका कारण यह था कि इसके सुयोग्य सम्पादक पंडित दुर्गाप्रसाद जी पत्र को छोडकर काश्मीर चले गये थे। पीछे से पत्र ढीला पड गया। अन्त में बन्द करना पड़ा।"[3] यह पत्र अधिक दिन तक नही चल सका। फिर भी अपने जीवन-काल में इसने अच्छा कार्य किया। इन पत्रों के उपरान्त 'ब्राह्मण' (१८८३ ई०) का हिन्दी-जगत् में पदार्पण हुआ।

हिन्दी-पत्रकारिता का प्रारम्भ और विकास देश के पराधीन-काल मे हुआ। इसलिए इसे अनेक कठिनाइयाँ उठानी पडीं। शासक-वर्ग शुरू से ही इसे अपने लिए घातक समझने लगा और उसकी वक्र-दृष्टि बराबर इस पर लगी रही। कोई भी पत्र

---

१. डा० रामविलास शर्मा : 'भारतेन्दु-युग' (१९५६ ई०) पृष्ठ २६-२७
२. अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी : 'समाचार पत्रों का इतिहास' (२०१० वि) पृ० १५२
३. 'बालकुकुन्द गुप्त-निबन्धावली' प्रथम भाग (२००७ वि०)—पृष्ठ ३३५

राज्य के खिलाफ लिखने का अधिकारी नही था। यदि इसके विरुद्ध भी कोई कुछ लिखता था तो उसे कठोर-दण्ड दिया जाता था। राज्य के खिलाफ लिखने के ही कारण अपने प्रथम पत्रकार जेम्स आगस्टस हिकी को कठिन कारा की यातना भोगनी पड़ी थी।[१] पत्रकारिता पर कड़े राजकीय प्रतिबन्ध लगे होने से सबल व्यक्तित्व वाले लोग ही इस क्षेत्र मे आने का साहस करते थे और जो आते भी थे उनमे अधिकांश शासकों की खुशीमद को ही अपना आधार बनाते थे। प्रारम्भ मे तो राजकीय-प्रतिबन्धों से पत्रकारिता के विकास में बड़ी बाधा पडी पर आगे चलकर देश में, जब विद्रोह की अग्नि भडकने लगी तब ये प्रतिबन्ध पत्रकारिता के विकास मे वरदान सिद्ध हुए। इनसे शासकों का दमनकारी रूप जनता के सामने आ गया, जिसके परिणाम स्वरूप जनता की सद्भावनाएं पत्रकारिता के साथ हो गयी और पत्रकारिता का विकास सत्वर-गति से होने लगा।

भारतेन्दु-युग तक शासकों की शोषक नीति पूरी तरह स्पष्ट हो गयी थी। अंग्रेजो के अत्याचार बराबर भारतीयो पर बढ़ते जा रहे थे। ऐसी स्थिति में पत्रकारिता ने जनता मे राष्ट्रीय-चेतना फैलाने का प्रयत्न किया। अंग्रेजो ने प्रेस एक्ट बनाकर पत्रकारिता पर अनेक प्रतिबन्ध लगाय पर पत्रकारिता का स्वर धीमा न हुआ और थोडे ही समय मे विद्रोह की अग्नि सारे देश मे धधकने लगी। भारतेन्दु-युग के पत्रो ने राष्ट्रीय-चेतना फैलाने में सराहनीय कार्य किया। उस युग के प्रायः सभी पत्र देश-प्रेम और हिन्दी प्रचार की भावना से परिपूर्ण है।

भारतेन्दु-युग के पत्रकारो का भी जीवन आदर्श है। उस युग के पत्रकार अनेक कष्ट और आर्थिक हानि उठाते हुए पत्रकारिता को प्रगतिशील बनाने मे लगे रहे। पत्रकारो का स्वतत्र, निडर और सबल व्यक्तित्व पत्रकारिता के विकास में बड़ा सहायक हुआ। उस युग की पत्रकारिता भी पूरी तरह वैयक्तिक थी। प्रायः सम्पादक ही अपने खर्च से पत्र को चलाते थे। ग्राहकों की कमी के कारण पत्र की हानि भी सम्पादक को ही उठानी पड़ती थी। लिखने से लेकर प्रकाशन तक का पूरा कार्य सम्पादक पर निर्भर था। उस युग के सम्पादक मे त्याग, कर्मठता और लिखने की शक्ति का होना बड़ा आवश्यक था। प्रमुख रूप से पत्र का पूरा कलेवर सम्पादक को ही भरना पड़ता। उस समय आज की तरह लिखने वालो की भरमार नहीं थी। इसीलिए उस समय के प्रत्येक पत्र का सम्पादक प्रायः कोई-न-कोई अच्छा साहित्यकार ही होता था। उस समय की पत्रकारिता संघर्ष और कठिनाइयों की धात्री थी।

---

१. कमलापति त्रिपाठी तथा पुरुषोत्तमदास टण्डन : 'पत्र और पत्रकार' (प्रथम संस्करण)—पृष्ठ ८१

उस युग के साहित्यकार धन्य हैं, जिन्होने पत्रकारिता के कण्टकाकीर्ण-पथ पर चलकर देश और हिन्दी की रक्षा की ।

मिश्र जी का पत्रकारिता सम्बन्धी कार्य

मिश्र जी पत्रकारिता के क्षेत्र में 'ब्राह्मण' द्वारा अवतरित हुए । बीच मे एक वर्ष (जुलाई, १८८९ ई० से जुलाई १८९० ई० तक) उन्होंने दैनिक 'हिन्दोस्थान' के सम्पादक मंडल मे भी कार्य किया । यह पत्र उस समय कालाकाकर से निकलता था । मिश्र जी उसके काव्य-भाग के सम्पादक थे ।[1] प्रधान सम्पादक पं० मदनमोहन मालवीय थे । मिश्र जी ने एक ही वर्ष में उस पत्र की काया पलट दी । उन्होने हिन्दी के उत्थान के लिए 'हिन्दोस्थान' में 'साहित्य-स्तम्भ' नाम का कालम सन्निवेश कराया । इसी कालम में आगे चलकर खडी बोली कविता पर हुआ प्रसिद्ध विवाद प्रकाशित हुआ ।[2] मिश्र जी अपनी कविता द्वारा इस पत्र मे जान डाल देते थे । पत्र मे सरसता पैदा करना तो उनके बायें हाथ का खेल था । बाबू बालमुकुन्द गुप्त लिखते है—"राजनीति सम्बन्धी गद्य ही मे नही पद्य मे भी इसमे अच्छे-अच्छे लेख निकलते थे । उनमे से पण्डित प्रतापनारायण मिश्र के पद्य लेख बहुत ही सुन्दर हुए थे । सन् १८८९ ई० मे मि० ब्राडला बम्बई की पाचवी काग्रेस में आये थे । पण्डित प्रतापनारायण जी ने पद्य मे ब्राडला का एक स्वागत लिखा था, जिसमें इस देश की दशा की तसवीर खेच दी थी । विलायत मे मि० फ्रेडरिक पिनकाट ने उस कविता को इतना पसन्द किया था कि उसका अंग्रेजी अनुवाद करके 'इण्डिया पत्र में छपवाया था ।"[3] मिश्र जी ने इस लघु अवधि मे सहायक सम्पादक होते हुए भी 'हिन्दोस्थान' मे जो कार्य किया, वह उनके सफल पत्रकार-जीवन का प्रतीक है ।

'ब्राह्मण' पत्र मिश्र जी ने २७ वर्ष की अवस्था मे, १५ मार्च, १८८३ ई० को (होली के दिन) कानपुर से निकाला । यह पत्र मासिक था । यह प्रत्येक अग्रेजी माह की १५ तारीख को प्रकाशित होता था । इसका वार्षिक मूल्य एक रुपया और एक प्रति का दाम दो आना था । इसके पृष्ठ ९।। इंच लम्बे और ६ इच चौड़े थे । पहले यह १२ पृष्ठ का निकलता था । पर बांकीपुर जाने पर यह पत्र मैटर के अनुसार १४, १६, १८, २०, और २४ पृष्ठो मे निकलने लगा । इसका पहला अंक नामी प्रेस, कानपुर से बहुत मामूली कागज पर लीथो से छपा था । दूसरे अक से यह टाइप में मुद्रित होने लगा । इसमे कोई बनाव-चुनाव नही था, मुख पृष्ठ और भीतर के पृष्ठों का कागज एक सा रहता था । मुख पृष्ठ पर सबसे ऊपर एक और उसके नीचे

---

१. 'सरस्वती' जून १९३८ ई० 'स्व० पं० प्रतापनारायण मिश्र'—गोपालराम गहमरी
२. 'सरस्वती' जून १९३८ ई० 'स्व० पं० प्रतापनारायण मिश्र' : गोपालराम गहमरी
३. 'बालमुकुंद-गुप्त-निबन्धावली' प्रथम भाग (२००७ वि०) पृष्ठ ३४४-४५

अर्द्धचन्द्राकृत चिन्ह (१) अंकित रहता था। यह चिन्ह एकता और हरिश्चन्द्र की स्मृति का द्योतक है। एक (१) के विषय मे मिश्र जी लिखते है—"क्या तुम्हे सदा 'ब्राह्मण' के मस्तक पर एक का चिन्ह देख के उसका महत्व कुछ अनुभव होता है ? तो फिर क्यो नही सब झगड़े छोड़के सत चित से एक की शरण होते ? क्यो न एक होने और एक करने का प्रयत्न करते ?"[1] मिश्र जी भारतेन्दु को अपना उपास्य मानते थे।[2] इसीलिए उन्होंने स्मृति स्वरूप अपने 'ब्राह्मण' पर अर्द्धचन्द्राकृत चिन्ह रक्खा था।[3] इस चिन्ह के नीचे मिश्र जी का सिद्धान्त-वाक्य-'शत्रोरपि-गुणावाच्या दोषावाच्यागुरोरपि' रहता था। कुछ समय तक यह वाक्य अर्द्धचन्द्र के भीतर भी छपता रहा। अर्द्धचन्द्र ही में कुछ दिन 'प्रेम एव परो धर्मः' वाक्य भी निकला। इसके उपरान्त 'ब्राह्मण' नाम अंग्रेजी तथा नागरी लिपियो में छपता था। आगे जब बाकीपुर से 'ब्राह्मण' पत्र प्रकाशित होने लगा तो 'ब्राह्मण' शब्द को ही बड़े अर्द्धचन्द्र में छापा जाने लगा। इसके अतिरिक्त मुख-पृष्ठ पर ही भर्तृहरि के एक श्लोक का हिन्दी अनुवाद भी इस रूप में छपता था—

नीति निपुण नर धीर बीर कछु सुजस करौ किन।
अथवा निन्दा कोटि कहौ दुर्वचन छिनहु छिन॥
सम्पति हू चलि जाहु रहौ अथवा अगणित धन।
अबहिं मृत्यु किन होहु अथवा निश्चल तन॥
पर न्यायपंथ को तजत नहिं जे विवेक गुण ज्ञान निधि।
यह संग सहायक रहत नित देत लोक परलोक सिधि॥

इस अनुवाद के स्थान पर खण्ड ४ संख्या ५ से मूल श्लोक छपने लगा—

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वास्तुवन्तु।
लक्ष्मी समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्॥
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा।
न्यायात्पथः प्रविचलन्ति पदन्नधीराः॥

इसके साथ ही मुख पृष्ठ पर स्थान, तिथि, खण्ड और संख्या भी अंग्रेजी तथा नागरी लिपियों में लिखी रहती थी और सबसे नीचे नियमावली प्रकशित होती थी। नियमावली 'विज्ञापन' नाम से इस प्रकार थी—

"१—यह पत्र प्रति अंग्रेजी मास की १५ ता० को प्रकाशित होगा।

२—अग्रिम देने वालो से वार्षिक मूल्य १), पश्चात् २) लिया जायगा।

---

१. 'ब्राह्मण' खण्ड ५ संख्या ११ 'एक'—प्रतापनारायण मिश्र
२. 'ब्राह्मण' खण्ड ३ संख्या २ 'बस बस होश में आइए'—प्रतापनारायण मिश्र
३. 'बालमुकुन्द गुप्त-स्मारक-ग्रंथ' (२००७ वि०)—पृष्ठ ४९

३—एक प्रति का मूल्य ≈), डाक व्यय ग्राहको से न लिया जायगा। जो वर्ष से कम के ग्राहक होगे उनसे ≈) प्रति के दाम लिये जायंगे, जो सज्जन इसकी एक प्रति को कृपा करके स्वीकार करेगे वे ग्राहक गिने जायगे और उन्हे मूल्य देना होगा।

४—तीन महीने तक मूल्य भेज देगे वे महाशय अग्रिम मूल्यदाता समझे जायंगे।

५—जो महाशय सच्चे समाचार सदैव भेजेंगे उनको एक पत्र बिना मूल्य भी दिया जायगा।

६—जो लेख सर्वसाधारण के हितकारी होगे वह बिना मूल्य छाप दिये जायगे और निज के हित के लेख का ⁻) प्रति पंक्ति लिया जायगा।

७—जिन भाइयो को अपना कोई दु:ख निवेदन हमारी नीतिवती सर्कार से इस पत्र द्वारा सूचित करना हो वह सच्चाई के साथ यदि हमको अपना लेख देगे और इस पत्र सम्बन्धी कमेटी उसे छापने योग्य समझेगी तो वह लेख इस पत्र मे दिया जायगा, यदि वह इस पत्र में अपना नाम प्रगट न किया चाहेगे तो उनका नाम प्रकाश न किया जायगा।"[1]

इस नियमावली मे समय-समय पर कुछ परिवर्तन भी होता रहता था। बीच मे कुछ समय तक यह पत्र के अन्तिम पृष्ठ पर भी प्रकाशित हुई थी और इसके स्थान पर मुख-पृष्ठ से ही लेख प्रारम्भ हो जाते थे। 'ब्राह्मण' के अन्तिम पृष्ठ पर मुद्रक का नाम और पता रहता था। सम्पादक का नाम और विषय सूची पत्र मे न रहती थी। केवल सम्पादक के स्थान पर मैनजनर का नाम और पता रहता था। हा, सूचनाए आदि प्राय: सम्पादक के ही नाम से निकलती थीं।

मिश्र जी 'ब्राह्मण' पत्र के जन्मदाता और सम्पादक दोनो थे। उन्होंने 'ब्राह्मण' का नामकरण अपनी जाति और तखल्लुस 'बरहमन' को दृष्टि मे रखकर किया था। वे लिखते है—"इसका सम्पादक 'ब्राह्मण' है और उसका और कविता सम्बन्धी नाम (तखल्लुस) भी यही (बरहमन) है, इससे नाम रखते समय व्यर्थ का सोच विचार न करके इस नाम से काम लेना उचित समझा गया था। जो लोग ऊटपटांग लम्बा चौड़ा शेखी से भरा हुआ नाम बहुत सोच-साच के रख लेते है पर कार्यवाही कुछ भी नही दिखा सकते उनका ढग इस पत्र के सम्पादक को नापसद है।······हिन्दू जाति का समयानुकूल शुभचिंतन सदा से इसी नाम पर निर्भर रहा है। फिर जिस पत्र का यही एक मात्र उद्देश्य हो उसके लिए इसके अतिरिक्त और कौन नाम युक्ति-युक्त हो सकता था?[2]" मिश्र जी के 'ब्राह्मण' में किसी प्रकार का पोपाचार अनाचार तथा

---

१. **'ब्राह्मण' खण्ड १ संख्या १ 'विज्ञापन'—प्रतापनारायण मिश्र**

२. **'ब्राह्मण' खण्ड ८ संख्या १० ('समझ की बलिहारी')**

संकीर्णता नहीं थी। 'ब्राह्मण' नाम होते हुए भी यह पत्र बड़ा वैज्ञानिक और उदार था। इसे अपने अतीत के प्रति अपूर्व निष्ठा थी। मिश्र जी लिखते हैं—"इस नाम के साथ वेद और तदनुकूल ग्रन्थों का भी अवश्य सम्बन्ध है। पर इस सम्बन्ध से यह अभिप्राय कदापि नहीं है कि केवल मुख से वेद-वेद चिल्लाना पर तदनुकूल उपदेश के समय 'बाबा वाक्यं प्रमाण' का आश्रय लिया जाय। जो लोग वेद का तत्व जानते हैं वह हमारे मूल मंत्र 'प्रेम एवं परोधर्मः' को कदापि वेद के विपरीत नहीं कह सकते। क्योंकि प्रेम के बिना वेद ही नहीं, परमेश्वर तक की महिमा नहीं स्थिर रह सकती। पर उन समझदारों के लिए हमारे पास कोई औषधि नहीं जो केवल दयानन्दी भाष्य ही को वेद समझ बैठे हैं। इसी प्रकार जिनके सिर में खसखस के दाने भर भी समझ होगी वे उपर्युक्त नामगुण विशिष्ट ब्राह्मण नामक पुरुष को नकली नहीं कह सकते।[२]" 'ब्राह्मण' पत्र केवल ब्राह्मण जाति विशेष से ही सम्बन्धित नहीं था। उसके लिए सम्पूर्ण जातियाँ अपनी थीं और सभी धर्मों के विशिष्ट-गुणों से सम्बन्धित उसका अपना धर्म था। उसमें कटुता, विद्वेष और पक्षपात किंचितमात्र नहीं था। उसके सामने लोकहित ही प्रमुख था। लोकहित की ही कसौटी में वह सम्पूर्ण तत्वों के गुण और दोष देखता था। हाँ, ब्राह्मण जाति के प्रति उसे ममता, कुछ अधिक इसलिए थी कि ब्राह्मणों को ऊपर उठाकर उन्हें लोक-कल्याण की ओर प्रवृत्त करना चाहता था।'

'ब्राह्मण' पत्र का मूल उद्देश्य 'हिन्दी, हिन्दू और हिन्दुस्तान' की सेवा करना था। वह सम्पूर्ण भारत में नागरी का प्रचार कर, उसे एकता के सूत्र में बाँधना चाहता था। उस समय भारत में देश-भक्त और राजभक्त दो प्रकार के पत्र निकल रहे थे। 'ब्राह्मण' पहले प्रकार का पत्र था। इसमें देशभक्ति का स्वर बहुत ऊँचा था। मिश्र जी पत्रों को देशोन्नति और मनोरंजन का सर्वोत्तम साधन मानते थे। कानपुर में उनके समय में एक भी नागरी पत्र नहीं था, इसी कमी को पूरा करने के लिए उन्होंने ब्राह्मण का प्रकाशन प्रारम्भ किया था। वे 'ब्राह्मण' के पहले अंक की 'प्रस्तावना में लिखते हैं—"हम गुणी हैं या औगुणी यह तो आप लोग कुछ दिन में आप ही जान लेंगे, क्योंकि हमारी आपकी पहली भेंट है। पर यह तो जान रखिये कि भारतवासियों के लिए क्या लौकिक क्या पारलौकिक मार्ग में एक मात्र अगुवा हम और हमारे थोड़े से हिन्दी समाचार पत्र भाई ही बन सकते हैं। हम क्यों आये हैं ? यह न पूछिये। कानपुर इतना बड़ा नगर है! सहस्रावधि मनुष्य की बस्ती!! पर नागरी पत्र, जो हिन्दी रसिकों को एक मात्र मनबहलाव, देशोन्नति का सर्वोत्तम उपाय, शिक्षक और सभ्यता वर्धक अत्युच्च ध्वजा यहाँ एक भी नहीं। भला यह हम

१. 'ब्राह्मण' खण्ड ८ संख्या १० ('समझ की बलिहारी')
२. '—वही—' '—वही—'

से कब देखी जाती है ? हम तो बहुत शीघ्र आप लोगो की सेवा मे आते और अपना कर्त्तव्य पूरा करते परन्तु अभी अल्पसामर्थी अल्पवयस्क है इसलिए महीने मे एक ही बार आ सकते है । हमारा आना आप के लिए कुछ हानिकारक न होगा, वरंच कभी न कभी कोई न कोई लाभ ही पहुँचावेगा । क्योकि हम वह ब्राह्मण नही है कि केवल दक्षिणा के लिए निरी ठकुरसुहाती बाते करें । अपने काम से काम । कोई बने वा बिगडे, प्रसन्न रहे या अप्रसन्न । नही, अंतःकरण से वास्तविक भलाई चाहते हुए सदा अपने यजमानों (ग्राहको) का कल्याण करना ही हमारा मुख्य कर्म होगा । हम निरे मत मतान्तर के झगड़े की बातें कभी न करेगे कि एक की प्रशंसा दूसरे की निन्दा हो । वरंच वुह उपदेश करेंगे जो हर प्रकार के मनुष्यो को मान्य, सब देश, सब काल के साध्य हो, जो किसी के भी विरुद्ध न हो । वुह चाल-ढाल व्यवहार बतावेंगे जिनसे धन बल मान प्रतिष्ठा में कोई भी बाधा न हो ।"[1] मिश्र जी 'ब्राह्मण' की प्रकृति की भी सूचना पहले ही अक में दे देते है—"हा एक बात रही जाती है कि हम मे कुछ औगुण भी है, सो सुनिए । जन्म हमारा फागुन मे हुआ है और होली पैदाइश प्रसिद्ध है । कभी कोई हँसी कर बैठें तो क्षमा कीजिएगा । सभ्यता के विरुद्ध न होने पावेगी । वास्तविक बैर हमसे किसी से नही है, पर अपने करमलेख से लाचार है । सच-सच कह देने मे हमको कुछ संकोच न होगा । इससे जो महाशय हम पर अप्रसन्न होना चाहे पहिले उन्हे अपनी भूल पर अप्रसन्न होना चाहिए ।"[2] इस कथन का तात्पर्य यह है कि 'ब्राह्मण' हास्य और व्यंग्य प्रधान पत्र था । सत्य बात वह डंके की चोट पर कहता था । स्वाभिमान भी उसमे अटूट था—"हमको निरा ब्राह्मण ही न समझियेगा, जिस तरह सब जहान में सब कुछ है हम भी अपने गुमान मे कुछ है ।"[3] इस प्रकार 'ब्राह्मण' आजीवन स्वाभिमानी, उदार, स्पष्टवादी और परोपकारी रहा ।

मिश्र जी ने 'ब्राह्मण' का प्रकाशन यश या लाभ के उद्देश्य से नही किया था । वे अपने लेखों मे अपना नाम तक न देते थे । यहाँ तक कि सम्पादक का नाम भी पत्र मे न रहता था । मूल्य भी उन्होने बहुत-कम रखा था । वे लिखते है—"हमारी दक्षिणा भी बहुत ही न्यून है । फिर यदि निर्वाह मात्र भी होता रहेगा तो हम, चाहे जो हो, अपना वचन निबाहे जायँगे । आश्चर्य है जो इतने पर भी कोई कसर-मसर करे ।"[4] आगे तो वे स्पष्ट कहते है—"अरे भाई । हमने इस पत्र को अपने लाभ की

---

१. 'ब्राह्मण' खण्ड १ संख्या १ (१५ मार्च, १८८३ ई०)

२. 'ब्राह्मण' खण्ड १ ('प्रस्तावना')

३. '—वही—' '—वही—'

४. '—वही—' '—वही—'

गरज से नही निकाला। लै दै बराबर हो जाय यही गनीमत है।"[१] 'ब्राह्मण' का जन्म लोक-कल्याण के लिए हुआ था। वह अपने जन्म की सफलता इसी मे समझता था—

"भारत हित भगवान हित, सब जग के सुख खोय।
प्रिय हिन्दू एका करें, जन्म सुफल तब होय॥"[२]

\+ \+ \+

"लोक वेद के सब झगड़े बस दूर हों,
प्रेम मद्य में सगरे हिन्दू चूर हों।
चित्त में उस प्यारे का तत्व टटोलना,
इतना दे करतार अधिक नहीं बोलना॥"[३]

'ब्राह्मण' में जो कुछ निकलता था उसका कोई न कोई उद्देश्य होता था। हास्य और व्यंग्य भी जनता के हित को दृष्टि में रखकर ही लिखे जाते थे। प्रारम्भ मे 'ब्राह्मण' बिल्कुल हास्य-प्रधान पत्र था। पर आगे इसकी प्रकृति मे कुछ परिवर्तन हुआ। इसकी सूचना मिश्र जी इस प्रकार देते है—"जी बहलाने के लेख हमारे पाठको ने बहुत से पढ लिए। यद्यपि इनमे भी बहुत सी समयोपयोगी शिक्षा रहती है, पर वाग-जाल मे फंसी हुई, ढूंढ निकालने योग्य। अतः अब हमारा विचार है कि कभी-कभी ऐसी बाते भी लिखा करें, जो इस काल के लिए प्रयोजनीय हों, तथा हास्यपूर्ण न हो के सीधी-सादी भाषा में हों, जिसमें देखते और बिचारते समय किसी प्रकार का अवरोध न रहे अथवा हमारे पाठको का काम है कि उन्हे नीरस समझकर छोड़ न दिया करें तथा केवल पढ ही न डाला करें, वरंच उनके लिए तन से, धन से, कुछ न हो सके तो वचन ही से यथावकाश कुछ करते भी रहें।"[४] मिश्र जी के 'ब्राह्मण' का दृष्टिकोण बड़ा व्यापक था। वह देश के सामने व्यक्ति को कोई महत्व नही देता था। देशद्रोहियों की तो वह खुलकर भर्त्सना करता था।[५] गलतियों को माफ करना तो उसने कभी सीखा ही नही था। खुशामद से वह कोसो दूर था। उसका तो यह सिद्धान्त ही था—'शत्रोरपिगुणावाच्या दोषा-वाच्यागुरोरपि।' उसकी दृष्टि मे श्रेष्ठ वही था जो देश-भक्त हो। देशभक्तों की प्रशंसा भी वह खूब जमकर करता था।[६] देशभक्त चाहे मुसलमान या नीच जाति का क्यों न हो फिर भी वह

---

१ 'ब्राह्मण खण्ड १ संख्या ११ ('जरा सुनो तो सही')
२. ,, ,, १ ,, ९ ('जन्म सुफल कब होय')
३ ,, ,, २ , ९-१० ('इतना दे करतार अधिक नहीं बोलना')
४. 'ब्राह्मण' खण्ड ७ संख्या १-२ 'हमारी आवश्यकता' : प्रतापनारायण मिश्र
५. 'ब्राह्मण' खण्ड ५ संख्या ६ 'कांग्रेस की जय' : प्रतापनारायण मिश्र
६. 'ब्राह्मण' खण्ड ३ संख्या २ 'बस बस होश में आइए' : प्रतापनारायण मिश्र

'ब्राह्मण' के लिए पूज्य था। 'ब्राह्मण' का प्रमुख लक्ष्य हिन्दी और राष्ट्रीयता का प्रचार करना था। हिन्दी प्रचार के लिए ही वह सरल भाषा मे अपने विचारों को पाठको के सामने रखता था। 'ब्राह्मण' के सुगम-साहित्य ने न जाने कितने नये पाठक तैयार कर दिये थे। राष्ट्रीयता के प्रचार मे वह सरकार की किंचित परवाह नही करता था। सरकार के अनाचार पूर्ण कृत्यो की कटु-आलोचना करना वह अपना धर्म समझता था। 'ब्राह्मण' पत्र प्रतापनारायण जी के स्वभाव का ही सच्चा प्रतिरूप था। डॉ० रामविलास शर्मा लिखते हैं—"सम्पादक के व्यक्तित्व की छाप जैसी 'ब्राह्मण' पत्र पर थी, वैसी और किसी पर नही।—मनकी नस-नस मे जो शरारत और विद्रोह भरा हुआ था, वह उसकी एक-एक लाइन से प्रकट होता था। हास्य के साथ स्वाधीन चेतना फैलाने मे यह पत्र सबसे आगे था।"[1] 'ब्राह्मण' पत्र मिश्र जी की ही तरह सरल, निर्भीक, फक्कड, विनोदप्रिय और समाज तथा देश का शुभ-चितक था।

'ब्राह्मण' पत्र कब-तक निकलता रहा यह तो निश्चित रूप से नही बताया जा सकता। पर इतना अवश्य है कि यह पत्र कुछ दिन तक मिश्र जी की मृत्यु के बाद भी बाबू रामदीन सिंह के द्वारा निकाला गया था। इसकी सूचना बाबू राधा-कृष्णदास इस प्रकार देते है—"इसके गुणों से मोहित होकर बांकीपुर-निवासी बाबू रामदीन सिंह ने इसे अपने खड्गविलास यंत्रालय में उठा लिया, जहां से वह अब तक प्रकाशित होता है। खेद की बात है कि इस ग्रन्थ के यंत्रालय मे रहते ही हिन्दी के अमूल्य रत्न पंडित प्रतापनारायण जी अकालकालग्रसित हुए परन्तु बाबू रामदीन सिंह जी ने इस पत्र के चलाने की प्रतिज्ञा की है। इसके लिये उन्हे अनेक धन्यवाद हैं।"[2] इस कथन से यह निर्विवाद सिद्ध हो जाता है कि 'ब्राह्मण' मिश्र जी के जीवनोपरान्त भी निकलता रहा। मिश्र जी का देहान्त ६ जुलाई, १८९४ ई० को हुआ था। अतः मिश्र जी के सम्पादकत्व मे 'ब्राह्मण' इसी तिथि तक निकला। मुझे 'ब्राह्मण' की नवे वर्ष के बारहवे अंक तक की प्रतियाँ देखने को मिली हैं। इन प्रतियो पर खण्ड २ सख्या १२ (भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की मृत्यु के बाद) से हरिश्चन्द्र सम्वत् पडा हुआ है इसलिए गणना करने पर नवें वर्ष के बारहवें अंक का समय जुलाई, १८९३ ई० पड़ता है। इस गणना के अनुसार अभी मिश्र जी के जीवन काल मे ही प्रकाशित 'ब्राह्मण' के, एक वर्ष के, बारह अंक और होने चाहिए। विजयशंकर मल्ल ने नवें वर्ष के बारहवें अक का समय जुलाई, १८९४ ई० लिखा है और इसी को मिश्र जी के जीवन काल का अन्तिम अंक माना है।[3] पर गणना करने पर यह

१. डॉ० रामविलास शर्मा : 'भारतेन्दु-युग' (१९५६ ई०) पृष्ठ-२७
२. 'राधाकृष्ण-ग्रन्थावली' पहला खण्ड (१९३० ई०)-पृष्ठ ५१६
३. 'प्रतापनारायण-ग्रंथावली' प्रथम खण्ड (२०१४ वि०)-पृष्ठ)७०६

तिथि नितान्त भ्रामक सिद्ध हुई है। मैंने सम्पूर्ण अंको की तिथियो को ईसवी सन् में परिवर्तित किया है और उन अको में प्रकाशित अनेक ऐतिहासिक घटनाओ को इतिहास से मिलाया है इसलिए मेरी गणना मे त्रुटि के लिए कही स्थान नही रह जाता। इसके अतिरिक्त मुझे मिश्र जी के गौरक्षा,[१] स्वतंत्र,[२] बन्दरों की सभा,[३] जानै न बूझै बठौता लैकै जूझै,[४] उसी की जूती उसी का सिर,[५] हाथी के दांत खाने के और दिखाने के और,[६] गुरू गुड़ ही रहा चेला शक्कर हो गया,[७] मां,[८] नाक,[९] घारिण,[१०] और,[११] कवि और कविता,[१२] शीर्षक निबन्धों के नाम मिले है जो नवें वर्ष तक के किसी अंक मे प्रकाशित नही है। उक्त निबन्धों के प्रथम दो निबन्ध 'निबन्ध-नवनीत' मे सकलित भी है। हो सकता है ये निबन्ध 'ब्राह्मण' के दसवें वर्ष के ही अंकों में प्रकाशित हुए हों। पर आज 'ब्राह्मण' का दसवाँ वर्ष अनुपलब्ध है। मिश्र जी ने ब्राह्मण के अकों मे वर्ष के स्थान पर 'खण्ड' शब्द का प्रयोग किया है। उपर्युक्त जो ९ वर्ष के अंक मिले है वे क्रमबद्ध रूप से खण्ड १, सख्या १ से खण्ड ९, सख्या १२ तक के हैं। वैसे 'ब्राह्मण' के जन्म (मार्च, १८८३ ई०) और मिश्र जी की मृत्यु (जुलाई, १८९४ ई०) के बीच का समय ११ वर्ष ५ महीने होता है पर बीच मे मार्च १८८६ ई० से जुलाई १८८७ ई० (१ वर्ष ५ महीने) तक 'ब्राह्मण' बन्द रहा। इस बन्द होने की अवधि की भी गणना अभी तक विद्वान—प्रतियों पर हरिश्चन्द्र सम्वत् पड़ा होने के कारण—निश्चित रूप से नही कर सके। जिन्होने

---

१. 'निबन्ध-नवनीत' पहला भाग (१९१९ ई०)-निबन्ध संख्या २३
२. —वही— - —वही— १८
३. —वही— - पृष्ठ ५
४. —वही— - पृष्ठ ५
५. डॉ० राजेन्द्रप्रसाद शर्मा : हिन्दी गद्य के निर्माता पंडित बालकृष्ण भट्ट (१९५८ ई०)-पृष्ठ २१४
६. डॉ० राजेन्द्रप्रसाद शर्मा : 'हिन्दी गद्य के निर्माता पंडित बालकृष्ण भट्ट (१९५८ ई०)-पृष्ठ २१४
७. —वही— —वही— ,, २१४
८. डॉ० गुलाबराय : 'काव्य के रूप' (१९५८ ई०)-पृष्ठ २२१
९. प्रो० जयनाथ 'नलिन' : 'हिन्दी-निबन्धकार' (१९५४ ई०)-पृष्ठ ८८
१०. —वही— —वही— - ,, ९०
११. डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय : 'आधुनिक हिन्दी साहित्य' (१९५४ ई०) पृ० १३७
१२. डॉ० गोविन्द त्रिगुणायत : 'शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त' द्वितीय भाग (१०५९ ई०)-पृ० ३२४

के खण्ड,३ सख्या १२ पर फरवरी, हरिश्चन्द्र सम्वत् २ (फरवरी १८८६ ई०) और अनुमान से कुछ किया भी है, वह निराश्रम पूर्ण है। कोई लिखता है 'ब्राह्मण' १८-८७ ई० मे बन्द रहा, तो कोई लिखता है बीच मे चार माह बन्द रहा।[१] 'ब्राह्मण' खण्ड ४, संख्या १ पर अगस्त, हरिश्चन्द्र सम्वत् ३ (अगस्त १८८७ ई०) पड़ा है। इन दोनों सख्याओं के बीच का समय गणना करने पर एक वर्ष, पाँच महीने निकलता है। इस अवधि मे 'ब्राह्मण' के बन्द होने का कारण मिश्र जी की बीमारी और ग्राहको से चन्दा न मिलना था। खण्ड ३, सख्या १२ का अंक भी तीन माह देर से निकला था। मिश्र जी इस अंक में लिखते है—"हम तीन मास से ऐसे रोगग्रस्त हो रहे है कि जिसका वर्णन नही, पाठक यदि देखते तो त्राहि-त्राहि करते। नित्य के मिलने वाले मित्रो से कोई पूछे, जिन्हे किसी-किसी दिन हमारी दशा पर रोना आता था। फिर आप जानिये अकेला मनुष्य पत्र सम्पादन करता कि रोग जातना भोगता। जिन समर्थको को इस पत्र मे मजा आता है, जिन्होंने बहुधा ब्राह्मण के बचन सराहे हैं, वे कुछ न कुछ कर सकें तो बेहतर है। और जिनके नीचे अभी तक रु० बाकी है वे भी यदि निरे कंगाल न हो गए हों, तो इस पत्र के पाते ही जी कड़ा करके दे डालें, नही तो हम कुछ दिन के लिए असमर्थ हो जाएंगे, कहां तक रिण का भार उठावें। यदि हमारे ग्राहक गण ध्यान देंगे तो हम तीन मास की कसर बहुत शीघ्र निकाल डालैगे।"[२] इसी अंक के बाद 'ब्राह्मण' बन्द हो गया था। आगे मिश्र जी बन्द होने की सूचना इस प्रकार देते है—"जब हैमने बीमारी के सबब 'ब्राह्मण' बन्द कर दिया था तब उलहने पर उलहने देते थे, तकाजे पर तकाजा करते थे कि निकालो, हमतो तुम्हारे साथ हैं, तुम घबराते क्यों हो ? अस्तु हमने निकाला, पर उन महापुरुषों से सहायता के नाते एक पैसा, एक लेख, एक नये ग्राहक का नाम भी मिला हो तो हम गुनहगार।"[३] यद्यपि मिश्र जी को ब्राह्मण के प्रकाशन में अनेक कष्ट उठाने पडे पर वे बड़ी कर्मठता के साथ, आजीवन उसके प्रकाशन मे लगे रहे और यह पत्र उनके जीवन काल में दस वर्ष तक निकलता रहा।

मिश्र जी के पत्रकार-जीवन की कठिनाइयाँ

मिश्र जी के काल में पत्र निकालना बडे जीवट का काम था। जो पत्रकार तन, मन, धन-सभी कुछ अर्पण करने को तत्पर होता था वही पत्रकारिता मे सफल हो सकता था। मिश्र जी लिखते हैं—"यह तो सभी जानते है कि हिन्दी पत्र कुछ कमाई के लिए नही होते, खर्च भर निकलना भी गनीमत है।"[४] फिर मिश्र जी ने

---

१. 'सरस्वती' मार्च १९०६ ई० 'पं० प्रतापनारायण मिश्र : महावीरप्रसाद द्विवेदी
२. 'ब्राह्मण' खण्ड ३ संख्या १२ ('सूचना')
३. 'ब्राह्मण' खण्ड ५ संख्या ३-४ ('सब की देख ली')
४. 'ब्राह्मण' खण्ड ३ संख्या १२ ('सूचना')

अपना पत्र ऐसे स्थान से निकाला था जहाँ हिन्दी-पाठकों की निहायत कमी थी। कानपुर व्यावसायिक शहर होने के कारण मुड़िया-भाषा की ओर विशेष झुका हुआ था, हिन्दी से प्रेम उसे बहुत ही कम था। मिश्र जी आगे स्वतः लिखते हैं—"कानपुर तो वह नगर है जहाँ बड़े-बडे लोग बड़ों-बड़ो की सहायता के आछत भी कभी कोई हिन्दी का पत्र छ: महीने भी नही चला सके। और न आसरा है कि कभी कोई एतद्विषयक कृतकार्यत्व लाभ कर सकेगा। क्योकि यहाँ के हिन्दू समुदाय मे अपनी भाषा और अपने भाव का ममत्व विधाता ने रक्खा ही नही फिर हम क्योकर मान लें कि यहाँ हिन्दी और उसके भक्त-जन कभी सहारा पावेंगे। ऐसे स्थान पर जन्म ले के और खुशामदी तथा हिकमती न बन के 'ब्राह्मण' देवता इतने दिन तक बने रहे, सो भी एक स्वेच्छाचारी के द्वारा सचालित होके, इसे प्रेम देव की आश्चर्य लीला के सिवा क्या कहा जा सकता है?"[1] कानपुर मे 'ब्राह्मण' से पूर्व सन् १८७१ ई० मे एक 'हिन्दू-प्रकाश' नाम का पत्र निकला भी था पर थोड़े ही दिन मे वह कालकवलित हो गया।[2] कानपुर का वातावरण हिन्दी पत्र के अनुकूल नही था। मिश्र जी ही एक ऐसे थे जो कानपुर से 'ब्राह्मण' को किसी प्रकार निकालते रहे। 'ब्राह्मण' के बन्द होने के बाद आज तक कानपुर से कोई हिन्दी का उत्कृष्ट पत्र नही निकल सका। मिश्र जी के उक्त कथन को पढकर आज उनकी दूरदर्शिता पर आश्चर्य होता है।

अर्थाभाव

मिश्र जी की आर्थिक-स्थिति अधिक अच्छी नहीं थी।[3] मकानों के किराये से किसी प्रकार जीवन-निर्वाह होता था। इसलिए 'ब्राह्मण' का जीवन जजमानों (ग्राहकों) की दक्षिणा (चन्दा) पर ही निर्भर था। लेकिन दक्षिणा इतनी कम मिलती थी कि 'ब्राह्मण' का खर्च न चल पाता था। मिश्र जी को ही किसी प्रकार अपना पेट काटकर उसका खर्च पूरा करना पडता था। मिश्र जी लिखते है—"हमारे 'ब्राह्मण' का हाल यह है कि हृदय का रक्त सुखा-सुखा के अब तक चलाये जाते है। वर्ष भर में डेढ़ सौ रुपया छपवाई और डाक महसूल को चाहिए और आमदनी इस वर्ष आठ मास में केवल २०) रु० की हुई है। चार वर्ष मे दो सौ का कर्जा हुआ है। उसे कुछ भुगता चुके है, १५०) भुगताना बाकी है। महीनों से तगादा करते है, ग्राहक सुनते ही नही।"[4] मिश्र जी के इस कथन से उनकी आर्थिक-स्थिति पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। उनकी स्थिति इस योग्य भी नहीं थी कि वे १५०) रु० आसानी से दे सकते।

---

१. 'ब्राह्मण' खण्ड ७ संख्या १२ 'अन्तिम सम्भाषण'—प्रतापनारायण मिश्र
२. अम्बिका प्रसाद वाजपेयी : 'समाचार पत्रों का इतिहास' (२०१० वि०, पृ० १४०
३. 'ब्राह्मण' खण्ड ३ संख्या १२ 'सूचना' : प्रतापनारायण मिश्र
४. 'ब्राह्मण' खण्ड ४ संख्या ९ ('मरे का मारै साह मदार')

ग्राहकों की कमी

'ब्राह्मण' के ग्राहक बहुत-कम थे। उसके जीवन काल मे कभी सौ ग्राहक भी नही रहे। जिनमें चन्दा देने वाले ग्राहक तो बहुत ही थोडे थे। मिश्र जी 'ब्राह्मण' का विज्ञापन देते हुए लिखते है—"अब इस पत्र के ग्राहक इतने थोडे है कि यदि सब से मूल्य प्राप्त भी हो जाय तो भी इस वर्ष ५०) रु० से कम घाटा पडना सम्भव नही है। यद्यपि घाटा हर साल पडता है पर कभी बनावटी दोस्तो (साझियों) के सहारे भुगत लिया, कभी यह समझ के झेल डाला कि आगामी वर्ष प्रबन्ध ठीक रक्खेगे और ग्राकह बढाने का यत्न करते रहेगे तो सब घटी पूरी हो जायगी। और इसी विचार पर गत छः वर्ष मे पाँच सौ से ऊपर रुपया केवल अपनी गाँठ से दिया भी, पर अब मेहनत करके, रुपया लगा के भी अपनी सरस्वती की विडम्बना असह्य है, इससे इरादा तो इसी मास मे बन्द कर देने का था, पर करे क्या, पाँच-सात सहृदयो को' इस पत्र का एकाएकी अन्त हो जाना अत्यंत कष्टदायक होगा, इससे कुछ हो इस साल तो जैसे-तैसे चलाते है पर जहाँ यह वर्ष समाप्त हुआ वही 'ब्राह्मण' के जीवन की ससाप्ति में सदेह न समझिए।"[1] आगे तो मिश्र जी और भी क्षोभ के साथ लिखते हैं—"जिन्हे 'ब्राह्मण' का जीवन न रुचता हो, वे पाँच महीने और राम-राम कर काट दे, फिर देख लेगे कि हर महीने ऊटपटांग लेख और हर साल सोलह आने का तकाजा समाप्त हो गया। क्योकि जब हम सात महीने से देख रहे है कि सहायता के नाते बाजे-बाजे, बड़े-बडे लखपतियो से असली दाम भी नही मिलते, जो कुछ सहारा देते है वह केवल मुख से। जिनसे कुछ आसरा करो वे और कुछ ले के रहते है। जो सचमुच सहायक है, वे गिनती में दस भी नही। इसीसे कई एक उत्तमोत्तम पत्र बन्द हो गये, कई एक आज है तो कल नही, कल है तो परसो नही। कई एक ज्यो-त्यों चले जाते है तो केवल चलाने वाले के माथे। पर अपने राम मे अब सामर्थ्य नही रही। बरसों से झेलते-झेलते हिम्मत हार गयी।"[2]

चन्दा वसूली में कठिनाई

ग्राहको की कमी के साथ चन्दा वसूली में भी बड़ी कठिनाई उठानी पड़ती थी। समय से चन्दा देना तो ग्राहक जानते ही न थे। बहुत से ग्राहक तो चन्दा हजम ही कर जाते थे। 'ब्राह्मण' के प्रायः सभी अंकों में चन्दा का तकाजा रहता था। कुछ ग्राहक तो ऐसे भी थे जो आठ-आठ, दस-दस महीने 'ब्राह्मण' मँगाते थे और फिर सभी प्रतियाँ फेर देते थे।[3] मिश्र जी ने जमामार ग्राहकों की एक पुस्तिका भी

---

१. 'ब्राह्मण' खण्ड ७ संख्या ६ ('विज्ञापन')
२. 'ब्राह्मण' खण्ड ७ संख्या ७ ('सूचना')
३. 'ब्राह्मण' खण्ड २ संख्या १ 'वर्षारम्भ' —प्रतापनारायण मिश्र

'ब्रह्मघाती' नाम से तैयार की थी।[1] इसे प्रकाशित कर वे लोगो को सतर्क करना चाहते थे पर किन्ही कारणो से वह इसे निकलवा नही सके।[2] इस पुस्तिका के कुछ नाम आगे 'ब्राह्मण' मे क्रमश: प्रकाशित हुए थे।[3] मिश्र जी के चन्दा माँगने का ढग भी बड़ा विशिष्ट था। कभी-कभी वे कविता मे–बड़े हास्यपूर्ण ढग से—चन्दा देने का निवेदन करते थे—

"चार महीने हो चुके 'ब्राह्मण' की सुधि लेव।
गगा माई जै करै हमै दक्षिणा देव॥
जो बिन मांगे दीजिए दुहुं दिशि होय अनन्द।
तुम निचिंत हो हम करैं मागन को सौगन्द॥
सदुपदेश नित ही करैं मांगैं भोजन मात्र।
देखहु हम सम दूसरा कहां दान कर पात्र॥
रूप राज की कगर पर जितने होय निशान।
तितै वर्ष सुखसुजसजुत जियत रहो जजमान॥[4]

लेकिन इतने पर भी जब ग्राहक न सुनते तो वे खीझ उठते थे और खूब जली कटी सुनाते थे—'कपडो से भलेमानुष जान पड़ते हो, बोली बानी से रसिक जँचते हो, हम अतरजामी थोड़े ही है कि तुम्हारा आंतरिक देवालियापन जान लें। जहाँ आठ दस महीनें हो गये पत्र लौटास दिया,। लिख दिया—'लेना मजूर नही है।'... क्या यह ब्राह्मण क्षत्रियो का धर्म है ? नहीं, प्रच्छन्न चोरो का, जिसका धर्म एक रुपये पर डिग गया। अगरेजी राज्य न हो तो ऐसे ही लोग डाका मारें। ऐसी ही बुद्धि वाले तो पराए लडको का गला घोट के गहना उतार लेते है। भला ऐसों के लिए हमारे पास क्या है, सिवा बीच वाले शब्द (अर्थात् आशीरवाद) के कि 'खुसी रहो जजमान नैन ये दोनों फूटै' जिसमे कोई समाचार पत्र देखने को जी न चाहे, न हमारे सहयोगियो की हानि हो। और 'राह चलत गिर पडो दांत बत्तीसो टूटै' जिसमे तकाजा करने पर खीस काढ़ के 'सुध नही रहती' न कहो।"[5] कभी-कभी 'ब्राह्मण' बन्द कर देने की धमकी भी देते थे।[6] ग्राहको को उसके गुण भी समझाते थे।—"हम अपने मुंह मियाँ मिट्ठू नही बनते पर इतना कहना अनुचित भी नहीं समझते कि यह 'ब्राह्मण' गुण सम्पन्न नहीं है तो निराशंख भी नही है। पढने वाले

---

१. 'ब्राह्मण' खण्ड ४ संख्या १२ 'सूचना' : प्रतापनारायण मिश्र
२. 'ब्राह्मण' खण्ड ५ संख्या २ 'ब्रह्मघाती' : प्रतापनारायण मिश्र
३. 'ब्राह्मण' खण्ड ६ संख्या १० 'सूचना' : प्रतापनारायण मिश्र
४. 'ब्राह्मण' खण्ड ३ संख्या ५ (विज्ञापन)
५. 'ब्राह्मण' खण्ड ३ संख्या १ (धर्षारम्भे मंगलाचरणाम्)
६. 'ब्राह्मण खण्ड ७ संख्या ६ (विज्ञापन) : प्रतापनारायण मिश्र

आप इसाफ कर सकते है। कुछ न सही तो भी इस जिले की इस पत्र से कुछ शोभा ही है, कलंक नही। साल पूरा होने आया, कुछ न कुछ इसके सबब से लोगो को लाभ ही हुआ होगा, हानि किसी तरह की नही। इस पर भी जो इसके मूल्य पर ध्यान दिया जाय तो एक रुपया साल के हिसाब से महीने मे सिर्फ पाच पैसे और एक पाई होती है। गंवई गॉव के लोग गगापुत्र को कम से कम पाँच टका की *बछिया पुण्य करते है, क्या हिन्दुस्तानी रईस लोग इस विद्यानुरागी 'ब्राह्मण' को* महीने भर मे बछिया के भी आधे दाम नही दे सकते ? रईसों की कौन कहे इसका दाग तो लडके भी दे सकते है।"[1] इसी तरह मिश्र जी अनेक प्रकार से ग्राहकों को समझाते, पुचकारते, कर्तव्य का ध्यान दिलाते, रिझाते—न सुनने पर, डाटते, फटकारते, धमकाते, पर बज्रघाती जमामार ग्राहको पर इसका कोई प्रभाव न पड़ता था। ग्राहक मिश्र जी के लिए सदैव एक समस्या ही बने रहते थे। आगे तो मिश्र जी वैल्यूपेएबिल पोस्ट तक से 'ब्राह्मण' भेजने लगे थे—"ऋण से अधिक उकता के वैल्यूपेएबिल डाक मे 'ब्राह्मण' भेजा तो 'मकतूब अलह इनकार करता है।' खैर ! यहाँ क्या है, किसी का रुपया गया, किसी की शेखी गयी, एक दिन ब्रह्मघाती की फेहरिस्त—*पर यह कहने का हमें साहस बना बनाया है कि सबकी देख ली।*"[2]

प्रेस का संकट

'ब्राह्मण' निर्धन पत्रकार का पत्र था। उसके पास अपना प्रेस नही था। मुद्रण के लिए उसे दूसरे प्रेसों की शरण मे जाना पडता था। ग्राहको की कमी के कारण मिश्र जी मुद्रको के पैसे भी समय से नही दे पाते थे।[3] इसलिए मुद्रक भी *'ब्राह्मण' के छापने में अधिक रुचि न लेते थे। अधिक पैसा उधार हो जाने पर* तो वे छापने से इनकार भी कर देते थे।[4] यही कारण है कि 'ब्राह्मण' को अपने जीवन में कई प्रेसो का चक्कर काटना पड़ा था। इसका पहला अंक नामी प्रेस, कानपुर मे छपा था। इसके बाद क्रमशः हरिप्रकाश यन्त्रालय, बनारस (खण्ड १, सख्या २ से खण्ड १, सख्या ९ तक), शुभचिंतक प्रेस, शाहजहाँपुर (खण्ड १, सख्या १० से खण्ड २, सख्या ५ तक), शुभचिंतक प्रेस, कानपुर (खण्ड २, संख्या ६ से खण्ड ३, संख्या १ तक, मर्चेण्ट प्रेस, कानपुर (खण्ड ३, संख्या २ केवल), ब्रादरान *यंत्रालय, लखनऊ (खण्ड ३, संख्या ३ से खण्ड ३, सख्या १० तक)*, भारतभूषण यन्त्रालय, शाहजहाँपुर (खण्ड ३, सख्या ११ से खण्ड ३, संख्या १२ तक), शुभचितक

---

१. 'ब्राह्मण' खण्ड १ संख्या ११ (जरा सुनो तो सही)
२. 'ब्राह्मण' खण्ड ५, संख्या ३-४ 'सबकी देख ली'—प्रतापनारायण मिश्र
३. 'ब्राह्मण' खण्ड ५ संख्या २ 'ब्रह्मघाती'—प्रतापनारायण मिश्र
४. 'ब्राह्मण' खण्ड ४ संख्या १ 'आप बीती'—प्रतापनारायण मिश्र

प्रेस, कानपुर (खण्ड ४, सख्या १ से खण्ड ६, संख्या २ तक, दूसरी बार), हनुमत प्रेस, कालाकाकर (खण्ड ६, सख्या ३ से खण्ड ६, सख्या ११ तक) और खंगविलास प्रेस, बाकीपुर (खण्ड ६, सख्या १२ से अन्त तक) मे छपा। प्रेस की ही असुविधा के कारण 'ब्राह्मण' समय स नही निकल पाता था। कभी-कभी पृष्ठ बढाकर दो अक एक ही मे निकाल दिये जाते थे। मिश्र जी लिखते है—"इधर छापने वालो की घिस-घिस जुदा ही हैरान करती है। पहिले तो लिखते है—हम तुम्हारे मित्र है, हमारे प्रेस को सहायता दो, पीछे चिट्ठी पर चिट्ठी भेजो जवाब नदारत। इन्ही कारणों से विलम्ब होता हे।"[1] ग्राहको और प्रेस की कमी 'ब्राह्मण' की वृद्धि में बडी बाधक थी। मिश्र जी इस पत्र को पाक्षिक करना चाहते थे[2] पर पाक्षिक होना तो दूर रहा, महीने मे ही निकालना मुश्किल हो गया। आर्थिक स्थिति अच्छी न होने के कारण 'ब्राह्मण' बहुत ही मामूली कागज पर छपता था। खंगविलास प्रेस (बाकीपुर) जाने से पूर्व तो 'ब्राह्मण' की स्थिति बडी ही खराब थी। खण्ड सात के समाप्त होने पर तो 'ब्राह्मण' ने अन्तिम बिदा भी ले ली थी—"सात वर्ष का तमाशा देखते-देखते जी ऊब उठा है। यद्यपि उन लोगो से विदा होते मोह लगता है जिनके साथ इतने (अथवा कुछ कम) दिनो सम्बन्ध रहा है और कभी कोई उलहने वाली बात नही आने पाई। पर क्या कीजिए समय का प्रभाव रोकना किसी का साध्य नही है। अतः छाती पर पत्थर रख के विदा होते हैं।"[3] लेकिन इस सूचना के बाद ही खंगविलास प्रेस के मालिक बाबू रामदीन सिंह ने 'ब्राह्मण' के गुणों से प्रभावित होकर, इसके मुद्रण और प्रकाशन का पूरा भार अपने ऊपर ले लिया और खण्ड ८ संख्या १ स यह उनके प्रबन्ध से निकलने लगा। वैसे 'ब्राह्मण' की सहायता वे खण्ड ६ और सख्या १२ से ही कर रहे थे और खंगविलास प्रेस से वह निकल भी रहा था।[4] पर अब पूरी तरह 'ब्राह्मण' ठाकुर साहब पर ही आधारित हो गया और मिश्र जी अब उसकी मुद्रण और प्रकाशन सम्बन्धी परेशानियो से मुक्त हो गये। मिश्र जी लिखते है—"अब हम पूर्ण रूप से निर्द्वन्द हो गये अतः अपनी सामर्थ्य भर इस पुनर्जीवित 'ब्राह्मण को मेढक (प्रसिद्ध है कि मेढक गर्मियों मे मर जाते है और वर्षा मे फिर जी उठते है) की नाईं टर्र-टर्र करने वाला न बनावेंगे (यद्यपि एडीटर शब्द की यह भी दुम है) किन्तु मृत्युंजय मंत्र की भाँति देश के शारीरिक मानसिक और सामाजिक रोग दोषादि को दूर करने वाला सिद्ध कर दिखावेगे। पर

---

१. 'ब्राह्मण' खण्ड ४ संख्या १ (आप बीती)
२. 'ब्राह्मण' खण्ड १ संख्या ११ 'जरा सुनो तो सही' : प्रतापनारायण मिश्र
३. 'ब्राह्मण' खण्ड ७ संख्या १२ 'अन्तिम सम्भाषण' : प्रतापनारायण मिश्र
४. 'ब्राह्मण' खण्ड ७ संख्या १२ 'अन्तिम सम्भाषण' : प्रतापनारायण मिश्र

कब ? जब आप लोग भी ध्यान दे के पढेगे और इसके प्रचार का पूर्ण उद्योग करते रहेगे तथा समय-समय पर सुन्दर लेख भी भेजते रहेगे। पर खबरदार मूल्य एवं साहाय इत्यादि का रुपया उपया कानपुर के पते पर न भेजिएगा, हम इसे न छुवेंगे, अथवा छूते ही उडा देंगे। इससे नए, पुराने खण्ड तथा हमारी पुस्तको की माँग और दाम मैनेजर खंगविलास प्रेस, बाकीपुर के पास भेजा कीजिए.और अपने तथा हमारे लिए कोई बात पूछनी भी हो तो खैर कानपुर ही सही। बस[1]।" मिश्र जी, रामदीनसिंह की इस सहायता से उनके बडे प्रशसक हो गये। वे उनकी कल्याण की ईश्वर से प्रार्थना करते हुए कहते है।

"याते मांगहिं जोरि कर, धरि उर आश महान।
हिन्दी हिन्दू हिन्द कर, करहु नाथ; कल्याण।।
है इनके साँचे हितू, श्री महाराज कुमार।
रामदीन हरि विज्ञवर, धरम बीर समुदार।।
जासु कृपा लहिकै भयो, मृत्युंजय यह पत्र।
राखहु निज कर कंज कर, प्रभुवर! तेहि शिर छत्र[2]।।

रामदीन सिंह के संरक्षण में जाने के बाद 'ब्राह्मण' समय से निकलने लगा। खण्ड ९ के बाद तो उसका आकार भी पाँच फार्म होगया और मूल्य भी १) रु० से बढाकर १।=) कर दिया गया। इसकी सूचना 'ब्राह्मण' मे इस प्रकार निकली थी—"यदि आप सचमुच 'ब्राह्मण' के हितैषी है तो कृपा पूर्वक इसका मूल्य जितना आपके यहा बाकी है भेज दीजिए और आगे के लिए लेना है तो अब आप एक रुपया, छ. आने भेजिए क्योकि अब इसका आकार प्रतिमास पाच फार्म रहेगा और डाक व्यय प्रतिमास आठ आना लगेगा। यदि आप पहले का मूल्य न भेंजेंगे तो कभी आपके पास यह पत्र न जायगा, सचेत होइए और मुझे आशा है कि आप नादेहंद ग्राहको से नाम भी न लिखाइएगा। इसके सिवा कोई पृथक पत्र भी अब आपके पास न जायगा मूल्य मेरे पास १५ अगस्त तक आ जाना चाहिए[3]।" खण्ड ८ (अगस्त, १८९१ ई०) से मिश्र जी को केवल लिखने की ही चिन्ता रह गयी थी, शेष 'ब्राह्मण' के सब कार्य खंगविलास प्रेस से ही होते थे। पर दुख है कि मिश्र जी इस सुअवसर का अधिक दिन उपयोग न कर सके और तीन वर्ष बाद ही उनका स्वर्गवास होगया। अन्यथा हिन्दी-साहित्य और समाज का बहुत-बड़ा

---

१. 'ब्राह्मण' खण्ड ८ संख्या १ (नव सम्भाषण)
२. 'ब्राह्मण' खण्ड ८ संख्या १ (मंगल पाठ)
३. ब्राह्मण'खण्ड ९, संख्या १२, 'पहले इसे पढ़ लीजिऐ'-मैनेजर, 'खंगविलास' प्रेस बाँकीपुर

कल्याण हुआ होता। मिश्र जी ने प्रारम्भ में सात वर्ष जो 'ब्राह्मण' के प्रकाशन मे कष्ट उठाये वे उनकी अटूट-कर्मठता और प्रवलसाधना के द्योतक है। 'ब्राह्मण' की वास्तविक सप्राणता इन्ही वर्षो मे दिखाई पड़ती है। मिश्र जी को 'ब्राह्मण' के प्रति-पुत्र से भी अधिक मोह था। वे 'ब्राह्मण' के बन्द होने की सूचना देते हुए लिखते है- 'ब्राह्मण' का बन्द होने में परमेश्वर साक्षी है कि हमें पुत्र-शोक से कम शोक न होगा पर हत्यारे नादिहन्दो ने हमे लाचार कर दिया है[1]।

निष्पक्ष और यथार्थ विचार पत्र की बिक्री में बाधक

मिश्र जी देश भक्त पत्र कार थे। वे देशोन्नति मे बाधक विचारो और कार्यों की कटु आलोचना करते थे[2]। विदेशी सरकार की भर्त्सना करने का तो उन्होंने व्रत ही ले लिया था।[3] इसलिए सरकार से लाभ की अपेक्षा हानि की अधिक सम्भावना थी। सामाज मे फैले हुए अन्धविश्वासो, मतमतान्तरो और कुरीतियो के वे पक्के विरोधी थे[4]। राजाओ, जमीदारों और धार्मिक सस्थाओं का भडा फोड़ करना तो उनके लिए एक सहज कार्य था। अत: ऐसे क्रान्तिकारी और स्पष्टवादी पत्र को पराधीन भारत मे प्रश्रय मिलना, बहुत दूर की बात थी। यही कारण था कि मिश्र जी को उस समय दस साझीदार मिलना भी दूभर होगया—"यदि एक-एक रुपया महीना वाले दस साझीदार अथवा सच्चे सौ ग्राहक नियत कर देने का कोई जिम्मा ले तो फिर इसे चलाये जायं। पर न॰ इनका आसरा है न हमसे खुशामद हो सकती है, इससे जब तक फिर हमारा ही जी फिर से न फुलफुलाय तब-तक इसे बन्द ही समझिये[5]।" मिश्र जी के युग मे खुशामदी ही सुखी थे। भारतीयों मे गुलामी का रग इतना चढ़ा हुआ था कि देशहितैषी पत्रों को देखना भी वे पाप समझते थे। मिश्र जी अनेक कष्ट और हानि सहते हुए भी पत्र चलाने को तत्पर थे पर पाठको की कमी ने ही उन्हे पत्र बन्द करने को बाध्य कर दिया था। वे लिखते हैं—"अपने इष्ट मित्रो में दस-दस, पाँच-पाँच कापी बिकवा देने वाले दस-पन्द्रस सज्जन भी होते तो हमें छ: वर्ष साढ़े पाँच सौ की हानि क्यो सहनी पड़ती, जिसके लिए साल भर तक कालाकाकर मे स्वभाव विरुद्ध बनवास करना पडा। यह हानि और कष्ट हम बड़ी प्रसन्नता से अगीकार किये रहते यदि देखते कि हमारे परिश्रम को देखने वाले और हमारे विचारो पर ध्यान देने वाले दस बीस सद्व्यक्ति भी

---

२. 'ब्राह्मण' खण्ड ४, संख्या ११ ('हमारे उत्साह-वर्द्धक')

३. 'ब्राह्मण' खण्ड १, संख्या ६-७ तथा खण्ड २, संख्या २-५-९-१० 'देशोन्नति' प्रतापनारायण मिश्र

४. 'ब्राह्मण' खण्ड १ 'हो·ओ ओ ली है'—प्रतापनारायण मिश्र

५. 'ब्राह्मण' खण्ड १० 'मुक्ति के भागी'—प्रतापनारायण मिश्र

हैं[१]।" 'ब्राह्मण' के जीवन मे तो 'खरी बात शहिदुल्ला कहे सब के जीते उतरे रहें' ही चरितार्थ हो रहा था।

रुग्णावस्था

मिश्र जी प्राय: बीमार ही बने रहते थे। कभी-कभी तो उनमे लेख लिखने की सामर्थ्य भी न रह जाती और 'ब्राह्मण' बिना उनके लेख के ही प्रकाशित हो जाता था[२]। बीच मे बीमारी के ही कारण उन्हें 'ब्राह्मण' बन्द भी करना पडा था।[३] 'ब्राह्मण' के समय से न निकल पाने का एक प्रमुख कारण बीमारी बहुत-बडी अवरोध शक्ति थी।

सहायकों की कमी

'ब्राह्मण' के सहायक बहुत कम थे। 'ब्राह्मण' का प्रकाशन मिश्र जी ने पडित बद्रीदीन शुक्ल, लाला छोटेलाल, गयाप्रसाद और बाबू बशीधर के प्रोत्साहन से प्रारम्भ किया था।[४] पर इन लोगो मे 'ब्राह्मण' को किसी प्रकार की आर्थिक सहायता नही मिली। कुछ दिन बाद रामसिंह देव वर्मा, जगन्नाथ भारतीय और मगलदेव सन्यासी ने 'ब्राह्मण' को कुछ आर्थिक सहायता देनी प्रारम्भ की परन्तु आगे मिश्र जी ने इन लोगो को अधिक कष्ट देना अच्छा नही समझा और खण्ड सात के बाद 'ब्राह्मण' को बन्द कर देने का निश्चय किया।[५] ऐसी स्थिति मे कुछ लोगो ने मिश्र जी से कहा कि 'ब्राह्मण' हमारे पत्र मे मिला दीजिए। लेकिन स्वाभिमानी मिश्र जी ने 'ब्राह्मण' को दूसरे पत्र मे मिलाना अपनी प्रतिष्ठा के विरुद्ध समझा। वे लिखते हैं—"कई लोगों ने यह लिखा है कि 'ब्राह्मण' हमारे पत्र मे मिला दीजिए और सम्पादक का भार ले लीजिए तो हानि-लाभ हम भुगत लेगे, पर हम दूसरे पत्र में मिला देना नही पसंद करते। सात वर्ष का पत्र नये पत्रो का आश्रित बनने से चल बसना उत्तम समझेगा। हमे लिखने का माध पुजाने को द्विज पत्रिका, हिन्दी प्रदीप, भारतमित्र भगवान ने दे रक्खे हैं फिर दूसरो मे 'ब्राह्मण' क्यो मिलावै ?"[६] इसके अतिरिक्त 'ब्राह्मण' के कर्मचारियो की सख्या तो और भी कम थी। केवल सपादक और मैंनेजर दो ही उसके कर्मचारी थे। जिसमे 'ब्राह्मण' का मैंनेजर होना तो कोई पसन्द ही नहीं करता था क्योकि उसमें लाभ की तो कोई आशा ही नहीं थी और जो मैंनेजर

---

१. 'ब्राह्मण' खण्ड ७ संख्या १२ 'विज्ञापन' प्रतापनारायण मिश्र
२. 'ब्राह्मण' खण्ड ७ सख्या १२ (अन्तिम सम्भाषण)
३. 'ब्राह्मण' खण्ड ९ संख्या ४ 'जरा पढ़ लीजिऐ' प्रतापनारायण मिश्र
४. 'ब्राह्मण' खण्ड ५ संख्या ३-४ 'सब की देख ली' प्रतापनारायण मिश्र
५. ब्राह्मण'-खण्ड २ संख्या १ 'वर्षारम्भ' : प्रतापनारायण मिश्र
६. 'ब्राह्मण' खण्ड ७ संख्या १२ 'अन्तिम सम्भाषण' : प्रतापनारायण मिश्र

होना स्वीकार भी करते थे वे कोरी बेगार करते थे। मिश्र जी लिखते हैं—"यह झझट सौपने के लिए यदि किसी को अपना समझ करके मैनेजर ठहराते है तो या तो वह साहब आमदनी ही हजम कर बैठते है या बेगार का काम समझ के हमसे भी अधिक मस्त बन बैठते है जिसमें न किसी की चिट्ठी-पत्री का जवाब है न कोई हिसाब है। इस रीति से हमे जब देना पड़ा है, गाठ ही से देना पडा है जिसके लिए समय पर रुपया पास न होने के कारण यंत्राध्यक्षो से झूठे वादे और चित्त की झुझलाहट रोक के बाबू साहब, बाबू साहब करना एक मामूली बात है। एक भले मानस हमारे हानि-लाभ के साझी बने थे पर जब कुछ दिन मैनेजमेंट अपने हाथ मे रख के समझ गये कि इसमे हानि ही हानि है तो झट से तोते की तरह आखे बदल बैठे।"[1] मैनेजरो की इस बेगार के ही कारण कुछ दिनो मिश्र जी ने मैनेजर का काम भी अपने हाथो मे ही ले लिया था। अवैतनिक होने के कारण कोई मैनेजर 'ब्राह्मण' में अधिक दिन नही ठहरता था। 'ब्राह्मण के सबसे पहले मैनेजर गोपीनाथ खन्ना थे जो खण्ड १, सख्या १ से ८ तक मैनेजर रहे। इसके बाद क्रमशः मनोहरलाल मिश्र (खण्ड १, सख्या ९ से खण्ड २, सख्या २ तक) बद्रीदीन शुक्ल (खण्ड ४, सख्या १ से खण्ड ५, सख्या २ तक), ब्रजभूषणलाल गुप्त (खण्ड ५, सख्या ३ से खण्ड ६, संख्या १२ तक), 'ब्राह्मण के मैनेजर रहे। कर्मचारियो की कमी के कारण अधिकाश कार्य मिश्र जी को ही करने पड़ते थे। लिखने से लेकर प्रूफ देखने तक के सम्पूर्ण कार्य मिश्र जी पर ही निर्भर थे। कार्य की अधिकता के कारण, 'ब्राह्मण' मे अनेक प्रूफ सम्बन्धी अशुद्धियाँ भी रह जाती थी। यहाँ तक कि खण्डो और सख्याओ के नम्बर तक अशुद्ध छप जाते थे।[2] 'ब्राह्मण' की पूरी जिम्मेवारी मिश्र जी पर ही थी इसलिए बीमारी हालत मे भी उन्हे विश्राम न मिल पाता था। जब-तक वे पूरी तरह शय्याधीन नही हो जाते थे तब-तक बराबर 'ब्राह्मण' के प्रकाशन में लगे रहते थे।

इस प्रकार अनेक कष्ट उठाते हुए भी मिश्र जी पत्रकारिता के क्षेत्र में बराबर अग्रसर रहे और अच्छी ख्याति प्राप्त की।

ब्राह्मण में प्रकाशित विषय

'ब्राह्मण' की विषय-सामग्री मे बड़ी विविधता थी। सामाजिक, राजनीतिक, साहित्यिक, धार्मिक आदि सभी विषय उसमें प्रकाशित होते थे। इसके साथ ही स्थानीय तथा देश-विदेश के प्रमुख-प्रमुख समाचार भी 'ब्राह्मण' मे निकलते थे। मिश्र जी ने पहले ही अक मे 'ब्राह्मण' की विषय-सामग्री की सूचना इस प्रकार दी थी—"कभी राज्य सम्बन्धी, कभी व्यापार सम्बन्धी विषय भी सुनावेंगे, कभी-कभी

---

१. **'ब्राह्मण' खण्ड ७ संख्या ११ ('हमारे उत्साहदाता')**

२. **'ब्राह्मण' खण्ड ७ संख्या १२ ('अन्तिम सम्भाषण')**

गद्य-पद्यमय काव्य नाटक से भी रिझावेंगे । इधर-उधर के समाचार तो सदा देहीगे ।"[१] इस कथन से उसकी विषय विविधता का सहज ही पता चल जाता है । उदाहरणार्थ-खण्ड १ सख्या २ का विषय विभाजन देखिए—

१—बेगारी विलाप (कविता)
२—असेसर
३—स्यापा
४—ज्यूरिसडिक्शन बिल
५—समालोचना
६—कानपुर
७—कुछ दोहे
८—विविध समाचार
९—औषधि
१०—विज्ञापन
११—मूल्य प्राप्ति स्वीकार

'ब्राह्मण' में सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक विषयो पर बडे उत्कृष्ट लेख, निबन्ध और कविताएँ निकलती थी । इनमें उस समय का सजीव चित्र अकित रहता था । ऐतिहासिक दृष्टि से भी 'ब्राह्मण' की संचिकाएँ बड़ी महत्व की हैं । लार्ड रिपन से लेकर लैंसडाउन के शासन का तक का प्रामाणिक इतिहास इनमे मिलता है । इसके अतिरिक्त कानपुर की तत्कालीन स्थिति का जैसा विस्तृत चित्रण 'ब्राह्मण' में मिलता है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है । पंडित लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी के शब्दों मे—"कानपुर नगर की पूरी चहल-पहल का चित्र भी 'ब्राह्मण' के प्रत्येक अंक की सामग्री मे मिलता है । यहाँ के आर्यसमाजियों और सनातन धर्मियों के शास्त्रार्थ, मन्दिरों के ट्रस्टियों के अन्धेर, कट्टरपंथियों की धर्मान्धता और अनुदारता, ईसाई पादरियों के धर्म प्रचार की उग्रता, गौरक्षिणी सभा की स्थापना का निष्फल प्रयास, मनोरजक दंगल और नाटक, ख्याल तथा अन्य लोक गीतो की धूम, वेश्याओ के नाच, अमीरों के दुर्व्यसन व दुराचार, घी मे मिलावट, विलायती चीनी, नवयुवकों की उच्छृंखलता, नये फैशन का समाज पर आक्रमण खान-पान मे ढिलाई का प्रारम्भ, सभा सगठन और उसका अनिवार्य सहचर चन्दा आदि-आदि—प्राय. सभी की ब्राह्मण मे चर्चा है ।"[२] 'ब्राह्मण' देश हितैषी पत्र था । उसे देश और समाज से बड़ी ममता थी । इसलिए उसमे देश और समाज के चित्र बड़ी स्पष्टता से खींचे गये हैं । साहित्यिक

---

१. 'ब्राह्मण' खण्ड १ सख्या १ ('प्रस्तावना')
२. 'रामराज्य' (कानपुर) ३ दिसम्बर, १९५६ ई० 'पं० प्रतापनारायण मिश्र—एक 'ऐतिहासिक विश्लेषण' : लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी

विषय भी उसके बड़े सुन्दर है। 'ब्राह्मण' में निबन्ध और कविताएँ प्रमुख रूप से निकलती थी। कभी-कभी नाटक और संग्रह-ग्रथ धारावाहिक रूप से प्रकाशित होते थे। इसके साथ ही कुछ समालोचनात्मक लेख भी 'ब्राह्मण' मे निकले थे। समालोचनाएँ प्रायः नई प्रकाशित पुस्तकों और सामयिक-पत्रों पर लिखी जाती थी। तत्कालीन पत्रों की समालोचना का एक नमूना देखिए—

"सारसुधानिधि," राजनैतिक विषयो मे उत्कृट है पर भाषा ऐसी कड़ी है कि सब कोई नही समझ सकता और प्रत्येक लेख शैतान की आत होता हे जिसको पढ़ते-पढते जी उकता जाता है। 'भारतमित्र' जरा चित्ताकर्षणीय शक्ति प्राप्त कर लें तो बहुत अच्छे हो जाये और जरा विस्तार भी सीखे। 'उचितवक्ता' जो करते है ठीक करते है।—मासिक पत्रों में 'हिन्दी प्रदीप' बेशक हिन्दी भास्कर है। 'दिनकर प्रकाश' जरा एडीटर साहब खुद भी लिखा करें तो बेहतर है। आनन्दकादम्बिनी' में दोष लगाना व्यर्थ है।—'धर्मजीवन' यद्यपि उर्दू मे है पर प्रशसनीय है। 'ज्ञान प्रदायिनी' भी खैर अच्छी है। रहे हम 'ब्राह्मण' सो न हग्गा न ब्रह्मचारी मे, पर खैर (गालिब यह जाय रश्क नही जाय शुक्र है) दस से बुरा तो चार से बेहतर बना दिया।—बस मुनासिब जानकर लिख मारा। हमसे, कोई खुश हो तो क्या, कोई रूठे तो क्या हे ?"[१]

'ब्राह्मण' हास्य और व्यग्य प्रधान पत्र था। उसमें मनोरंजन की सामग्री प्रचुर मात्रा में रहती थी। 'गपशप' नाम का उसमे एक अलग स्तम्भ ही था जिसमे मनोरजक चुटकुले और पहेलियाँ प्रकाशित होती थी। उदाहरणार्थ एक चुटकुला देखिए—

"एक जने ने एक का बकरा चुरा के मार खाया, उस चोर से एक मौलवी साहब ने कहा—'बचा खुदा के सामने कयामत मे इस गुनाह का क्या जवाब दोगे ?' चोर ने कहा—'जवाब क्या देगे, इनकार कर जायंगे।' मौलवी बोले—'वहाँ इनकार न चलेगा। वहाँ तो बकरा और उसका मालिक दोनों मौजूद होंगे।' चोर ने उत्तर दिया—'तो फिर क्या अंदेशा ? बकरे का कान पकड़ के उसके मालिक के हवाले कर देंगे और जुर्म से बरी हो जायँगे।"[२]

'गपशप' स्तम्भ बच्चों के मनोरंजनार्थ था। पहेलियों पर पुस्तकें इनाम मे रखी जाती थीं। जो उनके उत्तर लिख भेजते थे, उन्हे ये प्रदान की जाती थीं। उदाहरण के लिए कुछ पहेलियाँ देखिए—

"आधी सरिता में बसै, आधी नृप आधीन।
अजब मिठाई सों भरी, नाम कहौ परबीन॥ (बालूशाही)

१. 'ब्राह्मण' खण्ड ३ संख्या ९-१० ('आलोचना')
२. 'ब्राह्मण' खण्ड ८ संख्या ८ 'गपशप' —प्रतापनारायण मिश्र

दिखरावै सब वस्तु पै, करै नैन बेकाम।
चौरो करि राख्यो सबहिं, चतुर बताओ नाम ।।

(कैरोसिन तेल की रोशनी)

वृक्ष असत पै खग नहीं, जलजुत पै घन नाहिं।
त्रिनयन पै शंकर नहीं, कहौ समुझि मन माहिं ।।"[1]

(नारियल)

कभी-कभी इसी स्तम्भ में कुछ उपयोगी बाते भी निकल जाती थी। एक 'सेत का लटका, पढिये—

"भोजन करिके परै उतान।
आठ साँस तेहि कै परमान ।।
स्वारा दहिने बत्तिस बायें।
तब फल परे अन्न के खाये ।।"[2]

समाचार देने के लिए भी 'ब्राह्मण' में एक अलग 'समाचारावली' नामक स्तम्भ था। इसमें सामयिक घटनायें, भाषणों और सभाओं के वर्णन, देश-विदेश के समाचार, जगहें खाली होने की सूचनायें, परीक्षा फल, रेलवे-टाइम टेबिल आदि प्रकाशित होते थे। यद्यपि 'ब्राह्मण' मासिक पत्र था फिर भी इसमे प्रमुख समाचार अच्छी मात्रा मे रहते थे। सच्चे समाचार भेजने वालो को एक पत्र भी बिना मूल्य दिया जाता था।[3] एक समाचार का नमूना देखिए—

"और-और मुल्क वालो को देखो कि नई-नई चीजें निकालते जाते है, हिन्दुस्तानियों से, पुरानी चीजों का लोप हुआ जाता है. नई क्या निकालेगे ? देखिए आलू को किसी मसाले मे उबालकर हाथी दात सा बनाय लेने की तदबीर निकाली है। भारतवासियों ? नसीब ठोके बैठे रहो, गुलमई तो कही नही गई।"[4]

कानपुर के स्थानीय समाचार प्रायः 'कानपुर' शीर्षक से निकलते थे। इसमे किसी प्रमुख अधिकारी के ट्रान्सफर, देहान्त तथा तत्कालीन वातावरण की सूचनायें रहती थी। एक स्थानीय समाचार की कुछ पंक्तियाँ देखिए—

---

१. '—वही—' ,, ७ ,, १० 'पहेली' '—वही—'
२. '—वही—' ,, ३ ,, ३-४ 'सेत का लटका' '—वही—'
३. 'ब्राह्मण' खण्ड १ संख्या १ 'विज्ञापन' —प्रतापनारायण मिश्र
४. 'ब्राह्मण' खण्ड १ संख्या ७ 'समाचारावली' —प्रतापनारायण मिश्र

"श्री बाबू गोविन्दचन्द्र भट्टाचार्य डिप्टी कलक्टर मैनपुरी बदले, ये एक बडे भद्र पुरुष हे और बाबू सुन्दरलाल हेड क्लर्क उनके स्थानापन्न हुए। पंडित चौहारीप्रसाद तहसीलदार साढ यहाँ के डिप्टी कलक्टर हुए। ता० ८ को यहाँ ओले गिरे, आस-पास के गावों में हानि हुई, सुनते है, मुहार में ऐसा गिरा जिसका व्यास तीन इंच था।"[1]

कभी-कभी सरस रोचक समाचार भी 'ब्राह्मण' मे निकलते थे—

"एक आदमी लंडन के बड़े डाकघर मे टिकट खरीदने गया। जब खिडकी की तरफ झुका तो क्या देखता है कि अन्दर दो जवान औरतें आपस मे बाते कर रही है और ये डाकघर मे मुंशीगिरी का काम करती थी। आदमी को देखकर भी बेखटके बाते करती रही। एक बोली कि 'हे प्यारी, क्या उसने तुम्हे चूमा भी था?' और जब दूसरी ने ठीक-ठीक जवाब दिया तो बिचारे को टिकट मिली। 'न स्त्री स्वतंत्रता महति' गोरे चमड़े की सब मुआफ है, जो यह बात कही हमारे यहाँ की होती तो मिंया इगलिश मैन न जाने क्या-क्या झख मारते?"[2]

इसके अतिरिक्त चन्दा देने वाले ग्राहकों के नाम भी (चन्दा की रकम सहित) 'ब्राह्मण' मे 'मूल्य प्राप्ति स्वीकार' शीर्षक के अन्तर्गत छापे जाते थे। कभी-कभी एजेन्सियो, पत्रो और पुस्तको के विज्ञापन भी 'ब्राह्मण' मे निकलते थे और विज्ञापन दर एक आना प्रति पंक्ति थी।[3]

इस प्रकार विषय-विविधता की दृष्टि से 'ब्राह्मण' बड़ा धनी था। एक मासिक पत्र मे जिस प्रकार के विषय होने चाहिए, वे सभी 'ब्राह्मण' में पूरी मात्रा में थे। विभिन्न रुचि वाले व्यक्तियो के मनोनुकूल सामग्री, 'ब्राह्मण' मे सहज ही मिल जाती थी।

ब्राह्मण के लेखक

'ब्राह्मण' मे प्रमुख रूप से मिश्र जी की ही रचनाएँ प्रकाशित होती थीं, क्योकि उस समय लेखकों की बड़ी कमी थी और जो लेखक थे भी वे स्वयं ही किसी-न-किसी पत्र के सम्पादक थे इसलिए उन्हे अपने ही पत्र के कलेवर भरने की चिन्ता लगी रहती थी। 'ब्राह्मण' में लिखने वाले—प्रसिद्ध लेखकों में केवल राधाकृष्णदास और अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' थे। एकाध लेख भारतेन्दु हरिश्चन्द्र[4] और

---

१. 'ब्राह्मण' खण्ड १ संख्या १ 'स्थानीय समाचार' —प्रतापनारायण मिश्र
२. 'ब्राह्मण' खण्ड १ संख्या ९ 'समाचारावली' —प्रतापनारायण मिश्र
३. '—वही—' ,, १ ,, १ 'विज्ञापन' '—वही—'
४. '—वही—' ,, ८ ,, ९ 'हम मूर्ति पूजक हैं' —भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

श्रीधर पाठक[1] के भी प्रकाशित हुए थे। राधाकृष्णदास की रचनाओ मे बन्दर जातीय गौरव संरक्षिणी महासभा,[2] अनारेरी मैजिस्ट्रेट क्या नाम,[3] हम क्या है,[4] भक्तमाल,[5] श्री प्रेम स्तोत्र,[6] प्रेम-भक्ति व स्नेह,[7] दोहे,[8] जीवन की दस अवस्था,[9] प्रेमोद्गार[10] आदि और अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' की रचनाओ मे मिश्र जी के नाम पत्र,[11] चार,[12] प्रेम प्रशंसा,[13] सतान,[14] हिन्दी भाषा की अनति[15] आदि विशेष उल्लेखनीय है। सामान्य लेखक-जिनकी रचनाऐ 'ब्राह्मण' में प्रकाशित हुई थी—लगभग ४५ (नौ वर्ष के अंको मे) मिलते है। इनमें कुछ के नाम इस प्रकार है-काशीनाथ खत्री,[16] केशवप्रसाद अग्निहोत्री,[17] परमसुख 'सुखी',[18] शिवराम पड्या,[19] मिजाजी लाल शर्मा,[20] अम्बिकाप्रसाद मुदर्रिस,[21] प्राणोपम,[22] सीताराम,[23] चकनाचूर बेशहूर,[24]

---

१. '—वही—' ,, २ ,, ७ 'हिन्दुस्तान की चन्द कौमों की समालोचना —श्रीधरपाठक

२. 'ब्राह्मण' खण्ड १ संख्या ११ 'बंदर जातीय गौरव संरक्षिणी महासभा' —राधाकृष्णदास

३. '—वही—' ,, २ ,, ६ 'अनारेरी मैजिस्ट्रेट क्या नाम' —राधाकृष्णदास

४. '—वही—' ,, २ ,, ६ 'हम क्या हैं' '—वही—'

५. '—वही—' ,, ३ ,, ७ 'भक्तमाल' '—वही—'

६. '—वही—' ,, ३ ,, ८ 'श्री प्रेम स्तोत्र' '—वही—'

७. 'ब्राह्मण' खण्ड ३ संख्या ११ 'प्रेम, भक्ति व स्नेह' राधाकृष्णदास

८. —वही— ,, ६ ३ दोहे' —वही—

९. ,, ,, ६ ३ 'जीवन की दस अवस्था' ,,

१०. ,, ,, ७ १२ 'प्रेमोद्गार' ,,

११. ,, ,, ४ १२ 'मिश्र जी के नाम पत्र' अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

१२. ,, ,, ६ ३ 'चार' —वही—

१३. ,, ,, ६ ४ 'प्रेम प्रशसा' —वही—

१४. ,, ,, ६ ५ 'सतान' ,,

१५. ,, ,, ६ १२ 'हिन्दी भाषा की अवनति' ,,

१६. ,, ,, १ १ 'प्रेरित-पत्र' काशीनाथ खत्री

१७. ,, ,, १ ४ 'प्रेरित-पत्र' केशवप्रसाद अग्निहोत्री

१८. ,, ,, १ ८ 'प्रेरित-पत्र' परमसुख 'सुखी

१९. ,, ,, १ १२ 'होली' शिवराम पंड्या

२०. ,, ,, २ ३ 'जखई उपासना और सैयदपूजन से देश निर्धन और मूर्ख' मिजाजी लाल शर्मा

२१. ,, ,, २ ७ 'प्रेरित-पत्र' अम्बिकाप्रसाद मुदर्रिस

२२. ,, ,, २ ७ 'मुलतवी रखने के बुरे फल' प्राणोपम

२३. ,, ,, २ ९-१० 'चि० दिनकरप्रकाश को क्या होगया' सीताराम

२४. ,, २ ९-१० 'चेतावनी' चकनाचूर बेशहूर

विश्वेश्वरनाथ शुक्ल,[१] शंकर,[२] काशीनाथ चोबे,[३] गदाधर प्रसाद 'नवीन',[४] कालीचरण द्विवेदी,[५] शकर प्रसाद दीक्षित,[६] गुरुदयाल,[७] सूर्यप्रसाद मिश्र,[८] विश्वनाथ सिंह,[९] गंगाधर मुखोपाध्याय,[१०] लाला खड्गबहादुर,[११] श्रीकृष्ण,[१२] साहिबप्रसाद सिंह,[१३] खेतलदास पाण्डे,[१४] आदि। इन लेखकों की एक-एक, दो-दो रचनाएँ ही 'ब्राह्मण' में प्रकाशित हुई थी। 'ब्राह्मण' मे मिश्र जी ही अधिक लिखते थे और उन्ही की रचनाओं मे 'ब्राह्मण' की जान थी। कहने की आवश्यकता नही कि साहित्य मे 'ब्राह्मण' को जो विशिष्ट स्थान प्राप्त हुआ वह मिश्र जी की ही रचनाओं का परिणाम है अन्य लेखकों की रचनाएँ तो उसमे केवल नाम मात्र के लिए थी।

ब्राह्मण की भाषा

'ब्राह्मण' जन-सामान्य का पत्र था। इसमे जो कुछ निकलता था सामान्य जनता के हितार्थ और मनोरंजनार्थ निकलता था। इसका प्रमुख उद्देश्य ही सामान्य जनता मे हिन्दी का प्रचार करना और उसके हित की बात उस तक पहुँचाना था। जनता का पत्र होने के कारण इसकी भाषा बड़ी सरल प्रवाहपूर्ण और जन सामान्य के अनुकूल थी। कहावतो और मुहारों तथा ग्रामीण शब्दों का सफल प्रयोग उसकी भाषा को और भी प्राणवान तथा रोचक बनाता था। 'ब्राह्मण' की भाषा का एक उदाहण देखिए—

---

१. 'ब्राह्मण' खण्ड ३ संख्या ३-४ 'षटपदी' — विश्वेश्वर नाथ शुक्ल
२. ,, ३ ३-४ 'कवित्त' — शंकर
३. ,, ३ ६ 'पद' — काशीनाथ चौबे
४. ,, ३१२ ,, 'गो पुकार' — गदाधरप्रसाद 'नवीन'
५. ,, ,, ४ ,, २,३,४, 'स्वतंत्रता संचार नाटक' — कालीचरण द्विवेदी
६. ,, ,, ५ ,, ८ 'जड़ मैं चैतन्य गुण' — शंकरप्रसाद दीक्षित
७. ,, ,, ५ ,, ११ 'कविता' — गुरुदयाल
८. ,, ,, ६ ,, ७ 'खड़ी बोली का पद्य' — सूर्यप्रसाद मिश्र
९. ,, ,, ७ ,, १-२,४ 'ध्रुवाष्टक' — विश्वनाथ सिंह
१०. ,, ,, ८ ,, १ 'ब्रह्म व शक्ति' — गंगाधर मुखोपाध्याय
११. ,, ,, ८ ,, ९ 'कविता' — लाला खड्गबहादुर
१२. ,, ,, ९ ,, ६ 'कविता' — श्रीकृष्ण
१३. ,, ,, ९ ,, ६ 'भारतजीवन को क्या हो गया है' — साहिबप्रसाद सिंह
१४. ,, ,, ९ ,, ९ 'बालकौतुक' — खेतलदास पाण्डे

"आप चाहे जैसे कड़े मिजाज हो, रुक्खड़ हो, मक्खीचूस हों, जहाँ हम चार दिन झुक-झुक के सलाम करेंगे, दौड़-दौड़ आपके यहाँ आवेगे, आपकी हाँ मे हाँ मिलावेगे, आपको इन्द्र, वरुण, हातिम, करण, सूर्य, चन्द्र, लैली, शीरी, इत्यादि बनावेगे, आपको जमीन पर से उठा के झडे पर चढावेगे, फिर बतलाइए तो आप कब तक राह पर न आवेंगे ? हम चाहे जैसे निर्बुद्धि, निकम्मे, अविद्वान, अकुलीन क्यो न हो, पर यदि हम लोकलज्जा, परलोक भय, सबको तिलांजुलि दे के आपही को अपना पिता, राजा, गुरू, पति, अन्नदाता कहते रहेगे तो इसमे कुछ मीन-मेख नही है कि आप हमे अपनावेगे और हमारे दुख दरिद्र मिटावेगे। अजी साहब, आप तो आप ही है, हम दीनानाथ, दीनबन्धु, पतितपावन कह-कह के ईश्वर तक को फुसला लेने का दावा रखते है, दूसरे किस खेत की मूली है[1] ।"

ब्राह्मण की भाषा बड़ी स्वाभाविक और अनगढपन लिए हुए थी। इससे पाठक उसकी ओर बहुत शीघ्र आकृष्ट होजाते थे। 'ब्राह्मण' पत्र की भाषा मे जैसी सरलता और रोचकता थी वैसी उस समय की किसी पत्र की भाषा मे नही थी। बाबू शिवनन्दन सहाय लिखते है—"ब्राह्मण की समता करने वाला अपने समय मे भारतवर्ष मे कोई विरला ही मासिक पत्र था[2] ।" 'ब्राह्मण' अपनी भाषा-शक्ति के जोर से ही पाठको से ऐसी बेतकल्लुफी और आत्मीयता से बातें करता था कि पाठकों की सहानुभूति शीघ्र ही उसकी ओर खिच जाती थी और पाठक उसके अन्तराल मे बैठकर अपने को भूल जाते थे।

मिश्र जी की सम्पादन-कला

सम्पादन-कला मे सबसे प्रमुख कार्य सामग्री सचय और सामग्री वितरण का होता है। मिश्र जी सामग्री का संचय पाठकों की रुचि और उनके हित को दृष्टि मे रखकर करते थे। पाठको की रुचि 'मुण्डे-मुण्डे मतिर्भिन्न.' पर आधारित होती है इसलिए 'ब्राह्मण' की सामग्री भी विविध प्रकार की होती थी। कविता, निबन्ध, नाटक, प्रहसन, लेख, समाचार आदि—सभी उसमे प्रकाशित होते थे। कभी-कभी मौलिक और अनूदित पुस्तकें भी धारावाहिक रूप मे निकलती थी। रोचकता तो सभी मे रहती ही थी। समाचार पत्र में जैसी सरलता और तरलता होनी चाहिए, वह 'ब्राह्मण' मे प्रचुर मात्रा मे थी। मिश्र जी जागरुक पत्रकार थे इसलिए वे अपने पाठको को सदैव युग के अनुरूप आगे को प्रोत्साहित करते थे। उनकी प्रत्येक पंक्ति मे युग का सदेश और मानव-भावना निहित रहती थी यहाँ तक कि रोचक-लेख भी उनके लोक-हित की भावना से ही आप्लावित रहते थे।

---

१. 'ब्राह्मण' खण्ड ५ संख्या ५ 'खुशामद' —प्रतापनारायण मिश्र

२. चतुर्थ हिन्दी साहित्य सम्मेलन, भागलपुरी कार्य विवरण, दूसरा भाग, लेखमाला—पृष्ठ १३७

सामग्री वितरण का भी पत्र सम्पादन कला में महत्वपूर्ण स्थान है। सामग्री का वितरण ऐसे मनोवैज्ञानिक ढंग से होना चाहिए कि पाठक उसके पढने मे किसी प्रकार की शिथिलता का अनुभव न करें। आजकल सामग्री वितरण का कार्य प्राय: दो प्रकार से किया जाता है। एक तो, किसी विशेष विषय से सम्बन्धित रचनाएँ एक साथ छाप दी जाती है। दूसरे, कई विषय की रचनाओं को एक के बाद एक, मिला कर छापा जाता है। पहला ढंग अधिक अच्छा नही कहा जा सकता क्योंकि एक ही विषय से सम्बन्धित रचनाएँ लगातार पढ़ने से पाठकों का जी ऊब जाता है। दूसरे ढग से सामग्री का वितरण होने से पाठकों की रुचि बदलती रहती है और उनका जी नही ऊबने पाता। मिश्र जी ने अपने 'ब्राह्मण' मे दूसरी पद्धति का ही अनुकरण किया है। मिश्र जी का सामग्री वितरण पक्ष बड़ा आकर्षक और सजीव है। मिश्र जी रचनाओ के शीर्षक ही ऐसे विशिष्ट ढग से रखते थे कि पाठक उन्हें देखते ही भाव-विभोर हो जाते थे और रचना का पूरा आशय शीर्षक से ही स्पष्ट हो जाता था। उदाहण के लिए 'ब्राह्मण' के कुछ शीर्षक देखिए—हो ओ औ ली है, मार-मार के कहे जाओ नामर्द तो खुदा ही ने बनाया है, जरा अब तो आखें खोलिए, कान्यकुब्जो ही की सबसे हीन दशा क्यो है, फूटी सहे आंजी न सहें, बेकाम न बैठ कुछ किया कर, घूरे की लत्ता बिनै कनातन का डौल बाधे, हिम्मत राखो एक दिन नागरी का प्रचार हो होगा, टेढ जानि शंका सब काहू, मतवालों की समझ, सबै सहायक सबल के कोउ न निबल सहाय। पवन जगावत आगिन को दीपहिं देत बुझाय ।।, समझदार की मौत है, कलिकोष, मुनीना च मतिभ्रम: हुची चोट निहाई के माथे, प्रेम एव परोधर्म, बाल्यविवाह विषयक एक चीज, पड़े पत्थर समझ पर आपकी समझे तो क्या समझे, दिन थोड़ा है दूर जाना है यहा ठहरूँ तो मेरा निबाह नही है, युवावस्था, नागी, ट, दांत, मरे का मारें साह मदार, इस सादगी पर कौन न मर जाय ऐ खुदा लड़ते हैं और हाथ में तलवार भी नही आदि। 'ब्राह्मण' के बहुत से शीर्षक लोकोक्तियों में रखे गये है इसलिए उनमे और भी व्यापकता आ गयी है। इसके अतिरिक्त 'ब्राह्मण' के समाचारावली, समालोचना या प्राप्ति स्वीकार, गपशप आदि स्तम्भ भी सफल सामग्री वितरण कार्य के प्रतीक है।

'ब्राह्मण' सम्पादक मिश्र जी एक कुशल-पत्रकार के गुणो से युक्त थे। उनमे लेखन की क्षमता, संगठन-शक्ति, कर्मठता, साहस, स्वच्छन्दता, स्पष्टवादिता, निर्भीकता, अध्ययनशीलता, हास्यप्रियता, गम्भीरता, सहृदयता, परदुखकारता आदि गुण एक साथ सन्निविष्ट थे और उनके यही गुण 'ब्राह्मण' में भी साकार हो गये थे। वे अपने ब्राह्मण में समयोपयोगी विषय ही प्रकाशित करते थे और प्रत्येक विषय पर अधिकार के साथ लिखते थे। उनमें किसी प्रकार की दलगत संकीर्णता नहीं थी। वे जो कुछ कहते थे समान-दृष्टि से-स्पष्ट और निष्पक्ष कहते थे। उन्हें निन्दा और

स्तुति की परवाह नही थी । समाज के गुण-दोष बताना ही उनका धर्म था। वे तत्कालीन समाज के आचार, व्यवहार, जीवन और रुचि से पूरी तरह परिचित थे। एक शिक्षक या उपदेशक की भाँति वे समाज के हित की बात कहते थे। स्मरण शक्ति भी उनकी बडी तीव्र थी, पुरानी-से-पुरानी बातसहज ही उनके सामने आ जाती थी। इसके साथ ही साहित्य, विज्ञान, कला, व्यापार, इतिहास, भूगोल, राजनीति, समाज-नीति, नागरिकता सम्बन्धी अधिकारो तथा कर्त्तव्यो, धार्मिक सिद्धान्तो, कानूनों आदि की भी उन्हें जानकारी थी । तत्कालीन स्थिति से परिचित होने के लिए वे सामयिक पत्र बराबर पढ़ते थे। आचार्यमहावीरप्रसाद द्विवेदी लिखते है—"प्रतापनारायण मिश्र को हिन्दी-अखबार पढने का लडकपन ही से शौक था। इसी शौक से धीरे-धीरे उत्साहित होकर गोपीनाथ खन्ना इत्यादि की मदद से इन्होने १५ मार्च १८८३ से 'ब्राह्मण' नामक एक १२ पृष्ठ का मासिक पत्र निकालना शुरू किया।"[१] कालाकाकर में भी मिश्र जी प्रयाग-समाचार, हिन्दी प्रदीप आदि पत्र बडी रुचि से पढ़ते थे ।[२] कभी-कभी इन पत्रो मे प्रकाशित वक्तव्यों का उत्तर भी बडी तार्किकता के साथ देते थे ।[३] मिश्र जी मे विवेचना, आलोचना और तत्क्षण उत्तर देने की विलक्षण शक्ति थी। पत्रकारो के आपसी झगड़े भी उन्हे असह्य थे। सभी पत्रकारो मे वे भ्रातृत्व-भाव स्थापित करना चाहते थे । एक बार 'उचितवक्ता' और 'भारतजीवन' के सम्पादको मे—'हरिश्चन्द्र-सर्वस्व' छापने के विषय को लेकर—झगडा हो गया। इस पर मिश्र जी दोनो को समझाते हुए लिखते है—"उचितवक्ता भाई! वाह! भारतजीवन साहब! धन्य! 'सबको ज्ञान दे आप कुत्तो से चिथवावें'—तुम्हे क्या हुआ है । जो बाते आपुस मे निबट लेने की है उनको गोहराते फिरना। छि: ! छि! बच्चे हो ? लावनी वालो की सी फटकेबाजी से फायदा।' यदि गाली गलौज ही करना हो तो हमे जो चाहो दोनो कह लो। एक बके तो दूसरा नग नाच पर कमर बाधे यह कौन सभ्यता है ? अरे बाबा। तुम सर्व साधारण के अग्रगामी हो। तुम्हारा नमूना देख के औरो को कब उपदेश होगा ? सोचो तो ! खैर बहुत हो चुका, कब तक कर्कसा सराध रहेगी ? इसीसे कहते है होश मे आओ । होनी थी सो हो ली आगे से हमे विश्वास है हमारे प्यारे दोनों सहवर्ती आप समझ लेगे।"[४] मिश्र जी के इस कथन में एक उत्तरदायी और सहृदय पत्रकार की सम्वेदना है मिश्र जी का यह कथन उन्हे एक सच्चे पत्रकार की कोटि में पहुँचा देता है । इसके अतिरिक्त

---

१. 'सरस्वती' मार्च, १९०६ ई० 'प्रतापनारायण मिश्र'—आचार्यमहावीरप्रसाद द्विवेदी।
२. 'बालमुकुन्द गुप्त-निबन्धावली' प्रथम भाग (२००७ वि०)—पृष्ठ ३८९
३. 'ब्राह्मण' खण्ड २ संख्या ५ 'समझवार की मौत है'—प्रतापनारायण मिश्र।
४. 'ब्राह्मण' खण्ड ३ संख्या २ ('बस बस होश में आइए')

मिश्र जी सरल और रोचक भाषा लिखने के पक्षपाती थे । उन्होने अपने 'ब्राह्मण' मे सर्वत्र-हास्य और व्यंग्य से युक्त—सहज और सरस भाषा का प्रयोग किया है। 'ब्राह्मण' भाषा शैली की दृष्टि से बड़ा धनी है । डॉ० राजेन्द्रप्रसाद शर्मा लिखते हे—"ब्राह्मण और हिन्दी प्रदीप की राचिकाओ मे हिन्दी के अद्भुत निबन्ध भरे पड़े है। शैलियों की विविधता की दृष्टि से तो आज भी अच्छे से अच्छा पत्र उनकी तुलना मे कुछ नही ।"[1] मिश्र जी सम्पादन कला मे रोचकता और देशहितैषिता पर विशेष बल देते थे, यही दोनो तत्व उनकी सम्पादन कला के मूलाधार हैं।

पत्रकारिता की दिशा में मिश्र जी का योगदान

मिश्र जी ने अपने 'ब्राह्मण' द्वारा पत्रकारिता को एक नया रास्ता दिखाया और उसे शक्ति प्रदान की । मिश्र जी से पूर्व पत्रकारिता में रोचकता और भाषा की सरलता की बड़ी कमी थी । मिश्र जी ने इन दोनो उपकरणो पर बड़ा जोर दिया और तत्कालीन पत्रकारो को इनकी ओर प्रभावित किया । बाबू राधाकृष्णदास 'ब्राह्मण' की रोचकता के विषय मे लिखते है—"उस पत्र का आदर हिन्दी रसिक-मण्डली मे बहुत ही हुआ और उसके लेखों की मनोहरता ने सबको मोहित कर लिया यहाँ तक कि स्वय भारतेन्दु जी उसके लेखो से मोहित हो जाते थे ।"[2] कानपुर में तो 'ब्राह्मण' ने एक साहित्यिक वातावरण ही तैयार कर दिया था और उसके द्वारा सरसता की धार सी बह चली थी । 'ब्राह्मण' अपने युग का निराला पत्र था । इसने पाठको को सबसे अधिक अपनी ओर आकृष्ट किया और पत्रो को पढने की सामान्य-जनता मे रुचि पैदा की । विजयशकर मल्ल लिखते है—"भारतेन्दु युग के पत्रों मे कानपुर के 'ब्राह्मण' का अपना निराला रग है। इस क्षीण-कलेवर पत्र में कोई बनाव-चुनाव न होने पर भी कुछ ऐसा बाँकपन है जो सजग पाठक को तुरन्त अपनी ओर खीच लेता है । उसकी हर टिप्पणी, लेख और कविता मे निपट सरलता, अनगढ़पन और बेहद जिन्दा-दिली का मेल एक खास असर पैदा करता है ।"[3] इसके अतिरिक्त 'ब्राह्मण' की साहित्यिक-सेवाये भी विशेष उल्लेखनीय है । इसने सुगम साहित्य की रचना कर हिन्दी-साहित्य को विकास के लिए प्रेरित किया । त्रिलोकीनारायण दीक्षित के शब्दो मे—"साहित्य के अंगों को भरने में जहाँ अन्य पत्रों का कलात्मक

---

१. डॉ० राजेन्द्रप्रसाद शर्मा—'हिन्दी गद्य के निर्माता पण्डित बालकृष्ण भट्ट' (१९५८ ई०)—पृष्ठ २१३

२. 'राधाकृष्ण-ग्रन्थावली' पहला खण्ड (१९३० ई०)—पृष्ठ ५१५ (हिन्दी भाषा के सामयिक पत्रों का इतिहास)

३. 'प्रतापनारायण-ग्रन्थावली' प्रथम खण्ड (२०१४ वि०—पृष्ठ ७०२ (ब्राह्मण : एक परिचय)

सहयोग रहा, वहाँ 'ब्राह्मण' की सेवायें भी विशेष उल्लेखनीय है। 'ब्राह्मण' का प्रकाशन उस युग के साहित्यिक इतिहास मे एक महत्वपूर्ण घटना है।"[1] 'ब्राह्मण' से समाज का भी बडा उपकार हुआ। जन-जन मे राष्ट्रीय चेतना भरने मे 'ब्राह्मण' ने सराहनीय कार्य किया। नरेशचन्द्र चतुर्वेदी लिखते है—"मिश्र जी निर्भीक पत्रकार व खरे अलोचक थे। ब्राह्मण में लिखी हुई उनकी टिप्पणियाँ, स्फूर्ति, साहस भरने वाली और जिस पर प्रहार किया जाता उसे तिलमिला देने वाली होती थी। ढुलमुल नीति मे उनका विश्वास नहीं था। खतरा मोल लेकर भी वे विदेशी सरकार का तीव्र विरोध करते रहे।"[2] मिश्र जी का 'ब्राह्मण' सदैव तन, मन, धन से देशोद्धार मे लगा रहा। मिश्र जी स्वत. उसके कार्यो की प्रशंसा इस प्रकार करते है—"वाह रे 'ब्राह्मण' देवता! यद्यपि आप ऋण में फसे है, आपके एडीटर को रोगराज के एकलौते बेटे दौरबल्य राम ग्रसे हैं तो भी सोटा-लगोटा से देशोद्धार और प्रेम प्रचार पर कमर कसे है।"[3] आगे मिश्र जी 'ब्राह्मण' के बन्द होने की स्थिति पर पुनः लिखते है—"यह पत्र अच्छा था अथवा बुरा, अपने कर्त्तव्य-पालन मे योग्य था वा अयोग्य, यह कहने का हमे कोई अधिकार नही है। न्यायशील सहृदय लोग अपना विचार आप प्रकट कर चुके है और करेंगे, पर हाँ, इसमे सदेह नही कि हिन्दी-पत्रो की गणना में एक सख्या इसके द्वारा भी पूरित थी और साहित्य (लिटरेचर) को थोड़ा बहुत सहारा इससे भी मिलता रहता था।"[4] 'ब्राह्मण' साहित्यिक, सामाजिक और राष्ट्रीय पत्र था। इसने साहित्य, समाज और राष्ट्र की एक साथ सेवा की। मिश्र जी ने 'ब्राह्मण' के माध्यम से पत्रकारो के समक्ष लोकहित का नया आदर्श उपस्थित किया और उन्हे दृढता और निष्पक्षता से आगे बढने के लिए प्रोत्साहित किया। 'ब्राह्मण' के उद्देश्य इतने समष्टिपरक और व्यवहारिक थे कि तत्कालीन पत्रकारों ने उससे अनेक प्रेरणाएँ ग्रहण कीं। कहने की आवश्यकता नही कि मिश्र जी का पत्रकारिता सम्बन्धी कार्य उस युग के लिए तो वरदान सिद्ध ही हुआ, आज भी उससे पत्रकार बहुत कुछ सीख सकते हैं। मिश्र जी ने पत्रकारिता की दिशा मे जो कार्य किया वह सदैव स्मरणीय रहेगा।

---

१. 'सम्मेलन पत्रिका' श्रावण-भाद्र स० २००२ वि० 'ब्राह्मण' : त्रिलोकीनारायण दीक्षित।
२. नरेशचन्द्र चतुर्वेदी : 'हिन्दी साहित्य का विकास और कानपुर' (१९५७ ई०) पृष्ठ १७१
३. 'ब्राह्मण' खण्ड ४ संख्या १ ('धन्यवाद')
४. ,, ,, ७ ,, १२ ('अन्तिम सम्भाषण)

पाँचवाँ अध्याय

मिश्र जी का अन्य स्फुट साहित्य

समालोचना साहित्य

हिन्दी समालोचना साहित्य का विकास भारतेन्दु-युग से ही प्रारम्भ होता है। इससे पूर्व हिन्दी साहित्य मे आधुनिक-समालोचना का रूप नही मिलता। हाँ, सस्कृत साहित्य मे आचार्यों और मीमांसको के विवेचन अवश्य मिलते है जिनमे समालोचना कुछ आभास मिलता है पर उनमे आचार्यों की दृष्टि गुण-दोष दिखाने की ओर ही अधिक रही है, रस और अलकारो पर उन्होने विशेष ध्यान नही दिया। हिन्दी मे समालोचना साहित्य की उद्भावना पाश्चात्य-शिक्षा के प्रसार के साथ हुई। अग्रेजी के 'बुक-रिव्यू' के ही अनुकरण पर हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं मे 'पुस्तक परिचय' नामक स्तम्भ रक्खा गया और इसी से हिन्दी समालोचना का श्रीगणेश हुआ। हिन्दी समालोचना का प्रारम्भिक स्वरूप पत्र-पत्रिकओ मे ही मिलता है। पत्र-पत्रिकाएँ ही हिन्दी समालोचना साहित्य की जननी है। कविवचनसुधा (१८६८ ई०), हरिश्चन्द्र मैगजीन बाद मे हरिश्चन्द्र चन्द्रिका (१८७३ ई०), हिन्दी प्रदीप (१८७७ ई०), ब्राह्मण (१८८३ ई०) आदि पत्रो मे अनेक समालोचना टिप्पणियाँ प्रकाशित हुई थी। स्वय भारतेन्दु जी ने भी कुछ समालोचनाएँ, भूमिकाओ के रूप मे लिखी थी। आगे चलकर बालकृष्ण भट्ट और उपाध्याय बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने लाला श्री निवासदास कृत 'सयोगिता-स्वयवर (१८८५ ई०) नाटक की आलोचना लिखकर क्रमशः हिन्दी प्रदीप (१८८६ ई०) और आनद कादम्बिनी (१८८६ ई०) मे प्रकाशित किया। भट्ट जी और प्रेमघन की आलोचनाएँ कुछ अधिक नवीनता और विस्तार लिए थी। इसके अतिरिक्त और भी बहुत सी समालोचनाएँ तत्कालीन पत्रों मे प्रकाशित हुई।

भारतेन्दु युग मे समालोचनाएँ पुस्तक-परिचय के रूप मे लिखी जाती थी। लेखकगण सम्पादकों के पास अपनी नवीन पुस्तकें विज्ञापन के लिए भेजते थे। सम्पादक उन पर सक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखकर अपने पत्र मे निकालते थे। इन टिप्पणियो मे मूल्य, प्रकाशन स्थान का पता और पुस्तक का सूक्ष्म परिचय रहता था। परिचय के साथ ही पुस्तक के गुण-दोष भी संक्षेप में बताये जाते थे। कभी-कभी इन टिप्पणियों मे कृति की कलात्मक और भावात्मक विशिष्टताएँ भी आंशिक रूप मे अभिव्यक्त हो जाती थी। उस समय पाठकों की बडी कमी थी, इसलिए इन टिप्पणियो

का प्रमुख उद्देश्य जनता मे पुस्तकों का प्रचार करना होता था। 'भारतोद्धारक' मे प्रकाशित प्रारंभिक समालोचना का एक रूप देखिए—"काश्मीर कुसुम अथवा राजतरंगिणी कमल (काश्मीर का संक्षिप्त इतिहास, राजाओ के नाम और समय का सविस्तार चक्र राजतरंगिणी की समालोचना, श्री हर्ष और वर्तमान महाराज काश्मीर के वंश का छोटा इतिहास) श्री बाबू हरिश्चन्द्र जी भारतेन्दु लिखित अत्युत्तम ४४ पृष्ठ टाइप से मुद्रित, भारतेन्दु जी के उत्साह और परिश्रम को धन्य[1]।" ऐसी समालोचनाओ से जनता को तत्कालीन प्रकाशित पुस्तको की गतिविधि समझने मे बडी सहायता मिलती थी। साथ ही समालोचना का अकुर भी इनमे प्रस्फुटित होने लगा था। इन समालोचनाओ का मूल्याकन करते हुए डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय लिखते है—"इस प्रकार की 'समालोचनाओ' द्वारा सम्पादक अपने समय की रुचि पर नियन्त्रण रखते थे। साथ ही समकालीन लेखको की कृतियो की प्रशसा अथवा निन्दा मात्र कर वे साहित्यिक गतिविधि का भी परिचय देते थे। उस समय के शिक्षित समुदाय मे किस प्रकार की पुस्तकें पसन्द की जाती थी, और किस प्रकार की पुस्तके पसन्द नही की जाती थी, इस बात का पता हमे इन 'समालोचनाओं' से लग जाता है। इसलिए समय के देखते हुए उनका महत्व किसी हालत मे कम नही माना जा सकता। हम उन्हे आने वाली समालोचना का प्रारम्भिक रूप मान लें तो सम्भवत: कोई अनौचित्य न होगा[2]।" भारतेन्दु-युग आदर्श की अपेक्षा यथार्थ पर अधिक बल दे रहा था, इसलिए इस युग की समालोचनाएँ प्राय: लोकहित को आधार मानकर लिखी गयी है। इनमे भाषा, भाव आदि पर बहुत-कम ध्यान दिया गया है। लोक-मगल की भावना ही इन समालोचनाओ मे प्रमुख है। डॉ० नत्थन सिंह लिखते है—"आलोचना की वैज्ञानिक पद्धति के अभाव मे उस काल के आलोचक कवि अथवा लेखक पर युग-प्रभाव, उसके जीवन और जीवन सबधी परिस्थितियो का सूक्ष्म एव निष्पक्ष अध्ययन करके उसकी अन्त:प्रवृत्तियों का विश्लेषण न कर पाते थे। रचना-गत विशेषताओं और रचनाकार की विचार-धारा मे प्रविष्टि होकर उसकी अन्तर्वृत्तियों का निरूपण करना साहित्यिक दृष्टि से आलोचना का विशिष्ट गुण है। इस प्रकार की आलोचना का उस काल में अभाव ही था। उस युग के लेखक तो रचनागत और यदा-कदा रचनाकार के गुण और दोषो का निरूपण किया करते थे।"[3] भारतेन्दु-युग के समालोचक कोरे समालोचक न होकर प्रधानत: कलाकार थे। अत: उस युग की समालोचना मे आधुनिक समालोचना की वैज्ञानिक पद्धति खोजना अनावश्यक है। वह काल समालोचना

१. 'भारतोद्धारक' भाग १, सख्या २ 'समालोचना' : मुन्नालाल शर्मा
२. डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय : 'आधुनिक हिन्दी साहित्य' (१९५४ ई०) पृ० १५७
३. डॉ० नत्थनसिंह : 'गद्यकार बाबू बालमुकुन्द गुप्त' (१९५९ ई०) पृष्ठ २३८

का प्रारम्भिक काल था। उस युग की समालोचना को ऐतिहासिक दृष्टि से देखना ही उपयुक्त है। डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय के शब्दों में—"उनके आलोचनात्मक लेख कलाकार के रूप में उनके निजी अनुभव के प्रकाश में लिखे गए माने जा सकते हैं। उनका वही महत्व है जो एक चित्रकार द्वारा अपने चित्र के सम्बन्ध में लिखे गये 'नोट्स' का महत्व होता है। दूसरे कलाकार उनके विचारों से लाभ उठा सकते हैं, विशेष रूप से उस समय जब कि उनके विचारों का अध्ययन उनकी कलात्मक कृतियों के साथ किया जाय।"[1] उस युग के समालोचक सरल भाषा से युक्त लोक-हित प्रधान पुस्तकों को अधिक अच्छा समझते थे और इसी दृष्टिकोण से पुस्तकों की समालोचना करते थे। उन समालोचकों में किसी प्रकार की ईर्ष्या और पक्षपात की भावना नहीं थी। वे बड़े स्पष्ट और निःसंकोच भाव से समालोचनाएँ लिखते थे।

प्रतापनारायण मिश्र जी भी आधुनिक समालोचना साहित्य के उन्नायकों में से थे। हिन्दी समालोचना साहित्य का प्रादुर्भाव इन्हीं के समय में हुआ। मिश्र जी अपने 'ब्राह्मण' के प्रायः प्रत्येक अंक में किसी-न-किसी पुस्तक या पत्र की समालोचना निकालते थे। उनके पास जो भी पत्र या पुस्तकें समालोचना के लिए आती थी, उनकी वे निष्पक्ष, उचित और स्पष्ट समालोचना लिखते थे। उनका कहना था—"हमको दूसरों की भाँति खुशामद नहीं आती कि कोरी प्रशंसा करें। 'समालोचना के समय गुण-औगुण प्रकट करना चाहिए।[2] "मिश्र जी ने समालोचनाओं के लिए 'ब्राह्मण' में एक अलग 'समालोचना' या 'प्राप्ति स्वीकार' नाम का स्तम्भ ही बना लिया था और इसी में अपनी लिखी समालोचनाएँ प्रकाशित करते थे। मिश्र जी को आलोचक हृदय जन्म से ही प्राप्त था। यदि गहराई से देखें तो उनकी प्रायः सम्पूर्ण रचनाओं में उनका आलोचक हृदय ही झाँकता दिखायी देता है। उनकी बहुत-कम रचनाएँ ऐसी होंगी जिनमें समाज या देश के किसी न किसी अंग की आलोचना न की गयी हो। लेकिन यहाँ पर हमारा संबंध केवल उनकी साहित्यिक-समालोचनाओं से ही है। ये समालोचनाएँ, अधिकतर सामयिक पुस्तकों पर लिखी गयी हैं, कुछ समालोचनाएँ तत्कालीन पत्रों से भी सम्बन्धित हैं। इसके अतिरिक्त मिश्र जी ने कई समालोचनात्मक-निबन्ध पुराणों पर भी लिखे हैं। इन निबन्धों में, वैज्ञानिक दृष्टि से पुराणों का महत्व प्रतिपादित किया गया है। मिश्र जी का दृष्टि-कोण समालोचना के क्षेत्र में बड़ा व्यापक और वैज्ञानिक था। वे साहित्य का संबंध जीवन से मानते थे। साहित्य में कोरा विलास उन्हें प्रिय नहीं था। समालोचना करते समय वे आलोच्य वस्तु में सबसे पहले लोक-हित के तत्व ही ढूँढते थे। इसके

---

१. डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय : आधुनिक हिन्दी साहित्य' (१९५४ ई०) पृ० १६२
२. 'ब्राह्मण' खण्ड ३, संख्या १२, 'आलोचना' : प्रतापनारायण मिश्र।

बाद फिर उसकी सरसता और भाषा पर जाते थे। पं० चतुर्भुज मिश्र कृत 'आल्हा रामायण सुन्दर काण्ड' की समालोचना करते हुए वे लिखते हैं—"पण्डित जी को चाहिए कि इस छन्द तथा इस भाषा मे वह विषय लिखे जो सर्वसाधारण के लिए सासारिक उपकार का हेतु हो। राम चरित्र को इस रूप मे लाने की देश के लिए कोई विशेष आवश्यकता नही है।"[1] इसी प्रकार अम्बिकादत्त व्यास कृत 'ललिता नाटिका' की समालोचना मे मिश्र जी लिखते हैं—"कथा प्रबन्ध इसका ऐसा है कि न तो उससे कोई सदुपदेश ही निकलता है न किसी रस का कुछ असर ही जी पर होता है।"[2] भाषा के क्षेत्र मे मिश्र जी सरल, रोचक और प्रभावपूर्ण भाषा लिखने के पक्ष मे थे। वे सरल भाषा द्वारा नागरी का प्रचार जन-जन में करना चाहते थे। इसके साथ ही—राष्ट्रीय चेतना फैलाने के उद्देश्य से—लोक भाषाओ मे भी काव्य रचना करने के लिए, कवियो को प्रोत्साहित करते थे।[3] उस समय उर्दू भाषा हिन्दी के विरोध मे आगे बढ रही थी इसलिए उर्दू-गर्भित भाषा लिखने वालो की भी मिश्र जी ने निन्दा की थी और पृथक् आलोचना लिखकर भी उर्दू को हेय सिद्ध किया था। उर्दू का क्षेत्र बताते हुए वे लिखते हैं—"माशूक के रूप, मुख, नेत्र, केशादि की प्रशसा, अपनी सर्वज्ञता घमण्ड, उसे गुल और शमअ अर्थात् मोमबत्ती एव अपने को बुलबुल और परवाना अर्थात् पतग से उपमा दे दिया करो, रकीब इत्यादि पर जल-जल के गाली दिया करो, बस, उर्दू का सर्वस्व आपको मिल जायगा। चाहे गद्य हो, चाहे पद्य हो, चाहे कविता हो, चाहे नाटक हो, चाहे अखबार हो, चाहे उपदेश हो, सब मे यही बातें भरी है। यदि और कोई विद्या का विषय लिखना हो तो सस्कृत, बंगला, नागरी, अरबी, फारसी, अग्रेजी की शरण लीजिए। इन बीबी के यहाँ अधिक गुजायश नही है। और लिखना तो दर-किनार मुख्य-मुख्य शब्द ही लिख के किसी मौलवी से पढ़ा लीजिए, अरे म्याँ मजा ही न आवेगा। हमारे एक मित्र का यह वाक्य कितना सच्चा है कि और सब विद्या है यह अविद्या है। जन्म भर पढ़ा कीजिए, तेली के बैल की तरह एक ही जगह घूमते रहोगे। सत्य विद्या के बतलाइए तो कै ग्रथ है? हाय न जाने देश का दुर्भाग्य कब मिटेगा कि राजा-प्रजा दोनो इस मुलम्मे को फेक के सच्चे सोने को पहिचानेंगे।"[4] कभी-कभी अशुद्ध भाषा लिखने वालो की भी मिश्र जी भर्त्सना कर बैठते थे। राधाचरण गोस्वामी द्वारा 'बगीची' शब्द का प्रयोग करने पर वे कहते है—"अगस्त के भारतेन्दु मे आपने एक पुस्तिका दी है। उसका नाम 'प्रेम बगीची' रक्खा है। क्या नाम रखने को कोई

---

१. 'ब्राह्मण' खण्ड ८, संख्या ८, ('प्राप्ति स्वीकार')
२. ,, खण्ड १, संख्या ७, ('समालोचना')
३. ,, खण्ड ६, सख्या ५-६ ('आल्हा आल्हाद')
४. ,, खण्ड ४, संख्या २ ('उरदू बीबी की पूंजी')

संस्कृत शब्द न जुडता था ? प्रेम बादिका बुरा था जो एक अरबी का शब्द सो भी महा-महा अशुद्ध रखते हैं ? गोस्वामी जी को भली-भाँति ज्ञात होगा कि वह शब्द बाग है जिसको बागीचा कह सकते है । बागीचा भी अशुद्ध है पर शहर के अपढ लोग बोलते है । परन्तु बगीचा और बगैंचा तो सिवाय अक्षर शत्रुओं के कोई बोलता ही नहीं । तिसमें भी बगीची । ह ह ह । खतरानियों की बोली ।—इस अशुद्ध और जनाने शब्द को पोथी के नाम में लाते समय यह ध्यान न रहा कि हमें लोग क्या समझेंगे ।"[1] इसके अतिरिक्त मिश्र जी गद्य में खड़ी बोली और पद्य में ब्रज भाषा के समर्थक थे । उनका यह कहना था कि खड़ी बोली कर्कश होने के कारण कविता के लिए अधिक उपयुक्त नहीं है, उसमे गद्य का ही समुचित विकास हो सकता है । कविता तो ब्रज भाषा मे ही सुमधुर लिखी जा सकती है—

"यदि सबको समझाना मात्र प्रयोजन है तो सीधी-सीधी गद्य लिखिए । कविता के कर्ता और रसिक होना हर एक का काम नही है । उन बिचारों की चलती गाडी मे पत्थर अटकाना, जो कविता जानते है, कभी अच्छा न होगा । ब्रज भाषा भी नागरी देवी की सगी बहिन है, उसका निज स्वत्व दूसरी बहिन को सौंपना सहृदयता के गले पर छुरी फेरना है । हमारा गौरव जितना इसमें है कि गद्य की भाषा और रक्खे, पद्य की और, उतना एक को बिल्कुल त्याग देने मेंक दापि नहीं । कोई किसी की इच्छा को रोक नहीं सकता ।"[2]

मिश्र जी ने अपने आलोच्य विषयों को उपयुक्त कसौटी में ही कसा है और बड़ी निर्भीकता के साथ अपने विचारों का प्रतिपादन किया है । नवीनता भी उनकी समालोचना मे अक्षुण्ण है । जहाँ वे वस्तु का भावपक्ष और कलापक्ष पर समान रूप से विचार करते है वहाँ वे अपने युग से आगे बढ़े दिखायी देते हैं । अब यहाँ उनकी समालोचना के सभी पक्षों का विस्तार से विवेचन करेंगे ।

सामयिक पुस्तकों की समालोचना

उस समय प्रकाशित होनेवाली प्राय: सभी प्रमुख पुस्तकों की समालोचनाएँ मिश्रजी ने अपने 'ब्राह्मण' मे लिखी थीं । जिनमें भाषा दीपिका[3], सुखद वार्ता[4], ललिता-

---

१. 'ब्राह्मण' खण्ड ३, संख्या ७, ('मुनीनां च मतिभ्रम:')

२ 'ब्राह्मण' खण्ड ४. संख्या ७. 'खड़ी बोली का पद्य' : प्रतापनरायण मिश्र

३. ,, ,, १. ,, २. ('समालोचना')

४. ,, ,, १. ,, ७. ,,

नाटिका[१], तप्तासंवरण[२], चारुपाठ[३], शृंगार लतिका[४], स्त्री शिक्षा[५], प्रेम तरंग[६] संयोगिता स्वयंवर[७], दुर्गा शतक,[८], वेनिस का बाँका,[९], पद्मावती[१०], बीर नारी नाटक[११], ऊजड ग्राम[१२], तन मन धन गोसाईं जी के अर्पण[१३], भारत सौभाग्य[१४], निस्सहाय हिन्दू[१५], भाग्यवती[१६], शत्रु तरंग[१७], आल्हा रामायण सुन्दर काण्ड[१८], नारी धर्म[१९], देवी स्तुति शतक[२०] आदि पुस्तकों की समालोचनाएँ विशेष उल्लेखनीय है। इन समालोचनाओं में कुछ तो परिचयात्मक है जिनका उद्देश्य केवल विज्ञापन देना ही रहा है। उदाहरण के लिए 'भाषा दीपिका' की समालोचना देखिए—"हम श्रीयुत पं० बलभद्र मिश्र (उपमंत्री आ० सा० लखनौ) विरचित (भाषा दीपिका) पुस्तक को धन्यवाद पूर्वक स्वीकार करते है। इसमें तीन भाग है। प्रथम भाग मे गद्य लिखा गया है। इसमे हमारी मातृ-भाषा नागरी है उसी का पढाना हमें उचित है और उर्दू के दोष भली भाँति दर्शाए गये है। दूसरे भाग मे पद्य (नजम) में है इसमें नागरी के प्रचार से जो-जो लाभ हो सकते है इस विषय

---

१. 'ब्राह्मण' खण्ड १. संख्या ७. ('समालोचना')
२. ,, ,, १. ,, ८. ,,
३. ,, ,, १. ,, ९. ,,
४. ,, ,, १. ,, ९. ,,
५. ,, ,, २. ,, २. ,,
६. ,, ,, २. ,, ५. ,,
७. ,, ,, ३. ,, १२. ('आलोचना')
८. ,, ,, ४. ,, २. ('समालोचना')
९. ,, ,, ५. ,, ६. ,,
१०. ,, ,, ५. ,, ८. ,,
११. ,, ,, ५. ,, ८. ,,
१२. ,, ,, ६. ,, ६. ,,
१३. 'ब्राह्मण' खण्ड ६. संख्या ८. ('समालोचना')
१४. ,, ,, ६. ,, ८. ,,
१५. ,, ,, ६. ,, १०. ('प्राप्ति स्वीकार')
१६. ,, ,, ७. ,, ४. ,,
१७. ,, ,, ७. ,, ९. ,,
१८. ,, ,, ८. ,, ८. ,,
१९. ,, ,, ८. ,, ११. ,,
२०. ,, ,, ९. ,, ४. ,,

मे श्रीमान् भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र का व्याख्यान है इसका क्या ही कहना है ? तीसरा भाग भी गद्यमय है इसमे हिन्दी की कुलांगना और उर्दू को वेश्या और संस्कृत को ऋषि रूपकालंकार से दर्शाया। । ग्रन्थ अच्छा है। सज्जनों को एक वेर तो अवश्य देखना चाहिए। मूल्य डाक व्यय सहित साढ़े तीन आने। बाबू गंगा प्रसाद वर्मा हिन्दुस्तानी यन्त्र के स्वामी के पास अमीनाबाद लखनऊ में मिलेगी[1]।" इसके अतिरिक्त कुछ समालोचनाएँ मिश्र जी ने विवेचनात्मक भी लिखी है, जिनमें गुण-दोषों के साथ ही, कृति की काव्यगत विशेषताएँ भी बताई गयी हैं। अम्बिका दत्त व्यास कृत *'ललितानाटिका,' की समालोचना लिखते समय उनकी दृष्टि भाषा* और सरलता पर बराबर रही है। वे लिखते है—"इसकी भाषा बहुत अच्छी है। नाट्यरीति अत्युत्तम है। पुस्तक प्रशंसनीय है पर दो बातों की कसर है; एक यह कि दृश्य लेख के पद्य मात्र मे कवि का नाम होना अशोभित लगता है क्योंकि नाटक पात्रो के मुख से बार-बार एक ऐसे पुरुष का नाम निकलना जिसका नाटक भर में कही काम नही पड़ता, निरा निरर्थक है, दूसरे कथा प्रबन्ध इसका ऐसा है कि न तो उससे कोई सदुपदेश ही निकलता है, न किसी रस का कुछ असर ही जी पर होता है। भगवान कृष्णचन्द्र जी का गोबरधन गोप की स्त्री ललिता के पास रात को छिप के जाना पुराने बुड्ढो की हम नही कह सकते पर आजकल के नवशिक्षित युवक समाज को पारसीयो के गुलबकावली से अधिक मनोहर न लगेगा।"[2]

नाटको की आलोचना करते समय मिश्र जी भाषा और अभिनेयता पर विशेष बल देते है। नाटक की मर्यादाएँ सदैव उनके सामने रहती है। कही भी वे पुरानी रूढ़ियों का पालन करते नहीं दिखाई देते। उदाहरणार्थ लाला श्री निवासदास कृत 'सयोगिता स्वयवर' नाटक की समालोचना देखिए—"ग्रन्थ में कई एक बड़े-बड़े दोष भी है, स्त्रियाँ कैसी ही चतुर और पढ़ी-लिखीं हों पर नाटककार को चाहिए कि उनकी भाषा पुरुषों से हल्की रक्खें, नौकरों-चाकरों की बोली मे संस्कृत के शब्द न भरें। युद्ध क्षेत्र में पात्रों को बाजे की ताल पर पाँव उठाना दक्खिनियों के नाटक की नकल है पर वीर रस से दूर है, नाचना और युद्ध दिखाना भेद रखता है। पृथिवीराज और संयोगिता की बातें कवियों की सी हैं, तुम्हारा मुख चन्द्र सा है, मेरा मन समुद्र है ऐसी वा और बहुत सी बिंजना भरी बातें केवल कवि लिखते है पर प्रेमिक और प्रेमपात्र कभी बोलते नही। उस अंक में बात कम और लज्जापूर्ण सात्विक भाव अधिक होना चाहिए। शराब का जिक्र मियाँ भाइयों के नाटकों के लिए रहने दें, नही तो उसका आरम्भ पृथिवीराज की तरफ से हो तो बड़ी हानि

---

१. 'ब्राह्मण' खण्ड १. संख्या २. ('समालोचना')
२. ,, ,, १, ,, ७, ('आलोचना')

नही पर प्रथम समागम मे न होना चाहिए। भूषण का कवित्त भी बेमौके है। बहुत से फुटनोट किसी पात्र द्वारा घटा बढा के कह दिये जाएँ तो अच्छा हो, क्या दर्शकगण को प्रोग्राम के साथ एक-एक पुस्तक दिये बिना काम चलेगा ? कविता मे कई ठौर मधुर भाषा के बदले सस्कृत आयी है। निरदोष अकेला ईश्वर है, हम भी लिखें तो अशुद्धता से बच न जाएँ पर समालोचना के समय गुण-औगुण प्रकट करना चाहिए।"[1]

मिश्र जी की उपर्युक्त समालोचना बडी विकासशील और तर्क-सम्मत है इसमे आधुनिक समालोचना के कई एक तत्व आ गये है। ऐसे ही श्रीधर पाठक के 'ऊजड़ ग्राम' की समालोचना भी मिश्र जी ने बड़े वैज्ञानिक ढग से लिखी है और अनुवादो की ओर लोगों को आकृष्ट किया है। देखिए—"ऊजड ग्राम कविवर गोल्ड-स्मिथ कृत डेजर्टेड विलेज का पद्यमय अनुवाद। इस ग्रन्थ को हमारे प्रिय मित्र पंडितवर श्रीधर पाठक ने बडी रसज्ञता से लिखा है। भाषा का माधुर्य, कविता का लावण्य, सहृदय मनोहारित्व इत्यादि गुणों के अतिरिक्त योरोपीय विचाराशो का एतद्देशीय लोगों को पूर्ण स्वादु देने में भी सच्ची दक्षता दिखलाई है। हमारी समझ में यह कहना भी अत्युक्ति नहीं है कि जिस आभूषण को इंग्लैंडीय स्वर्णकार (गोल्ड स्मिथ) ने बडी चतुरता के साथ केवल हरिवर्षीय ललना (अंग्रेजी भाषा) के लिए निर्माण किया है उसे पाठक जी ने रत्न-जटित करके नागरी देवी के शृंगार योग्य बना लिया है।"[2]

मिश्र जी का युग राष्ट्रीय चेतना का युग था। उस समय के प्रायः सभी लेखक लोकहित को ही दृष्टि मे रखकर अपनी पुस्तके लिखते थे और समालोचकगण भी उन्हें लोकहित की कसौटी पर कसते थे। मिश्र जी तो अन्य गुणों से हीन होने पर भी—देशहितैषी पुस्तकों को बडा महत्व देते थे। अम्बिकादत्त व्यास कृत 'भारत सौभाग्य' नाटक की समालोचना करते हुए वे लिखते है—"यद्यपि नाटकीय दोषो से रहित नहीं है पर कविता मनोहारिणी है और देश के स्नेह से पूर्ण है विशेषतः ऐन्टी कांग्रेस वालो के मनोभाव बड़ी अच्छी तरह दिखाये गये है।"[3] इसी प्रकार मास्टर नन्हेमल रचित 'सुखदतार्ता' यद्यपि भाषा की दृष्टि से बहुत अच्छी नही है फिर भी मिश्र जी उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते है। "यद्यपि यह छोटी सी पुस्तक है और भाषा भी इसकी कुछ बहुत अच्छी नही है तथापि अपने ढग की अद्वितीय है। हमें निश्चय है कि जो बुद्धिमान पक्षपात छोड के इसे पढ़ेगे, अवश्य कह उठेगे कि 'साधु चरित शुभ सरिस कपासू, निरस विशद सुखमय फल जासू।' इसे पहिली बार

१. 'ब्राह्मण' खण्ड ३, संख्या १२, ('समालोचना')
२. 'ब्राह्मण', खण्ड ६, संख्या ६, ('समालोचना')
३. ,, ,, ६, संख्या ८, (,,)

देखने से बहुतेरों को कई एक सन्देह भी उठेंगे पर विचारने से मालूम हो जायगा कि उनके बिना संसार मे काम ही नही चल सकता। जैसे मुँह से कह देना या पुस्तक मे लिख देना सहज है कि *'सदा सत्य ही बोलना चाहिए'* पर बाजे-बाजे ठौर पर इस नियम का निबाह कैसे हो सकता है, यह एक बड़े औरेब का विषय है। वास्तव में इस पुस्तक की उत्तमता जहाँ तक लिखी जाय थोड़ी है। सच पूछो तो न्याय, बुद्धिमता, व्यवहारकुशलता, आस्तिकता आदि के महासागरों को छोटे से पात्र में भरा हुआ देखना चाहो तो एकान्त में बैठ सच्चे जी से विचार पूर्वक इस पुस्तक को देखो। हम प्रण करके कहते हैं कि इस पर ठीक-ठीक चलने वाले को कभी किसी प्रकार की उलझन सपने में भी न होगी।"[१]

मिश्र जी देश-भक्त साहित्यकार थे, इसलिए उन्हें देश हितैषी कृतियो से बड़ा ममत्व था। वे जब-कब देश-हितैषी पुस्तकें लिखने के लिए लेखकों को प्रोत्साहित भी करते रहते थे। राधाकृष्णदास की 'महारानी पद्मावती' की समालोचना में वे कहते है—"श्री राधाकृष्णदास जी के 'पद्मावती नाटक 'में जो बात है अद्वितीय है। इधर आर्य वीरो की धर्मनिष्ठता, देशवत्सलता, इत्यादि वास्तविक सद्गुण एवं आर्य रमणीगण का पतिव्रत, कार्यकौशल्य, दृढ़ता आदिक सच्चे उदार चरित्र और उधर म्लेच्छाधम वर्ग की स्वार्थपरता, तुच्छ मनस्कता, लम्पटता, निर्लज्जता, बंचकता प्रभृति घृणित कर्मों के ठीक-ठीक फोटोग्राफ देख के किस सहृदय के हृदय मे अलौकिक भाव न उत्पन्न हो जायँगे, सच तो यह है कि यदि प्रत्येक नगर में प्रतिवर्ष ऐसे-ऐसे दो चार नाटक लिखे और खेले जाया करें तो कोई आश्चर्य नहीं कि भारत भूमि फिर से अपना पूर्व गौरव ग्रहण करने लगे।"[२]

मिश्र जी की समालोचनाओं में कही-कही तुलनात्मक समीक्षा का भी क्षीण रूप दिखाई पड़ता है जो उस समय के लिए एक नई वस्तु हे। अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' की 'प्रेम प्रशंसा' नामक—ब्रजभाषा की कविता के साथ एक उर्दू मुसद्दस को रखते हुए मिश्र जी लिखते है—"लखनऊ निवासी मिरजा रजब अली बेग साहब सुरूर का लिखा हुआ 'फिसाने अजायब' उरदू के उत्तम ग्रन्थों में से है उसमें एक मनोहर मुसद्दस है जिसका पहला चरण यह है कि *'क्या मैं इस काफिरे बदकेश का अहवाल कहूँ'*, यह छप्पै उन्हीं षद्पदियों का अनुवाद है जो रसिक उरदू वाले छन्द को देख-देख के इन्हें पढ़ेंगे वे अधिक आनन्द पावेंगे। यद्यपि कविता के लिए उरदू भी बुरी नहीं है वरंच खड़ी पड़ी बोली से कही भली होती है पर ब्रजभाषा के आगे

---

१. 'ब्राह्मण' खण्ड १, संख्या ७, ('समालोचना')

२. राधाकृष्णदास : 'महारानी पद्मावती' (द्वितीय संस्करण), पृष्ठ २ सम्मति से।

क्या है ? यही दिखलाने को हम यह छप्पै यहाँ प्रकाशित करते और उरदू वाले मुसद्दस को भी देखते जाने का निवेदन करते है ।"[१]

इसके अतिरिक्त मिश्र जी ने समालोचना की समालोचना करने का भी सूत्रपात किया। एक बार राधाचरण गोस्वामी ने गोविन्दनारायण कृत 'शिक्षा सोपान' की की समालोचना की और उसमे ग्रन्थकर्ता को शैव सिद्ध किया पर यह मत मिश्र जी को उचित नहीं जान पड़ा। वे लिखते हैं—"श्री गोविन्दनारायण जी कृत शिक्षा सोपान की समालोचना मे श्री मुख की आज्ञा है कि 'ग्रन्थकर्ता शैव मालूम होते है। अर्धचन्द्र पर बड़ा जोर दिया है।' भला पठन पाठन की पुस्तको मे अर्धचन्द्र क्या न रहना चाहिए ? फिर गोस्वामी जी को कौन कर्ण-पिशाची सिद्ध है जो ग्रन्थकार की मत बदल गई ? आप वैष्णव है तो क्या अर्धचन्द्र उडा देंगे ? ऐसा हँसोड-पन किस काम का।"[२]

मिश्र जी किसी-किसी समालोचना—मे आवश्यकतानुसार लेखक को सुझाव भी देते थे। मास्टर नन्हेंमल रचित 'सुखदवार्ता' की समालोचना के अन्त मे वे कहते है—"मास्टर साहब से हमारा इतना सानुरोध निवेदन और है कि यदि इसकी टीका भी छपवा दें तो केवल अक्षर जानने वाले भी इसके स्वाद से विमुख न रहे। अभी इसके समझने में बुद्धि लडानी पडती है।"[३] इस प्रकार मिश्र जी की समालोचना युग-सापेक्ष थी। वे अपने युग के साहित्य को युगानुरूप देखना चाहते थे।

सामयिक पत्रों की समालोचना

सामयिक पत्रो मे मिश्र जी ने वैष्णव-पत्रिका,[४] हिन्दोस्थान,[५] दिनकर प्रकाश,[६] कान्यकुब्ज प्रकाश,[७] आनन्द कादम्बिनी,[८] सुश्रुत-संहिता[९] आदि की समालोचनाएँ लिखी हैं। ये समालोचनाएँ भी विज्ञापन के रूप में लिखी गई है। इनका उद्देश्य जनता में पत्र-पत्रिकाओं का प्रचार करना रहा है। उदाहरण के लिए 'सुश्रुत-संहिता' की समालोचना देखिए—"वैद्यक वह विद्या है जिसके बिना जीवमात्र

---

१. 'ब्राह्मण' खण्ड ६, संख्या ४, 'प्रेम प्रशंसा' : अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'
२. " " ३, " ७, ('मुनीनां च मतिभ्रम')
३. " " १, " ७, ('समालोचना')
४. " " १, " ५, ('आलोचना')
५. " " १, " १०, ('प्राप्ति स्वीकार')
६. " " २, " १, ('समालोचना')
७. " " २, " २, ('समालोचना')
८. " " ३, " ७, ('प्राप्ति स्वीकार')
९. " " ३, " ८, ('सुश्रुत-संहिता)'

की जीवनयात्रा नही चल सकती। शास्त्रकारो ने जो लिखा है—'धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यम्मूलमुत्तमम्'—हम जानते है कि इस वाक्य में सहृदयगण का तो कहना ही क्या है नर पशु को भी सदेह न होगा। पर यह खेद का विषय है कि अब तक हमारे देश भाई इससे ऐसे वचित है कि कहना ही नही। भला हमारे महर्षियों से अधिक भी किसी विद्या को कोई जानता होगा, जिनकी असीम बुद्धिमता इसी से प्रगट है कि इस विद्या का नाम आयुर्वेद रक्खा है। यदि और ग्रन्थ न पढ़ो तो अपने वेद को तो न छोड़ो। इस विषय मे हमें बहुत लिखने की आवश्यकता नही कि हिन्दुओ से और वेद से कितना सम्बन्ध है। वेद का ही छोटा भाई आयुर्वेद है। क्योंकि उपवेद कहाता है, वरच हम तो बड़ा भाई कहेगे क्योंकि उसमे बरसों विवाद करने पर भी सदेह बना रहना सभव है। वरच बहुत सी बाते केवल आँख मूँद के मान लेव, नही, तो नास्तिक्य का भय है और इसकी जो बात है, प्रत्यक्ष है। सुश्रुत, चरक और वाग्भट्ट इस विषय के परम प्रामाणिक ग्रन्थ है। यदि उनमे से कोई ग्रथ मिलता हो और न ले तो उससे ज्यादा भकुआ कौन होगा। कलकत्ते के श्री अविनाशचन्द्र कविरत्न और श्री चन्द्रकुमार कविभूषण इसे प्रतिमास प्रकाशित करते हैं। चिकित्सा सम्मिलनी आफिस मे मिलता है। बहुत रु० भी न चाहिए केवल ।।) महीने का नुस्खा है।"[१]

मिश्र जी पत्र-पत्रिकाओं की समालोचना लोकहित और हिन्दी प्रचार को दृष्टि मे रखकर करते थे। जो पत्र जितना ही लोकहितैषी और हिन्दी-प्रचारक होता था, मिश्र जी उसकी उतनी ही प्रशसा करते थे। "वैष्णव-पत्रिका" की समालोचना में वे लिखते है—"इस पत्र के उत्तम प्रबन्ध और लेखों पर जब ध्यान किया जाता है तो हिन्दी भाषा के पत्रों की प्रतिष्ठा के कारण ऐसे ही पत्र कहे जा सकते है। इस पत्र का जो उद्देश्य है उसके विपरीत किसी नम्बर मे कोई लेख नहीं पाया जाता। इसके अतिरिक्त लेखों में परस्पर विरोध नहीं होने पाता और ऐसा विचार रखना साधारण मनुष्य का काम नही, किन्तु बडे विद्वान और न्यायशील से ऐसा निर्वाह हो सकता है। फिर दर्शनों का हिन्दी में अनुवाद कितना उत्तम है और लाभदायक विषय है सो इसमें भली भाँति देखने मे आता है। हम सम्पादक महाशय को बड़ा धन्यवाद देते है कि इतना बड़ा परिश्रम सर्वसाधारण के हित के लिए करते है। कोई यह न समझे कि यह केवल वैष्णवों का हितकारी है वरन् यह वह पत्र है कि जिसका देखना आर्य मात्र को अत्यावश्यक है।"[२] ऐसे ही मिश्र जी ने 'हिन्दोस्थान' पत्र की भी बड़ी प्रशंसा की है। यह पत्र सन् १८८३ ई० मे राजा रामपालसिंह

१, 'ब्राह्मण' खण्ड ३, संख्या ८, ('सुश्रुत संहिता')
२. ,, ,, १, संख्या ५, ('आलोचना')

द्वारा इग्लैंड से निकाला गया था। इसका मूल उद्देश्य भारतीयों की दयनीय स्थिति को अंग्रेजों के सामने रखना था। यह पत्र अंग्रेजी और हिन्दी—दो भाषाओं में निकलता था। मिश्र जी इसके विषय में लिखते हैं—"श्रीयुत राजा रामपालसिंह जी महामान्य ने विलायत जाकर हम लोगों के हितार्थ एक मासिक पत्र निकाला है। इसका नाम 'हिन्दोस्थान', भाषा अंग्रेजी और हिन्दी, गुण निर्भयत्व, निष्पक्षत्व, देशहितैषित्व है। परमेश्वर को अनेकानेक धन्यवाद है कि उसने इस चिरकालिक अतःपतित पराधीन देश की सुधि लेके ऐसे पुरुषोत्तम उत्पन्न किये हैं जो सहस्रावधि रुपये और वर्षावधि समय लगा के, नाना कष्ट उठा के, दूर देश जाके, अन्य देशियों में अपने देश भाइयों की दीन दशा ठीक-ठीक दिखलाके, उनके सुख साधन का प्रयत्न करते हैं·····निश्चय आर्यावर्त के दिन फिरने का आरम्भ हो चला है। हमारी समझ में इस पत्र को अमूल्य दिव्य-औषधि ही कहना चाहिए।"[1]

मिश्र जी देशहितैषी पत्रकार थे, इसलिए वे सभी सामयिक पत्रों में देश-हितैषी तत्व ही ढूंढ़ते थे और यह उस क्रान्तिकारी युग के लिए आवश्यक भी था। अतः मिश्र जी की, सामयिक पत्रों पर लिखी गई समालोचनाएं लोक-कल्याण की भावना से परिपूर्ण है।

पुराणों की समालोचना

मिश्र जी के समय में नई रोशनी वाले लोग पुराणों को पोपाचार, अन्ध-विश्वास और आडम्बर का घर समझते थे तथा उनकी—बिना समझे हुए—कटु भर्त्सना करते थे। मिश्र जी लिखते हैं—"अंग्रेजी ढग की शिक्षा पाने वालों में न जाने यह दोष क्यों हो जाता है कि जो बातें सहज में नहीं समझ पडती उन्हें मिथ्या समझ बैठते हैं। यदि इतना ही होता तो भी इसके अतिरिक्त कोई बडी हानि न थी कि थोडे से लोग कुछ का कुछ समझ लें। पर खेद यह है कि वे अपनी अनुमति देने में अपने पूर्वजों की प्रतिष्ठा का कुछ भी ध्यान न करके बिन समझी बातों के विषय में भी बहुधा निरंकुश भाषा का प्रयोग कर बैठते हैं जिससे विद्वानों को खेद और साधारण लोगों को क्षोभ उत्पन्न हो के परस्पर की प्रीति में बड़ा भारी धक्का लगता है। आजकल सब समाजें आपस के हेल-मेल को आवश्यक समझती हैं एवं विचारशील लोग सारे धर्म कर्मादि में एकता को श्रेष्ठ समझते हैं। पर इन ऐक्यभावुकों में भी बहुत से लोग ऐसे विद्यमान है, जो अपने यहाँ के मुहाविरे और प्राचीन काल के रग ढग से अनभिज्ञ होने के कारण जब तब कह बैठते हैं कि पुराण मिथ्या है, प्रतिमा पूजन वाहियात है, यह सब पंडितों के ढकोसले हैं।"[1] ऐसी स्थिति में मिश्र जी ने

१. 'ब्राह्मण' खण्ड १, संख्या १०, ('प्राप्ति स्वीकार')
२. " " ६, संख्या ८, ('पौराणिक गूढ़ार्थ')

पुराणो का वैज्ञानिक ढग से समर्थन किया और उनकी तर्क पूर्ण समालोचना प्रस्तुत की। वे कहते है—"उनके द्वारा सस्कृत के अनेकानेक मुहाविरे मालूम होते है, फिर क्यों उनकी निन्दा की जाय ? क्या चहारदर्वेश और राबिन्सन क्रूसो की कहानियों के समान भी वे नही है, जिनके पढ़ने में लोग महीनों आँखे फोडते है ?—विदेशी भाषाओ के मारे संस्कृत का पठन-पाठन छूट गया है। अपने यहाँ की उत्तम बातो का खोजना अनभ्यस्त-हो रहा है। नही तो हम समझा देते, वरंच सब लोग आप समझ जाते, कि जिन सज्जनों ने संसार के सारे झगडे केवल परमेश्वर का भजन अथवा जगत उपकार करने के लिए छोड दिये थे, जिन्होने अपने जीवन का बहुत बड़ा भाग विद्या पढने और ग्रन्थ बनाने मे बिताया था, उनकी कोई छोटी से छोटी बात भी निरर्थक नही है। फिर पुराण तो बड़े-बड़े ग्रन्थ है।—पुराणों में कोई बात मिथ्या नही है, वरच जहाँ-जहाँ मिथ्या की भ्रान्ति होती है वहाँ गूढार्थ भरा हुआ है, जिसे अंगीकार किये बिना भारत का कल्याण नही हो सकता।"[1] मिश्र जी ने पुराणों के समर्थन में पौराणिक गूढ़ार्थ,[2] पुराण समझने को समझ चाहिए,[3] प्रह्लादचरित्र[4] आदि समालोचनात्मक निबन्ध लिखे। ये सभी निबन्ध पूर्ण वैज्ञानिक तथा वास्तविक हैं।

मिश्र जी ने पुराणों में छिपे गूढ़ार्थ को बड़ी चतुरता से स्पष्ट किया है। पुराणों में देवताओ के कई हाथ (चतुर्भुजी, अष्टभुजी, दशभुजी आदि) होने के वर्णन मिलते हैं। मिश्र जी अपने निबन्ध में इसके आशय को इस प्रकार समझाते हैं—"देवताओं अर्थात् निराकार के पौराणिक रीति से साकार कल्पनामय स्वरूपों के बहुधा चार अथवा आठ भुजा होती है। यह उनकी महासामर्थ्य का द्योतन है। हिन्दी में मुहाविरा है कि जब कोई बडा काम शीघ्रता के साथ पूर्ण रूप से कोई नहीं कर सकता तो अपने उपासको से बहुधा कहता है कि भाई, अपनी सामर्थ्य भर कर तो रहे है, कुछ हमारे चार हाथ तो हई नहीं कि एक बारगी कर डालें। हमें उन लोगो पर आश्चर्य आता है जो आप तो दिन भर चार हाथ-हाथ कहते सुनते रहते है पर प्राचीन विद्वानों की लेखनी से चार हाथ (चतुर्भुज) लिखा हुआ देख सुन के आक्षेप करने दौड़ते है। यदि कुछ भी बुद्धि हों तो स्वयं समझ सकते है कि चार अथवा आठ हाथ वाले का अर्थ महासामर्थ्यवान है। इसमें तर्क वितर्क का क्या प्रयोजन ? इससे हममें यह उपदेश भी प्राप्त होता है कि यदि हम दो अथवा चार

---

१. 'ब्राह्मण' खण्ड ६, ,, ८, ('पौराणिक गूढ़ार्थ')
२. ,, ,, ६, ,, ८,९,१०,१२, तथा खण्ड ७, संख्या १,२
३. ,, ,, ८, ,, १२,
४. ,, ,, ९, ,, १,

मनुष्य मिल के अर्थात् चार वा आठ हाथ एकत्रित करके किसी काम को आरम्भ करें तो अकेले की अपेक्षा अधिक सहज और सुन्दर रीति से कर सकते है ।"[१]

मिश्र जी की पुराणो पर लिखी गयी समालोचनाएँ—उस युग को देखते हुए—बड़ी तार्किक और प्रगतिशील है । इनकी प्रतिपादन शैली भी बडी उत्कृष्ट और प्रभावपूर्ण है । यद्यपि इन समालोचनाओ का सम्बन्ध धार्मिक क्षेत्र से ही है फिर भी इनमे साहित्यिकता पर्याप्त मात्रा मे है ।

मिश्र जी समालोचनाएँ लिखते समय सरसता पर भी बराबर ध्यान रखते थे । उनकी समालोचनाओ मे पाठको का मन किंचित भी नही ऊबने पाता । एक तो उनकी समालोचनाएँ आकार से ही इतनी छोटी है कि उनमे वैसे भी नीरसता नही फटकने पाती । दूसरे वे नीरसता के परिहार के लिए बीच-बीच मे हास्य और व्यग्य के फुहारे भी छोडते जाते है जिनसे पाठको का और भी मनोरंजन होता रहता है । उदाहरण के लिए 'सुश्रुत-सहिता' पर लिखी गई समालोचना की कुछ पंक्तियाँ देखिए—

"यदि इसकी टीका नागरी मे होती तो सोने मे सुगन्ध थी । हिन्दू मात्र के काम की थी पर निरी सस्कृत होने के कारण हम अपने वैद्यराजो से अनुरोध करते है कि अवश्य मँगावे । अरे यार जानों दो महीने मे एक रोगी सैन ही मे देखा । जानो अमलक्यादि की गोली कुछ अधिक बँट गई । इसमे महामति दुल्लभाचार्य की टीका है । संस्कृत सरल है, दाम थोडे है । फिर काहे को अपनी तारीफ मे 'जाकी गही नाटिका सो एकौ घडी नाटिका' औ 'जाहि दई गोली ताहि गोली सी लगति है' सुनोगे ?"[२]

मिश्र जी की समालोचनाओं की भाषा भी बड़ी सरल और प्रवाहपूर्ण है । उनकी प्राय: सभी समालोचनाएं विज्ञापन के रूप मे लिखी गयी है इसलिए उनकी भाषा कही भी जन सामान्य के लिए दुरूह नही होने पाई । उदाहरणार्थ अयोध्यासिंह उपाध्याय कृत 'बेनिस का बाँका' की समालोचना देखिए—

"यह ऐसा अच्छा उपन्यास है कि हाथ से छोडने को जी नहीं चाहता और जिस बात का जिस अध्याय में वर्णन है उसका पूरा स्वादु अनुभव होता है । हिन्दी के भण्डार का गौरव ऐसे ही ग्रन्थों से है । भाषा, कागज और क्रम अत्युत्तम हैं । केवल दो दोष है । एक छोटा सा तो यह कि छापने वालों की असावधानी से अशुद्धियाँ कई ठौर रह गई हैं । दूसरे बड़ा दोष यह है, मराठी, बगाली आदि में नहीं है कि अब तक हाथों हाथ बिक जाती । खैर हमारे मित्र उपाध्याय जी को यह समझ के सतोष करना चाहिए कि उनके महान परिश्रम के बदले उन्हे दु:खिनी मातृभाषा की सहायता का पुण्य होगा जिसके आगे धन और प्रतिष्ठा का लाभ तुच्छ है ।"[३]

---

१. 'ब्राह्मण' खण्ड ६, संख्या ९, ('पौराणिक गूढार्थ')
२. 'ब्राह्मण' खण्ड ३, संख्या ८, ('सुश्रुत-सहिता')
३. " " ५, " ६, ('समालोचना')

मिश्र जी ने ऐसी ही भाषा का प्रयोग-प्रमुख रूप से—अपनी समालोचनाओं मे किया है। हाँ, एक-दो समालोचनाओ मे काव्यमयी भाषा भी प्रयुक्त हुई है जो उनके कवि हृदय की परिचायक है। 'आनंद कादम्बिनी' की समालोचना इस प्रसग मे द्रष्टव्य है—

"रसिकराज, अमृतवर्ष, प्रेमतत्व श्री बद्रीनारायण जी (मिरजापुर) की उसी 'आनन्द कादम्बिनी' का फिर से दर्शन हुआ जिसकी प्रशंसा हम क्या है हमारे हरिश्चन्द्र एव श्री बालकृष्ण भट्ट जी ने स्वय की है। अहाहा! हमारे चितचालक के आनन्द की मिति नही है। 'लखि नाचत मन मोर' का ठीक-ठीक अनुभव हम कर रहे है और सच्चे जी से प्रार्थी है कि हे बदरी! (मेघ) नारायण के निहोरे सदा सर्वदा भारत पर छाई रहियो और हमारे हृदय को सुखदायी रहियो पहिले की भांति। फिर न कहीं 'किमम्भोदवर: ! इस्माक कार्य्यंरायोक्तिम्प्रतीक्षसे ?' कहना पड़े। क्योकि अब तो चन्द्रमा के अभाव मे तेरा शिर पर रहना ही मंगल है। देख बिचारी नागरी का मुँह कही कम्हलाने न पावै।"[१]

मिश्र जी की समालोचनाएँ-भाषा, भाव आदि की दृष्टि से बड़ी चुटीली और प्रभावपूर्ण है। यद्यपि उनमे समालोचनाओ की उत्कृष्टता नही है फिर भी उनका अपना ऐतिहासिक महत्व है। जो तत्व मिश्र जी की समालोचना मे अकुरित हो रहे थे वे ही आज की समालोचना मे विकसित होकर पुष्पित और फलित हो रहे हैं। आज का समालोचना साहित्य अपनी पूर्व परम्परा का विकसित रूप है। डॉ० राजेन्द्रप्रसाद शर्मा के शब्दो में—"आज हिन्दी का आलोचना साहित्य गर्व करने योग्य स्थिति मे है उसका भविष्य आज बीते कल की अपेक्षा अधिक उज्ज्वल है। किन्तु आज का आलोचना साहित्य अपनी इस स्थिति को वायु-यात्रा करके नही पहुँचा है, उसकी यात्रा का पिछला पथ यद्यपि आज धुँधला हो गया है किन्तु आज की परिणति का सारा श्रेय उस भूले और पिछले पथ को ही है।"[२] मिश्र जी का समालोचना-साहित्य हिन्दी समालोचना का प्रारम्भिक साहित्य है इसलिए यदि उसे हिन्दी समालोचना-साहित्य का मूल कहा जाय तो कोई अनुचित न होगा। जब भी हिन्दी साहित्य-समालोचना का इतिहास लिखा जायगा, मिश्र जी हिन्दी समालोचना-साहित्य के जन्मदाताओं में अग्रणी रहेगे।

अनूदित साहित्य

मिश्र जी के समय में हिन्दी अनुवाद की परम्परा अपने उत्थान पर थी। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र से प्रेरित होकर अनेक साहित्यकार इस कार्य मे सन्नद्ध थे।

१, 'ब्राह्मण' खण्ड २ संख्या ७ ('प्राप्ति स्वीकार')

२. डॉ० राजेन्द्रप्रसाद शर्मा : 'हिन्दी गद्य के निर्माता पंडित बालकृष्ण भट्ट' (१९५८ ई०), पृष्ठ ३७१

उस समय संस्कृत और बगला का प्रौढ़ साहित्य-प्रचुर मात्रा मे हिन्दी लेखकों के सामने था, उसी का अनुवाद वे प्रमुख रूप से–हिन्दी मे कर रहे थे । श्रीधर पाठक और अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने कई अंग्रेजी ग्रन्थो का भी हिन्दी मे अनुवाद किया था । इन लेखकों के अनुवादों का प्रमुख उद्देश्य हिन्दी-कोश को समृद्धिशाली बनाना था ।

मिश्र जी भी अपने जीवन के अन्तिम वर्षों में–बाबू रामदीन सिंह की प्रेरणा से अनुवाद–क्षेत्र मे अवतरित हुए और लगभग दो दर्जन बगला–कृतियो का हिन्दी में अनुवाद किया । बाबू रामदीन सिंह खड्ग विलास प्रेस (बाँकीपुर) के मालिक थे और इन्ही के सरक्षण मे मिश्र जी की समस्त कृतियों का मुद्रण और प्रकाशन होता था । अतः मिश्र जी का सम्पूर्ण अनूदित-साहित्य इन्ही की प्रेरणा का परिणाम है । मिश्र जी ने केवल बगला-कृतियो का ही अनुवाद किया है । मिश्र जी का अनूदित-साहित्य बालोपयोगी-साहित्य से प्रारम्भ होता है । सर्वप्रथम मिश्र जी ने बाबू रामदीन सिंह की आज्ञा से बंगला के बालोपयोगी-साहित्य का अनुवाद प्रारम्भ किया था, जिसकी सूचना इस प्रकार मिलती है–"मेरे अनेक मित्रों की यह राय हुई है कि बालको के पढ़ने के लिए आजकल ऐसी छोटी-छोटी नीति और धर्म की पुस्तकें छपनी चाहिए जिनसे उनकी नीतिशिक्षा और धर्मशिक्षा होती रहै, क्योकि स्कूल की वर्तमान शिक्षा से बड़ी हानि हो रही है " "इसलिए मैंने भारतवर्ष के प्रसिद्ध, सुनीति और धर्म्म प्रचारक कुमार कृष्णप्रसन्नसेन परिव्राजक जी (श्री कृष्णानन्द स्वामी) की बगला 'नीतिरत्नमाला' और 'पंचामृत' को अपने परम मित्र 'ब्राह्मण' सम्पादक पंडित प्रतापनारायण मिश्र जी के पास भेज दिया कि इनका उल्था कर दीजिए उन्होने बडी शीघ्रता से इसका उल्था करके मेरे पास भेज दिया और उन्होने कृपा पूर्वक यह लिखा कि इस प्रकार का जितना काम हो मै प्रस्तुत हूँ इस प्रकार की और भी अपने धर्म तत्व की पुस्तकें छापने की इच्छा है, देखें सज्जन लोगो की इधर कैसी गुणग्राहकता होती है ।"[1] इस प्रकार मिश्र जी का अनूदित साहित्य 'नीतिरत्नावली' (नीति-रत्नमाला) और 'पंचामृत' से ही प्रारम्भ होता है । ये दोनों कृतियाँ सन् १८९१ ई० में प्रकाशित हुई थी । इनके मुख पृष्ठ पर लिखा था—"प्रेमदास प्रसिद्ध प्रतापनारायण मिश्र ने श्रीमन्महाराज कुमार बाबू रामदीन सिंह के आज्ञानुसार अनुवाद किया ।" इसके बाद मिश्र जी ने इतिहास, भूगोल, कहानी आदि अनेक बालोपयोगी बंगला-पुस्तकों का हिन्दी में अनुवाद किया । इनमें अधिकांश पुस्तकें विहार-शिक्षा विभाग के पाठ्यक्रम मे स्वीकृत भी हो गयी थीं, क्योंकि उस समय बाबू रामदीन सिंह का बड़ा

१. प्रतापनारायण मिश्र : 'पंचामृत' (१८९१ ई०) प्रकाशक के अन्तिम पृष्ठ पर दिये गये विज्ञापन से ।

सम्मान था और वे एक प्रकार से विहार शिक्षा विभाग की पुस्तको के सर्वाधिकारी बन गये थे।[1] मिश्र जी के बालोपयोगी अनुवादो का प्रमुख उद्देश्य बालको को शिक्षा देना रहा है। ये अनुवाद इतिहास, भूगोल, विज्ञान, स्वास्थ्य रक्षा, नीति, धर्म आदि विषयो से सम्बन्धित है। नीति-धर्म की कहानियाँ भी आदर्श-चरित्र को लेकर उपस्थित हुई है। उदाहरण के लिए 'चरिताष्टक' प्रथम भाग के पद्मलोचन मुखोपाध्याय के चरित्र की कुछ पंक्तियाँ देखिए—"यह एक साधारण गृहस्थ के लडके थे। इनको बहुत लोग जानते भी न थे पर उत्तम गुण इनमे पूर्ण रूप से प्रस्तुत थे। ११८५ हिजरी (१७७८ ई०) मे हावड़ा जिले के बालीग्राम मे इनका जन्म हुआ था। पिता का नाम गोकुलचन्द्र मुकरजी था जो कुलीन और प्रतिष्ठित पुरुष थे। कलकत्ते मे नौकर थे। तीन-चार सौ रुपया महीना कमाते थे, इससे खाने पहिनने का दुःख न था। पद्मलोचन इनके जेष्ठ पुत्र थ जो पाँच वर्ष की अवस्था मे पढ़ने के लिए पाठशाला मे बिठाले गये फिर कुछ दिन पीछे जान बाजार के फ़्री स्कूल मे भेजे गये। वहाँ नाना के यहाँ रह के अगरेजी पढ़न लगे (वह बाज़ार वाले पाकडासी इनके नाना का वंश है) इस स्कूल मे प्रायः सभी लड़के अगरेजो और फिरगियो के थे उनमे से बहुतो को उन्होने अपने गुणो से मोहित कर लिया। सब इनकी प्रीति मे सुखी थे। पद्मलोचन भी अपना अवकाश का समय इन्ही के साथ व और-और साहबो के सग बिताते थे। अंग्रेजो के साथ बातचीत करते-करते बोलन का अभ्यास बहुत अच्छा हो गया और साथ ही अंग्रेजो की सी सहनशीलता, देश-हितैषिता, परिश्रम, साहस, सब सद्गुण भी आ गये, किन्तु पतलून पहिनना, मदिरा पीना, धर्म न मानना आदि अवगुण एक भी न व्यापा, यह बड़े अचम्भे की बात है।"[2]

आगे चलकर मिश्र जी ने राय बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय के आठ-दस बंगला-उपन्यासो का भी अनुवाद किया। ये अनुवाद पाठको के मनोरंजनार्थ और हिन्दी के प्रचारार्थ किये गये थे। इनका सामान्य जनता में बड़ा आदर हुआ। इन अनुवादों मे रोचकता प्रचुर मात्रा में है। उदाहरणार्थ 'युगलांगुरीय' उपन्यास का एक उद्धरण लीजिए—"दो जने उद्यान मे लतामण्डप के तले खड़े थे। उस समय प्राचीन नगरी ताम्रलिप्ति के चरण धोता हुआ अनन्त नील समुद्र मृदु-मृदु कलरव करता था। ताम्रलिप्ति नगरी के प्रान्त भाग मे समुद्र के तट पर एक सुन्दर कोठी थी, उसके निकट एक सुनिर्मित बाटिका थी। धनदास नामक सेठ उसके अधिकारी थे। सेठ की कन्या 'हिरण्मयी' लतामंडप में खड़ी हुई एक युवा पुरुष के साथ बातें करती थी।"[3]

---

१. 'बालमुकुन्द गुप्त-निबन्धावली' प्रथम भाग (२००७ वि०) पृष्ठ ३०

२. प्रतापनारायण मिश्र : 'चरिताष्टक' प्रथम भाग (१८९४ ई०), पृष्ठ ५०

३. ,, : 'युगलांगुरीय' ,, (१९१४ ई०), पृष्ठ २

मिश्र जी ने अपने अनुवाद बालको तथा सामान्य-व्यक्तियो को दृष्टि मे रख-कर किये है, इसलिए उनकी भाषा बड़ी वास्तविक, चलती हुई तथा सरल है.। कही-कही ग्रामीण शब्दों का भी प्रयोग किया गया है तथा एक-आध उर्दू-फारसी के भी प्रचलित शब्द यत्र-तत्र आ गये है पर कही भी भाषा दुरूह या नीरस नही होने पायी है। मिश्र जी की भाषा सर्वत्र भावानुरूपिणी है। उदाहरणार्थ निम्नलिखित पंक्तियाँ देखिए—

"सुबोध विचारमान वैष्णवो को छोड के साधारण बुद्धि के वैष्णव बहुधा कहा करते है कि देवी तो केवल एक परमा 'वैष्णवी' मात्र है इसी भाँति महादेव जी को भी केवल एक वैष्णव समझते है, पर उनका भ्रम है। जहाँ-कही पुराणो मे भगवती का नाम 'वैष्णवी' लिखा है वहाँ यह अर्थ नही है कि विष्णुदेव की सेवा करनेवाली स्त्री, किन्तु इसका तात्पर्य यह है कि जिस अनादि शक्ति का आश्रय ले के विष्णु भगवान त्रैलोक्य की रक्षा करते है उसी का नाम वैष्णवी है, जिस शक्ति के बिना विष्णुदेव का विष्णुत्व नही रह सकता, उसे वैष्णवी शक्ति कहते है। इसी प्रकार उसका नाम शैवी-शक्ति एवं ब्राह्मी-शक्ति है। इसका अर्थ भी शिव और ब्रह्मा की सहाय करने वाली है। क्योंकि उसी महाशक्ति से त्रिदेव की उत्पत्ति है।"[१]

मिश्र जी के अनुवादो की शैली भी वर्णनात्मक तथा सुबोध है। उनकी शैली मे सर्वत्र उनके व्यक्तित्व की छाप दिखाई पडती है। इसके अतिरिक्त रोचकता तो उसका अपना गुण ही है। 'राधारानी' उपन्यास का एक उद्धरण देखिए—"राधारानी की माता ने पथ्य लिया, किन्तु उस रोग से मुक्त होना अदृष्ट मे न था। वह अति-शय धनी थी, अब अति दु.खिनी हो गयी है। ये शारीरिक और मानसिक दो प्रकार के कष्ट, उससे सह्य नही हुए। रोग ने क्रम से बढ़कर शेष काल उपस्थित किया। उस समय मे विलायत से संवाद आया कि प्रिवि-कौन्सिल की अपील मे उनके पक्ष में निष्पत्ति हुई है, अब वह अपनी सम्पत्ति पुनः प्राप्त करेगी, और वासिलात का रुपया भी पावेगी, और अदालत का खर्चा भी मिलेगा।"[२] मिश्र जी के अनुवादो में उनकी अपनी शैली है, इसी में उनकी नवीनता है। नारायणप्रसाद अरोडा और लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी लिखते है—"इन अनुवादित पुस्तकों में भी पं० प्रतापनारायण मिश्र की अपनी शैली विद्यमान है। इनकी भाषा मे भी वही प्रवाह और चुटीलापन है जो मिश्र जी की मौलिक पुस्तकों में पाया जाता है।"[३]

---

१ प्रतापनारायण मिश्र : 'पंचामृत' (१८९१ ई०), पृष्ठ १२-१३।
२. ,, 'राधारानी' (प्रथम संस्करण), पृष्ठ ९।
३. सं० नारायणप्रसाद अरोड़ा तथा लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी : 'प्रतापनारायण मिश्र' (१९४७ ई०) पृष्ठ १२१।

मिश्र जी का अनूदित साहित्य मूल ग्रन्थों का अक्षरशः अनुवाद है। मिश्र जी ने मूल ग्रन्थों की कथावस्तु, चरित्र-चित्रण, पात्रों आदि में कोई परिवर्तन नही किया। यहाँ तक कि अध्याय, परिच्छेद और खण्ड तक मूल-ग्रन्थो पर ही आधारित है। केवल भाषा-शैली बदली हुई है। उदाहरणार्थ 'कपालकुण्डला' का एक उदाहरण लीजिए—"ए दिके कापालिक गृह मध्ये तन्न-तन्न करिया अनुसधान करिया, ना खड्ग ना कपाल कुण्डला के देखिते पाइया, संदिग्धचित्ते सैकते प्रत्यावर्तन करिलो। तथाय आसिया देखिलो जे, नबकुमार तथाय नाइ। इहाते अत्यन्त बिस्मय जन्मिल। कियत्खन परेइ छिन्नलता बन्धनेर ऊपर दृष्टि पड़िलो। तखन स्वरूप अनुभूत करिते पारिया कापालिक नबकुमारेर अन्वेपणे बाहिर होइलो; किन्तु बिजनमध्ये पलातकेरा कोन् दिके कोन् पथे गियाछे, ताहा स्थिर करा दुःसाध्य। अन्धकारबशतः कहाकेओ दृष्टिपथबर्ती करिते पारिल ना। एक जन्य बाक्य शब्द लक्ष्य करिया खनेक इतस्ततः भ्रमन करिते लागिल। किन्तु सकल समय कण्ठध्वनि ओ सुनिते पाओवा गेल ना। अतएब बिशेष करिया चारी दिक पर्यवेक्षण करिबार अभिप्राय एक उच्च बालियाडीर शिखरे उठिल। कापालिक एक पार्श्वे दिया उठिल। ताहार अन्यतम पार्श्वे वर्षार जलप्रबाहे स्तपमूल खयितहोइयाछिल, ताहा से जानित ना; शिखरे आरोहन करिबामात्र कापालिकेर शरीरतरे सेई पतनोन्मुख स्तूपशिखर भग्न होइया अति घोर रबे भूपतित होइल। पतन काले पर्वतशिखरच्युत महिषेर न्याय कापालिक ओ तत्सगे पड़िया गेल।[1]"

इसी का अनुवाद मिश्र जी इस प्रकार करते हैं—"इधर कापालिक ने गृह मे रत्ती-रत्ती अनुसंधान करके और न खग और न कपाल कुण्डला को देख के संदिग्ध चित्त से सैकत की ओर लौटा। वहा देखा कि नवकुमार भी नहीं है। इससे अत्यन्त विस्मय हुआ। थोडी दूर पीछे ही छिन्न लताबन्धन के ऊपर दृष्टि पड़ी। तब तो अनुभव करके कापालिक नवकुमार के अन्वेपण मे धावित हुआ। किन्तु विजन में वह किधर किस मार्ग होकर गया है, यह स्थिर करना दुःसाध्य था। अन्धकार के कारण किसी को भी देख न सका। इसलिए वाक्य शब्द लक्ष्य करके क्षण भर इधर-उधर भ्रमण करने लगा, किन्तु कण्ठध्वनि भी सुनाई न दी। अतएव अच्छी तरह चारो ओर पर्यवेक्षण करने के अभिप्राय से ऊँचे बालू के एक टीले पर चढ़ गया। कापालिक एक ओर से चढ़ा, उसका दूसरा किनारा वर्षा के जलप्रवाह से खंधर गया था, इसे वह नहीं जानता था। शिखर पर आरोहण करते ही उसके शरीर के भार से वह पतनोन्मुख शिखर भग्न हो के अत्यन्त घोर रव पूर्वक पृथ्वी में पतित

१. 'बंकिमचन्द्रेर उपन्यास ग्रन्थावली' तृतीय भाग (राज संस्करण) 'कपालकुण्डला' पृष्ठ १२

हुआ। पर्वत शिखर से च्युत महिप की भांति कापालिक भी उसके संग गिर पड़ा।[1]"

इसके साथ ही मूल-ग्रन्थ में दिये हुए अंग्रेजी के उदाहरणों का भी मिश्र जी प्रायः अक्षरशः अनुवाद करते थे। देखिए—

"And the great lord of Luna
Fell at that deadly stroke;
As falls on mount Alvernus
A thunder - smitten oak."[2]

इसका अनुवाद इस प्रकार है—

"खाय प्रान हरधाय गिर्‌यो नरनायक ऐसे।
गिरि पर तरुवर गिरै बजर को मार्‌यो जैसे॥[3]"

मिश्र जी के अनूदित-साहित्य में उनकी अपनी मौलिकता की निहायत कमी है। केवल भाषा-शैली में ही उनकी थोड़ी बहुत मौलिकता दिखाई पड़ती है। फिर भी मिश्र जी का आनूदित-साहित्य अपने युग के लिए बड़ा उपयोगी था। उसमें लोकहित और हिन्दी प्रचार की भावना प्रचुर मात्रा में थी। उससे बालकों के चरित्र-निर्माण और हिन्दी के विकास में बड़ी सहायता मिली। मिश्र जी के रंजनात्मक-अनुवादों ने तो एक नया पाठक समुदाय ही तैयार कर दिया था। मिश्र जी के अनुवाद अपने उद्देश्य में पूरी तरह सफल हैं। अतः विशिष्ट-मौलिकता के न होते हुये भी वे सराहनीय हैं।

---

१. प्रतापनारायण मिश्रः कपालकुण्डला (१९१४ ई०), पृष्ठ ३३-३४
२. —वही— ,, ३३
३. —वही— ,, ३३

उपसंहार

भारतेन्दु-युगीन साहित्यकार और मिश्र जी

साहित्यकार जिस युग विशेष मे पैदा होता और रहता है उस युग का कुछ-न कुछ प्रभाव उस पर अवश्य पड़ता है। हाँ, युग के प्रभाव की मात्रा अवश्य साहित्यकार के व्यक्तित्व, प्रतिभा और रुचि के अनुसार कम या ज्यादा हुआ करती है पर युग के प्रभाव से साहित्यकार बिल्कुल निरपेक्ष नही हो सकता। इसी प्रभाव के ही कारण किसी काल विशेष के साहित्यकारों की बहुत-सी विशिष्टताएँ भी प्राय: एक-दूसरे से मिल जाया करती है। युग के प्रभाव का साहित्यकार के जीवन मे महत्त्वपूर्ण स्थान है। जो साहित्यकार जितना ही युग सापेक्ष होता है वह उतना ही लोक प्रिय और अपने कार्य मे सफल होता है। भारतेन्दु-युगीन साहित्यकारों पर युग का प्रभाव विशेष रूप से पड़ा है और इसीसे उनकी विशिष्टताएँ भी बहुत कुछ मिलती-जुलती है। भारतेन्दु-युगीन साहित्यकार एक-दूसरे के बहुत निकट पहुँचे दिखाई पड़ते है। अत: इस युग के किसी एक साहित्यकार के अध्ययन के लिए पूरे युग को देखना और युग के बीच ही उसका स्थान निर्धारित करना आवश्यक हो जाता है। युग को साथ लेने से एक तो साहित्यकार की सम्पूर्ण विशिष्टताएँ सहज ही सामने आ जाती है, दूसरे उसकी जागरुकता और अनुभूति की गहराई का भी पता लग जाता है। इसी से यहाँ पर मिश्र-साहित्य के समुचित मूल्याकन के लिये भारतेन्दु-युग के प्रमुख साहित्यकारो के दृष्टिकोण और उनके साहित्य के बीच मिश्र जी को देखने का प्रयास किया गया है।

भारतेन्दु-युगीन साहित्यकारों का सामाजिक दृष्टिकोण

भारतेन्दु-युगीन साहित्यकार समाज को विकासशील देखना चाहते थे। उन्हे समाज की संकीर्णता बिल्कुल प्रिय नही थी। समाज मे फैले हुए अनाचार, बाल्य-विवाह, नशाखोरी, छूआछूत, पर्दाप्रथा, साम्प्रदायिकता, फूट आदि के वे घोर विरोधी थे। उनमे समाज के नव विकास की चेतना प्रचुर मात्रा में थी। वे देशकाल के अनुकूल समाज को आगे बढ़ाना चाहते थे। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र जनता को समझाते हुए कहते है—

"देश और काल के जो अनुकूल और उपकारी हों उनको ग्रहण कीजिए। बहुत-सी बाते जो समाज-विरुद्ध मानी है किन्तु धर्म शास्त्रों मे जिनका विधान है, उनको चलाइये। जैसे जहाज का सफर, विधवा विवाह आदि। लड़कों को छोटेपन

मे ब्याह करके उनका बल, वीर्य, आयुष्य सब मत घटाइये। आप उनके माँ बाप हैं या उनके शत्रु है। वीर्य उनके शरीर मे पुष्ट होने दीजिए, विद्या कुछ पढ लेने दीजिए, नोन, तेल, लकडी की फिक्र करने की बुद्धि सीख लेने दीजिए तब उनका पैर काठ में डालिए। कुलीन प्रथा, बहु विवाह को दूर कीजिए। लड़कियो को भी पढाइए, किन्तु उस चाल से नहीं जैसे आजकल पढाई जाती हैं जिससे उपकार के बदले बुराई होती है। ऐसी चाल से उनको शिक्षा दीजिए कि वह अपना देश और कुल धर्म सीखें, पति की भक्ति करे और लडकों को सहज में शिक्षा दें। वैष्णव, शक्त इत्यादि नाना प्रकार के मत के लोग आपस का बैर छोड़ दे। यह समय इन झगड़ो का नहीं। हिन्दू, जैन, मुसलमान, सब आपस मे मिलिए। जाति में चाहे कोई ऊँचा हो चाहे नीचा हो सबका आदर कीजिए, जो जिस योग्य हो उसको वैसा मानिए। छोटी जाति के लोगो को तिरस्कार करके उनका जी मत तोड़िए। सब लोग आपस में मिलिए।"[1]

इसी प्रकार बालकृष्ण भट्ट भी बाल्य-विवाह, अनाचार आदि की भर्त्सना-व्यंग्य के माध्यम से बड़े अच्छे ढंग से करते है। देखिए—"दुहिता के जन्म दिवस के पाँचवें दिन विवाह कर दिया करो ऐसा न हो कि कन्या कहीं रजस्वला हो जाय नही तो धर्म ही नष्ट हो जायगा और इक्कीस पुरखा नरक में पड़े-पडे चिल्लाया करेंगे। महाकृपणता से कौड़ी-कौड़ी माया जोड़ो पर लड़कों के व्याह में गंजिया की गजिया लुढ़का दिया करो।......घर के भीतर सात तहखानो मे सदा बन्द रहो। बाहर न निकलना, बाहर निकले और जात गई। दूसरी बड़ी हानि इसमे यह होगी कि कही ऐसा न हो कि विदेशी सभ्यजनो की हवा तुम्हे लग जाय। हाथ पाँव ढीला कर अदृष्ट पर विश्वास किये चुपचाप बैठे रहो जिसमे पुरुषार्थ की जड कटी रहे।..... आँख मे पट्टी बाँधे सोते रहो। उसे खोलना नही, कहीं ऐसा न हो कि तुम्हे सूझने लगे और हिये की जो फूटी है सो खुल जायँ।......काल अब बड़ा कराल आया है कही ऐसा न हो कि तुम्हारी दुर्बुद्धि का शोधन हो जाय तो फिर दुर्व्यसन, खुदगर्जी, फिजूलखर्ची, बाल्य विवाह, बैर फूट आदि बेचारे किसके सहारे रहेगे।..... सम्हले रहो देखो ऐसा न हो कि औरों की देखादेखी तुम भी अवनति को दूर बहा उन्नति की सीढ़ी पर पाँव रखने लगो। खुशामद इस मूल मन्त्र के जप से कभी मुँह न मारो काम पड़ने पर हाँ में हाँ मिला दिया करो। देश चाहे सत्यानाश हो अपना मतलब तो खफ्त न होने पावेगा।"[2]

---

१. 'भारतेन्दु-ग्रन्थावली' तीसरा खण्ड (२०१० वि०) पृष्ठ ९९१ (भारतवर्ष की कैसे उन्नति हो सकती है ?)

२. 'हिन्दी प्रदीप' मई, १८७८ ई०, पृष्ठ ४-६

बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' भी बाल्य-विवाह का विरोध इस प्रकार करते है—"ऐसी अवस्था मे ऐसी निर्दयता, कठोरता और अन्याय के साथ जो विवाह प्रायः बाल्यावस्था में ही किया जाता है, यद्यपि उससे जो जो आपत्तियाँ आती हैं वर्णन उनका सर्वथा असम्भव है; पर तो भी यह तो प्रसिद्ध है कि ऐसे ब्याह से आपस की प्रीति और मेल कैसे उत्पन्न होने की सम्भावना हो सकती है। अन्याय प्रकृति का प्रतिकूल होना हर अवस्था मे दुख का विषय है किन्तु इस स्थान पर धर्माधर्म तथा शास्त्राज्ञा का कुछ भी विचार नही करते।"[1]

'प्रेमघन' जी सामाजिक मामलों में अधिक नही रमे पर जितना लिखा है, प्रभावपूर्ण लिखा है। इसके साथ राधाचरण गोस्वामी ने भी समाज के नवोत्थान के लिए जनता को विशेष रूप से प्रोत्साहित किया। लेकिन बालकृष्ण भट्ट आदि की तरह सामाजिक मामलों मे अधिक उग्र और स्पष्ट नही हो सके। कारण कि ये गोस्वामी सम्प्रदाय के आचार्य और गद्दी के अध्यक्ष थे तथा धार्मिकता भी इनमे पर्याप्त थी।[2] इसलिए ये बराबर अपनी सीमाओं का ध्यान रखकर चले है। इनके विचार बहुत कुछ भारतेन्दु से मिलते हैं। भारतेन्दु की तरह नम्रनीति का ही इन्होने पालन किया है। इसके अतिरिक्त अन्य भारतेन्दु-युगीन साहित्यकारों—अम्बिका-दत्त व्यास, ठाकुर जगमोहन सिंह, लाला श्री निवासदास आदि ने सामाजिक मामलों में अधिक रुचि नही दिखाई। ये लोग प्रमुख रूप से स्वान्तः सुखाय रचनाएँ लिखते थे।

प्रतापनाप नारायण मिश्र सामाजिक मामलों में बहुत आगे थे। इनके विचार बडे उग्र तथा स्वच्छन्द थे। ये समाज की कुरीतियो की जी खोलकर भर्त्सना करते थे। 'भलमसी' पर किया गया इनका व्यग्य देखिए—"यदि भलमसी यही है कि नाना भाँति के क्लेश और हानि सहना पर पुरानी लकीर के एक अंगुल भी बाहर न होना, बिरादरी मे दो दिन की वाह-वाह के लिए ऋण काढ़ के सैकड़ों की आतिशबाजी छिन भर मे फूंक के संतान के माथे कर्ज मढ़ जाना, केवल नाई और पुरोहित की प्रसन्नता के लिए साठ बरस और आठ बरस के वर कन्या की जोड़ी मिलाना तथा दोनों का जन्म नशाना, पाँच बरस की विधवा का यौवन काल मे व्यभिचार एवं भ्रूणहत्या टुकुर-टुकुर देखते रहना, वरंच छिपाने का यत्न करना, पर विधवा विवाह का नाम लेने वालो से मुँह बिचकाना, भूखो मर जाना पर अपना पराया धन लगा के छोटा मोटा धंधा तथा दस-पाँच की नौकरी न करना, लड़कियों को जवान बिठला रखना,

---

१. 'प्रेमघन-सर्वस्व' द्वितीय भाग (२०९७ वि०), पृष्ठ १८७ (विधवा विपत्ति वर्षा)।

२. व्रजरत्नदास : 'भारतेन्दु मण्डल' (प्रथम संस्करण), पृष्ठ १५०

उनका मनोवेदनाजनित शाप सहना पर वराह्वर वाले अथवा कुछ अठारह बीस बिशुद्ध वशंज के साथ विवाह न करना, दहेज की दुष्ट प्रथा के मारे नई पौध की उन्नति मिट्टी मे मिलाना, बव-बाधव होटलो मे खाया करें, विधर्मिनी स्त्रियो के मुँह मे मुँह मिलाया करे अथवा कोटि-कोटि कुकर्म कर-कर जेल मे जाया करें, कुछ चिन्ता नही, पर विद्या पढ़ने और गुण सीखने के लिए बिलायत हो आवै तो उन्हे जाति मे न मिलाना।...एक कल्पित शब्द के पीछे बुद्धि की आँखो मे पट्टी बांधना, अपने हाथो मे कुल्हाड़ी मारना, देख सुन के, सोच समझ के, जान बूझ के, अनर्थ करना और दुःख पर दुःख सहते रहना ही यदि भलमसी है तो ऐसी भलमंसी को दूर ही से नमस्कार है।"[1]

मिश्र जी के विचार बड़े नवीन तथा वैज्ञानिक थे। वे पुरानी बातों को परम्परा के रूप में ग्रहण करके उपयोगिता के रूप मे लेते थे। उन्होने सामाजिक मामलों मे—अपने युग के सभी साहित्यकारो से अधिक दिलचस्पी दिखाई है और सबसे अधिक समाजोपयोगी साहित्य लिखा है। इसी से डॉ० देवीशकर अवस्थी लिखते है—"इस सम्बन्ध मे यह उल्लेख कर देना अनावश्यक न होगा कि समसामयिक जीवन के प्रति जितनी सघन जागरूकता पं० प्रतापनारायण मिश्र मे प्राप्त होती है, उतनी भारतेन्दु मे भी नहीं मिलती।"[2] वस्तुतः मिश्र जी का सामाजिक दृष्टिकोण बड़ा व्यापक तथा स्तुत्य है।

भारतेन्दु-युगीन साहित्यकारों का राजनीतिक दृष्टिकोण

भारतेन्दु-युग राष्ट्रीय चेतना का युग था। इसलिए इस युग के अधिकांश साहित्यकार देशभक्त थे। उनमें राष्ट्रीय चेतना का प्रधान्य था। वे यदि राजभक्ति भी दिखलाते थे तो देशभक्ति से ही अनुप्राणित होकर। अंग्रेजों की शोषण नीति की वे खुलकर भर्त्सना करते थे। डॉ० हरदेव बाहरी लिखते है—"इन कवियो की आधुनिकता और स्वच्छन्द वृत्ति का प्रदर्शन, इनकी निर्भीकता, स्पष्टवादिता और व्यापक भावनाओ की अभिव्यजना से होता है। ये भारत की दरिद्रता और अंग्रेजो द्वारा किये गये आर्थिक शोषण पर बराबर दुःख प्रगट करते रहे है, जनता से संगठित होने को कहते रहे है और सरकार से शासन सम्बन्धी सुधारों की माँग भी जोर से करते रहे है।"[3] भारतेन्दु-युगीन साहित्यकारों को यह स्पष्ट ज्ञात था कि अंग्रेजों से भारत का हित न होगा—अंग्रेज तो केवल भारत के शोषण के लिए राज्य करते हैं। इसी-

---

१. 'ब्राह्मण' खण्ड ६, संख्या २, 'भलमंसी' : प्रतापनारायण मिश्र

२ डॉ० देवीशंकर अवस्थी : 'आलोचना और आलोचना' (१९६१ ई०) पृ० १३७ (पं० प्रतापनारायण मिश्र और उनका युग)

३. डॉ० हरदेव बाहरी : 'हिन्दी की काव्य-शैलियों का विकास (१९५७ ई०) पृ० १६३

लिए वे अंग्रेजों के काले कारनामें जनता को दिखाकर उनमें राष्ट्रीय चेतना उभाड़ने का प्रयत्न करते थे। इस युग के देशभक्त साहित्यकारो मे भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, बालकृष्ण भट्ट, बदरीनारयाण चौधरी 'प्रेमघन' और प्रतापनारायण मिश्र अग्रगण्य है। भारतेन्दु जी प्रारम्भ मे अंग्रेजो के प्रशंसक थे। पर जब उन्हें उनकी शोषण नीति का पता चला तब वे उनके विरोधी हो गये और उनकी भर्त्सना करनी प्रारंभ की। भारतेन्दु जी की निम्नलिखित मुकरियाँ देखिए—

"भीतर भीतर सब रस चूसे।
हँसि हँसि कै तन मन धन मूसैं॥
जाहिर बातन में अति तेज।
क्यों सखि सज्जन नहिं अंगरेज॥"[1]

इसी प्रकार पुलिस की निन्दा करते है—

"रूप दिखावत सरबस लूटै।
फंदे मै जो पड़ै न छूटै॥
कपट कटारी जिय मैं हूलिस।
क्यों सखि सज्जन नहिं सखि पूलिस॥"[2]

भट्ट जी भारतेन्दु की अपेक्षा अधिक उग्र थे। इन्होंने बहुत स्पष्ट और खुलकर अग्रेजों की आलोचना की है। एक उदाहरण देखिए—"इंगलैंड हिन्दुस्तान से पचास गुना अधिक धनी है वहाँ भी सेना का इतना खर्च नही होता जितना यहाँ होता है। क्यो नहीं देशी लोगों को सेना की अफसरी दी जाती? यहाँ के लोगो को यदि अफसरी दी जाती तो क्या विलायत से बड़ी-बड़ी तलब लेकर साहब लोगों के बुलाने की जरूरत होती? क्यों प्रति वर्ष गवर्नमेण्ट दार्जिलिंग, शिमला और नैनी-ताल गर्मियों में जाया करती है। हाईकोर्ट के जज यहाँ की गर्मी सह सकते है तो क्या लेफ्टीनेण्ट और गवर्नर जनरल नहीं सह सकते? कमिश्नरी के ओहदे पर जब तक रहे तब तक गर्मी जाड़ा सब कुछ सहते रहे। बोर्ड के मेम्बर होते ही मिजाज बदल जाता है। बिना नैनीलात की ठण्डी हवा का मजा उठाए साफ रहता ही नहीं। ऐसी-ऐसी अनीति देख हम भी यही निष्कर्ष निकालते हैं कि भूखों के हाथ की रोटी छीन, दुखियों के तन के वस्त्र उतार, लोगों के प्राण का रुधिर चूस सरकार रुपया उगाहेगी और उस रुपये से इंगलैंड की प्रबल जठराग्नि को आहुति देगी। उस रुपये से अंग्रेज सिविलियनो और सिपाहियों को शराब पिलायी जायगी।—और कृत्रिम उदार वचनों में फुसलावेगी कि तुम हमको प्राणों से भी अधिक प्यारे हो।

---

१. 'भारतेन्दु-ग्रंथावली' दूसरा भाग (२०१० वि०) पृष्ठ ८११
२. 'भारतेन्दु-ग्रन्थावली' दूसरा भाग (२०१० वि०) ,, ८११

तुम्हारे उपकार के लिए तुम्हारे ही सुख के लिए हम अपने सुखमय शीतल देश को छोड़कर यहां की भयानक लू सहते है ।—तुम क्यों हमसे रुठते हो, क्यो दुष्टो के बहकाने मे पड़ते हो ? हमारी सेवा करो, हमारे दास बनो, हमारा चरणामृत लो, हमारा नाम जपो यही तुम्हारा धर्म है, यही तुम्हारा सुख है ।" [1]

'प्रेमघन' जी राष्ट्रीय मामलो में अधिक मुखर नही हुए। फिर भी कही-कही उनकी उक्तियाँ बडी चुटीली है। टैक्सो का विरोध करते हुए वे लिखते है—

"रहै बिलायत जो हरखाय, भारत सों धन रोज कमाय।
चैन करै जो मजे उड़ाय, तिसका टिक्कस भी छूट जाय ।।
यह अचरज देखो तो आय, सोचत बुद्धि बिकल हो जाय ।।"[2]

इसी प्रकार बर्मा—युद्ध के विषय मे लिखी हुई इनकी पंक्तियाँ देखिए—

"अंग्रेजन के हित चित जाय, ब्रह्मा में बाजे अरराय।
बेचारे थीबा धरि धाय, कैद किये भारत में लाय।
करे हकीमी गोरा जाय, खर्चा भारत सीस बिसाय।।"[3]

मिश्र जी का राजनीतिक दृष्टिकोण भट्ट जी की ही तरह उग्र और स्पष्ट था। ये भी जमकर अंग्रेजो की भर्त्सना करते थे। इन्होंने अंग्रेजो द्वारा लगाये गये टैक्सों तथा मुसलमानो के साथ किये गये पक्षपातों आदि की तो कटु आलोचना की ही है साथ ही जनता को स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए भी आमंत्रित किया है। मिश्र जी ही स्वतंत्रता का नारा बुलन्द करने वाले सर्वप्रथम साहित्यकार थे। वे स्पष्ट कहते है—

"सर्वसु लिए जात अंग्रेज, हम केवल लेक्चर के तेज।
श्रम बिन बातैं का करती है, कहूँ टटकन गाजैं टरती है ।।
अपनो काम आपने ही हाथन भल होई।
परदेशिन परधर्मिन ते आशा नहिं कोई ।।
धन धरती जिन हरी सु करिहैं कौन भलाई।
जोगी काके मीत कलंदर केहि के भाई ।।
सब तजि गहौ स्वतंत्रता, नहिं चुप लातैं खाव।
राजा करै सो न्याव है, पांसा परै सो दाव ।।"[4]

मिश्र जी के राजनीतिक विचार भारतेन्दु से भी बढे-चढे थे। भारतेन्दु जी मिश्र जी की तरह उग्र और स्पष्ट नहीं हो सके। नरेशचन्द्र चतुर्वेदी लिखते हैं—

---

१. 'हिन्दी प्रदीप' मार्च १८८६ ई०, पृष्ठ ७-८ ।
२. डॉ० रामविलास शर्मा : 'भारतेन्दु-युग' (१९५६ ई०) पृष्ठ १५३
३. , —वही— ,, १६
४. प्रतापनारायण मिश्र : 'लोकोक्ति शतक' (१८९६ ई०) ,, २

"भारतेन्दु जी ने घटाटोप अन्धकार को नष्ट करनेमे कसर नही की किन्तु मौजी और भोले होने के कारण वे राजनैतिक दूरदर्शिता प्राप्त नहीं कर सके। यह कमी प्रतापनारायण मिश्र में नहीं थी। वे अग्रेजों की चालों का भंडाफोड़ बराबर करते रहे।"[1] मिश्र जी में जाति-ममता और देश-प्रेम कूट-कूट कर भरा था। इसीलिए उन्होंने जो कुछ लिखा, प्रायः इन्हीं भवनाओं से परिपूर्ण है। कहने की आवश्यकता नही कि मिश्र जी राजनीतिक मामलों में अपने युग के किसी भी साहित्यकार से पीछे नही रहे।

भारतेन्दु-युगीन साहित्यकारों का साहित्यिक दृष्टिकोण

भारतेन्दु-युगीन सम्पूर्ण साहित्य स्वान्तः सुखाय और परान्तः सुखाय-दो भागों मे बाँटा जा सकता है। स्वान्तः सुखाय साहित्य ईश्वर-भक्ति और शृंगार भावना की अभिव्यक्ति है और परान्तः सुखाय साहित्य हिन्दी, हिन्दू,हिन्दुस्तान के प्रति निष्ठा का प्रतीक है। स्वान्तः सुखाय साहित्य मे पुरानापन अधिक है और परान्तः सुखाय साहित्य में नवीनता की प्रमुखता है। परान्तः सुखाय साहित्य में ही उस युग की सच्ची सप्राणता दिखाई पड़ती है। स्वान्तः सुखाय लिखनें वालों मे बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन,' लाला श्री निवासदास, ठाकुर जगमोहनसिंह, अम्बिकाप्रसाद व्यास, गोविन्द नारायण मिश्र आदि तथा परान्तः सुखाय लिखने वालों में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, बाल-कृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र, राधाचरण गोस्वामी आदि अग्रगण्य है। वैसे स्वान्तः सुखाय लिखने वालो ने परान्तः सुखाय तथा परान्तः सुखाय लिखने वालों ने स्वान्तः सुखाय रचनाएँ भी की है पर उक्त नामोल्लेख प्रमुखता को दृष्टि में रखकर किया गया है। प्रतापनारायण जी मे सुधारक भावना भारतेन्दु, भट्ट और गोस्वामी जी से अधिक है। इसलिए मिश्र जी मे इनकी अपेक्षा पुरानापन कम और नवीनता अधिक है। मिश्र जी का प्रायः सम्पूर्ण साहित्य सुधार भावना से ही आप्लावित है।

भारतेन्दु-युगीन साहित्यकारों ने प्रमुख रूप से हिन्दी और राष्ट्रीयता के प्रचार को दृष्टि मे रखकर साहित्य रचना की है। इसलिए इनका साहित्य बड़ा सुगम तथा उपयोगी है। स्वान्तः सुखाय रचनाएँ भी हिन्दी के विकास और मानव-भावनाओं के शोधन मे बडी सहायक हुई है। हास्य और व्यंग्य का प्रयोग इस युग के साहित्यकारों ने विशेप रूप से किया है। सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक क्षेत्र की अनीतियो का भंडाफोड़ व्यंग्य के माध्यम से ही किया गया है। उस युग के व्यंग्य-लेखकों में प्रतापनारायण मिश्र सर्वश्रेष्ठ हैं। भारतेन्दु-युग के साहित्यकारों ने कविता, नाटक, निबन्ध आदि—साहित्य की सभी विधाओं पर अपनी लेखनी चलायी है और सभी में अच्छी सफलता प्राप्त की है।

---

१. नरेशचन्द्र चतुर्वेदी : 'हिन्दी साहित्य का विकास और कानपुर' (१९५७ ई०), पृष्ठ १०४

भारतेन्दु-युग की कविता

इस युग की कविता मे शृंगार—भावना, ईश्वर-भक्ति और देशभक्ति का प्राधान्य है। शृंगार भावना रीतिकालीन परम्परा का प्रतीक है। इस युग के प्राय सभी कवियों ने शृगारिक कविताएँ लिखी है। बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन', ठाकुर जगमोहनसिंह और अम्बिकादत्त व्यास की तो अधिकाश कविताएँ शृगारिक ही है। इन कवियो ने प्रमुख रूप से राधा और कृष्ण को ही अपनी शृंगारिक कविताओ का आलम्बन बनाया है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने भी पर्याप्त शृगारिक कविताएँ लिखी है। एक उदाहरण लीजिए—

"कहा कहौं प्यारे जू बियोग मै तिहारे चित,
बिरह-अनल लूक भरकि भरकि उठै।
कैसे कै बिताऊँ दिन जोबन के हा—हा काम,
कर लै कमान मोपै तरकि तरकि उठै॥
भूलै नाहिं हसनि तिहारी 'हरिचन्द' तैसी,
बाँकी चितवनि हिय फरकि फरकि उठै॥
बेधि बेधि उठत बिसौले नैन-बान मेरे,
हिय में कँटीली भौंह करकि करकि उठै॥"[1]

बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' के शृगारिक वर्णन बडे अनूठे है। इनके वर्णनों में स्वाभाविकता और कवित्व-शक्ति का सुन्दर सामजस्य है। एक छन्द देखिए—

"आनन इंदु अनन्द चुराय चकोर चितै ललचाय न टालो।
ठोढ़ी गुलाब प्रसून दुराय, मलिदंन लोचन सोच न सालो॥
है घन प्रेम सदा बरसो रस के वस, बानि अनीति संभालो।
रूप अनूप देहु दिखाय दया करि, हाय न घूंघट घालो॥"[2]

ठाकुर जगमोहनसिंह की कविताओ में अनुभूति की गहराई और सजीवता अक्षुण्ण मात्रा में है। उनका सम्पूर्ण काव्य स्वानुभूतिपरक है। देखिए, एक बाला अपने मायके में प्रीति का निर्वाह किस प्रकार करती है—

"सु मायके में नव जोबनी, बाला, सनेह सकै किहि भाँति दुराय।
कहूँ बगरावति चीर अधीर, समीर उड़्यो गहिकै लपटाय॥
कभू गृह काज के व्याज चढ़ी, उत ऊँचे अटा निरखै पिय आय।
विलास सहास प्रभाव भरी, जगमोहन प्रीति छकी दरसाय॥"[3]

---

१. 'भारतेन्दु-ग्रन्थावली' दूसरा भाग (२०१० वि०) पृष्ठ १४८
२. 'प्रेमघन-सर्वस्व' प्रथम भाग (१९९६ वि०) पृ० २०३
३. किशोरीलाल गुप्त : 'भारतेन्दु और अन्य सहयोगी कवि' (१९५६ ई०) पृ ४०४

अम्बिकादत्त व्यास की भी शृंगारिक कविताएँ बड़ी सुन्दर है। एक नायिका पिचकारी भरे, छिपती हुई प्रिय पर रंग डालने जा रही है। इसका चित्र वे बड़े अच्छे ढंग से खींचते हे—

"धरती धरती डरती पद को, घुंघुरू नहिं नेकु बजावती हो।
झुकी झाँकती भौंह चलावती हो, नकबेसर झूमि झुमावती हो॥
कवि अम्बिकादत्तहिं हेरि, चितै, छिपती सी हहा मुसकावती हो।
कर में पिचकारी लिए किनकों तुम रंग भिगावन आवती हो॥"[1]

प्रतापनारायण मिश्र भी शृंगारिक भावनाओं से अछूते नही रहे। इन्होंने भी कुछ शृंगारिक कविताएँ लिखी है जो बड़ी स्वाभाविक और सरस है। उदाहरणार्थ निम्नलिखित कवित्त देखिए—

"छनक लजौहैं सतरौहैं ह्वै छनक नैन,
छनक हसोहैं ह्वै अनन्द उमहत हैं।
हाँ हाँ नहीं रस भरे बैन परताप छन,
कहि आवै एक छन सुख ही रहत हैं॥
मन्द मुसकान भौंह नासिका की मुरि जानि,
देखिबे में स्वादित सुधाहूं सों महत है।
गोरस के देत ज्यों-ज्यों हठति पियारी त्यों-त्यों,
जो रस चहत लाल सो रस लहत हैं॥"[2]

ईश्वर-भक्ति विषयक कविताएँ लिखने वालों में भारतेन्दु-हरिश्चन्द्र और प्रतापनारायण मिश्र उल्लेखनीय है। भारतेन्दु जी की ईश्वर-भक्ति विषयक रचनाएँ सख्या में बहुत-अधिक है। इसमे एक सच्चे भक्त की पुकार और दैन्य-भावना समाहित है। भारतेन्दु के आराध्य राधा और कृष्ण है। इसी युगलमूर्ति का गुणानुवाद उन्होने गाया है। उनका दैन्य-भाव निम्नलिखित पद में देखिए—

"अहो हरि वह दिन बेगि दिखाओ।
दै अनुराग चरन-पंकज को सुत-पितु-मोह मिटाओ॥
और छोड़ाइ सबै जग-वैभव नित ब्रज-बास बसाओ।
जुगल-रूप-रस अमृत-माधुरी निस दिन नैन पिआओ॥
प्रेम-मत्त ह्वै डोलत चहुँ दिसि, तन की सुधि बिसराओ।
निस दिन मेरे जुगल नैन सों प्रेम-प्रवाह बहाओ॥

---

१. किशोरीलाल गुप्त : भारतेन्दु और अन्य सहयोगी कवि (१९५६ ई०), पृ० ४०४
२. 'ब्राह्मण' खण्ड ३, संख्या ५, 'स्फुट कविता' : प्रतापनारायण मिश्र

श्री वल्लभ-पद-कमल अमल मैं, मेरी भक्ति दृढ़ाओ।
'हरीचन्द' को राधा-माधव अपनो करि अपनाओ॥"[1]

मिश्र जी प्रेमोपासक थे। इनमे भी भारतेन्दु की-सी ही अनन्यता है। इनकी दैन्य-भावना भारतेन्दु से पूरी तरह प्रतिद्वन्द्विता करती दिखाई पडती है। उदाहरणार्थ एक कवित्त लीजिए—

"जबते निहारी तव मूरति पियारी, भई—
तबतें हमारी बुद्धि बैरिनि सबूर की।
देखे बिन हाय काहू विधि सों रहो न जाय,
मन अकुलाय सोचि बातै दूर-दूर की॥
अहो प्राणनाथ 'परताप' तव हाथ बिक्यो,
उचित न याके हाथ, गहनि गरूर की।
गरजी विचारो सो तो अरजी करोई चाहे,
मानिवो न मानिवो है मरजी हजूर की॥"[2]

देशभक्ति से सम्बन्धित कविताएँ लिखने वालों मे प्रतापनारायण मिश्र उस युग मे प्रमुख है वैसे भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमधन' और राधाचरण गोस्वामी ने भी कुछ देशभक्ति विषयक कविताएँ लिखी है पर वे मिश्र जी की तुलना मे बहुत-कम हैं। साथ ही उनमे मिश्र जी की कविताओं की सी तीव्रता एवं प्रभावोत्पादकता भी नही है। मिश्र जी सच्चे देशभक्त थे। उन्हे भारत की पराधीनता से अत्यधिक दुख था। वे जब भारतीयों को होली मनाते देखते थे तब तो और भी दुखी हो जाते थे। उनकी 'कैसी होरी' शीर्षक कविता की कुछ पक्तियाँ इस प्रसग मे द्रष्टव्य है—

"कैसी होरी मचाई, अहो प्रिय भारत भाई।
आलस अगिन बारि सब फूँक्यो विद्या विभव बडाई।
हाय आपने नाम रूप की निज कर धूरि उड़ाई॥
रहे मुख कारिख लाई।
आपस में गारी बकि-बकि कै कीन्हीं कौन भलाई।
महा मूढ़ता के मद छाके हित अनहित बिसराई॥
लाज सब धोय बहाई।
सरबस खोय परेहो परबस तहूँ न जात ढिठाई।
भावी वर्तमान दुख सिर पर ताकी शंक न राई॥
बुद्धि कैसी बौराई।[3]"

---

१. 'भारतेन्दु-ग्रन्थावली' दूसरा भाग, (२०१० वि०) पृष्ठ ५६।
२. 'कविवचनसुधा' वर्ष १४ में प्रकाशित।
३. सं० नारायणप्रसाद अरोड़ा : 'प्रताप लहरी' (१९४९ ई०) पृष्ठ १३७-३८।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने भी होली गीत लिखे है पर वे उनमें देश-प्रेम के भाव नही भर सके। उनके होली-गीत केवल शृंगारिक भावनाओं की अभिव्यक्ति मे ही सहायक हुए हैं। उदाहरण के लिए एक होली-गीत देखिए—

"रंग मति डारो मोपे सुनौ मोरी बात।
बड़ी जुगति हौं तोहिं बताऊँ क्यों इतने अकुलात।।
श्री वृषभानु-नंदिनी ललिता दोऊ या मग जात।
तुमहूँ जाइ माधुरी कुंज मैं पहिले हि क्यों न दुरात।।
वे उत औचक आइ परें तब कीजौ अपनी घात।
'हरीचन्द' क्यों इतहि खरे तुम बिना बात इठलात।।[1]"

मिश्र जी की कविताएँ उत्कट देश प्रेम से युक्त हैं। कहने की आवश्यकता नही कि मिश्र जी के देश प्रेम ने ही उनकी कविताओं को प्राणवान बना दिया है।

भारतेन्दु-युग के कवियों ने नागरी प्रचार पर भी अनेक कविताएँ लिखी है जो बड़ी उत्कृष्ट है। इन कविताओं में भी प्रकारान्तर से देश प्रेम की ही अभिव्यक्ति हुई है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा हिन्दी की उन्नति पर पढे गये व्याख्यान के कुछ दोहे देखिए—

"निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल।
बिन निज भाषा ज्ञान के मिटत न हिय को सूल।।
अंग्रेजी पढ़ि के जदपि सब गुन होत प्रवीन।
पै निज भाषा ज्ञान बिन रहत हीन के हीन।।
करहु बिलम्ब न भ्रात अब उठहु मिटावहु सूल।
निज भाषा उन्नति करहु प्रथम जो सबको मूल।।[2]"

मिश्र जी भी हिन्दी के बड़े हिमायती थे। इन्होंने कई कविताएँ हिन्दी प्रचार पर लिखी हैं। 'भारत रोदन' के कुछ दोहे द्रष्टव्य है—

"धर्म गयो धन बल गयो गइ विद्या अरु मान।
रही सही भाषा हती सोऊ चाहति जान।।
"सोचिहु अरबी अरब की फारसि फारसि केर।
अंग्रेजी इंगलयंड की यामें हेर न फेर।।
आर्य देश की नागरी सब गुणागरी आय।
यामें कुछ संदेह नहिं पै न सुनत कोउ हाय।।"[3]

---

१. 'भारतेन्दु-ग्रन्थावली' दूसरा भाग (२०१० वि०) पृष्ठ ३७०
२. —वही— „ ७३१-३५
३. ब्राह्मण' खण्ड १, संख्या ११, 'भारत रोदन' : प्रतापनारायण मिश्र

भारतेन्दु-युग की कविता की सच्ची सप्राणता देशभक्ति विषयक कविताओ मे ही दिखाई पडती है। इन कविताओं मे तत्कालीन देश-दशा का स्पष्ट चित्र खींचा गया हे। इससे उस युग के कवियों की जागरुकता का पता चलता है। डॉ० रामविलास शर्मा सामयिक विषयो पर लिखे साहित्य को ही उस युग का सजीव और टिकाऊ साहित्य मानते है। उनका कहना हे--"अगर हम भारतेन्दु-युग के समूचे साहित्य पर नजर डालें तो देखेगे कि उसका टिकाऊ हिस्सा वह नहीं है जो सामयिकता से दूर है, जो मध्यकालीन विषय और रूपो को ही साहित्य की पराकाष्ठा मानता है, बल्कि उसका सबसे टिकाऊ ओर सजीव हिस्सा वह है जो पुराने रूपो मे सामयिकता की नयी विषय वस्तु भर रहा था और नयी साम्राज्य विरोधी चेतना के अनुसार साहित्य के नये रूप भी गढ़ रहा था।"[1] इसके अनुसार मिश्र जी की कविताओ का महत्व सहज ही स्पष्ट हो जाता है और मिश्र जी अपने युग के अद्वितीय कवि सिद्ध हो जाते है।

भारतेन्दु-युग के नाटक

इस युग के नाटक मौलिक और अनूदित—दो रूपों में मिलते है। मौलिक नाटकों का सम्बन्ध प्रमुख रूप से तत्कालीन राष्ट्र और समाज से है। इनमे अग्रेजों की शोषण नीति, भारतीयो की अकर्मण्यता, गोवध, बाल्य-विवाह, वृद्ध-विवाह, समाज में फैले हुए मतमतान्तर, अन्धविश्वास, कुरीतियों आदि की भर्त्सना की गयी है। इन नाटको का उद्देश्य प्राय: सुधारात्मक रहा है। अनूदित नाटक अधिकाश पौराणिक-काल से सबधित है। ये संस्कृत नाटकों के अनुवाद हैं। इनमे अस्वाभाविकता और पुरानापन अधिक है। कुछ अनूदित नाटक बगला और अंग्रेजी नाटकों के अनुवाद रूप में भी प्रस्तुत किये गये है जो अपना पृथक् अस्तित्व रखते हैं।

भारतेन्दु-युग के नाटककारों मे भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, बालकृष्ण भट्ट, अम्बिकादत्त व्यास, श्रीनिवासदास, राधाचरण गोस्वामी, बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' और प्रतापनारायण मिश्र प्रमुख है। इन नाटककारो ने मौलिक और अनूदित—दोनो प्रकार के नाटक लिखे है। इससे इनमें नवीनता और प्राचीनता का समुचित सयोग दिखाई पड़ता है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अपने युग मे सबसे अधिक नाटक लिखे। इनके कुल १७ नाटक प्राप्त हैं जिनके नाम इस प्रकार है—विद्यासुदर, रत्नावली, पाखड विडंबन, वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति, धनजय विजय, मुद्राराक्षस, सत्य हरिश्चन्द्र, प्रेमजोगिनी, विषस्य विषमौषधम्, कर्पूरमंजरी, चन्द्रावली, भारतदुर्दशा, भारत जननी, नीलदेवी, दुर्लभ बन्धु, अंधेर नगरी और सतीप्रताप। इन नाटको मे सरसता और सरलता पूरी मात्रा मे है। दर्शको का मनोरंजन करने में ये नाटक पूर्ण

---

१. डॉ० रामविलास शर्मा : 'भारतेन्दु-युग' (१९५६) ई० पृष्ठ १७४

समर्थ है। अभिनेय तत्व की भी भारतेन्दु के नाटको मे कमी नही है। भारतेन्दु प्रगतिशील नाटककार थे इसलिए इनके नाटकों मे समाजहित और राष्ट्रप्रेम के भाव उत्कर्ष पर पहुँचे दिखाई पड़ते है। भारत-दुर्दशा, नीलदेवी आदि उनके सफल सामाजिक तथा राष्ट्रीय नाटक है। भारत-दुर्दशा मे भारत का अतीत गौरव दिखाते हुए तत्कालीन पतित समाज का सजीव चित्र खीचा गया है। यद्यपि कही-कही राजभक्ति का स्वर भी सुनाई पड़ता है फिर भी ये नाटक भारतीयो को स्फूर्ति और शक्ति देने में पूर्ण सफल है। भारतभाग्य के कथन की कुछ पंक्तियाँ देखिए—

"हा। भारतवर्ष को ऐसी मोहनिद्रा ने घेरा है कि अब इसके उठने की आशा नही। सच है, जो जान-बूझकर सोता है, उसे कौन जगा सकेगा? हा दैव। तेरे विचित्र चरित्र है, जो कल राज करता था वह आज जूते में टाँका उधार लगवाता है। कल जो हाथी पर सवार फिरते थे आज नंगे पाँव बन-बन की धूल उड़ाते फिरते है। कल जिनके घर लडके-लड़कियो के कोलाहल से कान नहीं दिया जाता था आज उनका नाम लेवा और पानी देवा कोई नहीं बचा, और कल जो घर अन्न धन पूत लक्ष्मी हर तरह से भरे पूरे थे आज उन घरों मे तू ने दिया बालने वाला भी नही छोडा। हा। जिस भारतवर्ष का सिर व्यास, बाल्मीकि, कालिदास, पाणिनि, शाक्यसिंह, बाणभट्ट प्रभृति कवियों के नाममात्र से अब भी सारे संसार से ऊँचा है, उस भारत की यह दुर्दशा। जिस भारतवर्ष के राजा चन्द्रगुप्त और अशोक का शासन रूम-रूस तक माना जाता था, उस भारत की यह दुर्दशा। जिस भारत मे राम, युधिष्ठिर, नल, हरिश्चन्द्र, रंतिदेव, शिवि इत्यादि पवित्र चरित्र के लोग हो गये है उसकी यह दशा।"[1]

भारतेन्दु का नाटकीय दृष्टिकोण बड़ा व्यापक था। इन्ही के नाटकीय आदर्शों को उस युग के प्रायः सभी नाटककारों ने अपनाया है।

बालकृष्ण भट्ट के नाटकों में पुरानापन अधिक है। इनके अधिकांश नाटक पौराणिक है। नलदमयन्ती या दमयन्ती स्वयवर, वेणुसंहार या पृथुचरित्र तथा वृहन्नला इनके पौराणिक नाटकों मे प्रसिद्ध है। इन नाटको का मूल उद्देश्य अतीत-भारत का चित्र उपस्थित करना रहा है। मौलिक नाटको मे आचार विडम्बन, पतित पंचम और नई रोशनी का विष उल्लेखनीय है। इनमे समाज में फैले हुए आडम्बरों, बाल्य विवाह, अंग्रेजी फैशन आदि के दुष्परिणाम दिखाये गये है। 'नई रोशनी का विष' नाटक मे पाश्चात्य सभ्यता के अवगुण और परिणाम दिखाकर उनसे सम्बन्धित पात्रों से पश्चात्ताप भी कराया गया है। उदाहरणार्थ भानुदत्त का निम्नलिखित कथन देखिए—

---

१. 'भारतेन्दु-ग्रन्थावली' पहला भाग (२००७ वि०) पृष्ठ ४९५

"दो एक भूल पिता जी मुझसे बन पडी,जिनकी वजह से मैंने बहुत-बहुत सी तकलीफ उठाया। अब उन सब कामो को आपके सामने कहकर कांटो मे अपने को नही घसीटा चाहता। इससे प्रार्थना करता हूँ कि उनको अपने मुँह से कहने की शरम से मुझे बचाए रखिए और यद्यपि 'नई रोशनी के विष' का स्वाद मुझसे अधिक किसी ने न चक्खा होगा। पर हम यह भी कह सकते है कि मुझसे अधिक उसके लिए किसी ने ऐसा पश्चात्ताप भी न किया होगा।"[1]

इस प्रकार से पश्चात्ताप कराकर, दर्शकों मे नई रोशनी के प्रति घृणा उत्पन्न करने का प्रयत्न किया गया है।

अम्बिकादत्त व्यास ने ललिता नाटिका, भारत सौभाग्य, गोसंकट, कलियुग और घी, वेणी सहार आदि नाटक लिखे है। इनके नाटको में राजभक्ति का स्वर विशेष तीव्र है। 'भारत सौभाग्य' नाटक मे महारानी विक्टोरिया के राज्य की खूब बढ़ा-चढ़ाकर प्रशंसा की गयी है। डॉ० रामविलास शर्मा के शब्दो मे—'जहाँ 'भारत-दुर्दशा' में भारतेन्दु ने देश पर दुख प्रकट किया था, वहाँ कुछ ऐसे आशावादी लोग भी थे जिन्हें अंग्रेजी शासन मे रामराज्य मिल गया था और चारो ओर सुख ही सुख दिखाई देता था। अम्बिकादत्त व्यास का 'भारत-सौभाग्य' नाटक इसी प्रकार का है। सौभाग्य से ऐसे नाटक और नाटककार अधिक नही थे।'[2] श्री निवासदास ने तप्तासंवरण, प्रहलाद चरित्र, रणधीर प्रेममोहिनी आदि नाटक लिखे है। इनके नाटकों मे भी भट्ट जी का—सा पुरानापन है। ये अपने नाटको मे पुराने कवियों के कवित्त तक रखने मे नही हिचकते तथा अभिनेयता की उपयुक्तता का भी ध्यान इन्हे नही रहता। राधाचरण गोस्वामी भारतेन्दु-युग के अच्छे नाटककारों मे है। इनके 'बूढ़े मुँह मुहासे,' और 'तन मन धन श्री गुसाईं जी के अर्पण' प्रहसन विशेष सफल है। इनमें तत्कालीन समाज का सजीव चित्र खीचा गया है। साथ ही इनमें प्रयुक्त व्यंग्य भी बड़े मार्मिक तथा प्रभावोत्पादक है। बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने भारत-सौभाग्य, प्रयाग रामागमन, वारागना रहस्य और वृद्ध-विलाप नाटक लिखे हैं। इनके नाटकों मे भी समाज का चित्र उत्कृष्ट है। लेकिन अभिनयेता की दृष्टि से इनके नाटक सफल नहीं कहे जा सकते।

प्रतापनारायण मिश्र ने मौलिक नाटक अधिक लिखे है। अनूदित नाटक तो उनका केवल एक 'संगीत शाकुन्तल' ही है और यह भी अनुवाद न होकर, महाकवि कालिदास कृत 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' का छायानुवाद है। मिश्र जी ने अपने मौलिक नाटकों में समाज के यथार्थ चित्र खीचे है। इनके 'कलिकौतुक रूपक' और 'भारत-

---

१. 'हिन्दी प्रदीप अगस्त' १८८८ ई०, पृष्ठ १४
२. डॉ० रामविलास शर्मा : 'भारतेन्दु-युग' (१९५६ ई०), पृष्ठ ६७

दुर्दशा रूपक' उस युग के सर्वश्रेष्ठ सामाजिक एवं राष्ट्रीय नाटक है। 'भारत-दुर्दशा रूपक' भारतेन्दु कृत 'भारत-दुर्दशा' के अनुकरण पर लिखा गया है। लेकिन इसमें भारतेन्दु की 'भारत-दुर्दशा' से राष्ट्रीय भाव अधिक उभरे हुए तथा स्पष्ट है। इसमें राजभक्ति न होकर शुद्ध देशभक्ति है। उदाहरणार्थ एडीटर का निम्नलिखित कथन देखिए—

"जहाँ निरुद वेद पुरान ध्वनि को घोष नभ पहुँचत रह्यो।
तहँ निलज गीत असार गाये जात सुन धधकत हियो॥
जहँ नारि नर निज धर्म कर्म अनेक व्रत चित धारते।
तहँ आज लम्पट दुष्ट बाढ़े झकत महितिम मारते॥
जहँ शिव, दधीचि, बली बली, क्षितिनाथ लीला कर गये।
तहँ दुष्ट नादिरशाह अरु अवरंग अति पापी भये॥
अब सबहि निज-निज धर्म छोड़ स्वतंत्र मारग में चले।
तेहि पाप बारम्बार होत अकाल भारत वलमले॥"[1]

मिश्र जी के नाटकों में भारतेन्दु और भट्ट जी के नाटकों की अपेक्षा यथार्थ का अनुरोध और अभिनेयता अधिक है तथा चरित्र-चित्रण भी उत्कृष्ट बन पड़े है। वैसे संख्या और विषय-विस्तार में मिश्र जी के नाटक भारतेन्दु और भट्ट के नाटकों से पीछे हैं। मिश्र जी ने अपने नाटकों में भारतेन्दु के नाटकादर्शों को विशेष रूप से अपनाया है। नरेशचन्द्र चतुर्वेदी लिखते है—"मिश्र जी के आदर्श भारतेन्दु थे और उन्हीं का प्रभाव इनके नाटकों में भी देखा जाता है परन्तु पात्र एवं उनके वर्णन का स्वरूप भारतेन्दु से बढ़कर हुआ है।"[2] अम्बिकादत्त व्यास, श्री निवासदास, राधा-चरण गोस्वामी और प्रेमघन ने भी यद्यपि उत्कृष्ट नाटक लिखे है पर इनके नाटक भी अभिनेयता और राष्ट्रीयता मे मिश्र जी के नाटकों की बराबरी नही कर पाते। मिश्र जी के नाटक संख्या मे कम होते हुए भी बड़े महत्व के है। भारतेन्दु के बाद नाटकीय तत्वों का समुचित विकास मिश्र जी के नाटको मे ही दिखाई पड़ता है। मिश्र जी भारतेन्दु-युग के अप्रतिम नाटककार है।

भारतेन्दु-युग के निबन्ध

कविता और नाटको की ही भांति भारतेन्दु-युग के निबन्धो में भी युग की संक्रान्ति समायी हुई है। अधिकाश निबन्ध सामाजिक और राष्ट्रीय विषयों पर ही

---

१. प्रतापनारायण मिश्र : "भारत-दुर्दशा रूपक" (१९०२ ई०) तीसरा अंक पहिला दृश्य

२. नरेशचन्द्र चतुर्वेदी : "हिन्दी साहित्य का विकास और कानपुर" (१९५७ ई०) पृष्ठ २८० ।

लिखे गये है। जो थोड़े-बहुत साहित्यिक विषयों से सम्बन्धित है उनमे भी कहीं-कही देशभक्ति की छाप लगी दिखाई देती है। डॉ० रामविलास शर्मा लिखते है—"उस युग के निबन्धों को एक साथ पढ़ने से एक *अत्यन्त उदार और स्वाधीन चेतना की* छाप पाठक के हृदय पर रह जाती है। निबन्ध को तब के लेखकों ने एक ऐसा रोचक और उपयोगी माध्यम बनाया था, जिसके द्वारा वह देश में एक नवीन मानव धर्म *का प्रचार कर सकते थे। मुल्ला, पंडित, वैदिक कर्मकाण्ड, तीर्थ, व्रत, पूजा, सभी* पर इन लेखकों ने व्यंग्य किया है। *यह* उदार-चेतना किसी एक लेखक की अपनी नहीं है, वह बड़े छोटे सभी लेखको मे पाई जाती है। युग-भावना के अत्यन्त शक्तिशाली होने का सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द जैसे व्यक्ति भी उसके प्रभाव से बचे न रह सके।"[1] लोकभावना से अनुप्राणित होने के कारण उस युग के निबन्ध बड़े सरल तथा प्रभावोत्पादक है। भारतेन्दु युग के निबन्धकारो ने अपनी बात को सरस और प्रभावपूर्ण बनाने के लिए व्यंग्यो का प्रयोग बहुतायत से किया है। वे समाज या राष्ट्र से सम्बन्धित कटु-से-कटु बात व्यंग्य के माध्यम से सहज ही कह जाते है। उस युग के निबन्धो मे निबन्धकारो के अपने निजी दृष्टिकोण प्रकाशित हुए है। प्रत्येक विषय पर निबन्धकार अपनी स्वय की अनुभूत बातें कहते चलते है। इसमे भारतेन्दुयुगीन निबन्धों मे लेखक का व्यक्तित्व प्रधान हो गया है। डॉ० भगीरथ मिश्र के शब्दों मे—"भारतेन्दु-युगीन निबन्धकारो मे निबन्ध की असली आत्मा विद्यमान मिलती है। अधिकाश निबन्ध आत्मानुभव की अभिव्यक्ति के रूप मे है। उसमे वस्तु या वर्ण्य विषय के प्रति लेखक *का अपना निजी दृष्टिकोण अभिव्यक्त हुआ है। इस विशेषता के कारण हम देखते* हैं कि निबन्धकार का व्यक्तित्व निबन्धों के भीतर झाँकता हुआ दिखलाई देता है।"[2]

भारतेन्दु-युग के निबन्धकारों मे भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र, बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन,' राधाचरण गोस्वामी, गोविन्दनारायण मिश्र, अम्बिकादत्त व्यास आदि के नाम लिए जाते हैं। पर वास्तविक निबन्ध रचना का स्वरूप बालकृष्ण भट्ट और प्रतापनारायण मिश्र की रचनाओ मे ही मिलता है (इसका सम्यक् विवेचन निबन्ध के अध्याय मे हो चुका है) भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, राधाचरण गोस्वामी और अम्बिकादत्त व्यास के निबन्ध, निबन्ध न होकर लेख है। इनमें निबन्ध के तत्व बहुत-कम मिलते है। इनके निबन्धो (लेखों) में विषय का

१. डॉ० रामविलास शर्मा : "भारतेन्दु-युग" (१९५६ ई०), पृष्ठ ९०

२. रामबहोरी शुक्ल तथा डॉ० भगीरथ मिश्र : "हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास" (१९५६ ई०) पृ० २५५

प्रतिपादन बडे सामान्य ढग से किया गया है। उनमे गठन और क्रम-बद्धता की बड़ी कमी है तथा शैली भी साहित्यिकता से दूर है। बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' और गोविन्दनारायण मिश्र के निबन्ध कुछ अच्छे है पर इनकी भाषा-शैली बड़ी गढी हुई चमत्कारपूर्ण है। इससे इनके निबन्धो में स्वाभाविकता नहीं रह जाती। 'प्रेमघन' के 'त्रिवेणी तरंग' निबन्ध की कुछ पंक्तियाँ देखिए—

"कही स्वामी के दुःख से दुःखी हो, अपनी तीक्षणता पर श्री लक्ष्मण जी का चेतनावस्था प्राप्त करना निर्भर जान और भी वेगवान बन, मार्ग के कारणोंपस्थित विलम्बो से और भी व्यग्रता से शीघ्रता धर, हिमालय पहुंच मृतसंजीवनी को न पहिचान धवलागिरि को सिर पर धारण कर, रात्रि भर के परिश्रम की सफलता से प्रसन्न हो, थके महाबीर मानो अकबर-दुर्ग रूपी लंका गढ की त्रिवेणी परिखा में, प्रातःकाल फिर भी अपने घोर गर्जन से राक्षसों को डरपाने को गहरी नीद मे सो रहे है, और अपने बोझ से कई हाथ पृथ्वी में धँस गये से जान पडते है। इनके दर्शन करने को नीचे उतरते, भक्त लोग. खाद्य सामग्रियों को चढ़ाते मानों प्रातःकाल उनके जलपान के अर्थ इसे प्रस्तुत करते।"[१]

गोविन्दनारायण मिश्र तो और भी आलंकारिकता के पीछे पड़ जाते हैं। इनके निबन्धों को समझने के लिए बडी दिमागी कसरत करनी पड़ती है। उदाहरणार्थ निम्नलिखित पक्तियाँ देखिए—

"सरद् पूनौ के समुदित पूरनचन्द की छिटकी जुन्हाई सकल मन भाई के भी मुँह मसि मल, पूजनीय अलौकिक पदनखचंद्रिका की चमक के आगे तेजहीन, मलीन और कलंकित कर दरसाती, लजाती, सरस-सुधा-धौली अलौकिक सुप्रभा फैलाती, अशेष मोह-जड़ता-प्रगाढ-तम-तोम सटकाती, मुकाती, निज भक्तजन-मनवांछित वरामय भुक्ति-मुक्ति सुचारू चारों मुक्त हाथों से मुक्ती लुटाती मुक्ताहारी नीरक्षीर-विचार-सुचतुर-कवि-कोविद-राज-राहिय-सिंहासन-निवासिनी मंदहासिनी, त्रिलोक-प्रकाशिनी सरस्वती माता के अति दुलारे, प्राणों से प्यारे पुत्रों की अनुपम अनोखी अतुल बलवाली परम प्रभावशाली सुजन-मन-मोहिनी नवरस-भरी सरससुखद विचित्र वचन-रचना का नाम ही साहित्य है।"[२]

बालकृष्ण भट्ट भारतेन्दु-युग के श्रेष्ठ निबन्धकार है। इन्होंने अपने युग मे सबसे अधिक निबन्ध लिखे है। इनके अधिकाश निबन्ध विचारात्मक है। इनके से विचारात्मक निबन्ध उस युग में कोई नही लिख सका। इन्होने संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग अपने

१. 'प्रेमघन-सर्वस्व' द्वितीय भाग (२००७ वि०), पृष्ठ ३९।

२. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' (२००६ वि०) पृष्ठ ५१८

निबन्धो मे अधिक किया है। इनके निबन्धों की प्रमुख शैली विवेचनात्मक है। एक उदाहरण लीजिए—

"अब यह सिद्ध हुआ कि सहानुभूति के लिए कुछ अनुभव अवश्य चाहिए। ज्यों-ज्यों अनुभव बढ़ता जायगा सहानुभूति या हमदर्दी भी बढती जायगी। लड़के किसी तरह की पीड़ा का अनुभव पहले अपने ऊपर करते है, फिर दूसरे अपने साथी पर उसी तरह की पीड़ा देख अपने ही समान उसे भी पीड़ित जान उनके साथ सहानुभूति करने लगते है। ज्यो-ज्यो उनका अनुभव बढ़ता जाता है दूसरो के सुख-दुःख के सब रग ढग को अपने सुख के सब रग ढग के साथ तुलना कर उनकी सहानुभूति भी दूसरो के साथ अधिक बढती जाती है। जैसे जिसने कभी किसी तरह का इम्तहान नहीं दिया वह दूसरों के पास या फेल होने के सुख दुःख का अनुभव भी नहीं कर सकता। केवल इतना अलबता कहेगा कि मेहनत कम किया नही तो जरूर पास हो जाता।"[1]

प्रतापनारायण मिश्र रजनात्मक निबन्ध लिखने वालो मे थे। इनके निबन्धों मे स्वाभाविकता एवं सरसता भट्ट जी के निबन्धो से अधिक है। मिश्र जी अपने निबन्धों मे पाठकों के बहुत समीप पहुँचे दिखाई देते है। उनके और पाठकों के बीच कोई दूरी नही है। वे पाठकों से बड़ी आत्मीयता से बात करते है। मिश्र जी के निबन्धों मे उनके व्यक्तित्व की छाप सर्वत्र दिखाई पडती है। उनके 'आप' निबन्ध की कुछ पंक्तियाँ देखिए—

"अब तो आप समझ गए न कि आप क्या है ? अब भी न समझो तो हम नही कह सकते कि आप समझदारी के कौन है ? हाँ, आप ही को उचित होगा कि दमड़ी छदाम की समझ किसी पंसारी के यहाँ से मोल ले आइए, फिर आप ही समझने लगिएगा कि 'आप को हैं ? कहाँ के हैं ? कौन के है ?' यदि यह भी न हो सके और लेख पढ़ के आपे से बाहर हो आइए तो हमारा क्या अपराध है ? हम केवल जी मे कह लेंगे 'शाब। आप न समझो तो आमा को के पड़ी छै।' ऐं। अब भी नही समझे ? वाह रे आप।"[2]

मिश्र जी ने अपने निबन्धो द्वारा जन-साहित्य का सृजन किया है। उस समय जनता की रुचि हिन्दी की ओर अधिक नही थी, इसलिए मिश्र जी ने सुगम साहित्य की रचना कर जनता की रुचि को हिन्दी की ओर आकृष्ट किया। मिश्र जी के निबन्ध युगानुरूप है, इनसे देश और मिश्र समाज का बड़ा हित हुआ। इसके साथ ही निबन्ध के वास्तविक गुण भी जी के निबन्धों मे पूरी तरह विद्यमान हैं। डॉ०

---

१. 'हिन्दी प्रदीप' अक्टूबर, १८९१ ई० पृष्ठ १६

१. 'ब्राह्मण' खण्ड ९: संख्या ८, 'आप' : प्रतापनारायण मिश्र

लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय लिखते हे—"विषय-प्रतिपादन-शैली और भाषा के लाक्षणिक प्रयोगों द्वारा वे अवर्णनीय रसात्मकता की सृष्टि किए बिना नही रहते । यह बात हमे भट्ट जी के निबन्धों मे नही मिलती।…वैसे भाषा, प्रयोग आदि की दृष्टि से मिश्र जी मे चाहे जो दोष आ गए हों, किन्तु निबन्धकार के वास्तविक रूप के दर्शन भट्ट की अपेक्षा हमे उन्ही में अधिक होते है।"[1]

भट्ट जी और मिश्र जी की अपनी अलग-अलग मान्यताएँ थीं। मिश्र जी जनसामान्य को छोड़ना नही चाहते थे, इसलिए उन्होंने ग्रामीण कहावतों और मुहावरों का प्रयोग अपने निबन्धों में स्वच्छन्दता से किया है। भट्ट जी परिष्कृत बुद्धि वालों के लिए अपने निबन्ध लिख रहे थे इसलिए उनमें नागरिकता अधिक है। भट्ट जी के निबन्ध परिष्कृत भाषा के अनुरोध में कुछ अस्वाभाविक भी हो गये है। नरेशचन्द्र चतुर्वेदी के शब्दो में—"यद्यपि भट्ट जी ने हिन्दी खड़ी बोली के गद्य को परिष्कृत करने में बहुत बड़ा भाग लिया है, किन्तु उनके गद्य पर संस्कृत का प्रभाव कम नही। उनका पाडित्य गद्य को कही कही भारी अवश्य बना देता है। हिन्दी गद्य का स्वतत्र और स्वाभाविक विकास शुद्ध रूप से पं० प्रतापनारायण मिश्र में ही देखने को मिलता है।[2] "मिश्र जी के निबन्धों मे परिहासात्मकता की प्रधानता है। इन्होने हास्य और व्यग्य की योजना अपने निबन्धो में विशेष रूप से की है। ये अपने युग के सर्वश्रेष्ठ रंजनात्मकता निबन्धकार हैं। इनके से स्वाभाविक और सच्चे निबन्ध उस युग में कोई दूसरा निबन्धकार नही लिख सका।

भारतेन्दु-युगीन साहित्यकारों की भाषा-शैली

भारतेन्दु-युग भाषा-शैली की दृष्टि से बड़ा धनी है। उस युग की भाषा-शैली की विविधता अपना विशिष्ट स्थान रखती है। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र लिखते है—"यह मानना पड़ेगा कि भारतेन्दु-युग में भाषा की रक्षा और साहित्य को संस्कृत के अनुरूप निर्मित करने के उत्साह तथा अभिव्यंजन की विविध प्रकार की शैलियो के विधान तथा मस्ती के जैसे दर्शन हुए हिन्दी मे आगे चलकर फिर कभी नहीं हुए। आज हिन्दी का प्रसार पहले की अपेक्षा अधिक है किन्तु उस प्रकार की बहुरगी छटा के दर्शन दुर्लभ हैं।"[3] भाषा की दृष्टि से भारतेन्दु-युगीन साहित्यकारों को तीन श्रेणियों मे बाँटा जा सकता है—पहले, जन सामान्य के अनुकूल सरल भाषा लिखने

---

१. डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय : 'आधुनिक हिन्दी साहित्य' (१९५४ ई०) पृष्ठ १३८-४०

२. नरेशचन्द्र चतुर्वेदी : 'हिन्दी साहित्य का विकास और कानपुर (१९५७ ई०) पृष्ठ १५९

३. आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र : 'वाङ्मय-विमर्श' (२०१४ वि०) पृष्ठ ३११

वाले, दूसरे, संस्कृतनिष्ठ भाषा लिखने वाले और तीसरे, काव्यमयी या चमत्कारपूर्ण भाषा लिखने वाले। प्रथम श्रेणी मे भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, प्रतापनारायण मिश्र, राधाचरण गोस्वामी, अम्बिकादत्त व्यास आदि आयेंगे। इनकी भाषा बडी स्वाभाविक, चलती हुई—हास्य और व्यंग्य से युक्त है। इनकी भाषा में लेखको ने सरसता और सरलता पर विशेष ध्यान दिया है। भारतेन्दु की भाषा का एक उदाहरण लीजिए—

"हे स्त्री देवी! संसार रूपी आकाश मे गुब्बारा (बैलून) हो, क्योकि बात-बात मे आकाश में बढा देती हो, पर जब धक्का दे देती हो तब समुद्र मे डूबना पडता है अथवा पर्वत के शिखरो पर हाड़ चूर्ण हो जाते है, जीवन के मार्ग मे तुम रेलगाड़ी हो, जिस समय रसना रूपी एजिन तेज करती हो एक घड़ी भर मे चौदहों भुवन दिखला देती हो, कार्य क्षेत्र में तुम इलेक्ट्रिक टेलीग्राफ हो, बात पड़ने पर एक निमेष में उसे देशीदेशान्तर में पहुँचा देती हो, तुम भवसागर मे जहाज हो, बस अधम को पार करो।"[1]

भारतेन्दु-युगीन अधिकांश साहित्य इसी भाषा मे लिखा गया है। उस युग की सच्ची सप्राणता इसी भाषा मे दिखाई देती है। जनसामान्य मे राष्ट्रीय चेतना फैलाने मे यह भाषा बडी सहायक हुई है। उस युग का जन-साहित्य इसी भाषा में लिखा गया है। इस भाषा का महत्व प्रतिपादित करते हुए। डॉ० रामविलास शर्मा लिखते हैं—"वह जनता की भाषा है जिसमे अत्याधिक ग्राम-सम्पर्क के चिन्ह भले हो, नागरिक बनाव सिंगार और टीपटाप का अभाव है। उस पर अवधी और ब्रजभाषा की गहरी छाप हे और जितनी ही गहरी यह छाप होगी, भाषा उतनी ही सबल होगी। जो लोग कहते हैं कि हिन्दी का जन्म एक शुद्धि और बहिष्कार की इस भावना से हुआ है कि उसमे से विदेशी शब्द निकाल दिये जाएँ और सस्कृत के शब्द ठूंस दिये जायँ, उनसे निवेदन है कि भारतेन्दु, प्रतापनारायण मिश्र, राधाचरण गोस्वामी आदि लेखकों ने ही हिन्दी को उसका आधुनिक रूप दिया है। एक बार उनकी रचनाओं को पढ़कर देखिए कि उनकी भाषा मे विदेशी शब्द अपनाये गये हैं या उनका बहिष्कार किया गया है।"[2]

द्वितीय श्रेणी में बालकृष्ण भट्ट, ठाकुर जगमोहन सिंह आदि उल्लेखनीय है। इनकी भाषा में संस्कृत के तत्सम् शब्द बहुतायात से प्रयुक्त हुए हैं। यह भाषा कुछ अस्वाभाविक और बनावटीपन लिए हुए है। इसमें तरलता और सरलता की बहुत कमी है उदाहरणार्थ बालकृष्ण भट्ट की कुछ पक्तियाँ देखिए—

"वेद जिनके हृदय की भाषा थी वे लोग मनु और याज्ञवल्क्य के समाज

१. 'भारतेन्दु-ग्रन्थावली' 'भारतेन्दु-युग' (२०१० वि०) पृष्ठ ८४६
२. डॉ० रामविलास शर्मा : तीसरा भाग (१९५६ ई०) पृष्ठ १६६

का आभ्यन्तरीन भेद, वर्ण, विवेक आदि के झगड़ों में पड़ समाज की उन्नति या अवनति की तरह-तरह की चिन्ता में नहीं पड़े थे, कणाद या कपिल के समान अपने अपने शास्त्र के मूलभूत बीज सूत्रों को आगे कर प्राकृतिक पदार्थों के तत्व की छान में दिन रात नही डूबे रहते थे, न कालिदास आदि कवि सम्प्रदायानुसार वे लोग कामिनी के विभ्रम और लावण्य लीला लहरो मे गोते मार-मार प्रमत्त हुए थे। प्रातःकाल उदितोन्मुख सूर्य की प्रतिमा देख उनके सीधे सादे जी ने बिना कुछ विशेष छानबीन किये इसे अज्ञात और अजेय शक्ति समझ और इसके द्वारा अनेक प्रकार का लाभ देख कानन स्थित विहंगकूजन समान कलकल रव से प्रकृति के प्रभात वन्दना का साम गाने लगे। जलभार पूर्ण श्यामला मेघमाला का नवीन सौन्दर्य देख पुलकित गात्र हो कृतज्ञता उपहार स्तोत्र का पाठ करने लगे।"[1]

तृतीय श्रेणी मे बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन,' गोविन्दनारायण मिश्र आदि प्रमुख है। इनकी भाषा में चमत्कार और पांडित्य-प्रदर्शन की प्रवृत्ति परिलक्षित होती है। अलकारिकता लाने के लिए विचारों और भावो को भी तोड़ा-मरोड़ा गया है। यह भाषा नितान्त अस्वाभाविक और व्यवहारिकता से दूर है। उदाहरण के लिए गोविन्दनारायण मिश्र की भाषा देखिए—

"परन्तु मंदमति अरसिको के अयोग्य, मलिन अथवा कुशाग्रबुद्धि चतुरों के स्वच्छ मलहीन मन को भी यथोचित शिक्षा से उपयुक्त बना लिए बिना उनपर कवि की परम रसीली उक्ति छवि-छबीली का अलकृत नखशिख लौ स्वच्छ सर्वांग-सुन्दर अनुरूप यथार्थ प्रतिबिम्ब कभी न पडेगा।......स्वच्छ दर्पण पर ही अनुरूप, यथार्थ, सुस्पष्ट प्रतिबिम्ब प्रतिफलित होता है। उससे साम्हना होते ही अपनी ही प्रतिबिम्बित प्रतिकृति मानों समता की स्पर्द्धा मे आ, उसी समय साम्हना करने सामने-सामने आ खडी होती है।"[2]

उपर्युक्त विवेचन के अनुसार प्रथम श्रेणी के लेखकों की भाषा ही अधिक प्रगतिशील और युगानुरूप है। प्रतापनारायण मिश्र प्रथम श्रेणी के लेखकों में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं इनकी भाषा सबसे अधिक चलती हुई, सजीव, स्वाभाविक और स्वच्छन्द है। सरसता के लिए कहावतों और मुहावरों तथा ग्रामीण शब्दों का प्रयोग उन्होने बहुतायत से किया है। यह भाषा अपनी तरलता और सरलता के लिए विशेष प्रसिद्ध है। यह पाठको को बहुत शीघ्र अपनी ओर आकृष्ट कर लेती है। एक उदाहरण लीजिए—

---

१. 'हिन्दी प्रदीप' जुलाई १८८१ ई० पृ० १६-१७
२. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' (२००६ वि०) पृष्ठ ५१७

"भला हमारी बातों मे तुम्हारे मुंह से हि हि तो निकली । इस तोबडा से लटके हुए मुँह के टाँको के समान दो तीन दांत तो निकले और नही तो मसखरेपन ही का सही, मजा तो आया । देखो, आँखें मिट्टी के तेल की रोशनी और कुल्हिया के के ऐनक की चमक से चौधिया न गई हो तो देखो । छत्तिसौ जात वरच अजात के जूठे गिलास की मदिरा तथा भच्छ अभच्छ की गन्ध से अविकल भाग न गयी हो तो समझो । हमारी बातें सुनने मे इतना फल पाया है तो मानने मे न जाने क्या प्राप्त हो जायगा । इसी से कहते है, भैया मान जाव राजा मान जाव, मुन्ना मान जावो । आज मन मार के बैठने का दिन नहीं है । पुरखो के प्राचीन सुख सम्पति को स्मरण करने का दिन है । इससे हँसो, बोलो, गाओ, बजाओ, त्योहार मनाओ और सबसे कहते फिरो—होली है ।"[1]

मिश्र जी की भाषा मे बनावटीपन बिलकुल नही है । उनकी भाषा बड़ी साफ सुथरी और रोचक है । त्रिपाठी बन्धु लिखते है—"हिन्दी गद्य की भाषा को कृत्रिमता के गड्ढे में से निकाल कर उसे प्रौढ, सुबोध, रोचक तथा सजीव बनाने का काम पं० प्रतापनारायण मिश्र ने किया । उन्होने उसमे रहस्य और व्यग्य के रासायनिक सयोग से एक परिमार्जित शैली का निर्माण किया ।"[2] मिश्र जी की भाषा शैली मे उनकी अपनी विशिष्टता है । वे स्वयं अपनी शैली के जन्मदाता है ।

मिश्र जी भारतेन्दु-युग के प्रमुख साहित्यकार है । इनकी सी विलक्षण प्रतिभा और स्वच्छन्दता उस युग के किसी साहित्यकार मे नही मिलती । इनके विचार, भाव और भाषा में एक अजीब निरालापन दिखाई देता है । वे बड़े निर्भीक, दूर-दर्शी और स्पष्टवादी साहित्यकार थे । लोक-कल्याण की भावना उनके रग-रग मे समायी हुई थी । उनका सम्पूर्ण साहित्य 'हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तान' के ममत्व से अनुप्राणित है । इन्होने अल्पावस्था में ही अपनी चतुर्मुखी प्रतिभा से सम्पूर्ण युग को आकृष्ट कर लिया था । उनकी छाप उस युग के प्रत्येक साहित्यकार पर दिखाई देती है । लक्ष्मीकात त्रिपाठी लिखते है—"पं० प्रतापनारायण मिश्र ने अपने युग का सफल प्रतिनिधित्व कर राष्ट्र-भाषा हिन्दी और राष्ट्र को उज्ज्वल भविष्य की ओर अग्रसर किया । मिश्र जी ने एक मिशनरी की भाँति हिन्दी और राष्ट्र की सेवा तन, मन और धन से की । उन्हें अपने मिशन पर पूर्ण विश्वास था और साथ ही साथ उसे पूर्ण करने की योग्यता और क्षमता तो थी ही । उनमे उच्च कोटि का आत्मबल और मनोयोग था जिनके सहारे वे किसी भी विषमता से डटकर मोर्चा लेने को

---

१. 'ब्राह्मण' खण्ड ९, संख्या ८, 'होली है' : प्रतापनारायण मिश्र ।

२. लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी एवं रमाकान्त त्रिपाठी : 'कानपुर के कवि' (१९४६ ई०) पृष्ठ ९० ।

सदा कमर कसे रहते थे।[१]" मिश्र जी ने साहित्य की सभी प्रमुख विधाओं पर अपनी लेखनी चलाई है और सभी मे अच्छी सफलता प्राप्त की है। समग्ररूप से देखने पर उस युग में भारतेन्दु के बाद मिश्र जी की टक्कर का कोई साहित्यकार नही दिखाई पड़ता। बालमुकुन्द गुप्त स्पष्ट लिखते है—"हिन्दी साहित्य के आकाश में हरिश्चन्द्र के उदय होने के थोडे ही दिन पश्चात् एक ऐसा चमकता हुआ तारा उदय हुआ था, जिसकी चमक-दमक को देखकर लोग उसे दूसरा चन्द्र कहने लगे थे। उस चन्द्र के अस्त हो जाने के पश्चात् इस तारे की ज्योति और भी बढ़ी। बड़े हर्ष के साथ कितनो ही के मुख से यह ध्वनि निकलने लगी कि यही उस चन्द्र की जगह लेगा। पर दुःख की बात है कि वैसा होने से पहले ही कुछ दिन बाद यह उज्ज्वल नक्षत्र भी अस्त हो गया। इसका नाम पं० प्रतापनारायण मिश्र था।[२]" मिश्र जी कुछ बातो मे भारतेन्दु से भी बढ़कर थे जिनका उल्लेख पीछे हो चुका है। मिश्र जी स्वय भी कहते है—"कानपुर मे उसे (ब्राह्मण सम्पादक को) दावा भी है कि हरिश्चन्द्र की बराबरी करना तो पाप है पर उसी कवियों भर के महराज के मंत्री हम भी हैं। 'रसा की हमसरी करना तो बरहमन है गुनाह पर उस शहे शुअरा के वजीर हम भी हैं।[३]" मिश्र जी ने बड़ी तन्मयता से साहित्य और समाज की सेवा की है। उनका ऐतिहासिक दृष्टि से तो महत्व है ही, आज की दृष्टि से भी उनके विचार, साहित्य और कर्मठता अनुकरणीय है। कहने की आवश्यकता नहीं कि मिश्र जी भारतेन्दु-युग में एक विशिष्ट स्थान के अधिकारी हैं।

परवर्ती साहित्यकारों पर मिश्र जी का प्रभाव

मिश्र जी ने सामयिक साहित्यकारों के साथ ही परवर्ती साहित्यकारों को भी अपने प्रदेय से प्रभावित किया। मिश्र जी की साहित्यिक मान्यताएँ इतनी विशिष्ट और सुलझी हुई थी कि अनेक साहित्यकारों ने तो उन्हे ज्यों-का-त्यों अपनाया। कुछ ने तो उनके विचारों तक का अनुकरण किया। उनकी भाषा-शैली का प्रभाव तो कई वर्तमान साहित्यकारों तक मे देखने को मिल जाता है। जो साहित्यकार जितना ही प्रतिभा सम्पन्न और दूरदर्शी होता है वह उतना ही अपने युग तथा परवर्ती साहित्यकारों को प्रभावित करता है। मिश्र जी की परवर्ती साहित्यकारों पर इतनी गहरी छाप है कि वस्तुतः उनकी प्रतिभा पर आश्चर्य होने लगता है। यहाँ पर कुछ प्रमुख साहित्यकारों पर पड़े, मिश्र जी के, प्रभाव को दिखलाने का प्रयत्न किया जायगा।

---

१. 'दैनिक प्रताप' (कानपुर) २८ अक्टूबर, १९५६ ई० 'पं० प्रतापनारायण मिश्र का व्यक्तित्व' : लक्ष्मीकांत त्रिपाठी।

२. 'बालमुकुन्द गुप्त-निबन्धावली' प्रथम भाग, (२००७ वि०) पृष्ठ १।

३. 'ब्राह्मण' खण्ड ४. संख्या ५. 'कानपुर कुछ कुनमुनाया है' : प्रतापनारायण मिश्र

बाबू राधाकृष्णदास पर प्रभाव

राधाकृष्णदास यद्यपि मिश्र जी के समय से ही साहित्य-क्षेत्र मे आ चुके थे परन्तु इन्होंने अधिकांश साहित्य मिश्र जी की मृत्यु के बाद लिखा है। इन पर मिश्र जी का प्रभाव पूरी तरह दिखाई पड़ता है। भाषा-शैली तो बहुत-कुछ मिलती-जुलती है ही, भावों में भी बहुत-कुछ साम्य है। इन्होंने मिश्र जी की हास्य और व्यंग्यात्मक शैली का विशेष रूप से अनुकरण किया है। मिश्र जी के 'होली है' निबन्ध के ही आधार पर इन्होंने भी अपना 'होली है' निबन्ध लिखा है जिसमे बड़ी समानता है। मिश्र जी के 'होली है' निबन्ध की कुछ पंक्तियाँ देखिए—"तुम्हारा सिर है। यहा दरिद्र की आग के मारे होला (अथवा होर—भुना हुआ हरा-चना) हो रहे है, इन्हे होली है, हें।—हम पुराने समय के बंगाली भी तो नही है कि तुम ऐसे मित्रो की जबरदस्ती से होरी (हरि) बोल के शात हो जाते। हम तो बीसवी शताब्दी के अभागे हिन्दुस्तानी है जिन्हे कृषि, वाणिज्य, शिल्प सेवादि किसी में भी कुछ तत नहीं है।—ऐसी दशा मे हमें होली सूझती है कि दिवाली।"[1]

इन्ही से बाबू राधाकृष्णदास की निम्नलिखित पंक्तियाँ मिलाइए—"अहा हा। आज होली है, नही नही भारत के भिक्षा की झोली है, नही नही क्षत्रियो की होली है; अजी वाह अच्छा कहा यह तो बुड्ढों के खेलने की गोली है, भारतवर्ष की दुर्दशा के छिपाने को लाल गुलाल की खोली है, नही भारतवर्ष के असभ्यता प्रदर्शन को यह बेहूद ठठोली है।"[2]

बालमुकुन्द गुप्त पर प्रभाव

गुप्त जी मिश्र जी से अत्यधिक प्रभावित थे। इन्हे कालाकांकर में 'हिन्दोस्थान' के सम्पादन काल मे मिश्र जी का सान्निध्य प्राप्त हुआ था। वहीं इन्होंने मिश्र जी से हिन्दी गद्य और कविता लिखना सीखा था। ये मिश्र जी को अपना गुरु मानते थे।[3] मिश्र जी को ही आदर्शों का इन्होने विधिवत् पालन किया है। इनके 'शिवशम्भु के चिट्ठे' में मिश्र जी की ही व्यंग्यात्मक शैली के दर्शन होते हैं। ये मिश्र जी की शैली के अनुकरण मे अत्यन्त सफल हैं। कविता में तो इन्होंने मिश्र जी के विचारो तक का अनुकरण किया है। मिश्र जी के 'लोकोक्ति शतक, की निम्नलिखित पंक्तियाँ देखिए—

"सर्बसु लिए जात अंगरेज, हम केवल लेक्चर के तेज।
श्रम बिन बाते का करती है, कहुँ टटकन गाजे टरती हैं॥"[4]

१, 'ब्राह्मण' खण्ड ९, संख्या ८, 'होली है' : प्रतापनारायण मिश्र।
२, 'राधाकृष्ण—ग्रन्थावली' पहला खण्ड (१९३० ई०) पृष्ठ ९३
३. डा० नत्थनसिंह : 'गद्यकार बाबू बालमुकुन्द गुप्त' (१९५९ ई०) पृष्ठ ५९
४. प्रताप नारायण मिश्र : 'लोकोक्ति शतक' (१८९६ ई०) पृष्ठ २

इनसे गुप्त जी की निम्नलिखित पंक्तियाँ मिलाइए और देखिए कितना सादृश्य है—

"झाड़ते लेकचर हैं लिखते लेख अब बतलाइये।
देश हित के वास्ते क्या क्या करें फरमाइये॥"[1]

अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' पर प्रभाव

'हरिऔध' जी पर भी मिश्र जी का अच्छा प्रभाव पड़ा है। 'हरिऔध' जी ने अपने 'प्रियप्रवास' में पवनदूत की कल्पना मिश्र जी के अनुकरण पर ही की है। मिश्र जी का निम्नलिखित कवित्त उनके पवनदूत का प्रेरक है—

"पीत पट अंग अंक जाल गुंज माल राजै,
चन्द्रिका मयूर चूड़ बंशी कर चहियो।
मकराकृत कुण्डल प्रताप शुभ कानन में,
देखि - देखि आभा अपन नैन लाभ लहियो॥
हा हा समीर बीर तो सों है निहोर एक,
नेक वा विश्वासी के पास ह्वै बहियो।
मोपै कृपा करि बहु भाँति तू पायन परि,
मेरी गोपाल जी सों जैगोपाल कहियो।"[2]

हरिऔध जी की संस्कृतनिष्ठ भाषा भी मिश्र जी की भाषा से बड़ा साम्य रखती है। मिश्र जी की संस्कृत-निष्ठ भाषा की कुछ पंक्तियाँ देखिए—

"तीव्र त्रैताप तापित परित्राणरत सर्वदा साधु संकष्टहर्त्ता।
सर्वथा सेव्य सम्पूर्ण संशय शमन भाव्य भगवान भुवनैकभर्त्ता॥
आप्त आश्चर्यमय अखिल ऐश्वर्यपति सत्य सौजन्यप्रिय सृष्टि स्रष्टा।
सर्वथा शक्तिसम्पन्न शुभकृद्दयाम्भोधिदेवाधि पति विश्व द्रष्टा॥[3]

इनके साथ ही हरिऔध जी की भी कुछ पंक्तियाँ लीजिये और देखिए आश्चर्यजनक समानता है—

"नाना - भाव - विभाव - हाव - कुशला आमोद आपूरिता।
लीला - लोल - कटाक्ष - पात - निपुणा भ्रूभंगिमा - पंडिता॥
वादित्रादि समोद - वादन - परा आभूषणाभूषिता।
राधा यों सुमुखी विशाल-नयना आनन्द-आन्दोलिता॥"[4]

---

१. 'बालमुकुन्द गुप्त—निबन्धावली' प्रथम भाग (२००७ वि०) पृष्ठ ६९२
२. सं० नारायणप्रसाद अरोड़ा : 'प्रताप लहरी' (१९४९ ई०) पृष्ठ १८४-८५ (कवित्त)
३. —वही— (प्रेम पुष्पावली)
४. अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' : प्रिय प्रवास (२०१३ वि०) पृ० ३७

आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी पर प्रभाव

द्विवेदी जी पर मिश्र जी का प्रभाव आल्हा के क्षेत्र मे दिखाई पड़ता है। मिश्र जी के ही अनुकरण पर इन्होंने अपना 'सरगौ नरक ठिकाना नाहिं' आल्हा लिखा है। मिश्र जी की निम्नलिखित पंक्तियाँ देखिए—

"देवी मैये आदि अविद्या जिनकी लीलै अपरम्पार।
हिन्द वासिनी बोतल धारिनि दुइ पव गदहा पर असवार॥
बड़े-बड़े पंडित बड़े-बड़े भूपति तुम्हरे बिना मोल के दास।
बालक बुढ़वा नर नारिन के हिरदे बैठी करो विलास॥
गाजी पीर नारसिंह बाबा देउता सब मिलि होउ सहाय।
जलम भूमि को जसु गावतु हौं भूले अच्छर देव बताय॥"[1]

उपर्युक्त पंक्तियों से द्विवेदी जी के आल्हे की कुछ पक्तियाँ मिलाइये—

"देवि सारदा तुमको सँवारौं मनियाँ देव महोबे वयार।
तुमहीं रक्षक हौ सब जग के बेड़ा खेइ लगायौ पार॥
आपन कथा सुनावौं ,तुमका सुनिये ज्वानौ कान लगाय।
जब सुधि आवै उन बातन का जियरा कलपि-कलपि रहिजाय॥
एवका एवकु पढ़ै हम लागेन परै लागि नित हम पै मारु।
छिन-छिन मैहाँ लाला डाँकै कलुवा आपन हाथ निकारु॥
छड़ी तड़ातड़ हम पै बरसै लागी नित कम से कम बीस।
अटई डंडा तऊ न छ्वाँड़ा भैया असि हम रहेन खबीस॥"[2]

शिवनाथ शर्मा पर प्रभाव

शर्मा जी ने भी मिश्र जी की शैली का बहुत-कुछ अनुकरण किया है। इन्होंने मिश्र जी की 'तृप्यन्ताम् कविता के आधार पर अपनी 'तृप्यन्ताम्' कविता लिखी है। मिश्र जी की 'तृप्यन्ताम्' कविता का एक छन्द देखिए—

"नारिन की तौ कौन कथा है जहां नरहिं सब बिधि सों खाम।
तुमहिं प्रसन्न करन की समरथि केहिं महँ देखि परै केहि ठाम॥
साधन आराधन नहिं जानै दुखित दुचित हम है बसु जाम।
हाँ बकरा को रक्त लेहु अरु रहहु देवि। नित तृप्यन्ताम्॥"[3]

---

१. 'ब्राह्मण' खण्ड २, संख्या ६ 'कानपुर माहात्म्य' : प्रतापनारायण मिश्र

२. रामबहोरी शुक्ल तथा डॉ० भागीरथ मिश्र : 'हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास' (१९५६ ई०), पृष्ठ १७५

३. 'ब्राह्मण' खण्ड ७, संख्या ३ 'तृप्यान्ताम्' : प्रतापनारायण मिश्र

शर्मा जी के भी 'तृप्यन्ताम्' की कुछ पंक्तियाँ देखिए—

"बने समालोचक के रूप, सुन्दरताहू गने कुरूप।
नकल करें उच्छिष्ट समान, निन्दा करिबे के हित जान॥
पुनि लिखिबे को कह्यो न काम, बस अब कोरी तृप्यान्ताम्॥"[1]

इन साहित्यकारो के अतिरिक्त सरदार पूर्णसिंह, प्रेमचन्द, विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक', प्रतापनारायण श्रीवास्तव आदि पर भी मिश्र जी की भाषा-शैली का प्रभाव पड़ा है। सरदार पूर्णसिंह ने मिश्र जी की व्यंग्यात्मक शैली को विशेष रूप से अपनाया है। इनके 'पवित्रता' आदि निबन्ध इसके प्रतीक है। प्रेमचन्द की भाषा मिश्र जी की भाषा से बहुत-कुछ मिलती है। ग्रामीण-शब्दों से जैसा मोह मिश्र जी को था, वैसा ही प्रेमचन्द मे भी दिखाई पड़ता है। 'कौशिक' जी की विजयानन्द दुबे के नाम से लिखी 'दुबे जी की चिट्ठियाँ' और प्रतापनारायण श्रीवास्तव का 'छब्बे जी का खरीता' भी मिश्र जी की परम्परा का ही द्योतक है। इसमें मिश्र जी की जैसी व्यग्यात्मक शैली के दर्शन होते है। इसके साथ ही भगवतीचरण वर्मा, पं० रमाशंकर अवस्थी (वर्तमान-सम्पादक), दयाशंकर दीक्षित 'देहाती जी' आदि पर भी मिश्र जी की शैली का बहुत-कुछ प्रभाव देखा जा सकता है।

इस प्रकार मिश्र जी के विचार और भाषा-शैली का परवर्ती साहित्यकारों पर महत्वपूर्ण प्रभाव पडा है। मिश्र जी का साहित्यिक प्रदेय बड़ा प्रभावशाली और प्रेरक है। उसमें मिश्र जी का मनमौजी, फक्कड़, स्वतन्त्र और निर्भीक व्यक्तित्व पूरी तरह समाया हुआ है। मिश्र जी देश-हितैषी साहित्यकार थे। इसलिए उनके साहित्य मे लोक-कल्याण और साहित्यिकता का सुन्दर सामंजस्य दिखाई पड़ता है। उनका साहित्य उनके युग का प्रतिबिम्ब है। मिश्र जी ने साहित्य और राष्ट्र की तन, मन, और धन से सेवा की है। उन्होंने अपनी कर्मठता और साहित्य-सेवा से जनता में राष्ट्रीयता का प्रचार किया तथा हिन्दी को गतिशीलता देकर उसे नयी दिशा की ओर मोड़ा। मिश्र जी द्वारा ही हिन्दी नये साँचे मे ढाली गयी है और उसे शक्ति प्राप्त हुई। मिश्र जी हास्य और व्यंग्य के अवतार थे। उनकी जिन्दादिली और मसखरेपन ने साहित्य को बड़ा सजीव और रोचक बना दिया है। मिश्र जी के साहित्य में उनकी शैली का विशेष महत्व है। उनकी शैली की सी तरलता और रोचकता हिन्दी के किसी भी साहित्यकार की शैली मे नहीं मिलती। मिश्र जी ऐतिहासिकता के साथ ही अपनी विशिष्ट और निराली शैली के लिए सदैव स्मरण किये जाएंगे। मिश्र जी का-सा प्राणवान साहित्य हिन्दी में मिलना दुर्लभ है।

---

१. शिवनाथ शर्मा : 'मिस्टर व्यास की कथा' (प्रथम संस्करण) पृष्ठ १४८

परिशिष्ट

परिशिष्ट १

मिश्र जी का अप्रकाशित साहित्य

मिश्र जी अर्थाभाव के कारण अपना सम्पूर्ण साहित्य पुस्तकाकार नही निकलवा सके थे। उनका अधिकाश साहित्य तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं में ही प्रकाशित होकर रह गया था। आगे चलकर कुछ साहित्यकारों ने (जिनका उल्लेख कृतियो के अध्याय में हो चुका है) पत्र-पत्रिकाओं से सग्रह कर उनका आंशिक साहित्य प्रकाशित कराया पर परिश्रम और शोध के अभाव मे सम्पूर्ण साहित्य प्रकाशित नही हो सका। यहाँ पर हम उन कविताओं, लेखो, निबन्धो और समालोचनात्मक टिप्पणियों की सूची दे रहे है जिनको अभी तक पुस्तकाकार रूप प्राप्त नही हुआ। यह साहित्य हमें शोध-काल में तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं में प्राप्त हुआ है।

अप्रकाशित कविताएँ

१—चाहे गाना समझो चाहे रोना (लावनी)	'ब्राह्मण'	खण्ड	२	संख्या	९-१०
२—कलयुग ही कलयुग छाय रह्यो	'ब्राह्मण'	,,	२	,,	११
३—सामयिक प्रार्थना	'ब्राह्मण'	,,	२	,,	९-१०-१२
४—प्रेम प्रमाद (इस अंक के केवल एक कजरी और पाँच पद प्रकाशित होने से रह गये)	'ब्राह्मण'	खण्ड	३	सख्या	११
५—प्रेम प्रमाद (दस पद)	'ब्राह्मण'	,,	३	,,	१२
६—मंगलाचरण	'ब्राह्मज'	,,	४	,,	१
७—स्फुट कविता (ग्यारह सवैया)	'ब्राह्मण'	,,	४	,,	७
८—हाय! हाय!! हाय!!! (अयोध्यानाथ की मृत्यु पर लिखा गया शोक गीत)	'ब्राह्मण'	खण्ड	८	सख्या	६
९—अनोखो तू ही तो हुरिहार (तीन पद)	'ब्राह्मण'	,,	८	,,	८
१०—वह छवि बिसरत नाहिं बिसारी	'ब्राह्मण'	,,	८	,,	८
११—विशेष प्रार्थना	'ब्राह्मण'	,,	८	,,	११
१२—वर्षारम्भे मंगलाचरण	'ब्राह्मण'	,,	९	,,	१

१३—स्फुट कविताएँ (पन्द्रह कविताएँ) 'कविवचन-सुधा' वर्ष १४

१४—समस्यापूर्तियाँ (पाँच समस्या पूर्तियाँ) 'रसिकवाटिका' १८९१ ई० (पहली क्यारी)

अप्रकाशित लेख एवं निबन्ध

१—असेसर	'ब्राह्मण' खण्ड १ संख्या २
२—स्यापा	—वही— ,, १ ,, २
३—ज्यूरिस डिक्शन बिल	—वही— ,, १ ,, २
४—ज्ञानचन्द्र और प्रेमचन्द्र	—वही— ,, १ ,, ५—६
५—शालिग्राम जी का कचहरी में जाना ठीक है कि नहीं	'ब्राह्मण' खण्ड १ संख्या ७
६—फक्कड़ और भंगड़	'ब्राह्मण' खण्ड १ संख्या ९
७—तीन दवावत निबल को पालक राजा रोग	'ब्राह्मण' खण्ड १ संख्या १०
८—न भूतो न भविष्यत	'ब्राह्मण' खण्ड १ संख्या १०
९—सूचना	—वही— ,, १ ,, १२
१०—भविष्यतवाणी	—वही— ,, २ ,, २
११—दूसरी पेशींगोई	—वही— ,, २ ,, २
१२—जरूर पढ़िये	—वही— ,, २ ,, ३
१३—सुनो भाई	—वही— ,, २ ,, ५
१४—श्री हरिश्चन्द्र चन्द्रिका	—वही— ,, २ ,, ८
१५—क्षमा कीजिए	—वही— ,, २ ,, ९—१०
१६—वियोग वार्ता	—वही— ,, २ ,, ९—१०
१७—'गपशप'	—वही— ,, २ ,, ९—१०
१८—भारत का सर्वोत्तम गुण	—वही— ,, २ ,, ११
१९—प्रयाग हिन्दू समाज का महोत्सव	—वही— ,, २ ,, ११
२०—प्रिय वियोग सम दुख जग नाही	—वही— ,, २ ,, ११
२१—प्रश्नोत्तर	—वही— ,, २ ,, ११
२२—विशेष सूचना	—वही— ,, २ ,, १२
२३—प्रश्नोत्तर	—वही— ,, ३ ,, १
२४—अति सर्वत्र वर्जयते	—वही— ,, ३ ,, २
२५—अखण्डनीय सिद्धान्त	'ब्राह्मण' खण्ड ३ संख्या ३—४, ५
२६—विविध (कलयुगी सत्य, टॉय-टॉय फिस, एक अकिल के पुतले चिट्ठी लिखते हैं, बुद्धिमानो विचार के कहना, सरकार से कोई पूछे, जरा अकिल दौड़ाओ, ढूंढ लाओ तो एक पैसा दें, कोई शुद्ध कर दे तो दो पैसा इनाम दें, मतलब की बातें, सेंत का लटका)	'ब्राह्मण' खण्ड ३ संख्या ३—४
२७—खुदा से शिकवा हमें किस कदर है क्या कहिए	'ब्राह्मण' खण्ड ३, संख्या ५
२८—तत्व के तत्व में अंगरेजी बाजों की भूल है	—वही— ,, ३ ,, ५

२९—मोहर्रम से खुदा बचाये	ब्राह्मण खण्ड	३	संख्या	७
३०—दंगल	—वही—	,,	३	,,	७
३१—सच्चे जी से धन्यवाद	—वही—	,,	३	,,	८
३२—भारत-दुर्दशा की दुर्दशा	—वही—	,,	३	,,	८
३३—हमारे यहा की रामलीला	—वही—	,,	३	,,	९-१०
३४—हाथी चले ही जाते है कुत्ते भौंका करते है	—वही—	,,	३	,,	९-१०
३५—खरी बात शहिदुल्ला कहें सबके जी से उतरे रहे	—वही—	,,	३	,,	९-१०
३६—भारतेन्दु का दालभात मे मूसलचन्द	—वही—	,,	३	,,	९-१०
३७—भ्रम है	—वही—	,,	३	,,	११
३८—धर्मोत्सव	—वही—	,,	३	,,	११
३९—धन्यवाद	—वही—	,,	४	,,	१
४०—आपबीती	—वही—	,,	४	,,	१
४१—जुबिली	—वही—	,,	४	,,	१
४२—चर्बी मिलायी	—वही—	,,	४	,,	१
४३—चुटकुला	—वही—	,,	४	,,	२
४४—कानपुर रत्नहानि	—वही—	,,	४	,,	३
४५—अंग्रेज बहादुर	—वही—	,,	४	,,	३
४६—रामलीला और मुहर्रम	—वही—	,,	४	,,	३-४
४७—कानपुर कुछ कुनमुनाया है	—वही—	,,	४	,,	५
४८—जरूर देखो	—वही—	,,	४	,,	६
४९—जातीय महासभा	—वही—	,,	४	,,	६
५०—नेशनल कांग्रेस मद्रास	'ब्राह्मण' खण्ड	४	संख्या	७
५१—सुनने लायक बात	—वही—	,,	४	,,	८-९
५२—नेशनल कांग्रेस	—वही—	,,	४	,,	१०
५३—हमारे यहां की कोई बात व्यर्थ नही है	—वही—	,,	४	,,	१०-११
		,,	५	,,	२-४
५४—हमारे दयालु	—वही—	,,	४	,,	१२
५५—हमारे अनुग्राहक	—वही—	,,	५	,,	४
५६—अपूर्व रहस्य	—वही—	,,	५	,,	५
५७—सुनिये तो	—वही—	,,	५	,,	७
५८—कांग्रेस कर्त्तव्य	—वही—	,,	५	,,	७
५९—बधाई है	—वही—	,,	५	,,	९
६०—हमारे कलक्टर साहब	—वही—	,,	५	,,	१०

६१—प्रश्नोत्तर	'ब्राह्मण' खण्ड ५ संख्या १०
७२—होम करते हाथ जलता है	—वही— ,, ५ ,, १२ तथा
	—वही— ,, ६ ,, २
६३—देखिए ! देखिए !! अवश्य देखिए !!!	—वही— ,, ६ ,, ५
६४—धन्यवाद	—वही— ,, ६ ,, ९
६५—एक कथा (प्रारम्भिक अंश)	—वही— ,, ६ ,, ११
६६—सूचना ! सूचना !! सूचना !!!	—वही— ,, ६ ,, १२
६७—और सुनिये	—वही— ,, ७ ,, १
६८—एक सलाह	—वही— ,, ७ ,, ३
६९—लेजिसलेटिव कौंसिल के मेम्बरों की नियुक्ति का प्रबन्ध	—वही— ,, ७ ,, ५
७०—हमारे उत्साह दाता	—वही— ,, ७ ,, ११
७१—क्या हम यह मान ले	—वही— ,, ८ ,, ४–५
७२—आसवर्न	—वही— ,, ८ ,, ७
७३—गपशप—	—वही— ,, ८ ,, ८
७४—असर इसको कहते हैं	—वही— ,, ८ ,, ८
७५—सच्चा विज्ञापन	—वही— ,, ८ ,, ८
७६—दूध की उत्पत्ति	—वही— ,, ८ ,, १०
७७—सिद्धान्त वाक्यावली	—वही— ,, ८ ,, १०
७८—गपशप	—वही— ,, ८ ,, ११
७९—'निर्णय शतक'	—वही— ,, ९ ,, १
८०—जरा मन लगा के पढ़िये	—वही— ,, ९ ,, ३
८१—रामायण रमण	—वही— ,, ९ ,, ६
८२—गपशप	—वही— ,, ९ ,, ८
८३—मंगल समाचार	—वही— ,, ९ ,, ९

अप्रकाशित समालोचनात्मक टिप्पणियाँ

मिश्र जी की १२ समालोचनात्मक टिप्पणियाँ 'प्रतापनारायण मिश्र' (स० नारायणप्रसाद अरोड़ा तथा लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी) नामक पुस्तक में संकलित हैं। उनके अतिरिक्त प्राप्त टिप्पणियों की सूची इस प्रकार है—

१—समालोचना (भाषा दीपिका की समालोचना)	'ब्राह्मण', खण्ड १, संख्या २
२—समालोचना (हितप्रबोध की समालोचना)	—वही— ,, १ ,, ७
३—समालोचना (नीत्योपदेश की समालोचना)	—वही— ,, १ ,, ८
४—समलोचना (चारुपाठ, शृंगार चन्द्रिका, और गुलस्ते बेनजीर की समालोचना)	—वही— ,, १ ,, ९

५—प्राप्ति स्वीकार (हिन्दोस्थान पत्र की समालोचना)—ब्राह्मण खण्ड १ सख्या १०

६—समालोचना (दिनकर प्रकाश की समालोचना) —वही— ,, २ ,, १

७—समालोचन (कान्यकुब्ज प्रकाश, तीन परम मनोहर ऐतिहासिक रूपक, स्त्रीशिक्षा की समालोचना) —वही— ,, २ ,, २

८—समालोचना (प्रेम तरंग, काश्मीर कीर्ति की समालोचना) —वही— ,, २ ,, ५

९—प्राप्ति स्वीकार (श्री भारतेन्दु शताब्दी की आलोचना) —वही— ,, ३ ,, ७

१०—आलोचना (संयोगिता स्वयंवर की आलोचना) —वही— ,, ३ ,, १२

११—समालोचना (दुर्गाशतक और सध्याविधि की समालोचना) —वही— ,, ४ ,, २

१२—समालोचना —वही— ,, ४ ,, ६

१३—समालोचना (सती नाटक, पद्मावती वीरनारी नाटक की समालोचना 'ब्राह्मण' खण्ड ४ संख्या ८

१४—समालोचना (गौरक्षार्थ दीपिका की समालोचना)—वही— ,, ५ ,, १२

१५—प्राप्ति स्वीकार —वही— ,, ६ ,, ७

१६—समालोचना (तन मन धन गुसाईं जी के अर्पण, भारत सौभाग्य, हास्य तरंग की समालोचना) —वही— ,, ६ ,, ८

१७—प्राप्ति स्वीकार (मनुस्मृति रत्नावली, निस्सहाय हिन्दू की समालोचना? —वही— ,, ६ ,, १०

१८—प्राप्ति स्वीकार (भाग्यवती की समालोचना) —वही— ,, ७ ,, ४

१९—प्राप्ति स्वीकार —वही— ,, ७ ,, ५

२०—प्राप्ति स्वीकार —वही— ,, ७ ,, ९

२१—प्राप्ति स्वीकार —वही— ,, ७ ,, ११

२२—प्राप्ति स्वीकार (चतुर्भुज मिश्र कृत 'आल्हा रामायण सुन्दर काण्ड की समालोचना) —वही— ,, ८ ,, ८

२३—प्राप्ति स्वीकार (नारीधर्म की समालोचना) —वही— ,, ८ ,, ११

२४—प्राप्ति स्वीकार (किस्सा आर्य नाटक की समालोचना) —वही— ,, ९ ,, १

२५—समालोचना —वही— ,, ९ ,, ९

परिशिष्ट २

सहायक ग्रन्थों की सूची

१—अंग्रेजी साहित्य का इतिहास, डॉ० एस० पी० खत्री, २००४ वि०
२—अभिज्ञानशाकुन्तलम्, कालिदास, १९५५ ई०
३—आधुनिक हिन्दी साहित्य, डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, १९५४ ई०
४—आधुनिक काव्यधारा, डॉ० केशरीनारायण शुक्ल, २००७ वि०
५—आधुनिक साहित्य, आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, २०१३ वि०
६—आधुनिक हिन्दी कवियों के काव्य सिद्धान्त, डॉ० सुरेश चन्द्र गुप्त, १९५४ ई०
७—आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका, डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय प्रथम संस्करण
८—आधुनिक हिन्दी साहित्य, अज्ञेय, प्रथम संस्करण
९—आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास, कृष्णशंकर शुक्ल, प्रथम संस्करण
१०—आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास, श्रीकृष्ण लाल, १९९३ वि०
११—आधान, शान्तिप्रिय द्विवेदी, १९५७ ई०
१२—आर्य्यकीर्ति (प्रथम खंड) अनु० प्रतापनारायण मिश्र, १९५६ वि०
१३—आर्य्यकीर्ति (द्वितीय खड) अनु० प्रतापनारायण मिश्र, १९०८ ई०
१४—आलोचना : इतिहास तथा सिद्धान्त, एस० पी० खत्री प्रथम संस्करण
१५—आलोचना और आलोचना, डॉ० देवीशंकर अवस्थी, १९६१ ई०
१६—इण्डियन नेशनल इवोलूशन, अम्बिकाचरण मजूमदार, १९१७ ई०
१७—कपालकुण्डलता, अनु० प्रतापनारायण मिश्र, द्वितीय संस्करण
१८—कलिकौतुक रूपक, प्रतापनारायण मिश्र, १८९० ई०
१९—कानपुर के प्रसिद्ध पुरुष, नारायण प्रसाद अरोड़ा, १९४७ ई०
२०—कानपुर के कवि, लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी एवं रमाकान्त त्रिपाठी, १९४६ ई०
२१—कानपुर का इतिहास, लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी तथा नारायण प्रसाद अरोड़ा, १९५० ई०
२२—कान्यकुब्ज वंशावली, नारायण प्रसाद मिश्र, १९५९ ई०
२३—काव्य के रूप, डॉ० गुलाबराय, १९५८ ई०
२४—खड़ीबोली का आन्दोलन, डॉ० शितिकंठ मिश्र, १९१३ वि०
२५—खड़ीबोली-काव्य मे अभिव्यंजना, डॉ० आशा गुप्त १९६१ ई०

२६—खडीबोली हिन्दी साहित्य का इतिहास? ब्रजरत्नदास, प्रथम संस्करण
२७—गद्यकार बाबू बालमुकुन्द गुप्त, डॉ० नत्थनसिंह, १९५९ ई०
२८—गोविन्द निबन्धावली, गोविन्दनारायण मिश्र,१९९७ वि०
२९—चतुर्थ हिन्दी साहित्य सम्मेलन, भागलपुरी, कार्य विवरण, दूसराभाग
३०—चरिताष्टक (प्रथम भाग) अनु० प्रतापनारायण मिश्र, १८९४
३१—तवारीखे जिला कानपुर, लाला दरगाहीलाल, १८४७ ई०
३२—तृप्यन्ताम्, प्रतापनारायण मिश्र, १९४१ ई०
३३—तेरहवा हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन कानपुर का कार्य विवरण, दूसरा भाग
३४—तेरहवां हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की स्वागत कारिणी समिति के सभापति पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी का वक्तव्य, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग १९२३ ई०
३५—दृष्टिपात, विष्णुदत्त अग्निहोत्री, १९५५ ई०
३६—दि डिस्कवरी आफ इण्डिया, जवाहरलाल नेहरु १९६० ई०
३७—दि इंग्लिश एसे एण्ड एसेइस्ट, हाऊवालकर
३८—नया साहित्य : नये प्रश्न, आचार्यनन्ददुलारे वाजपेयी, १९५९ ई०
३९—नाट्यशास्त्र, भरतमुनि, २००९ वि०
४०—नाटक, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, १८८३ ई०
४१—निबन्धकार भट्ट, गोपाल पुरोहित, २००६ वि०
४२—निबन्ध-नवनीत, अभ्युदय प्रेस, प्रयाग १९१९ ई०
४३—पत्र-सम्पादन-कला, नन्दकुमारदेवशर्मा, १९३९ ई०
४४—पत्रकार-कला, विष्णुदत्त शुक्ल, १९३७ ई०
४५—पत्र और पत्रकार, कमलापति शास्त्री तथा पुरुषोत्तमदास टडन, प्रथम सस्करण
४६—पंचामृत, अनु० प्रतापनारायण मिश्र, १८९१ ई०
४७—पंचाग १९५१ वि० सुन्दर दीक्षित
४८—प्रतापनारायण-ग्रन्थावली (प्रथम खण्ड) स० विजयशंकर मल्ल, २०१४ वि०
४९—प्रतापनारायण मिश्र, सं० नारायणप्रसाद अरोडा तथा लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी, १९४७ ई०
५०—प्रताप लहरी, सं० नारायणप्रसाद अरोड़ा तथा सत्यभक्त, १९४९ ई०
५१—प्रताप समीक्षा, स० प्रेमनारायण टंडन, १९३९ ई०
५२—प्रताप पीयूप, सं० रमाकान्त त्रिपाठी, १९३३ ई०
५३—प्रिय प्रवास, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', २०१३ वि०
५४—प्रेम पुष्पावली, प्रतापनारायण मिश्र, १८८३ ई०

५५—प्रेमधन-सर्वस्व (प्रथम भाग) प्रभाकरेश्वरप्रसाद उपाध्याय तथा दिनेश नारायण उपाध्याय १९९६ वि०
५६—प्रेमधन-सर्वस्व (द्वितीय भाग) प्रभाकरेश्वरप्रसाद उपाध्याय तथा दिनेश नारायण उपाध्याय २००७ वि०
५७—बालमुकुन्द गुप्त-निबन्धावली (प्रथम भाग) झावरमल्ल शर्मा तथा बनारसीदास चतुर्वेदी, २००७ वि०
५८—बालमुकुन्द गुप्त-स्मारक-ग्रन्थ, झाबरमल शर्मा तथा बनारसीदास चतुर्वेदी, २००७ वि०
५९—ब्रैडला स्वागत, प्रतापनारायण मिश्र, १८८९ ई०
६०—बंकिमचन्द्रेर उपन्यास ग्रन्थावली (तृतीय भाग) बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय राज संस्करण
६१—ब्रजभाषा बनाम खड़ी बोली, डा० कपिलदेव सिंह, प्रथम संस्करण
६२—ब्रिटिशकालीन भारत का इतिहास, डा० वी० डी० महाजन तथा डा० आर० आर० सेठी, १९६० ई०
६३—भट्ट निबन्धावली भाग, १, स० धनंजय भट्ट 'सरल' द्वितीय संस्करण
६४—भट्ट निबन्धावली भाग २, स० धनजय भट्ट 'सरल'-द्वितीय संस्करण
६५—भारत का सबैधानिक इतिहास, डा० वी० डी० महाजन तथा डा० आर० आर० सेठी, १९५७ ई०
६६—भारत का वृहत् इतिहास (तृतीय भाग) श्री नेत्र पाण्डे. सन् १९५४ ई०
६७—भारतीय पत्रकार कला, सं० रोलैण्ड ई० वूलसले, २०१० वि०
६८—भारतीय राजनीतिक, रामगोपाल, २०११ वि०
६९—भारतेन्दु और अन्य सहयोगी कवि, किशोरीलाल गुप्त, १९५६ ई०
७०—भारत दुर्दशा रूपक, प्रतापनारायण मिश्र. १९०२ ई०
७१—भारतेन्दु-युग, डा० रामविलास शर्मा, १९५६ ई०
७२—भारतेन्दु ग्रन्थावली (पहला भाग) सं० ब्रजरत्नदास, २००७ वि०
७३—भारतेन्दु-ग्रन्थावली (दूसरा भाग) सं० ब्रजरत्नदास, २०१० वि०
७४—भारतेन्दु-ग्रन्थावली (तीसरा भाग) स० ब्रजरत्नदास, २०१० वि०
७५—भारतेन्दु कालीन नाट्य साहित्य, डा० गोपीनाथ तिवारी, प्रथम सस्करण
७६—भारतेन्दु के निबन्ध, डा० केसरीनारायण शुक्ल, २००८ वि०
७७—भारतेन्दु युगीन निबन्ध, शिवनाथ २०१० वि०
७८—भारतेन्दु कालीन व्यंग्य परम्परा, ब्रजेन्द्रनाथ पाण्डेय, २०१३ वि०
७९—भारतेन्दु मण्डल, ब्रजरत्नदास, प्रथम सस्करण
८०—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, डा० रामविलास शर्मा, प्रथम संस्करण

८१—मन की लहर, प्रतापनारायण मिश्र, १८८५ ई०
८२—महारानी पद्मावती, राधाकृष्णदास, द्वितीय संस्करण
८३—मानस विनोद, प्रतापनारायण मिश्र, १८८६ ई०
८४—मिश्रबन्धु-विनोद, (तृतीय भाग) मिश्र बन्धु १९७० वि०
८५—मिस्टर व्यास की कथा, शिवनाथ शर्मा. प्रथम संस्करण
८६—मेरे गुरुजन, नारायणप्रसाद अरोड़ा, १९५४ ई०
८७—युगलागुरीय, अनु० प्रतापनारायण मिश्र, द्वितीय संस्करण
८८—रस मीमासा, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, द्वितीय संस्करण
८९—राइज एण्ड ग्रोथ आफ हिन्दी जनरलिज्म, रामरतन भटनागर, प्रथम सस्करण
९०—राधाकृष्ण-ग्रन्थावली, (प्रथम खण्ड) स० श्यामसुन्दर दास, १९३० ई०
९१—राधारानी, अनु० प्रतापनारायण मिश्र, द्वितीय संस्करण
९२—रामचरितमानम, गोस्वामी तुलसीदास, ग्यारहवा संस्करण, (गीता प्रेस गोरखपुर)
९३—लावनी का इतिहास, स्वामी नारायणानन्द सरस्वती, १९५३ ई०
९४—लाफ्टर, हेनरी बर्गसन
९५—लोकोक्ति शतक, प्रतापनारायण मिश्र, १८९६ ई०
१०६—वाँगमय—विमर्श, विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, २०१४ वि०
१०७—विश्वधर्म—दर्शन, सावलिया बिहारी लाल वर्मा, १९५३ ई०
१०८—शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धांत, प्रथम भाग, डा० गोविन्द त्रिगणायत, प्रथम संस्करण
१०९—शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त, द्वितीय भाग, डा० गोविन्द त्रिगुणायत १९५९ ई०
१००—शैली, करुणापति त्रिपाठी, प्रथम संस्करण
१०१—शैव सर्वस्व, प्रताप नारायण मिश्र १८९० ई०
१०२—समाचार पत्रों का इतिहास, अम्बिका प्रसाद बाजपेयी, २०१० वि०
१०३—समीक्षा-शास्त्र, डा० दशरथ ओझा, तृतीय संस्करण
१०४—स्टाइल, वाल्टर रेले
१०५—सारस्वत, डा० मुशीराम शर्मा २०१७ वि०
१०५—साहित्य सुपमा, आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी, प्रथम संस्करण
१०७—साहित्य चिंतन, डा० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय, प्रथम संस्करण
१०८—साहित्य का उद्देश्य, प्रेमचन्द, २००७ वि०
११०—साहित्यिकों के संस्मरण, सं० प्रेमनारायण टंडन, १९४३ ई०
१११—सिद्धान्त और अध्ययन, गुलाबराय, प्रथम सस्करण

११२—सुबाल-शिक्षा (प्रथम भाग) प्रतापनारायण मिश्र, १८९१ ई०
११३—सौ अजान और एक सुजान, बालकृष्ण भट्ट, ग्यारहवां संस्करण
११४—संगीत शाकुन्तल, प्रतापनारायण मिश्र, १९०८ ई०
११५—संस्कृति के चार अध्याय, रामधारी सिंह 'दिनकर' १९५६ ई०
११६—हठी हम्मीर नाटक, प्रतापनारायण मिश्र, प्रथम संस्करण
११७—हमारे गद्य निर्माता, प्रेमनारायण टंडन, चतुर्थ संस्करण
११८—हास्य के सिद्धान्त तथा हिन्दी साहित्य, प्रेमनारायण दीक्षित, १९४७ ई०
११९—हिन्दी काव्य विमर्श, गुलाबराय, प्रथम संस्करण
१२०—हिन्दी का गद्य साहित्य, रामचन्द्र तिवारी, प्रथम संस्करण
१२१—हिन्दी काव्य पर आंग्ल प्रभाव, डा० रवीन्द्रसहाय वर्मा, प्रथम संस्करण
१२२—हिन्दी की काव्य-शैलियों का विकास, डा० हरदेव बाहरी, १९५७ ई०
१२३—हिन्दी कोविद रत्नमाला, प्रथम भाग, डा० श्यामसुन्दर दास, द्वितीय संस्करण
१२४—हिन्दी गद्य मीमांसा, रमाकान्त त्रिपाठी, १९३२ ई०
१२५—हिन्दी गद्य-शैली का विकास, डा० जगन्नाथ शर्मा, २०१२ वि०
१२६—गद्य की प्रवृत्तियां, सं० डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, प्रथम संस्करण
१२७—हिन्दी गद्य के निर्माता पं० बालकृष्ण भट्ट (जीवन और साहित्य) डा० राजेन्द्रप्रसाद शर्मा, १९५८ ई०
१२८—हिन्दी गद्य साहित्य, शिवदान सिंह चौहान तथा विजय चौहान, प्रथम संस्करण
१२९—हिन्दी नाटक साहित्य का इतिहास, डा० सोमनाथ गुप्त, १९५७ ई०
१३०—हिन्दी-नाटक-साहित्य, ब्रजरत्नदास, २००१ वि०
१३१—हिन्दी नाटककार, जयनाथ 'नलिन' प्रथम संस्करण
१३२—हिन्दी-निबन्धकार, जयनाथ 'नलिन' १९५४ ई०
१३३—हिन्दी निबन्ध, प्रभाकर माचवे, प्रथम संस्करण
१३४—हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' द्वितीय संस्करण।
१३५—हिन्दी भाषा, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, १८९७ ई०
१३६—हिन्दी भाषा, बाबू बालमुकुन्द गुप्त १९६४ वि०
१३७—हिन्दी भाषा की उत्पत्ति, महावीर प्रसाद द्विवेदी, १९०७ ई०
१३८—हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास, चतुरसेन शास्त्री, १९४९ ई०
१३९—हिन्दी भाषा के सामायिक पत्रों का इतिहास, राधाकृष्णदास, १८९४ ई०
१४०—हिन्दी भाषा और साहित्य, डा० श्यामसुन्दरदास, १९९४ वि०

१४१—हिन्दी में निबन्ध साहित्य, जनार्दन स्वरूप अग्रवाल, प्रथम संस्करण
१४२—हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, २००६ वि०
१४३—हिन्दी साहित्य का विकास और कानपुर, नरेश चन्द्र चतुर्वेदी, १९५७ ई०
१४४—हिन्दी साहित्य के विकास की रूप रेखा, डॉ० रामअवध द्विवेदी, २०१३ वि०
१४५—हिन्दी साहित्य और साहित्यकार, सुधाकर पाण्डेय १९६१ ई०
१४६—हिन्दी साहित्य मे हास्यरस, डॉ० बरसानेलाल चतुर्वेदी, १९५७ ई०
१४७—हिन्दी साहित्य कोश, स० डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, २०१५ वि०
१४८—हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय १९५६ ई०
१४९—हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ० रमाशकर शुक्ल 'रसाल' प्रथम सस्करण
१५०—हिन्दी साहित्य, डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी, २००९ वि०
१५१—हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास, रामवहोरी शुक्ल तथा डॉ० भगीरथ मिश्र, १९५६ ई०
१५२—हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास, डॉ० गुलाबराय, १९६० ई०
१५३—हिन्दी साहित्य और उसकी प्रमुख प्रवृत्तियाँ, डॉ० गोविन्दराम शर्मा १९६१ ई०
१५४—हिन्दी साहित्य, डा० श्यामसुन्दरदास, नवाँ सस्करण
१५५—हिन्दी साहित्य का इतिहास, मिश्रबन्धु, प्रथम सस्करण
१५६—हिन्दी साहित्य मे निबन्ध, ब्रह्मदत्त शर्मा, प्रथम सस्करण
१५७—हिन्दी साहित्य. बीसवी शताब्दी, नन्ददुलारे वाजपेयी, १९९९ वि०
१५८—हिन्दी साहित्य का सक्षिप्त इतिहास, रामनरेश त्रिपाठी, १९८० वि०
१५९—हिन्दी साहित्यः एक अध्ययन, डॉ० रामरतन भटनागर, १९४८ ई०

पत्र-पत्रिकाएँ

१—आनन्द कादम्बिनी
२—आलोचना
३—कविवचन सुधा
४—कान्यकुब्ज हितकारी
५—क्षत्रिय पत्रिका
६—धर्मयुग
७—नागरी प्रचारिणी पत्रिका
८—ब्राह्मण
९—भारतमित्र
१०—भारतेन्दु
११—भारतोद्धारक

१२—माधुरी
१३—रसिक-वाटिका
१४—रामराज्य
१५—विशाल भारत
१६—वीर भारत
१७—समालोचक
१८—सम्मेलन पत्रिका
१९—सम्मेलन कार्य विवरण
२०—सरस्वती
२१—साप्ताहिक प्रताप
२२—साप्ताहिक हिन्दुस्तान
२३—सारसुधानिधि
२४—साहित्य संदेश
२५—सुधा
२६—हरिश्चन्द्र चन्द्रिका
२७—हिन्दी अनुशीलन
२८—हिन्दी प्रदीप
२९—हिन्दोस्थान